बी.एड. प्रथम वर्ष

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण

(TEACHING OF SOCIAL STUDIES)

GEDE-16

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Nitin Jain
   Assistant Professor
   Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Lata Malviya
   Professor
   IES University, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, B.Ed.
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Nitin Jain
   Assistant Professor
   Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Lata Malviya
   Professor
   IES University, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Sitesh Saraswat, Reader, Department of Education, Bhagwati College of Education, Meerut (UP)
Units (1.2-1.2.2, 1.3-1.3.1, 3.2.2-3.2.3, 3.4.4)
Arun Kumar Garg, Retired Principal, Govt. Senior Secondary School, Burhar, Distt.- Shahdol, M.P.
Units (1.2.3, 1.3.2, 1.5-1.5.1, 1.5.3, 2.2-2.4, 2.5.5, 3.2.4-3.3.2, 3.3.4-3.3.5, 3.4.3, 3.4.5, 4.4.2, 4.4-4.4.1, 4.4.3-4.4.4)
Nutan Singh, Lecturer, Department of Political Science, G.D.M. Girls (P.G.) College, Modinagar, Ghaziabad, U.P.
Unit (1.4-1.4.2)
Prof. Meenu Agrawal, Principal, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar, Ghaziabad (UP)
Units (1.4.3)
R.S. Sharama, Professor, Sant Keenaram PG College, Sonbhadra
Units (1.0-1.1, 1.4.4, 1.5.2, 1.6-1.10, 2.0-2.1, 2.5-2.5.1, 2.5.2, 2.5.3, 2.5.4, 2.5.6, 2.6-2.9, 3.0-3.1, 3.2-3.2.1, 3.3.3, 3.4-3.4.1, 3.4.2, 3.5-3.9, 4.0-4.2.1, 4.2.2, 4.2.3, 4.3-4.3.1, 4.5-4.9)
Dr. Harjot K. Dhatt, Assistant Professor, Department of Education, Oriental College of Education, Navi Mumbai
Units (3.3.3)
Dr. Namrata Prasad, Lecturer, Department of Sociology, Bapu PG College, Pipiganj, Gorakhpur (UP)
Units (4.3.2)
Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Department of Economics, CCS University, Meerut
Units (4.4.5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण

Syllabi	Mapping in Book
इकाई-1 : सामाजिक अध्ययन की प्रकृति; विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान; समाज का अध्ययन; छात्र सामाजिक अध्ययन कैसे सीखते हैं?	**इकाई 1 :** सामाजिक अध्ययन का आधार **(पृष्ठ 3-80)**
इकाई-2 : 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य; शिक्षण अधिगम के संसाधन; 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के शैक्षणिक उपागम (पद्धतियां); सामाजिक अध्ययन अधिगम का मूल्यांकन	**इकाई 2 :** लक्ष्य, उद्देश्य, विधियां और मूल्यांकन **(पृष्ठ 81-168)**
इकाई-3 : पाठ्यचर्या निर्माण; सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उपकरण; विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण	**इकाई 3 :** पाठ्यचर्या निर्माण, शिक्षण के लिए उपकरण, विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण **(पृष्ठ 169-270)**
इकाई-4 : सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से मूल्यों का समावेशन; सामाजिक मुद्दे; पर्यावरणीय मुद्दे	**इकाई 4 :** सामाजिक अध्ययन के शिक्षण से संबंधित मुद्दे **(पृष्ठ 271-350)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 सामाजिक अध्ययन का आधार **3–80**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक अध्ययन की प्रकृति
1.2.1 सामाजिक अध्ययन : अर्थ, परिभाषा, प्रकृति और क्षेत्र
1.2.2 विद्यालय पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में सामाजिक अध्ययन
1.2.3 बच्चे की जानने की तीव्र इच्छा को अद्भुत प्राकृतिक घटनाओं जैसे गरज के साथ बौछार, वनस्पतियों, जीवों, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना
1.3 विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान
1.3.1 विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान और महत्व
1.3.2 सामाजिक वास्तविकताओं का आलोचनात्मक अध्ययन : न्याय, समानता और समता के संदर्भ में
1.4 समाज का अध्ययन
1.4.1 समाज का अध्ययन करने की आवश्यकता और विधियां
1.4.2 विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना और साक्ष्यों की उनके अंतर्निहित दृष्टिकोणों, प्रामाणिकता, उपयोगिता के संदर्भ में जांच, साक्ष्य पर सोच विचार और व्यवस्थित जांच-पड़ताल
1.4.3 भारतीय समाज : पारंपरिक भारतीय परिवार, जाति व्यवस्था, भारत में धर्म, भारतीय समाज में परिवर्तन
1.4.4 भारतीय कला : वास्तुकला, साहित्य, संगीत और सिनेमा
1.5 छात्र सामाजिक अध्ययन कैसे सीखते हैं?
1.5.1 कक्षा में छात्रों के सामाजिक और भौतिक परिवेश जनित विचारों और अनुभवों को साझा करना
1.5.2 छात्रों की विविधता को समझना और कक्षा में अभिव्यक्ति के विविध रूपों को प्रोत्साहित करना
1.5.3 'सामाजिक अध्ययन' विषय के अध्ययन हेतु प्रक्रिया एवं कौशल : पियाजे, ब्रूनर, वायगोत्स्की और चाम्सकी के विचार
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 लक्ष्य, उद्देश्य, विधियां और मूल्यांकन **81-168**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य
2.2.1 उच्चतर प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य
2.2.2 माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य
2.3 शिक्षण अधिगम के संसाधन
2.3.1 विद्यालय और समुदाय में शिक्षण अधिगम संसाधनों की पहचान और उनके प्रकार
2.3.2 कम लागत और शून्य लागत वाले जसत का चयन और निर्माण
2.4 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के शैक्षणिक उपागम (पद्धतियां)
2.4.1 व्यवहारवादी से रचनावादी दृष्टिकोण की ओर परिवर्तन
2.4.2 प्रोजेक्ट विधि और पर्यटन/भ्रमण विधि
2.4.3 सिमुलेशन (अनुकरण) विधि और भूमिका निर्वहन विधि तथा अन्य शिक्षण अधिगम विधियां

2.4.4 व्याख्यान और विचार-विमर्श विधि
2.4.5 विचार-विमर्श विधि
2.4.6 कहानी कथन विधि
2.5 सामाजिक अध्ययन अधिगम का मूल्यांकन
2.5.1 मूल्यांकन : अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य
2.5.2 आकलन, मापन और मूल्यांकन में अंतर
2.5.3 मूल्यांकन के प्रकार
2.5.4 मूल्यांकन की तकनीकें और उपकरण
2.5.5 शिक्षक निर्मित परीक्षण
2.5.6 शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण उपक्रम (तैयारी)
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

इकाई 3 पाठ्यचर्या निर्माण, शिक्षण के लिए उपकरण, विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण **169-270**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 पाठ्यचर्या निर्माण
3.2.1 पाठ्यचर्या निर्माण एवं नवीनीकरण
3.2.2 पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धांत
3.2.3 पाठ्यचर्या निर्माण के दृष्टिकोण : पाठ्यचर्या का आवधिक संशोधन
3.2.4 सामाजिक अध्ययन की वर्तमान पाठ्यचर्या
3.3 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उपकरण
3.3.1 प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाएं
3.3.2 प्रश्न : आवश्यकता, महत्व एवं प्रकार
3.3.3 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु उपयुक्त मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग
3.3.4 सहकारी व सहयोगात्मक अधिगम
3.3.5 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण की रचनात्मक विधियां : समस्या समाधान, मस्तिष्क उद्वेलन
3.4 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण
3.4.1 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों की पहचान, विशेषताएं और प्रकार
3.4.2 विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएं एवं समस्याएं
3.4.3 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों के साथ व्यवहार, कक्षा हेतु रणनीतियां, समनुदेशन
3.4.4 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु सरकारी योजनाएं और कार्यक्रम
3.4.5 समावेशन की अवधारणा को प्रोत्साहित करना
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 सामाजिक अध्ययन के शिक्षण से संबंधित मुद्दे **271-350**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य

4.2 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से मूल्यों का समावेशन

4.2.1 मूल्यों का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकृति

4.2.2 मूल्यों के प्रकार

4.2.3 सामाजिक अध्ययन के माध्यम से बच्चों में मूल्यों के समावेशन के तरीके

4.3 सामाजिक मुद्दे

4.3.1 आतंकवाद, भ्रष्टाचार एवं निरक्षरता: कारण और निवारण

4.3.2 समाज की प्रमुख समस्याएं : बेरोजगारी, महिलाएं एवं बाल शोषण, छेड़छाड़ और उत्पीड़न, लैंगिक असमानता, दहेज, आक्रामक गतिविधियों के विरुद्ध संवैधानिक संरक्षण

4.4 पर्यावरणीय मुद्दे

4.4.1 पर्यावरण को प्रभावित करने वाली मानवीय गतिविधियों के निरीक्षण हेतु विवेचनात्मक क्षमता का विकास

4.4.2 पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना

4.4.3 अपशिष्ट सामग्री का प्रबंधन

4.4.4 जलवायु परिवर्तन

4.4.5 आपदा प्रबंधन विषयक जागरूकता का विकास

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

4.6 सारांश

4.7 मुख्य शब्दावली

4.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'सामाजिक अध्ययन का शिक्षण' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. (प्रथम वर्ष) के पाठ्यक्रम के अनुसार किया गया है।

सामाजिक अध्ययन शब्द से अभिप्राय है 'मानवीय परिप्रेक्ष्य में समाज का अध्ययन।' सामाजिक अध्ययन में समाज से संबंधित सभी विषयों व क्रियाओं का, मनुष्य के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का तथा विश्व की संपूर्ण मानव जाति का अध्ययन किया जाता है। प्राचीन काल में समाज की संरचना इतनी जटिल नहीं थी। उस समय उसकी समस्याएं भी सरल हुआ करती थीं। परंतु समय परिवर्तन के साथ–साथ समाज की समस्याएं भी जटिल होती गईं।

विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने एक ओर जहां सुख–सुविधाएं प्रदान की, वहीं दूसरी ओर कई जटिल समस्याओं को भी जन्म दिया। इन समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने तथा उनके उचित समाधान के लिए सहयोग देने का प्रशिक्षण व्यक्ति को बचपन से ही प्राप्त होना चाहिए। तभी आगे चलकर वह समाज का उपयोगी सदस्य सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान या सामाजिक अध्ययन विषय को स्कूली शिक्षा में सम्मिलित किया गया है।

सामाजिक अध्ययन स्कूली शिक्षा के उच्च प्राथमिक और माध्यमिक चरणों में एक मुख्य पाठ्यचर्या क्षेत्र है। इस पाठ्यक्रम को इस तरह से डिज़ाइन किया गया है कि छात्र तथा शिक्षक दोनों को अध्ययन सामग्री और शिक्षाशास्त्र दोनों से परिचित कराया जा सके।

प्रस्तुत पुस्तक में सामाजिक अध्ययन से संदर्भित सभी अहम पहलुओं का सांगोपांग विवेचन किया गया है। विषय–विश्लेषण से पूर्व इकाई के आरंभ में उसका परिचय और उद्देश्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। विद्यार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के अंतर्गत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

समूचे पाठ्यक्रम को अध्ययन की सुविधा के लिए चार इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में सामाजिक अध्ययन की प्रकृति, क्षेत्र, विद्यालयी पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में सामाजिक अध्ययन का महत्व, समाज के अध्ययन की विधियां, छात्र सामाजिक अध्ययन कैसे सीखते हैं? आदि तथ्यों का वर्णन किया गया है।

दूसरी इकाई सामाजिक अध्ययन के लक्ष्य, उद्देश्य, विधियां एवं मूल्यांकन पर आधारित है। इसमें उच्चतर एवं माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत अधिगम के संसाधन, विद्यालय और समुदाय में शिक्षण अधिगम की पद्धतियां, व्यवहारवादी व रचनावादी दृष्टिकोण एवं सामाजिक अध्ययन अधिगम का मूल्यांकन आदि तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

टिप्पणी

तीसरी इकाई पाठ्यक्रम निर्माण पर आधारित है। जिसमें पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत, दृष्टिकोण, सामाजिक अध्ययन का वर्तमान पाठ्यक्रम, विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु मूल्यांकन एवं तकनीकी का उपयोग, सहकारी व सहयोगात्मक अधिगम एवं सामाजिक अधिगम शिक्षण की रचनात्मक विधियों का अध्ययन किया गया है।

चौथी इकाई सामाजिक अध्ययन के शिक्षण से संबंधित मुद्दों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जिसमें सामाजिक मूल्यों का महत्व, सामाजिक अध्ययन के माध्यम से बच्चों में मूल्यों के समावेशन के तरीके, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, निरक्षरता, दहेज, महिलाओं एवं बच्चों का यौन शोषण आदि सामाजिक मुद्दों तथा पर्यावरण संबंधी मुद्दों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

कुल मिलाकर इस पुस्तक में निर्धारित पाठ्यक्रम से संबंधित सभी पक्षों का स्तरीय, सरल एवं रोचक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हमें विश्वास है कि यह पुस्तक अध्येताओं का ज्ञानवर्धन कर उनके मार्गदर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 सामाजिक अध्ययन का आधार

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक अध्ययन की प्रकृति
  1.2.1 सामाजिक अध्ययन : अर्थ, परिभाषा, प्रकृति और क्षेत्र
  1.2.2 विद्यालय पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में सामाजिक अध्ययन
  1.2.3 बच्चे की जानने की तीव्र इच्छा को अद्भुत प्राकृतिक घटनाओं जैसे गरज के साथ बौछार, वनस्पतियों, जीवों, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना
1.3 विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान
  1.3.1 विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान और महत्व
  1.3.2 सामाजिक वास्तविकताओं का आलोचनात्मक अध्ययन : न्याय, समानता और समता के संदर्भ में
1.4 समाज का अध्ययन
  1.4.1 समाज का अध्ययन करने की आवश्यकता और विधियां
  1.4.2 विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना और साक्ष्यों की उनके अंतर्निहित दृष्टिकोणों, प्रामाणिकता, उपयोगिता के संदर्भ में जांच, साक्ष्य पर सोच विचार और व्यवस्थित जांच-पड़ताल
  1.4.3 भारतीय समाज : पारंपरिक भारतीय परिवार, जाति व्यवस्था, भारत में धर्म, भारतीय समाज में परिवर्तन
  1.4.4 भारतीय कला : वास्तुकला, साहित्य, संगीत और सिनेमा
1.5 छात्र सामाजिक अध्ययन कैसे सीखते हैं?
  1.5.1 कक्षा में छात्रों के सामाजिक और भौतिक परिवेश जनित विचारों और अनुभवों को साझा करना
  1.5.2 छात्रों की विविधता को समझना और कक्षा में अभिव्यक्ति के विविध रूपों को प्रोत्साहित करना
  1.5.3 'सामाजिक अध्ययन' विषय के अध्ययन हेतु प्रक्रिया एवं कौशल : पियाजे, ब्रूनर, वायगोत्स्की और चाम्सकी के विचार
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है। सामाजिक परिवर्तन समय–समय पर होता रहता है। इसी कारण शिक्षा के स्वरूप, पद्धति, क्षेत्र में भी समय–समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है। 19वीं शताब्दी तक ज्ञान को पृथक इकाई के रूप में समझा जाता था और शिक्षा के विभिन्न विषयों जैसे–इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि का अध्ययन पृथक–पृथक विषय के रूप में किया जाता था। परन्तु कालान्तर में विषयों के वैविध्य को समाप्त करके समन्वयीकरण पर बल दिया गया। जॉन डी. वी. समन्वयीकरण के प्रर्वतक माने जाते हैं। उन्होंने ज्ञान के समन्वय पर बल दिया और विभिन्न प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि जब तक विभिन्न विषयों में समन्वय नहीं

होगा तब तक व्यवस्थित ज्ञान नहीं दिया जा सकता है। समन्वय पर आधारित इस विचारधारा के फलस्वरूप ही– इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र आदि विषयों के मूलभूत सिद्धांतों का समन्वयीकरण करके सामाजिक अध्ययन नामक एक नए विषय को प्रतिपादित किया गया। इस प्रकार शैक्षिक जगत में सामाजिक अध्ययन शब्द की उत्पत्ति हुई।

प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक अध्ययन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसे परिभाषित करेंगे। इसकी प्रकृति, क्षेत्र एवं संरचना को स्पष्ट करेंगे। सामाजिक विज्ञान का बेसिक (मौलिक) प्रत्यय एवं भावी दृष्टिकोण भी स्पष्ट करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक अध्ययन की प्रकृति को समझ पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन–शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों और विशिष्ट उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के माध्यम से मूल्यों को विकसित कर पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण की विभिन्न विधियों का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे और उससे संबंधित कौशल विकसित कर पाएंगे;
- सीखने की प्रक्रिया में खुद को सक्रिय रूप से संलग्न करने हेतु छात्र की सराहना कर पाएंगे;
- उपयुक्त शिक्षण–अधिगम सामग्री तैयार करने और उपयोग करने के लिए कौशल विकसित कर पाएंगे;
- समाज की आवश्यकता के अनुसार माध्यमिक विद्यालयों के लिए सामाजिक अध्ययन के वर्तमान पाठ्यक्रम की समीक्षा कर पाएंगे;
- विभिन्न क्षमताओं के छात्रों के साथ अपेक्षित व्यवहार कर पाएंगे;
- उपयुक्त मूल्यांकन कार्यक्रम तैयार करने और उपयोग करने के लिए कौशल विकसित कर पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के माध्यम से मुद्दों का समाधान कर पाएंगे।

1.2 सामाजिक अध्ययन की प्रकृति

प्रारम्भ में सामाजिक अध्ययन विषयों के उस समूह के लिए नाम दिया गया था जिसमें इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा अर्थशास्त्र आदि सम्मिलित थे। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो इस विषय के आरम्भ के लिए विश्व, संयुक्त राज्य अमेरिका का ऋणी है। यह नामकरण 1892 ई. में किया गया था। बाद में इस समूह में समाजशास्त्र को और जोड़ा गया परन्तु सामाजिक अध्ययन विषय के इस स्वरूप को सरकार की ओर से 1916 तक मान्यता प्राप्त नहीं हुई। 1916 में कमेटी ऑन दी सोशल

स्टडीज ऑफ द नेशनल एजुकेशन एसोसियेशन्स कमीशन ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन रिआरगेनाइजेशन ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन के प्रतिवेदन में इस विषय को मान्यता प्रदान की गई और उसे एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय के रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया गया।

टिप्पणी

1.2.1 सामाजिक अध्ययन : अर्थ, परिभाषा, प्रकृति और क्षेत्र

1921 में सामाजिक अध्ययन विषय के सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन करने के लिए अमेरिका में राष्ट्रीय परिषद का निर्माण किया गया। इस परिषद के समन्वित रूप की सम्भावनाओं पर गहन अध्ययन किया गया। 1934 में सोशल स्टडीज पर एक कमीशन की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने इसके विकास के लिए सुझाव दिए।

इसके उपरान्त उस क्षेत्र में बहुत से अनुसंधान कार्य किए गए, जिनके फलस्वरूप सामाजिक अध्ययन विषय के एकीकृत स्वरूप का विकास हुआ और इसको एक क्षेत्रीय अध्ययन विषय के रूप में मान्यता दी गई। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इग्लैण्ड और यूरोप जैसे अन्य देशों पर भी विषयों के समन्वयीकाण पर आधारित इस विचारधारा पर प्रभाव पड़ा। हमारे देश में महात्मा गांधी द्वारा प्रचलित 'बेसिक शिक्षा' के माध्यम से विभिन्न विषयों को समन्वित करने का प्रयास किया गया। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग तथा विश्वविद्यालय आयोग ने भी एक समन्वित विषय को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

सामाजिक अध्ययन का अर्थ

मानवीय ज्ञान को मूलतः दो भागों में विभाजित किया गया है—

1 प्राकृतिक विज्ञान

2 सामाजिक विज्ञान

प्राकृतिक विज्ञान का सम्बन्ध सृष्टि के दृष्टिगत विषयों से है। प्राकृतिक विज्ञान के अन्तर्गत भौतिक विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र, नक्षत्रशास्त्र जन्तु विज्ञान, जीव विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान आदि आते हैं। जो मानवीय ज्ञान सामाजिक पक्षों से सम्बधित होता है उसे इस वर्ग में रखा जाता है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध उन विषयों से है जो मानव समाज के उद्भव, संगठन तथा विकास से अवगत कराते हैं। इनके द्वारा मानव का अध्ययन किया जाता है। मानव की बहुमुखी क्रियाओं का विभिन्न सामाजिक विषयों में विवेचन किया जाता है। जैसे इतिहास, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान व भूगोल आदि।

इसको विभिन्न पक्षों में ज्ञान वृद्धि के कारण सामाजिक अध्ययन विषय में विभाजित किया गया है जिसे स्वतन्त्र विषय की मान्यता दी गई है। जैसे पृथ्वी और मनुष्य के सम्बन्ध को भूगोल, सामाजिक व्यवस्था, नागरिकशास्त्र, अर्थव्यवस्था को अर्थशास्त्र तथा मानव के विकास क्रम तथा सामायिक ज्ञान को इतिहास कहते हैं। परन्तु

माध्यमिक स्तर पर इन विषयों का अध्ययन, अध्यापन सामाजिक विज्ञान वर्ग के अन्तर्गत ही किया जाता है।

यद्यपि प्राकृतिक विज्ञान व सामाजिक विज्ञान दोनों भिन्न–भिन्न विषय हैं तथापि प्राकृतिक विज्ञान ने सामाजिक विज्ञान को विशेष महत्व प्रदान किया है जैसे जीवविज्ञान की शाखा 'प्रजननशास्त्र के अध्ययन ने मनुष्य जाति की पैतृकता तथा वातावरण के ज्ञान में वृद्धि की है जिससे सामाजिक स्थिति को सुधारने में मदद मिलती है। शक्ति, अणुशक्ति के आविष्कार ऐसे हैं जिनका उपयोग करके मानव जाति के रहन–सहन के स्तर में आशातीत वृद्धि हुई है।

शाब्दिक अर्थ

सामाजिक अध्ययन दो शब्दों को मिलाकर बना है– 'सामाजिक + अध्ययन'। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन में सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इससे तात्पर्य है समाज का, समाज के लिए, समाज द्वारा अध्ययन। दूसरे शब्दों में समाज संबंधी सभी संस्थाओं व संगठनों का अध्ययन, जिससे समाज की प्रगति होती है– सामाजिक अध्ययन है। अध्ययन से तात्पर्य है प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक रूप से जीवन में प्रयुक्त करना।

सामाजिक अध्ययन की परिभाषाएं

माइकेलिस के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से संबंधित क्रियाओं का अध्ययन है।"

जे. एफ. फोरेस्टर के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन उस समाज का अध्ययन है जिसमें रहकर छात्रों का सर्वांगीण विकास होता है।"

"Social studies are part of the modern approch to educate the aim of which is the formation of standards, attitudes, idesls and interests. Rather than the accumulation of factual information." (J.F.Forester)

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय शिक्षा संगठन, नेशनल एजुकेशन एसोसिएशन के अनुसार– "वे सभी अध्ययन सामाजिक अध्ययन कहे जा सकते हैं जिनकी विषयवस्तु का सीधा सम्बन्ध मनुष्य, समाज के संगठन और विकास से हो तथा जो एक सामाजिक समूह के सदस्य के रूप में मनुष्य को देखें।"

'Social studies are understood to be those whose subject matter relates directly to the organization and development of human society.' - U.S.A Organisation

ई.बी. वेस्ले के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन उस विषय सामग्री की तरफ इंगित करता है, जिनके तथ्य तथा उद्देश्य प्रमुख रूप से सामाजिक होते हैं।"

'Social studies are the study of basic elements of different Social Sciences.' - E B Wesley

जेरोलिमिक के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन है।"

'Social studies is the study of human relations.'– Jarolimick

एम. पी मोफात के अनुसार, "जीने की कला बड़ी सुन्दर कला है, सामाजिक अध्ययन द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता है।''

'Living is a great art; its knowledge is begot by the study of social studies.' - M.P. Moffatt

सामाजिक अध्ययन की पाठ्यवस्तुगत धारणा

टिप्पणी

सामाजिक अध्ययन की पाठ्यवस्तुपरक धारणा को निम्न तथ्यों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **आधुनिक सभ्यता को स्पष्ट करने वाला विषय** : सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत ज्ञान के उस क्षेत्र को भी शामिल किया गया है जिसके द्वारा भारतीय आधुनिक सभ्यता को स्पष्ट किया जा सकता है। इसकी पुष्टि हम एम. पी. मोफात के विचारों के द्वारा कर सकते हैं– "सामाजिक अध्ययन ज्ञान का वह क्षेत्र है जो युवकों को आधुनिक सभ्यता के विकास को समझने में सहायता देता है। ऐसा करने के लिए वह अपनी विषयवस्तु को समाज के विधानों तथा समसामयिक जीवन से प्राप्त करता है।"
2. **शिक्षा का आधुनिक दृष्टिकोण** : सामाजिक अध्ययन विषय का अपने आप में कोई महत्व नहीं है परंतु यह विषय शिक्षा के प्रति अपनाए जाने वाले आधुनिक दृष्टिकोण का एक पक्ष प्रस्तुत करता है। इसको फोरेस्टर ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है, "सामाजिक अध्ययन शिक्षा के आधुनिक दृष्टिकोण का एक अंश है। इसका ध्येय तथ्यात्मक सूचनाओं को संगठित या एकत्रित करने की अपेक्षा मानदण्डों, वृत्तियों, आदर्शों तथा रुचियों का निर्माण करना है।"
3. **सामाजिक विज्ञान एक क्षेत्रीय विषय के रूप में** : क्षेत्रीय विषय से अभिप्राय मानव मन की अभिवृत्तियों, मूल्यों व कुशलताओं से है। सामाजिक अध्ययन विषय उस ज्ञान, सूचना तथा क्रियात्मक अनुभवों के द्वारा सहायता प्रदान करता है, जो मूलभूत मूल्यों, वांछित आदतों, स्वीकृत वृत्तियों तथा उन महत्वपूर्ण कुशलताओं के निर्माण के लिए आवश्यक हैं, जिनको प्रभावशाली नागरिकता का आधार माना जाता है।
4. **शिक्षण के लिए नवीन आधार प्रदान करने वाला विषय** : शिक्षण के द्वारा प्रत्यय की जटिलता को सरलता में बदला जा सकता है। इसके लिए उसे नए आधार की जरूरत होती है। सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत उन सभी तथ्यों को सम्मिलित किया गया है जिनके द्वारा आज के जटिल विश्व को सरल व स्पष्ट बनाने के लिए शिक्षण का नवीन आधार प्रदान किया गया है।

   इसके विषय में वाइनिंग व वाइनिंग ने लिखा है, "सामाजिक अध्ययन की विषयवस्तु द्वारा एक ऐसा आधार प्रस्तुत किया जाता है जिसके द्वारा हम छात्रों के समक्ष वर्तमान समय में विश्व को सरल व स्पष्ट बना सकें। जिसके अध्ययन द्वारा छात्रों को अनिवार्य आदतों तथा कुशलताओं में प्रशिक्षित किया जा सके तथा उनमें ऐसी वृत्तियों आदर्शों को विकसित किया जा सके, जो छात्र एवं छात्राओं

को लोकतांत्रिक समाज में प्रभावशाली सदस्यों के रूप में उचित समय पर उचित स्थान ग्रहण करने योग्य बना सकें।"

टिप्पणी

5. **मानवीय संबंधों का अध्ययन** : मनुष्य समाज में रहता है और समाज भी मनुष्यों द्वारा बना है। अतः सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत मानवीय संबंधों की विवेचना की जाती है। मानवीय संबंधों का अभिप्राय उन संबंधों से है, जो व्यक्ति और समुदायों, संस्थाओं, राज्यों आदि के बीच स्थित रहते हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत, पारंपरिक एवं सामूहिक संबंध भी सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत आते हैं।

   इस संबंध में ई.बी. वेस्ले ने लिखा है, "सामाजिक अध्ययन नामक पद उन विद्यालय विषयों की ओर संकेत देता है जो मानवीय संबंधों की विवेचना करते हैं। यह अध्ययन–क्षेत्र विषयों के एक संघ तथा पाठ्यक्रम के एक खंड का निर्माण करता है। यह खंड वह है, जो प्रत्यक्ष रूप से मानवीय संबंध से संबंधित है।" "The term social studies is used to designate the school subject which deal with human relationship it constitutes a field of studies a federation of subjects, an area of the carriculum. The area is that which is concerned directly with human relationships."

6. **सामाजिक और भौतिक वातावरण का अध्ययन** : समाज आस–पास के प्रभाव से अवश्य प्रभावित होता है, वातावरण चाहे भौतिक ही क्यों न हो। सामाजिक अध्ययन पाठ्यक्रम के अंतर्गत सामाजिक तथा भौतिक वातावरण की विवेचना की जाती है। इस संबंध में जॉन यू. माइकेलिस ने लिखा है, "सामाजिक अध्ययन का कार्यक्रम मनुष्य अतीत, वर्तमान और विकसित होने वाले भविष्य के सामाजिक तथा भौतिक पर्यावरणों के प्रति उनके द्वारा की गई पारस्परिक क्रिया का अध्ययन है।"

   इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट व पुष्ट करने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training) द्वारा प्रस्तावित पत्रिका 'Teaching Social Studies' के इन शब्दों पर भी ध्यान दिया जा सकता है– "सामाजिक अध्ययन लोगों तथा सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के प्रति उनकी पारस्परिक क्रिया से संबंधित है।"

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अध्ययन एक विस्तृत, व्यापक ही नहीं विशिष्ट विषय भी है।

सामाजिक अध्ययन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है–

1. सामाजिक अध्ययन विषय का केन्द्र बिन्दु मानव है।
2. सामाजिक अध्ययन विषय छात्रों में अनेक चारित्रिक गुणों, वृत्तियों तथा कुशलताओं का सृजन करने में सहायक है।
3. सामाजिक अध्ययन मानवीय संबंधों पर बल देता है।

4. सामाजिक अध्ययन छात्रों को समसामयिक विश्व एवं उनकी समस्याओं को समझने में सहायक है।
5. सामाजिक अध्ययन छात्रों में व्यावहारिक कुशलता तथा सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करता है।
6. यह मनुष्य तथा उसके भौतिक वातावरण के बीच होने वाली अंतःक्रिया का अध्ययन करता है।
7. सामाजिक अध्ययन सभी विषयों का योग न होकर उनका एकीकृत रूप है।
8. इसमें अतीत तथा वर्तमान में मानवता को प्रभावित करने वाले मामलों, समस्याओं तथा ढांचों का अध्ययन किया जाता है।
9. सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लिए नवीन आधार का दृष्टिकोण उत्पन्न करता है।
10. सामाजिक अध्ययन लोकतंत्र में उत्तम नागरिकता के विकास में सहायता प्रदान कर लोकतंत्र की सफलता–सुरक्षा करने में सहायक है।

टिप्पणी

सामाजिक अध्ययन की संरचनात्मक प्रकृति एवं क्षेत्र

सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र अत्यंत विशाल है। यही कारण है कि इसे एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। सामाजिक अध्ययन की संरचनात्मक प्रकृति एवं इसके क्षेत्र को पृथक–पृथक निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(क) सामाजिक अध्ययन की संरचनात्मक प्रकृति

सामाजिक विज्ञान एक विशिष्ट विषय है जिसकी प्रकृति विशाल है। इसीलिए इसे स्कूल पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। सामाजिक अध्ययन विभिन्न विषयों का मिश्रण नहीं, अपितु एक अलग विषय है जो मानवीय संबंधों तथा वातावरण के सामंजस्य की जानकारी देता है। यह लोकतान्त्रिक नागरिक का निर्माण कर देशप्रेम की भावना एवं अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करता है।

आज सामाजिक अध्ययन का जो स्वरूप हमारे सम्मुख है, वह इसके क्रमिक विकास का परिणाम है। इस संरचनात्मक विकास का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. स्वतंत्र विषय के रूप में
2. एकीकृत विषय के रूप में।

1. **स्वतंत्र विषय के रूप में** : 19वीं सदी में सामाजिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का पृथक–पृथक विषय के रूप में अध्ययन किया जाता था, जैसे– भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि।

   तत्पश्चात 'सामाजिक अध्ययन' को स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्रदान करने की दिशा में प्रयास आरम्भ हुए। इस दिशा में सर्वप्रथम 1916 में संयुक्त राज्य अमेरिका में 'कमेटी ऑन दी सोशल स्टडीज ऑफ दी नेशनल एजुकेशन

एसोसिएशन, कमीशन ऑन दी रिऑरगेनाइजेशन ऑफ सैकेण्डरी एजुकेशन' ने इसे एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्रदान करने का सुझाव दिया।

टिप्पणी

2. **एकीकृत विषय के रूप में** : स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्राप्त करने के पश्चात इसके समन्वित रूप की संभावनाओं पर विचार किया गया। इस उद्देश्य हेतु अमेरिका में एक राष्ट्रीय परिषद् (National Council) का गठन किया गया तथा 1934 में इसके लिए एक आयोग नियुक्त किया गया। विविध परिचर्चाओं, शोध तथा विश्लेषण आदि के उपरान्त जो परिणाम सामने आए, उनके आधार पर ही सामाजिक अध्ययन के एकीकृत स्वरूप का विकास हुआ।

यहां यह स्पष्ट कर देना भी असंगत न होगा कि सामाजिक अध्ययन के एकीकृत स्वरूप से आशय क्या है– समाज तथा मानव की सामाजिक क्रियाओं से संबंधित विभिन्न विषयों जैसे– इतिहास, नागरिकशास्त्र, भूगोल तथा अर्थशास्त्र को इकाई के रूप में मान्यता प्रदान करना तथा इन सब विषयों से संबंधित अध्ययन सामग्री को छात्रों के सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत करना जिससे इनको मिलाकर एक विषय की धारण बने और पाठ्यक्रम में भी पूर्ण सन्तुलन व समन्वय बना रहे।

भारत में माध्यमिक शिक्षा पद्धति पर अध्ययन के लिए गठित 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' (मुदालियर कमीशन) ने सामाजिक अध्ययन के इसी एकीकृत रूप का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है, "इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र आदि को एक पूर्ण रूप में देखना चाहिए। इस एकीकृत स्वरूप की विषय–सामग्री ऐसी हो, जो छात्रों को सामाजिक पर्यावरण में व्यवस्थित कर सके।"

वर्तमान में अध्ययन विषय का क्षेत्र अपने आप में काफी विस्तृत है। छात्रों में इतनी योग्यता व कुशाग्रता होनी चाहिए कि वे विषय के अनुरूप स्वयं को ढाल सकें। सामाजिक अध्ययन इस उद्देश्य की पूर्ति करने में सहायता प्रदान करता है। इस एकीकृत स्वरूप के माध्यम से छात्र सामाजिक पर्यावरण के अंतर्गत समाज, राष्ट्र, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, स्वतंत्रता, विभिन्न शासन प्रणालियों आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं। साथ ही वे समाज में रहने की कला से परिचित हो जाते हैं तथा स्वयं को समाज का अभिन्न अंग मानकर, अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों से परिचित होकर उनके निर्वाह में सफल हो सकते हैं।

सामाजिक अध्ययन के माध्यम से समाज में व्यवस्थित होने के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एम.पी. मोफात लिखते हैं–

"चाहे कोई व्यक्ति भौतिक शास्त्र या गणित का कितना ही विद्वान हो, एक कुशल शिल्पी हो, यदि वह अपने साथियों के प्रति व्यवहार में दूरदर्शी नहीं है तो असामाजिक है। जीने की कला बड़ी सुंदर कला है और इसका ज्ञान सामाजिक अध्ययन से प्राप्त होता है।"

संक्षेप में, सामाजिक अध्ययन का संरचनात्मक स्वरूप व्यवस्थित व चरणबद्ध ढंग से विकसित हुआ है। एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्राप्त कर यह अब एकीकृत स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है।

(ख) सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र

टिप्पणी

सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत एवं व्यापक है। इसे हम इस प्रकार से समझ सकते हैं–

इसमें अन्य प्रासंगिक विषयों, जैसे–इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि से संबंधित पाठ्य–सामग्री सम्मिलित की गई है। इस प्रकार सामाजिक विषय मानव जीवन के एक ही पक्ष का अध्ययन नहीं करता अपितु, उसके सभी पक्षों के एकीकृत रूप का अध्ययन करता है।

सामाजिक अध्ययन मानव द्वारा निर्मित विभिन्न संस्थाओं, उनसे संबंधित

ऐतिहासिक पहलुओं, वर्तमान समस्याओं तथा अतीत से जुड़ी घटनाओं का भी अध्ययन करता है। इससे इस विषय का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया है। निकेलसन तथा राइट के शब्दों में– "यथार्थतः इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तथा संपूर्ण विश्व में मानव का वर्तमान सामाजिक जीवन ही इसका मूल आधार है।"

आज समाज ने अपना कलेवर खासा विस्तृत कर लिया है। समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व के अन्य राष्ट्रों तक संबंधों का विस्तार हो गया है। अतः अंतर्राष्ट्रीय संबंध, विश्व संगठन, विश्व–शांति एवं सुरक्षा, नागरिकता आदि विषय आज के सामाजिक पर्यावरण का एक अभिन्न अंग बन गए हैं। सामाजिक अध्ययन में सम्मिलित यह विविध प्रकार की पाठ्य–सामग्री इस विषय को और भी अधिक व्यापकता प्रदान करती है।

संक्षेप में, सामाजिक अध्ययन के व्यापक क्षेत्र में निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं–

1. **मानवीय संबंधों का अध्ययन** : समाज के समस्त अंगों के साथ मनुष्य के संबंधों का अध्ययन सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र है। मनुष्य का समाज के दूसरे लोगों से तथा विभिन्न संस्थाओं से क्या संबंध है–इन सबका अध्ययन इसके क्षेत्र में अंतर्गत आता है। इन सभी को सही ढंग से समझने और इन संबंधों में घनिष्ठता तथा सामंजस्य लाने के लिए शिक्षाशास्त्री सामाजिक विज्ञानों एवं मानव शास्त्रों को इसमें शामिल करते हैं, जैसे– इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि।
2. **मानव–निर्मित संस्थाओं का अध्ययन** : सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव ने विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का भी निर्माण किया है जैसे– राज्य, सरकार, संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अनेक अन्य समुदाय आदि। इन संस्थाओं के निर्माण की पृष्ठभूमि, कार्य–प्रणाली तथा वर्तमान स्थिति आदि सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत आते हैं। अतीत की भूलें भविष्य में एक सुदृढ़ मार्गदर्शन प्रदान कर सकें– यह इस अध्ययन का मूल उद्देश्य है। वास्तव में ये मानव–निर्मित संस्थाएं उसके सामाजिक संबंधों को नियमित करने तथा अनुशासनबद्ध रहने के प्रयासों का परिणाम है। समय के साथ–साथ इन संस्थाओं की संख्या में वृद्धि

होती चली गई है। परिणामस्वरूप सामाजिक अध्ययन का विषय क्षेत्र भी और अधिक व्यापक होता जाता है।

टिप्पणी

3. **समाज संबंधी अध्ययन** : सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में यद्यपि सामाजिक वातावरण को ही प्रमुखतया लिया जाता है तथापि इसके अंतर्गत समाज के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य समाज में रहते हुए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियाएं करता है तथा उस पर भौतिक वातावरण का बराबर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भूगोल, नागरिकता आदि के अध्ययन–विषय भी इसी क्षेत्र का एक भाग हैं। फिर जब समाज का अध्ययन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के धरातल पर किया जाता है तो इसके क्षेत्र की व्यापकता संपूर्ण मानव समाज के अध्ययन का पर्यायवाची बन जाती है। एम.पी. मोफात ने सामाजिक अध्ययन के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है, "जीने की कला बड़ी सुंदर है। सामाजिक अध्ययन द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता है।"
4. **अतीत पर आधारित घटनाओं का अध्ययन** : अतीत वर्तमान का जन्मदाता है और वर्तमान भविष्य के लिए मार्गदर्शक है। समाज में घटित सामाजिक घटनाएं विषय पर अपना प्रभाव अवश्य छोड़ती हैं। इनका अध्ययन मानव को विश्लेषण की चेतना प्रदान करता है जिससे अतीत और वर्तमान के मध्य समायोजन स्थापित करने में मदद मिलती है। इसी कारण अतीत की घटनाओं का अध्ययन सामाजिक अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग है।
5. **नागरिकता संबंधी गुणों का विकास** : सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में सम्मिलित विषयवस्तु छात्रों में नागरिक गुणों का विकास करती है। सामाजिक अध्ययन से व्यक्ति में अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, अधिकारों की मर्यादा, आपसी सहयोग–सहानुभूति, क्षमाशीलता, अनुशासन तथा सहनशीलता जैसे महान गुणों का विकास तो होता ही है, साथ ही उनमें ऐसी आदतों, रुचियों तथा दक्षताओं को आत्मसात करने की क्षमता भी आती है। एक आदर्श नागरिक के विकास में यह विषय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
6. **प्राकृतिक विज्ञान व विकास का अध्ययन** : प्रकृति केवल प्राकृतिक सम्पदा तक ही सीमित नहीं अपितु मानव के शिक्षक के रूप में भी देखी जाती है। देखने में यह विषय सामाजिक नहीं लगता परंतु दोनों का आपसी संबंध गहरा है। प्रकृति की संरचना, मानव समाज के विकास में इसकी भूमिका, प्राकृतिक सम्पदा तथा उसकी रक्षा, पर्यावरण एवं सन्तुलन आदि विषय सामाजिक ही हैं। प्राकृतिक सम्पदा व उसके महत्व आदि सरीखे अति संवेदनशील बिन्दुओं पर छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जाता है और प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन सामाजिक परिवेश में कराया जाता है।
7. **अंतर्राष्ट्रीयता पर आधारित संबंधों का अध्ययन** : आज का युग 'एकला चलो' का युग न होकर अन्य राष्ट्रों के साथ मिल कर, अच्छे संबंध बनाकर चलने का युग है। इसीलिए इसे अंतर्राष्ट्रीयता युग कहा जाता है। आज कोई भी राष्ट्र

इस भावना के अभाव में विकास की कल्पना भी नहीं कर सकता है। 'लीग ऑफ नेशन्स' तथा 'संयुक्त राष्ट्र संगठन' का गठन भी इसी उद्देश्य से हुआ। विश्व–व्यापार, दूरसंचार अथवा मानव कल्याण परियोजनाओं की सफलता अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार विश्व–शांति के अभाव में क्षेत्रीय सुरक्षा व शांति की स्थापना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अंतर्राष्ट्रीयता क्या है? इसका स्वरूप व सीमाएं क्या हैं? इसकी सफलता के लिए आवश्यक तत्व क्या हैं? सामाजिक अध्ययन ही इनका ज्ञान कराता है।

टिप्पणी

1.2.2 विद्यालय पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में सामाजिक अध्ययन

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है जिसमें भिन्न–भिन्न भाषा–भाषी, विविध धर्मों, जातियों, सांस्कृतियों, मान्यताओं में विश्वास करने वाले लोग रहते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। देश के प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के देश की शासन प्रणाली में भाग लेने की स्वतन्त्रता है क्योंकि प्रजातांत्रिक सरकार लोगों की, लोगों द्वारा एवं लोगों हेतु होती है। देश की शासन व्यवस्था कुछ लोगों के हाथ में न होकर देश के लोगों के हाथ में होती है। ऐसी स्थिति में जनता अपनी भलाई और उन्नति के लिए बिना किसी भेदभाव के योग्य व्यक्तियों को ही अपना प्रतिनिधि चुनती है। जिनके हाथ में सरकार की बागडोर जनता के द्वारा सौंपी जाती है, उन प्रतिनिधियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे जनसाधारण को ध्यान में रखकर ही देश के प्रशासन को चलाएंगे।

आज के युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल दिया जा रहा है। आज का मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों एवं शक्ति के आधार पर जीवन के सभी क्षेत्रों में राजनीतिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक परिवर्तन कर रहा है। उपरोक्त राजनीतिक कारण और इस प्राकृतिक पहलू के कारण भी सामाजिक विषय को कक्षा में छात्रों को पढ़ाया जाना आवश्यक है।

दूसरे, आज का युग सभ्य समाज, नवीनता और रचनात्मकता का युग है। इस युग की जिम्मेदारी को ठीक से समझने और उसको निभाने के लिए विवेकशील, कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार व सच्चरित्र नागरिकों की आवश्यकता है, जो वर्तमान प्रजातांत्रिक सामाजिक व्यवस्था में सक्रिय योगदान दे सकें। इसके लिए देश की शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए, जिससे छात्र व छात्राओं में ऐसी आदतों एवं दृष्टिकोणों का विकास हो सके, जिससे वे देश के नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें।

इसलिए देश की शिक्षा प्रणाली को आवश्यकतानुसार उपयोगी और सुदृढ बनाने के लिए पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान के विषय को विषेष एवं महत्वपूर्ण स्थान देने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इसके माध्यम से छात्र–छात्राओं में सामाजिक सद्गुणों का विकास होता है।

आज छात्र वर्ग में निराशा उद्दण्डता एवं अनुशासनहीनता की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसलिए ऐसे हालात में शिक्षण संस्थाओं का यह कर्तव्य बनता है कि

छात्र–छात्रा वर्ग को ऐसा ज्ञान तथा अनुभव प्रदान करें कि वे अपने व्यावहारिक जीवन में राष्ट्र के सच्चे हितैषी बनें। कुशल नागरिक बनकर अपने दायित्वों का कुशलता से निर्वाह कर सकें।

इस दृष्टिकोण से शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो ताकि छात्र–छात्राओं में कुशल नागरिक बनने की इच्छा व क्षमता पैदा हो। जिससे वे आगे चलकर समाज व देश के भविष्य का नव निर्माण कर सकें।

1.2.3 बच्चे की जानने की तीव्र इच्छा को अद्‌भुत प्राकृतिक घटनाओं जैसे गरज के साथ बौछार, वनस्पतियों, जीवों, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना

शिक्षक अपने बच्चों के बारे में क्या मान्यताएं और विश्वास धारण करता है, यह सिखाने के तरीकों तथा अपने छात्रों से अपेक्षाओं को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। बच्चों में जिज्ञासा पैदा करके हम उनका अधिगम सरल बना सकते हैं। यदि उनके अनुभवों के आधार पर उनकी रुचियों को ध्यान में रखते हुये नवीन जानकारियों तथा अनुभवों को सहज रूप से जोड़ा जाये तो उनमें सीखने की क्रिया ज्यादा प्रभावी होती है। उन्हें अभिव्यक्ति का पर्याप्त अवसर देकर उनकी कल्पनाशीलता एवं सृजनशीलता को सकरात्मक दिशा प्रदान की जा सकती है।

शिक्षक का संबंध अपने छात्रों के साथ दोस्ताना हो तो वे गतिविधियों को करने तथा अपनी जिज्ञासाओं को बताने में झिझकते नहीं हैं। शिक्षकों को चाहिये कि वे जिज्ञासाओं को पनपने दें तथा उन जिज्ञासाओं को तृप्त करने हेतु गतिविधियों के माध्यम से उपयुक्त समझ को प्रोत्साहित करें। अक्सर कई बार शिक्षक केवल पाठ को पूरा करने में लग जाते हैं तथा गतिविधियों को निरर्थक एवं समय की बर्बादी मान बैठते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि ऐसी गतिविधियों से छात्रों में विभिन्न क्षमताओं का विकास होता है। लेकिन इसके साथ यह भी आवश्यक है कि करायी गयी गतिविधि उपयुक्त, संदर्भित तथा संतुलित हो।

बच्चे की प्राकृतिक जिज्ञासा

जिज्ञासा को उत्सुकता के रूप में समझा जा सकता है। व्यक्ति की यह उत्सुकता मुख्यत: जानने की इच्छा से संबंधित होती है। जिज्ञासा व्यक्ति या बच्चे के व्यवहार को प्रभावित करती है। हम यह भी कह सकते हैं कि जिज्ञासा बच्चे या व्यक्ति के सीखने के व्यवहार में समावेशित होती है। यह व्यक्ति में प्राकृतिक या जन्मजात क्षमताओं से जुड़ी होती है। साथ ही, किसी बच्चे या व्यक्ति में जिज्ञासा को प्रोत्साहित या हतोत्साहित किया जा सकता है। मनुष्यों द्वारा वैज्ञानिक खोज, शोध और अन्य अकादमिक कुशलताओं के पीछे जिज्ञासा या उत्सुकता एक प्रमुख कारण है।

जिज्ञासा क्यों महत्वपूर्ण है?

- जिज्ञासा बच्चों को अपने मानसिक क्षमताओं सहित पूरे जीवन को विकसित करने में सहायता करती है।
- यह दैनिक जीवन के कई रहस्यों को उत्तर प्रदान करती है, जैसे-जब मैं ऐसा करता हूं तो फिर वैसा क्यों होता है? आदि।

- यह चुनौतियों से निपटने के अलग-अलग तरीकों के खुले विचारों एवं सहनशील होने की प्रवृत्ति को बच्चों में बढ़ाती है।
- यह नयी चीजों को सीखने के लिये बच्चों की क्षमता को बढ़ाती है।
- यह बच्चे की दुनिया में मनोरंजन लाती है तथा उसे आत्म-संतुष्टि प्रदान करती है।

जिज्ञासा कैसे क्षीण होती है?

- **अस्वीकृति :** जब कोई बच्चा हर समय 'ऐसे नहीं करो' सुनता है तो उसकी प्रयोग की इच्छा कम हो जाती है।
- **डर :** जब कोई बच्चा डरता है तो वह किसी वस्तु या स्थिति से परिचित नहीं होगा और पूर्व ज्ञान के साथ ही जुड़ा रहेगा।
- **अनुपस्थिति :** एक बच्चे को अपने अनुभवों को साझा करने या सुरक्षा की पेशकश या देखभाल करने के लिये कोई वयस्क नहीं है तो भी वह कोशिश करना बंद कर सकता है।

बच्चों की प्राकृतिक जिज्ञासा को कैसे प्रोत्साहित किया जाए?

- अपनी दुनिया में क्या हो रहा है, उसमें अपनी रुचि दिखाएं।
- बच्चों को अपनी अभिरुचियों (संगीत, किताबें, नृत्य आदि) में दक्षता प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करें।
- सवाल स्पष्ट रूप से, तथ्यात्मक रूप से और बच्चे की विकास की अवस्था को ध्यान में रखते हुये करें।
- बच्चों से साधारण प्रश्न पूछें, जैसे-उन्हें आज का खाना कैसा लगा? क्या उन्हें पानी से खेलना अच्छा लगता है? उन्हें कौन-सा खिलौना पसंद है? आदि।
- बच्चों की अभिरुचियों को हतोत्साहित न करके उन्हें पुनर्निदेशित करें, जैसे-यदि वह अपने कप के पानी को फर्श पर गिराना चाहता है तो उसे ऐसा करने दें तथा उसे रोकें नहीं।
- बच्चों को ऐसे खिलौने दें, जिनका प्रयोग सीमित न हो तथा वे बच्चों की कल्पना शक्ति को बढ़ाते हों।
- नयी चीजों की खोज और नये कौशल में कुशलताओं के प्रयासों की प्रशंसा करें।
- बच्चों को अपने प्राकृतिक परिवेश का पता लगाने तथा स्वयं उसका उत्तर ढूंढ़ने के लिये प्रोत्साहित करें।

जिज्ञासा और प्राकृतिक घटनाएं

बच्चों के विविध विकास के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वे हमारे आसपास की दुनिया में होने वाले मौसमी परिवर्तनों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करें। उदाहरण के लिए, सितंबर की शुरुआत के साथ, प्रकृति की शरद ऋतु की घटनाओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जैसे-

1. सर्दी के मौसम में दिन छोटा हो जाता है।
2. आसमान से बिजली कैसे गिरती है तथा यह गिरने से पहले कड़कती क्यों है?
3. बिजली गिरने के समय तेज आवाज क्यों आती है?
4. गरज के साथ बौछार पड़ती है और तेज हवा चलती है।

5. हवा तीव्र और ठंडी हो जाती है, और नमी से भर जाती है।
6. पेड़ों पर पत्ते अपना हरा रंग खो देते हैं और सूख जाते हैं।
7. घास मुरझा गई है, और फूल मुरझा गए हैं।
8. पेड़ों से पत्तियाँ गिरती हैं और उड़ती हैं।
9. विभिन्न प्रकार के जंतु अलग-अलग क्यों दिखते हैं?
10. मेढक छलांग क्यों लगाता है? आदि।

सामाजिक और आर्थिक गतिविधियां

1. हमारे समाज में कौन-कौन से लोग रहते हैं?
2. समाज को महत्वपूर्ण क्यों माना जाता है?
3. परिवार में कौन-कौन से लोग आते हैं?
4. दादाजी को सबसे बड़ा क्यों कहते हैं?
5. खाना मम्मी क्यों बनाती हैं?
6. पैसा-रुपया क्या होता है?
7. खिलौने लेने के लिये दुकानदार को पैसे क्यों देने पड़ते हैं?
8. पापा पैसा कमाने के लिये घर से बाहर क्यों जाते हैं?
9. घर की मेड को महीने के अंत में मम्मी पैसा क्यों देती हैं?
10. सामान खरीदने के लिये पैसे क्यों खर्च करने पड़ते हैं? आदि।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "सामाजिक अध्ययन मानवीय संबंधों का अध्ययन है।" यह परिभाषा किसकी है?

   (क) जेरोलिमिक की (ख) फोरेस्टर की

   (ग) माइकेलिस की (घ) वेस्ले की

2. जिज्ञासा व्यक्ति या बच्चे की किस बात को प्रभावित करती है?

   (क) क्षमता को (ख) व्यक्तित्व को

   (ग) व्यवहार को (घ) स्वास्थ्य को

1.3 विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान

विद्यालय के पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा से विद्यार्थी स्वयं को समाज के अनुरूप बना पाते हैं।

1.3.1 विद्यालयी पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन का स्थान और महत्व

सामाजिक अध्ययन विषय का पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान निम्न प्रकार है–

1. समाजशास्त्रीय दृष्टि से

व्यक्ति अपने वातावरण से अलग कुछ भी महत्व नहीं रखता तथा इसी प्रकार शिक्षा भी अपनी सामाजिक परम्परा से पृथक् कुछ भी नहीं है। जैसा कि जॉन ड्यूवी ने कहा है कि समस्त शिक्षा जाति की सामाजिक चेतना द्वारा ही प्रस्फुटित होती है। इससे स्पष्ट होता है कि ''साामाजिक अध्ययन' को पाठ्यक्रम में इसी सामाजिकता की भावना ने स्थान दिया है।

सामाजिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सामाजिकता तथा सामाजिक चरित्र एवं सामाजिक आदर्शों का विकास करना है। यह कार्य व्यक्ति द्वारा समाज में रहकर ही किया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन द्वारा मानव समाज को उसके समाजवादी सिद्धान्तों, मानवीय सम्बन्धों एवं सामाजिक जीवन के लिये जागरूक तथा चेतनशील बनाया जा सकता है। सामाजिक चरित्र प्रादेशिक आधार रखता है। अतः इस आधार पर सामाजिक चरित्र को एकरूपता प्रदान की जाती है। शिक्षा मूल्यों, महत्वों एवं मनोभावों को उत्पन्न करने में उत्प्रेरक का कार्य करती है। इस प्रकार समाज और प्रदेश से सम्बन्ध या लगाव को सामाजिक अध्ययन द्वारा ही बालकों में विकसित किया जा सकता है। यह लगाव बालकों के सामाजिक चरित्र के निर्माण में मुख्य तत्व का कार्य करता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन की योजना में इस सम्बन्ध को पड़ोस से नगर, नगर से जिला तथा प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बनाया जा सकता है जो आधुनिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है और विश्व–समाज की एक शक्तिशाली मांग है। इसको सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता है।

सामाजिक अध्ययन के महत्व का एक अन्य प्रमुख कारण यह भी है कि इसके द्वारा प्रजातन्त्र के विषय में शुद्ध व पर्याप्त जानकारी प्रदान की जाती है। उन आदर्शों तथा मूल्यों को प्राप्त किया जाता है, जिन पर प्रजातन्त्र आधारित हैं। वास्तविकता यह है कि वर्तमान समाज की संस्थाएं एवं आदर्श अतीत के समाज के आदर्शों तथा संस्थाओं से बिल्कुल भिन्न हैं। इस विभिन्नता ने प्रजातान्त्रिक मूल्यों तथा आदर्शों को अध्यापन के लिए आवश्यक बना दिया है। इसी कारण सामाजिक अध्ययन विषय को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। अब प्रश्न उठता है कि ऐसे कौन–से प्रजातान्त्रिक मूल्य एवं आदर्श हैं जिनको व्यक्ति के लिए प्राप्त करना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन विषय बालक में जनहित की भावना का विकास, प्रजातन्त्र वैयक्तिकता के विकास पर बल,

नागरिकों के मस्तिष्क को सामाजिक परिवर्तन तथा समाज की शान्तिपूर्व रचना के लिए तैयार करना और दृष्टिकोण पर अनुकूल प्रभाव पर बल देता है।

2. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बालक के व्यक्तित्व के विकास में मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा रही है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। बुद्धिलब्धि के घटने–बढ़ने के सिद्धान्त को अनुकूल वातावरण द्वारा बढ़ाया जा सकता है। बालक को उचित वातावरण मिलने पर उसकी बुद्धि–लब्धि को आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन सामाजिक तथा भौतिक वातावरणों के ज्ञान के द्वारा बालक को सत्य एवं असत्य का ज्ञान प्रदान करता है और उनकी अपनी आवश्यकता के अनुसार वातावरण बनाने की योग्यता प्रदान करता है। यह भी बताता है कि कौन–सा वातावरण उनके लिये उपयोगी तथा लाभदायक होगा तथा कौन–सा हानिकारक। जिससे उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। बालक अपने दैनिक जीवन की स्थिति से बहुत कुछ सीखता है। अतः सामाजिक अध्ययन दैनिक जीवन की ठोस परिस्थितियों का ज्ञान देता है और इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये सामाजिक अध्ययन बहुत आवयश्क है।

टिप्पणी

3. शैक्षिक दृष्टि से

शैक्षिक दृष्टि से समूह मनोविज्ञान के अनुसार मस्तिष्क विभिन्न विभागों का समूह है। जैसे– कल्पना, निर्णय, स्मरण, तर्क, चिन्तन आदि शक्तियां। इसके अनुसार विभिन्न विषयों द्वारा विभिन्न शक्तियों को विकसित किया जा सकता है। किसी एक शक्ति को विकसित करने के लिये एक विशेष विषय का अनुष्ठान किया जाता है। इन विषयों द्वारा जो प्रशिक्षण दिया जाता था और उनके द्वारा मस्तिष्क की जो शक्ति विकसित की जाती थी उसको विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने मानसिक प्रशिक्षण या मानसिक अनुशासन कहा है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा बालकों की तर्क–चिन्तन तथा निर्णय–शक्ति का विकास होता है, किन्तु मनोविज्ञान की आधुनिक विचारधारा 'शिक्षा का स्थानान्तरण' (Transfer of Training) ने इसका प्रभाव शैक्षिक कार्यक्रम में कम कर दिया है। इस विचारधारा के अनुसार मानसिक अनुशासन (Mental Training) किसी मुख्य विषय पर आधारित नही है, अपितु , विषय के प्रस्तुतीकरण की विधि पर निर्भर है। इस विचारधारा के अनुसार शिक्षक का मुख्य कार्य छात्रों की रुचि एवं विचारों की स्पष्टता प्रदान करना है, जिससे वे समान तत्वों को देखकर शिक्षा ग्रहण कर सकें। सिरिल बर्ट ने इस बात पर बल दिया है कि सामाजिक अध्ययन द्वारा शिक्षा का स्थानान्तरण अधिक होता है। सामाजिक अध्ययन में बालकों को विचार–प्रक्रिया, तर्क–शक्ति, निर्णय–शक्ति, कल्पना और स्मरण–शक्ति का विकास करने के लिये अवसर मिलता है।

आधुनिक शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि बालक क्रिया द्वारा अधिक बेहतर प्रकार से सीखता है। क्रिया द्वारा उसे जो अनुभव होता है, वह शीघ्रता से ग्रहण कर लिया जाता है और पर्याप्त समय तक स्थायी भी रहता है। अनुभव वह अपने वातावरण

में ही प्राप्त करता है—चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा सामाजिक। सामाजिक अध्ययन सामाजिक एवं भौतिक वातावरण का ज्ञान प्रदान करता है। इनके बिना बालक मानवीय सम्बन्धों और लगावों को नहीं समझ पायेगा जो उसके विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

सामाजिक अध्ययन की पाठ्य—सामग्री अखण्ड रूप में होती है जो सीखने की प्रक्रिया और ज्ञान की एकता को बनाये रखने के लिये बहुत ही आवश्यक है। 'गेस्टाल्ट मनोविज्ञान' के अनुसार सीखने की प्रक्रिया सम्पूर्ण ज्ञान द्वारा संपन्न की जाती है अर्थात् सम्पूर्ण का ज्ञान देने के बाद अंश का ज्ञान दिया जाये। अर्थात ज्ञान सम्पूर्ण से अंश—सूत्र के आधार पर दिया जाये ताकि बालक ज्ञान को सरलता से सीख सके। सामाजिक अध्ययन की पाठ्य—सामग्री में इस सीखने के सिद्धान्त को सरलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

समन्वय के सिद्धान्त के आधार पर भी सामाजिक अध्ययन को पाठय्क्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक तत्वों का समन्वय किया जाता है। इन सब तथ्यों का विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक अध्ययन को पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष में शैक्षिक कारण बहुत प्रबल है।

उपर्युक्त विभिन्न स्थितियों के अतिरिक्त नागरिकता के बढ़ते हुये उत्तरदायित्व ने सामाजिक अध्ययन को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। यदि हम बालक के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना चाहते हैं तथा उसको उत्तरदायी एवं आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं तो उसके लिये सामाजिक अध्ययन विषय का ज्ञान आवश्यक है। अतः एवं यह निश्चित हो जाता है कि सामाजिक अध्ययन विषय को राष्ट्र के विद्यालयों के पाठ्यक्रम में एक अनिवार्य विषय के रूप में स्थान देना आवश्यक है। इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप ही इस विषय को विद्यालयी पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

विज्ञान व तकनीकी दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। विज्ञान हमें बताता है कि किसी वस्तु एवं सिद्धांत को क्यों जानना चाहिए। तथा तकनीकी इस बात को स्पष्ट करती है कि उस वस्तु अथवा सिद्धांत को कैसे बनाया जाता है। इस प्रकार विज्ञान केवल सिद्धांत क्या है, बताता है जब कि तकनीकी यह बताती है कि सिद्धांतों को कैसे बनाया जाये ताकि कला को आधार मानते हुए इसके प्रयोगात्मक व व्यावहारिक पक्ष को उजागर किया जा सके। इस प्रकार से तकनीकी का सीधा सम्बन्ध दक्षता से है।

जो राष्ट्र विज्ञान तथा तकनीकी के सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से समझ गये हैं, वे इन दोनों के उचित प्रयोग द्वारा विभिन्न प्रकार के लाभों का प्राप्त करते हुए अपने राष्ट्रीय जीवन को धन—धान्य से परिपूर्ण तथा सुखी बनाते जा रहे हैं। अभी तक हमारे देश में छात्रों को सामाजिक विज्ञान के सिद्धांत रटाये जाते हैं और उनको उन सिद्धांतों के व्यावहारिक पक्ष दक्षता से वंचित रखा जाता है। अर्थात हमारे यहां विज्ञान की दक्षता को तकनीकी में नहीं बदला जाता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए उसके सिर्फ सैद्धान्तिक पक्ष को ही ध्यान में रखा जाता है व्यावहारिक पक्ष को नहीं,

जैसे नागरिकशास्त्र में व्यक्ति को वोट देने के अधिकार के विषय में तो पढ़ा दिया जाता है परन्तु वोटिंग के आधार, उद्देश्य व प्रक्रिया को व्यावहारिक रूप में नहीं बताया जाता है।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में शैक्षिक तकनीक सीखने के साधनों की योजना और व्यवस्था के लिए आधार प्रस्तुत करते हुए शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है। इसलिए इस विषय की उपयोगिता को देखते हुये राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद ने शैक्षिक तकनीकी का विभाग खोला है। इसमें दृश्य– श्रव्य सहायक सामग्री विभाग को सम्मिलित कर दिया गया है। सामाजिक अध्ययन के वर्तमान पाठ्यक्रम का अवलोकन करने पर उसमें जो दोष दिखाई देते हैं उनके आधार पर इसमें सुधार की बहुत आवश्यकता है। किसी विषय के विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का बहुत बड़ा योगदान होता है।

भारत में सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं। भारतीय परिस्थितियों के अनुसार इसके शिक्षण के निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए जा सकते हैं–

1. भारत में विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं और उनकी विभिन्न भाषाएं हैं। इस प्रकार इस विषय का प्रमुख लक्ष्य–छात्रों में विभिन्न धर्मों, भाषाओं तथा जातियों के लिए आदर तथा सम्मान की भावना विकसित करना होना चाहिए।
2. छात्रों में उन सभी वैयक्तिक तथा सामाजिक गुणों का विकास करना, जिनसे वे समाज के सहयोगी तथा विश्वसनीय सदस्य बन सकें तथा उनके सामाजिक चरित्र का निर्माण किया जा सके और वे समाज को उन्नतिशील बना सकें।
3. छात्रों में स्वदेश–प्रेम की भावना के साथ–साथ विश्व–बन्धुत्व की भावना विकसित करना जिससे वे मानव–समाज का कल्याण कर सकें।
4. छात्रों को उनके वातावरण का ज्ञान देना तथा उसके सुधार के लिए उनमें उत्साह तथा इच्छा उत्पन्न करना।
5. छात्रों में सामाजिक जागरूकता तथा सक्रियता का विकास करना।
6. छात्रों का मानसिक विकास करना जिससे उनका दृष्टिकोण उदार तथा वैज्ञानिक बन जाए।
7. छात्रों में अंतर–सामूहिक, अंतर–क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास करना।
8. विश्व के विविध धर्मों के प्रति आदर की भावना विकसित करना।
9. नागरिक के कर्तव्यों तथा अधिकारों की शिक्षा व्यावहारिक रूप से प्रदान करके उनके नागरिक चरित्र का निर्माण करना, जिससे वे प्रजातंत्रीय शासन को सफल बना सकें।
10. छात्रों में समुदाय तथा सामूहिक जीवन, सामूहिक विचार–विमर्श भावी परिप्रेक्ष्य में तथा सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने की योग्यता का विकास करना।

1.3.2 सामाजिक वास्तविकताओं का आलोचनात्मक अध्ययन : न्याय, समानता और समता के संदर्भ में

हमारे देश में बच्चों के पठन-पाठन में अनेक चीजें शामिल होती हैं। स्कूल में बच्चों को कई चीजों के बारे में पढ़ाया जाता है। इसके लिये यह ध्यान देना आवश्यक है कि विभिन्न बातों के साथ-साथ बच्चों को विभिन्न सामाजिक वास्तविकताओं, जैसे-सामाजिक न्याय, समानता समता आदि की भी जानकारी दी जाये।

भारत में स्वतंत्रता की मांग के साथ सामाजिक न्याय के लिए भी आंदोलन होते रहे। हमारे संविधान में नागरिकों को मिले मौलिक अधिकारों को सामाजिक न्याय का आध ार कहा जा सकता है। वर्तमान में सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों की सुरक्षा किसी भी सरकार के लिए एक चुनौती बन गई है। भारत में आज भी 30 फीसदी से अधिक आबादी गरीबी से त्रस्त है। लगभग 4 करोड़ लोगों के पास अपना घर नहीं है। देश की 13 लाख बस्तियां शुद्ध पेयजल के अभाव से ग्रस्त हैं। देश में तकरीबन 6 लाख व्यक्ति किसी न किसी तरह की विकलांगता के शिकार हैं। इसके अलावा 2 करोड़ से ज्यादा बच्चे बालश्रम की यातना सह रहे हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार के बावजूद देश की अधिकांश आबादी खासकर ग्रामीण आबादी स्वास्थ्य सुविधाओं से महरूम है। देश में खाद्यान उपलब्धता की कमी के कारण भूख से मरने वालो की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। विश्व भूख सूचकांक के 88 देशों की सूची में भारत का स्थान 65वां है। भारत में प्रत्येक दिन 5 हजार बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। विश्व के कुपोषित लोगों की 27 प्रतिशत आबादी भारत में है। यहां हम बच्चों को सामाजिक न्याय, समानता एवं समता के बारे में जानकारी के बारे में अध्ययन करेंगे।

न्याय

रोटी, कपड़ा और मकान आरंभ से भारत की तीन बुनियादी आवश्यकताएं हैं जो मानव के जीने के अधिकार की रक्षा करते हैं, परंतु गरिमामय जीवन के अधिकारों की नहीं। आज के आधुनिक समाज के लिए इसके अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि भी महत्वपूर्ण है। इसके अलावा वैश्वीकृत दुनिया के लिए आज भ्रष्टाचारमुक्त समाज का अधिकार भी महत्वपूर्ण हो गया है। भारत में सामाजिक न्याय के क्षेत्र में संतोषजनक परिणाम अब तक नहीं मिल पाया है जोकि एक चुनौती है। वर्तमान वैश्विक संदर्भ में इसकी अनिवार्यता और भी बढ़ जाती है। हालांकि भारतीय संविधान सामाजिक न्याय के क्रियान्वयन के लिए तीनो स्तंभों विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका को स्पष्ट निर्देश देता है परंतु कुछ नीतिगत और व्यावहारिक कारणों से इस क्षेत्र में हमारा प्रदर्शन बेहद लचर रहा है। इसके पीछे एक तरफ राजनीतिक दबाव तो दूसरी ओर संवैधानिक संस्थाओं के उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों की उदासीनता प्रमुख कारण है। आज भारत में विभिन्न समुदायों के बीच कई कारणों से असंतोष है। नक्सल आंदोलन इसी असंतोष की तीव्र प्रतिक्रिया है। न्याय व्यवस्था में देरी के चलते बहुत से लोग न्याय की पहुंच से दूर हैं। एक तरफ न्यायाधीशों की कमी है तो दूसरी ओर मुकदमों का अंबार बढ़ रहा है। सरकार ने दीवानी मामलों में ग्राम पंचायतों को न्याय करने का अधिकार दे रखा है।

ग्राम न्यायालय, लोक अदालत, उपभोक्ता अदालत आदि कई उपाय मुकदमों के बोझ को हल्का करने के लिए किए गए हैं। फिर भी कई कारणों से अदालतों में आज

भी लाखों की संख्या में मुकदमे लंबित हैं। इन समस्याओं से सामाजिक असंतोष बढ़ना स्वाभाविक है। इसके लिए हमें और भी कदम उठाने होंगे ताकि लोगों के मानवाधिकार की रक्षा हो सके। आय की असमानता या कहें कि समाज में पूंजी का असमान वितरण भी एक बड़ी समस्या है। भारत में इस असमानता को दूर करने के लिए कुशल नीति बनानी होगी और यह काम हम चंद दिनों में नहीं कर सकते। इसके लिए लंबी योजना बनाने की जरूरत है। समाज के वंचित वर्गों के लिए रोजगार सृजन व सभी तक शिक्षा की पहुंच को सुनिश्चित करना होगा।

टिप्पणी

समानता

समानता का अर्थ किसी समाज की उस स्थिति से है, जिसमें सभी लोग समान अधिकार या प्रतिष्ठा रखते हैं। कानून भी कहता है, हर किसी को एक समान अधिकार मिलें। इसके तहत सुरक्षा, मतदान का अधिकार, भाषण की स्वतंत्रता, एकत्र होने की स्वतंत्रता, संपत्ति का अधिकार, सामाजिक वस्तुओं एवं सेवाओं पर समान पहुंच आदि आते हैं। सामाजिक समानता में स्वास्थ्य की समानता, आर्थिक समानता व अन्य सामाजिक सुरक्षा के अलावा समान अवसर व समान दायित्व भी आता है। वास्तव में यही वह अवस्था है, जब हर व्यक्ति को समान महत्व दिया जाए।

इन सबसे इतर कानून सभी के साथ समान व्यवहार करता है। कहने का मतलब, कानून के हर स्तर पर समानता का हक मिला है। कानूनी समानता का मतलब है कानून के सामने समानता और सभी को कानूनन समान सुरक्षा। अगर कोई व्यक्ति बुद्धिमान हो या मूर्ख, तेजस्वी हो या बुद्धू, नाटा हो या लंबा, अमीर हो या गरीब, कानून को उसके रूप-रंग, कद या आर्थिक स्थिति से कोई मतलब नहीं होता। वह तो सभी के साथ समान व्यवहार करेगा।

समता या इक्विटी

शिक्षक एक शैक्षिक संपत्ति या अधिकार को संदर्भित करने के लिए समता शब्द का उपयोग करते हैं, जो छात्रों को विद्यालय एवं उससे आगे सफल होने के लिए आवश्यक है। दुर्भाग्य से, सभी छात्रों के लिए आदर्श अधिकारों का सम्मान नहीं किया जाता है। एक ही विषय-वस्तु सभी पाठ्यक्रम के लिये उपयोगी होती है, जो आदर्शवादी विचारधाराओं को कायम रखता है और अन्य जो विशेष छात्रों और समूहों को हाशिए पर रखता है। उन छात्रों और समूहों के लिए आदर्श अधिकारों का नियमित रूप से उल्लंघन किया जाता है, जो निम्नवर्गीय पृष्ठभूमि से आते हैं या शिक्षण की वर्तमान व्यवस्था में फिट नहीं बैठते हैं। यह उल्लंघन एक समान शिक्षा की आवश्यकता उत्पन्न करता है, जो प्रत्येक शिक्षार्थी को विशिष्ट प्रकार और संसाधनों की मात्रा प्रदान करके सभी छात्रों को लाभान्वित करती है, जो सफल होने के लिए आवश्यक अवसरों तक पहुंच के रूप में कार्य करते हैं। यह वह स्थान है, जहां एक बहुसांस्कृतिक आयाम के रूप में अध्यापन उस सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी अध्यापन का अभिन्न अंग बन जाता है, विशेष रूप से शिक्षण और सीखने के वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ द्वारा निर्मित एवं असमान संरचनाओं को नष्ट करने के लिए काम करता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी अध्यापन को जब एक इक्विटी अध्यापन ढांचे के साथ जोड़ा जाता है, तो

पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, शिक्षाशास्त्र और बौद्धिक चुनौती में विविध छात्रों की परस्परता का निवर्हन किया जाता है। ऐसे कई तरीके हैं, जिनसे शिक्षक अपनी कक्षाओं में समानता के मुद्दों पर ध्यान दे रहे हैं एवं इनमें से समता अध्यापन की सबसे स्वीकृत प्रथाओं या मान्यताओं में से एक है।

टिप्पणी

कुछ बिंदुओं पर, समानता और इक्विटी शब्दों को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि दोनों अवधारणाएं सामाजिक न्याय की कुंजी हैं और संसाधनों से संबंधित हैं, लेकिन वे काफी भिन्न हैं। आम तौर पर, समानता लोगों के साथ समान व्यवहार करने या संसाधनों और अवसरों तक समान पहुंच रखने वाले लोगों से जुड़ी होती है। इक्विटी शब्द, हमें राशि, साथ ही संसाधनों के प्रकार पर विचार करने के लिए कहता है, जिसे प्रत्येक संयंत्र को अपनी उच्चतम क्षमता तक पहुंचने की आवश्यकता होती है।

बहुसांस्कृतिक शिक्षा के दृष्टिकोण से, समानता एवं समता शब्द अक्सर निष्पक्षता और न्याय के दृष्टिकोण से जुड़े होते हैं। एक परिभाषा के अनुसार, 'बहुसांस्कृतिक शिक्षा स्वतंत्रता, न्याय, समानता, समता और मानवीय गरिमा के विचारों पर निर्मित एक दार्शनिक अवधारणा है... यह मानते हुए कि समानता और समता एक ही चीज नहीं हैं, बहुसांस्कृतिक शिक्षा सभी छात्रों को एक समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने का प्रयास करती है।" सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिए समानता और समता के बीच का अंतर महत्वपूर्ण है, लेकिन इस अंतर से क्या फर्क पड़ता है?

समानता का अर्थ होगा सभी को समान पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, शिक्षाशास्त्र और चुनौती प्रदान करना, यह उम्मीद करते हुए कि छात्रों के बीच मतभेदों के बावजूद, परिणाम समान होने चाहिए। बहुसांस्कृतिक शिक्षा की नींव का अर्थ यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक छात्र के पास पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, शिक्षाशास्त्र तक पहुंच हो और व्यक्तिगत मतभेदों की पहचान और प्रतिक्रिया और शिक्षण और सीखने के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ के आधार पर उन्हें चुनौती की आवश्यकता हो। कक्षा में बहुसांस्कृतिक शिक्षा छात्रों और शिक्षकों के बीच, और छात्रों के बीच एक परस्पर क्रिया बन जाती है, ताकि छात्रों को निम्न वांछित छात्र परिणामों तक पहुंचने, संलग्न करने और प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके–

1. सकारात्मक शैक्षणिक पहचान
2. सकारात्मक सामाजिक पहचान
3. विविध लोगों के साथ सम्मानजनक जुड़ाव
4. सामाजिक न्याय चेतना; तथा
5. सामाजिक न्याय कार्य

समता, शिक्षाशास्त्र शिक्षा के लिए एक दृष्टिकोण है, जिसमें शिक्षक शिक्षण रणनीतियों का विकास करते हैं और कक्षा के वातावरण को विकसित करते हैं, जो सभी छात्रों का बेहतर समर्थन करते हैं, विशेष रूप से उनका जो स्कूल और बाहरी समाज में वंचित हैं।

समता शिक्षाशास्त्र को इस तरह के चरणों के माध्यम से लागू किया जा सकता है–

(1) एक सहकारी सीखने के माहौल को बढ़ावा देना जो विभिन्न नस्लीय/जातीय पृष्ठभूमि से छात्रों को लाभान्वित करने के लिए सिद्ध हो।

(2) शिक्षण रणनीतियों को विकसित करना, जो लड़कियों या निर्धन वर्ग के छात्रों को उन्नत विज्ञान कक्षाओं को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करते हैं।

टिप्पणी

(3) दुर्बल छात्रों को गणित को अधिक प्रभावी ढंग से सीखने में सक्षम बनाने के लिए पाठ्यक्रम को संशोधित करना।

ऐसा करने से पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक और न्यायसंगत हो जाते हैं, इसलिए विविध पृष्ठभूमि के छात्र और विशेष रूप से जो सामाजिक-आर्थिक, भाषाई और सांस्कृतिक रूप से हाशिए पर हैं, स्कूल के साथ-साथ बाहरी समाज में भी सफल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले छात्रों पर अपने प्रारंभिक ध्यान से आगे बढ़ते हुए, इक्विटी शिक्षाशास्त्र के लिए हालिया अभ्यास विविध जाति/जातीयता, लिंग और यौन अभिविन्यास, आयु, धर्म, शरीर के प्रकार, क्षमता, आदि के साथ संरचनात्मक रूप से वंचित छात्रों तक पहुंचते हैं। जो छात्रों को उच्च स्तर पर प्राप्त करने से रोकता है। कक्षा को सामाजिक परिवर्तन के केंद्र के रूप में महत्व देते हुए, शिक्षक विविध पृष्ठभूमि के छात्रों को कक्षा में उत्कृष्टता प्राप्त करने और अपने समुदायों में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मदद करने के लिए अपने तरीके बदलते हैं। फिर से, हमें मानकीकरण का समर्थन करने वाली संरचनाओं को नष्ट करने हेतु इक्विटी के लिए सीमित योगात्मक और घटाव तर्कों को चुनौती देने के लिए कहा जाता है।

इक्विटी या समता सभी के लिये सहायक है

शोध से पता चला है कि पाठ्यक्रम डिजाइन के लिए एक समानतायुक्त दृष्टिकोण सभी छात्रों को लाभान्वित करता है। जब शिक्षक कार्यबल विविध होता है और पाठ्यक्रम में कहानियां, इतिहास और विभिन्न पृष्ठभूमि के पात्र शामिल होते हैं, तो बच्चे आगे बढ़ेंगे। सभी उम्र और विकास के स्तर के बच्चों के लिए, पाठ्यक्रम में समानता तीन महत्वपूर्ण चीजें कर सकती है–

1. विभिन्न दृष्टिकोणों और चुनौतीपूर्ण विश्वास प्रणालियों पर बातचीत के अवसर पैदा करके भाषा, तर्क, लेखन, चर्चा और साक्षरता कौशल को समृद्ध करें।
2. छात्रों को उनकी कहानी और पृष्ठभूमि का सम्मान करने वाले पाठ्यक्रम से जुड़ाव महसूस करने में मदद करके उनके बीच जुड़ाव बढ़ाएं।
3. छात्रों को कक्षा में अपनेपन और सामूहिक जिम्मेदारी की भावना देकर स्कूल के माहौल और सुरक्षा में सुधार करें।

समता का सिद्धांत भी समानता के सिद्धांत से मिलता-जुलता ही होता है। यही वजह है कि हमारे देश के संविधान ने देश के लोगों के लिये विभिन्न प्रकार की समता की व्यवस्था की है, जो इस प्रकार है–

1. राजनीतिक समता
2. आर्थिक समता

3. सामाजिक समता

4. सांस्कृतिक समता।

संविधान के 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से देश में स्थानीय शासन को बढ़ावा देने के प्रयास किये गये हैं। इन प्रयासों में समाज के विभिन्न कमजोर वर्गों के साथ ही महिलाओं के उत्थान की भी पूर्ण व्यवस्था की गयी है। इसी वजह से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये हैं। कई राज्यों में तो इसे बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक कर दिया गया है। इसके पीछे मुख्य सोच यही है कि जब तक हमारे समाज में समता की स्थापना नहीं होगी तथा महिलाओं को पुरुषों के बराबर स्थान एवं अधिकार नहीं मिलेगा तब तक हम समाज के सर्वांगीण एवं चहुंमुखी विकास की कल्पना नहीं कर सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. किसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिकता, सामाजिक चरित्र तथा सामाजिक आदर्शो का विकास करना है?

   (क) राजनीति का (ख) सामाजिक अध्ययन का

   (ग) न्यायपालिका का (घ) सरपंच का

4. शिक्षक एक शैक्षिक संपत्ति या अधिकार को संदर्भित करने के लिए किस शब्द का उपयोग करते हैं?

   (क) क्षमता का (ख) विषमता का

   (ग) दुर्गमता का (घ) समता

1.4 समाज का अध्ययन

समाज का अध्ययन क्षेत्र अतिव्यापक है। इसके तहत विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं क्रियाओं व उनकी प्रकृति, उनके अंतर्संबंधों तथा उनमें निहित प्रक्रियाओं का निष्पक्ष रूप से विश्लेषण करना, उनके घटित होने के कारणों का पता लगाना, उनके निर्धारक तथ्यों का अध्ययन करना व उन्हें नियंत्रित करना, उनके द्वारा प्रभावित होने वाले क्षेत्रों का अध्ययन, घटनाओं से उत्पन्न समाधान प्रस्तुत करना, परिवर्तित परिस्थितियों की समीक्षा करना एवं एक सामान्य सिद्धांत अथवा सामान्यीकरण प्रवृति के चरण तक पहुंचना है। साधारण शब्दों में इसका तात्पर्य विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में निहित कार्य–कारण संबंध को ज्ञात करना तथा प्राप्त तथ्यों की प्रामाणिकता की जांच करते हुए एवं निष्कर्ष के रूप में नये सिद्धांतों का निर्माण या पूर्व सिद्धांतों को सिद्ध करते हुए पुर्नस्थापित करना होता है।

1.4.1 समाज का अध्ययन करने की आवश्यकता और विधियां

प्रत्येक सामाजिक क्रिया के मूल में कोई न कोई आवश्यकता निहित होती है। यह आवश्यकता किसी भी विषय की आधारशिला होती है, जिसके सहारे विषय आगे बढ़ता

टिप्पणी

है। सामाजिक अध्ययन का सीधा संबंध सामाजिक वास्तविकता को यथासंभव वस्तुनिष्ठ एवं क्रमबद्ध रूप में समझना तथा नियमों का प्रतिपादन करना है। पी.वी. यंग के अनुसार – ''सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य जटिल सामाजिक घटनाओं को स्पष्ट रूप देना, अनिश्चित तथ्यों को निश्चित रूप प्रदान करना, सामाजिक जीवन की भ्रमित धारणाओं से संबंधित तथ्यों को संशोधित करना है। सामाजिक अध्ययन की प्रकृति के आधार पर इसकी आवश्यकताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. सैद्वांतिक या बौद्धिक आवश्यकता
2. व्यावहारिक या उपयोगितावादी आवश्यकता

समाज का अध्ययन करने की आवश्यकता का पहला भाग मूल नियमों पर आधारित है। इसमें सामाजिक घटनाओं के बारे में नवीन तथ्यों की खोज, पुराने नियमों एवं सिद्धांतों की जांच या पहले से उपलब्ध ज्ञान में वृद्धि, वैज्ञानिक अवधारणाओं का निर्माण आदि प्रमुख हैं। समाज का अध्ययन करने की आवश्यकता का यह पक्ष मानव विज्ञान की संतुष्टि से संबंधित है यही जिज्ञासा मानव को समान निर्बाध गति से आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती है।

समाज का अध्ययन करने की विधियां

समाज के अध्ययन में सामाजिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं के अंतःसंबंधों का ज्ञान, इनमें निहित प्रक्रियाओं का अध्ययन, विश्लेषण और तदानुसार परिणामों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। अतः सामाजिक विज्ञान सामाजिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं से संबंधित है। सामाजिक अध्ययन के उद्देश्यों को प्राप्त करना तभी संभव है जबकि योजनाबद्ध तरीके से अध्ययन कार्य का संपादन किया जाए। विविध प्रकार की घटनाओं का अध्ययन एक ही पद्धति से किया जाना संभव नहीं हो सकता है। अतः अध्ययन की अन्य विधियों का ज्ञान आवश्यक है। अध्ययन की उपयुक्त पद्धति के चुनाव के लिए अध्ययन विषय की प्रकृति क्षेत्र और अध्ययन का उद्देश्य आदि कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज के अध्ययन की प्रमुख विधियों का वर्णन यहां दिया जा रहा है–

1. **गुणात्मक विधि**– सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को गुणात्मक आधार पर ही समझा जा सकता है। यहां गुणात्मक विधि से तात्पर्य है सामाजिक घटनाओं का अध्ययन, गुणों के आधार पर किया जाना। सामान्यतः इस विधि में तर्कशास्त्र का प्रयोग होता है और नियमों अथवा तथ्यों की प्रामाणिकता, आगमन और निगमन विधि के आधार पर परखी जाती है। अनेक सामाजिक घटनाएं जिनका माप नहीं हो सकता उनका अध्ययन गुणात्मक पद्धति के आधार पर ही होता है। गुणात्मक विधियों में प्रमुख हैं–

   1. साक्षात्कार विधि
   2. अवैयक्तिक विधि अथवा अवलोकन विधि

2. **गणनात्मक विधि**– इस विधि को परिमाणात्मक अथवा संख्यात्मक विधि भी कहते हैं। इसका प्रयोग करने के लिए सामाजिक तथ्यों का संख्यात्मक वर्णन होना आवश्यक है। अतः स्पष्ट है कि समाज के अध्ययन की गणनात्मक विधि वह है जिसमें घटनाओं को संख्यात्मक दृष्टि से मापा जाता है। किसी सामाजिक घटना के संबंध में अनिवार्य विचारभूत भावनाएं आदि को मापने का प्रयास किया जाता है। गणनात्मक विधियां निम्न प्रकार हैं–

   (क) **प्रत्यक्ष माप**– इसमें सांख्यकीय विधि की सहायता से आंकड़ों का वर्गीकरण तथा सारणीकरण किया जाता है।

   (ख) **अप्रत्यक्ष माप**– इसमें पैमानों की सहायता से घटनाओं के मापन का प्रयास किया जाता है; जैसे समाज नीति के पैमाने।

3. **सर्वेक्षण विधि**– समाज के अध्ययन की यह विधि समाजिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन सर्वेक्षण के आधार पर करती है। शोधकर्ता सर्वेक्षण के आधार पर शोध के लिए आकड़े एकत्रित करता है।

4. **क्षेत्रीय अध्ययन विधि**– इस विधि के अंतर्गत अध्ययनकर्ता स्वयं क्षेत्र में जाता है, घटनाओं का अवलोकन करता है और अपने अवलोकन के आधार पर तथ्यों को संकलित करता है। वतर्मान में सामाजिक घटनाएं अधिक जटिल होती जा रही हैं। अतः इस प्रकार की अध्ययन विधियां अधिक महत्वपूर्ण हो गयी हैं क्योंकि यह विधि अधिक प्रभावी और विश्वसनीय तथ्य एकत्रित होने में सहायक है। इसका कारण यह है कि इसमें अध्ययनकर्ता अध्ययन के लिए स्वयं क्षेत्र में जाता है और अपने पूर्व ज्ञान, अनुसंधान की विधियों, अवलोकन की क्षमता, क्षेत्रीय ज्ञान, सामाजिक व्यवहार के आधार पर तथ्य संकलित करता है और तत्पश्चात निष्कर्ष निकलता है।

5. **पुस्तकालयी विधि**– इस विधि में अध्ययनकर्ता पुस्तकालय जाकर वहां पर प्रकाशित या अप्रकाशित लेखों, पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं में स्वयं सामग्री संकलित करता है व परिणामों की खोज करता है। इस विधि की उपयोगिता तभी है जब पुस्तकालय में पर्याप्त मात्रा में संबंधित सभी साहित्य उपलब्ध हो।

6. **प्रयोगात्मक विधि**– जिस प्रकार प्राकृतिक अध्ययन में प्रयोग किए जाते हैं उसी प्रकार सामाजिक अध्ययन में भी प्रयोग का सहारा लिया जाता है। इसमें सामाजिक घटनाओं व समस्याओं पर नियंत्रण रखा जाता है तथा घटनाओं का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक घटनाओं पर नियंत्रण थोड़ा कठिन अवश्य है फिर भी इतना नियंत्रण तो अवश्य किया जा सकता है कि इन पर बाहरी घटनाओं का प्रभाव न पड़े।

7. **विकासवादी विधि**– इस विधि को ऐतिहासिक विधि और प्रजनन विधि भी कहा जाता है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जाती है। यह विधि सामाजिक विकास के स्तरों का ज्ञान तथा इन स्तरों में परिवर्तन के कारणों को खोजने में सहायक होती है। इसमें पुस्तकालय विधि का भी महत्वपूर्ण योगदान

रहता है। क्योंकि ऐतिहासिक जानकारी को प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय का सहारा लिया जाता है।

8. **तुलनात्मक विधि**– इस विधि में दो सामाजिक घटनाओं अथवा समस्याओं की तुलना की जाती है तथा इनमें समानता और भिन्नता को स्पष्ट किया जाता है। इसमें विभिन्न सामाजिक घटनाओं, भिन्न–भिन्न संस्कृतियों, धर्मों आदि का तुलना के आधार पर अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं सामाजिक क्रियाओं के संबंध में कार्य–कारण सिद्वांत का पता लगाने के लिए भी तुलनात्मक विधि उत्तम है। तुलनात्मक विधि से अध्ययन के क्षेत्र में पूर्व में हुए अध्ययनों को भी आधार बनाया जा सकता है जिससे समाज में हो रहे परिवर्तनों पर भी निष्कर्ष दिए जा सकें।

टिप्पणी

1.4.2 विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना और साक्ष्यों की उनके अंतर्निहित दृष्टिकोणों, प्रामाणिकता, उपयोगिता के संदर्भ में जांच, साक्ष्य पर सोच विचार और व्यवस्थित जांच-पड़ताल

वास्तव में सूचना और साक्ष्यों के संकलन में बहुत से स्रोतों का उपयोग किया जाता है। पी.वी. यंग ने इन स्रोतों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है–

1. **प्रलेखीय या दस्तावेजीय स्रोत**– प्रलेखीय स्रोतों के अंतर्गत प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतिवेदन, प्रलेख, पांडुलिपि, सांख्यिकी, डायरियां, पत्र आदि को शामिल किया जाता है।
2. **क्षेत्रीय स्रोत**– क्षेत्रीय स्रोत के तहत उन जीवित व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें लंबी अवधि के दौरान सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों के विषय में पर्याप्त ज्ञान होता है एवं जिनका सामाजिक परिस्थितियों से घनिष्ठ संपर्क रह चुका होता है। ये व्यक्ति, वर्तमान परिस्थितियों के साथ–साथ अवलोकन, योग्य एवं महत्वपूर्ण घटनाओं का समुचित वर्णन करने की भी क्षमता रखते हैं।

जार्ज लुंडबर्ग ने सूचना और साक्ष्यों को प्राप्त करने के दो मुख्य स्रोतों का वर्णन किया है–

(क) **ऐतिहासिक स्रोत**– ऐतिहासिक स्रोत के अंतर्गत कागजात, प्रलेख, शिलालेख, खुदाई से प्राप्त वस्तुएं, भूतत्वीय स्रोत आदि को शामिल किया जाता है।

(ख) **क्षेत्रीय स्रोत**– क्षेत्रीय स्रोतों के अंतर्गत जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएं, क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण आदि को शामिल किया जाता है। इसमें शोधकर्ता द्वारा स्वयं किए गए अवलोकन को भी सम्मिलित किया जाता है।

प्रोफेसर बोगले के मतानुसार सूचना और साक्ष्यों के संकलन के दो प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं–

(क) **प्राथमिक स्रोत**– इसके अंतर्गत समस्या से जुड़े व्यक्ति व प्रत्यक्ष निरीक्षण आते हैं।

(ख) **द्वितीयक स्रोत**– इसके अंतर्गत सरकारी व गैर–सरकारी (मानक) संस्थाओं या अप्रकाशित प्रलेखों इत्यादि को शामिल किया जाता है।

प्राथमिक स्रोत

ये वे स्रोत हैं जिनसे शोधकर्ता स्वयं पहली बार तथ्यों या विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित करता है। पीटर मान ने प्राथमिक स्रोत के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं, जो प्राथमिक स्तर पर हमें विभिन्न प्रकार की आधार सामग्री प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि यह तथ्यों को संकलित करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री का मौलिक स्वरूप होते हैं। **पी.वी. यंग** का कथन है कि प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों के संकलन में सहायक होते हैं। इन्होंने प्राथमिक स्रोतों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया है–1. प्रत्यक्ष स्रोत तथा 2. अप्रत्यक्ष स्रोत।

1. **प्रत्यक्ष स्रोत**– सूचना और साक्ष्यों के संकलन के प्रत्यक्ष स्रोत ऐसे स्रोत होते हैं जिनमें शोधकर्ता या तो मूर्त घटनाओं को स्वयं अपने सम्मुख घटित होते हुए देखता है अथवा स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर अवलोकन के द्वारा विषय से संबंधित जानकारी को अवलोकित एवं एकत्रित करता है।
2. **अप्रत्यक्ष स्रोत**– अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत शोधकर्ता अध्ययन क्षेत्र में जाए बिना अथवा सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष संपर्क के बिना ही तथ्यों का संकलन करता है। अप्रत्यक्ष स्रोतों में मुख्य रूप से प्रश्नावलियां, फोन पैनल पद्धति, साक्षात्कार, रेडियो अपील आदि शामिल होती हैं।

मेलड्रिड पार्टिन ने अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत तीन साधनों का उल्लेख किया है–

(क) रेडियो टेलीविजन अपील

(ख) दूरभाष साक्षात्कार

(ग) दलीय पद्धति या प्रतिनिधि पद्धति

(क) **रेडियो या टेलीविजन अपील**– रेडियो या टेलीविजन के माध्यम से की गई अपील को सूचना और प्रसारण का एक अच्छा साधन माना गया है। इनके द्वारा नियमित रूप से अथवा किन्हीं विशेष अवसरों पर विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण करके श्रोताओं से यह अपील की जाती है कि वे उससे संबंधित अपने विचारों अथवा प्रतिक्रियाओं को अमुक पते पर भेज दें। उदाहरण के लिए, वॉयस ऑफ अमेरिका, ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (B.B.C), रेडियो सीलोन तथा विविध भारती आदि अनेक ऐसी प्रसारण सेवाएं संगठन हैं जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था स्रोताओं को एक विशेष जानकारी देकर तथ्यों को संकलित कर सकती है। हालांकि यह स्रोत पूर्ण विश्वसनीय नहीं होता है क्योंकि श्रोता

द्वारा भेजी गई अपनी राय या टिप्पणी में अनेक अनुपयोगी बातें भी होती हैं। फिर भी इससे बहुत कम समय और कम व्यय में ही विषय से संबंधित तथ्य प्राप्त हो जाते हैं।

टिप्पणी

(ख) **दूरभाष साक्षात्कार**– दूरभाष साक्षात्कार का यह नवीन अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत वर्तमान समय में बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ है। इसमें शोधकर्ता केवल, दूरभाष (टेलीफोन) के माध्यम से सूचनादाताओं से संपर्क स्थापित करता है। इस स्रोत के द्वारा भी तुलनात्मक रूप से कम समय में बहुत अधिक व्यक्तियों से सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। इससे प्राप्त सूचनाओं को प्रमाणिकता अकसर संदेहपूर्ण होती है क्योंकि यह सूचनाएं लिखित रूप में नहीं होतीं तथा सूचनादाता की मनःस्थिति का ज्ञान शोधकर्ता को नहीं होता है। फिर भी यह स्रोत शोधकर्ता द्वारा क्षेत्रीय भ्रमण तथा व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न व्यक्तियों से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने की अपेक्षा अधिक सरल माना जाता है।

(ग) **दलीय या प्रतिनिधि पद्धति**–व्यावहारिक रूप से अधिकांश अविकसित समाजों में रेडियो, टेलीविजन तथा टेलीफोन की सुविधा इतनी कम होती है कि इनकी सहायता से कोई विशेष अध्ययन कर सकना बहुत कठिन होता है। इसके अलावा यदि अध्ययन का क्षेत्र बहुत बड़ा हो तो दलीय या प्रतिनिधि पद्धति के द्वारा सूचनाओं या तथ्यों का संकलन आसानी से किया जा सकता है। इसके अंतर्गत एक बड़े समूह में से कुछ विशेष व्यक्तियों अथवा सूचना देने वाले सूचनादाताओं के दल स्थापित किए जाते हैं जो शोधकर्ता को उस वर्ग की जनता के रुख, वैचारिक स्तर तथा रुचिओं, भावनाओं की सूचना प्रदान करता है। इसके लिए ऐसे व्यक्तियों या दलों का चयन किया जाता है जो या तो अपने समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा उन्हें अपने समूह के लोगों की मनोवृत्तियों और रुचियों का काफी ज्ञान होता है। परिवर्तनशील दशाओं से संबंधित तथ्यों का संकलन करने के लिए यह स्रोत बहुत प्रामाणिक और महत्वपूर्ण सिद्व हुआ है।

द्वितीयक स्रोत

प्राथमिक स्रोत के ठीक विपरीत द्वितीयक स्रोत होते हैं। किसी भी सामाजिक शोध में द्वितीयक स्रोतों का उतना ही महत्व होता है, जितना सूचनाओं अथवा तथ्यों के संकलन में प्राथमिक स्रोतों का। इसे स्पष्ट करते हुए जी.ए. लुंडबर्ग ने लिखा है कि सामान्यतः शोधकर्ता प्राथमिक स्रोतों पर ही अपनी शोध सामग्री के लिए निर्भर नहीं रहते बल्कि द्वितीयक स्रोत भी उसे मूल्यवान, महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य आंकड़े प्रदान करने तथा उसके शोध के अधूरे कार्य को पूरा करने में सहायक होते हैं। द्वितीयक स्रोत सामान्यतः उन्हें कहा जाता है, जो प्रकाशित या अप्रकाशित या पहले से प्रस्तुत की गई लिखित सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं जिसके द्वारा शोधकर्ता को अपने विषय से संबंधित कई महत्वपूर्ण सूचनाएं, आंकड़े या तथ्य इत्यादि प्राप्त हो जाते हैं। इन समंको अथवा आंकड़ों को प्राप्त करने में समय और श्रम की भी बचत होती है। इनके प्रमुख स्रोत निम्न हैं–

1. प्रकाशित स्रोत
2. अप्रकाशित स्रोत

टिप्पणी

1. **प्रकाशित स्रोत**— किसी व्यक्ति, संस्था, राष्ट्र या अंतर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा प्रकाशित किए गए संकलित समंको को द्वितीयक प्रकाशित स्रोत कहते हैं। इनके द्वारा केवल उन्हीं प्रलेखों को प्रकाशित किया जाता है जो आम जनता द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। ये सार्वजनिक स्थानों, जैसे – सार्वजनिक वाचनालयों, विद्यालयों व महाविद्यालयों के पुस्तकालयों में उपलब्ध हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा प्रकाशित विभिन्न जिलों के गजेटियर्स तथा सांख्यिकीय बुलेटिन आदि भी सूचनाएं प्राप्त करने के प्रमुख द्वितीयक स्रोत हैं। ये सभी प्रकाशित सार्वजनिक प्रलेख सामाजिक शोध के लिए न केवल मार्ग निदेशन का कार्य करते हैं बल्कि इनसे प्राप्त तथ्य के आधार पर प्राथमिक तथ्य का विश्लेषण करना भी संभव हो जाता है।

2. **अप्रकाशित स्रोत** – इनके अंतर्गत ऐसे सभी तथ्य तथा सूचनाएं आती हैं जो सार्वजनिक होते हुए भी किसी विवशता, आर्थिक कठिनाइयों अथवा वैयक्तिक कारणों से प्रकाशित नहीं हो पातीं। ऐसे तथ्यों को प्राप्त करना एवं उनका उपयोग करना तुलनात्मक रूप से कुछ कठिन होता है लेकिन सामाजिक शोध में इनकी उपयोगिता बहुत अधिक होती है। अप्रकाशित प्रलेखों के कुछ प्रमुख द्वितीयक स्रोत निम्न प्रकार से हैं–

   (क) **गोपनीय रिकॉर्ड**— ये रिकॉर्ड सार्वजनिक होते हुए भी प्रकाशित नहीं किए जाते। जनहित, सुरक्षा व्यवस्था व राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए इनको प्रकाशित नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, न्यायालयों के रिकॉर्ड, सैनिक दफ्तरों के रिकॉर्ड, बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों के परीक्षा संबंधी रिकॉर्ड, विभिन्न कंपनियों व बैंकों के रिकॉर्ड जो गोपनीय होते हैं, उन्हें प्रकाशित नहीं किया जाता है। इनसे संबंधित सूचना तभी प्राप्त की जा सकती है जब उक्त संस्था के अधिकारी को यह विश्वास हो जाता है कि प्राप्त सूचना का उद्देश्य मात्र शोध कार्य के लिए है।

   (ख) **दुर्लभ हस्तलेख या पांडुलिपियां**— ये अप्रकाशित पांडुलिपियां अनेक विद्वानों, विचारकों, समाज सुधारकों, लेखकों, नेताओं व प्रतिभाशाली साहित्यकारों द्वारा लिखी गई होती हैं, परंतु किन्हीं विशेष कारणों से इनका प्रकाशन नहीं हो पाता। स्थानीय घटनाओं, सांस्कृतिक विशेषताओं तथा किसी विशेष घटना से संबंधित अनेक पांडुलिपियां कुछ व्यक्तियों के पास भी सुरक्षित होती हैं। कई हस्तलेख विभिन्न संग्रहालयों में पाए जाते हैं जिनका प्रयोग शोध के संबंध में सूचना प्राप्त करने में किया जाता है।

   (ग) **शोध रिपोर्ट**— सामाजिक शोध के द्वितीयक स्रोत में शोध विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट अथवा शोध प्रबंध भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसमें शोधकर्ता

किसी विषय से संबंधित पक्षों को अत्यधिक गहन अध्ययन करके महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में लाता है लेकिन इनमें से अधिकांश शोध रिपोर्ट से भी शोधकर्ता को अपने विषय संबंधित शोध में महत्वपूर्ण जानकारी या तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। उपरोक्त से स्पष्ट है सामाजिक शोध में द्वितीयक सामग्री का उपयोग केवल एक पूरक तथ्य के रूप में किया जाना चाहिए आधारभूत तथ्यों के रूप में नहीं।

सूचना और साक्ष्यों की जांच

सूचना संकलन के द्वितीयक स्रोत चाहे व्यक्तिगत हों अथवा सार्वजनिक, प्रकाशित हों अथवा अप्रकाशित इनका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस संदर्भ में डॉ. बाउले का कथन है कि ''प्रकाशित सूचनाओं अथवा तथ्यों को उसके अर्थ और सीमाओं को समझे बिना ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना एक जोखिम भरा कार्य है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि ऐसी सूचनाओं या तथ्यों पर आधारित तर्कों की सावधानी पूर्वक जांच कर ली जाए।''

आंकड़े संकलन के स्रोत के उक्त प्रकारों व उपप्रकारों को निम्न प्रकार से आसानी से समझा जा सकता है–

आज सोशल मीडिया अभिव्यक्ति का एक ऐसा मंच है, जहां पर कोई भी व्यक्ति जिसके पास किसी भी प्रकार की जानकारी है, वह समाज के सामने उजागर कर सकता है। कोई भी व्यक्ति झूठे नाम से गैर-प्रमाणिक जानकारी दे सकता है, जिससे कि उस व्यक्ति की कोई जवाबदेही नहीं रह जाती है। किसी भी जानकारी की प्राथमिकता के लिए आज भी शिक्षक स्तरीय प्रकाशित पुस्तकों पर ही ज्यादा भरोसा करते है क्योंकि प्रिंट माध्यम में उचित कानून बनाए जा चुके हैं।

अत: शिक्षक को एकत्र की जाने वाली सूचनाओं की वैधता और विश्वसनीयता दोनों की गहन जांच-पड़ताल करनी चाहिए। यदि कोई सूचना वैध है तो इसका मतलब है कि वह सत्य या भरोसे योग्य है। सूचना की विश्वसनीयता एक कठिन अवधारणा है, जिसका मतलब दोहराए जा सकने से होता है। सामाजिक अध्ययनों में सूचना जुटाने के उपयोग होने वाले पैमाने, प्रश्नावलियां आदि को विश्वसनीय होना चाहिए। विश्वसनीयता वह गुण है, जिसके कारण वह समान परिस्थितियों में समान फल देता है।

शिक्षण में सूचना का उपयोग तभी किया जा सकता है, जब शिक्षक सभी स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करे तथा उनकी विश्वसनीयता के प्रति आश्वस्त हो। जानकारी की प्रमााणिकता के लिए वैधता एवं विश्वसनीयता आवश्यक है। प्रामाणिकता के अभाव में जानकारी अपनी विश्वसनीयता खो देती है। इसलिए शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वे सूचनाओं को उनके अंतर्निहित दृष्टिकोणों, प्रामाणिकता तथा उपयोगिता के संदर्भ में अच्छी तरह से जांच-पड़ताल करके देखें।

सूचना और उसका प्रमाणीकरण

सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को अपने विषय की जानकारी के साथ-साथ समाज में हो रहे परिवर्तनों की भी जानकारी रखना चाहिए ताकि वे छात्रों को समाज में होने वाले परिवर्तनों से अवगत करा सकें। इसके लिए शिक्षक में बौद्धिक एवं सामाजिक जागरूकता

होनी चाहिए, ताकि वह सामाजिक घटनाओं से परिचित रहे। हमारे गांव, नगर, प्रदेश, देश एवं विदेश में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में कौन-कौन सी घटनायें घट रही हैं, इसकी जानकारी सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को अवश्य होनी चाहिए।

टिप्पणी

सूचनाएं किसी भी रूप में हो सकती हैं। सरल या कठिन, प्रश्नों के उत्तर के रूप में चित्र या फिल्म के रूप में इत्यादि, सूचना में प्रासंगिकता की विशेषता होना आवश्यक है। प्रासंगिक सूचना का अर्थ, वह सूचना जिसका उपयोग एक विशेष परिस्थिति या समस्या के लिए किया जाता है। जैसे सामाजिक अध्ययन के शिक्षक के लिए सामाजिक घटनाएँ प्रासंगिक सूचनाएं हैं।

सूचना एकत्र करने के मुख्यतः दो स्रोत हैं :

1. प्राथमिक या प्रत्यक्ष स्रोत, एवं
2. द्वितीयक या अप्रत्यक्ष स्रोत।

प्राथमिक स्रोत से आशय है, शिक्षक स्वयं किसी घटना का प्रत्यक्षदर्शी होकर, वस्तु को देखकर या कार्य करके जितना ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उतना ज्ञान उस वस्तु, घटना या कार्य के विषय में पढ़कर नहीं कर सकता है। प्रत्यक्ष अनुभव का ज्ञानार्जन में महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि यह स्थाई होता है।

किसी पहाड़, जंगल, नदी, बांध, खेत, महल, कारखाना, आदिवासियों की संस्कृति, ग्रामीण समाज आदि के विषय में पढ़ने या सुनने की अपेक्षा व्यक्तिगत रूप में देखने से अधिक जानकारी प्राप्त होती है।

द्वितीयक स्रोत का अर्थ है कि दूसरे स्रोत, जैसे-पत्र-पत्रिकाएं, जर्नल्स, समाचार पत्र, इन्टरनेट आदि से प्राप्त करता है।

द्वितीयक स्रोत से प्राप्त सूचनाओं पर आंख मूंदकर भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि इन स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं एक पक्षीय, स्वार्थ से प्रेरित, पूर्वागृह से युक्त अफवाहों या सुनी सुनाई हो सकती हैं।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को यह समझ होनी चाहिए कि छात्रों की मनोवृति परिवर्तन में शिक्षा, प्रचार आदि साधनों से प्राप्त औपचारिक सूचना तथा व्यक्तिगत अनुभव तथा बातचीत से प्राप्त अनौपचारिक सूचनाओं दोनों का योगदान होता है।

जैसे कि समाचार पत्र, रेडियो, टेलिविजन, सोशल मीडिया, इन्टरनेट आदि पर किये गये प्रचार से प्राप्त सूचनाओं से छात्रों की मनोवृति में परिवर्तन होता है। कुछ दिन पहले सूचना मिली कि एक नामी कंपनी की नूडल्स में रासायनिक तत्व सल्फर की मात्रा है, जो नुकसानदायक है। फलतः हमारी मनोवृति बदलकर प्रतिकूल हो गयी। फिर सूचना मिली कि कंपनी ने नूडल्स के उत्पादन में सुधार कर दिया है इसलिए हमारी मनोवृति नूडल्स के प्रति पुनः अनुकूल बन गयी।

1.4.3 भारतीय समाज : पारंपरिक भारतीय परिवार, जाति व्यवस्था, भारत में धर्म, भारतीय समाज में परिवर्तन

मनुष्य समाज में रहता है। भारतीय समाज के विभिन्न रूपों के उदाहरण हैं– ग्रामीण समाज, नगरीय समाज तथा जनजातीय समाज। इन सभी समाजों के सामुदायिक स्वरूप, संबंधों के सांस्कृतिक आधार तथा धनोपार्जन के तरीकों में भिन्नता होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि में, समाज अनौपचारिक, घनिष्ठ प्राथमिक संबंधों की प्रधानता तथा

आकार से पहचाना जाता है। समाज का प्रकृति एवं मनुष्य दोनों से करीबी संबंध होता है।

समाज की परिभाषा

टिप्पणी

ए.आर. देसाई के कथनानुसार, "भारतीय समाज की इकाई गांव है, यह एक रंगमंच है, जहां ग्रामीण जीवन का प्रमुख भाग स्वयं प्रकट होता है और कार्य करता है। ग्राम सामूहिक निवास की प्रथम स्थापना है और कृषि अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति है।"

जे.पी. सिंह ने 'समाज विज्ञान विश्वकोष' में समाज के बारे में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं– "किसी स्थानीय क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं के बीच साहचर्य भाव के कारण गठित समुदाय जिसमें अधिकांश व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और दूसरी सेवाओं का सामूहिक जीवन में उपयोग करते हैं तथा मूल प्रवृत्तियों और व्यवहार में सामान्य एकता होती है ऐसे समुदाय का आकार छोटा, जनसंख्या के घनत्व का कम होना एवं कृषि मुख्य व्यवसाय होता है।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि घनिष्ठ प्राथमिक संबंध, सामूहिकता, कृषि प्रधान जीवन शैली तथा प्रकृति पर निर्भरता, भारतीय समाज की विशेषताएं हैं।

आमतौर पर समाज को किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रह रहे लोगों के समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है। इनके लक्षण समान धार्मिक विश्वास, समान आदतें, समान जीवनशैली और सामाजिक संवाद के विभिन्न प्रकार होते हैं। 'ग्रामीण' शब्द का आशय कम आबादी वाले किसी छोटे इलाके से है, जिनके लिए खेती केवल पेशा नहीं, बल्कि जीवनशैली भी होती है।

भारत के गांव आज भी एक संबद्ध भौगोलिक इकाई के रूप में अस्तित्व में हैं। गांवों में रहने वाले लोगों की संख्या इसका प्रमाण है। हालांकि, ग्राम्य पहचान, एकता, और निष्ठा कई बार जाति और धार्मिक कारणों से प्रभावित हो जाती है। गांवों में और गांवों के बीच ही उपद्रवी और विरोधी गुट होते हैं। भूमि सुधार, पंचायती राज, सांस्कृतिकरण और अन्य संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों ने ग्रामीण सामाजिक संरचना में और बाहरी जगत से उसके संबंधों में भारी बदलाव किया है। गांव अपने निवासियों के लिए स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई हैं, जो वृहद समाज में हिस्सा लेते हैं और सभ्यता के रूपों में भागीदारी करते हैं।

भारत के गांव घुमक्कड़ समूहों से स्थायी बस्तियों में रूपांतरण का महत्व दर्शाते हैं। गांव मानव जाति का सबसे प्राचीन स्थायी समुदाय है। गांव और ग्रामीण समुदाय दुनिया के हर हिस्से में मौजूद हैं और वे मानव प्रजाति की स्थायी और स्थिर बस्तियों के सबसे प्राचीन उदाहरण हैं।

भारतीय समाज की विशेषताएं

भारतीय समाज की विशेषताएं निम्न हैं–

1. **मुख्य व्यवसाय कृषि** : भारतीय शहरों में विभिन्न कारोबार चलते हैं तथा नौकरियों का बोलबाला रहता है, लेकिन ग्रामीण समुदाय की आजीविका का

मुख्य आधार कृषि होता है। हालांकि अन्य व्यवसाय भी गांवों में होते हैं तथापि कृषि प्रमुख व्यवसाय है।

2. **लघु समुदाय** : भारतीय ग्रामीण समुदाय का आकार छोटा होता है। भारत में अधिकतर गांवों की जनसंख्या 200 से 500 के बीच है। हालांकि पलायन से यह संख्या कम हो गई है। 5000 की जनसंख्या अधिकतम मानी जाती है।
3. **सामान्य रूप से जीवनयापन** : भारत में रहने वाले लोगों के धर्म, जाति अलग–अलग हो सकते हैं किंतु उनकी प्रथाओं, काम करने के तरीकों, मनोवृत्तियों एवं रुचियों में समानता देखने को मिलती है। भारतीय समुदाय एक सामान्य जीवन विधि से जीवन निर्वाह करते हैं जिसमें समरूपता होती है।
4. **परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था** : भारतीय समाज में परिवार सर्वप्रमुख इकाई है। परिवार ही व्यक्ति की प्रस्थिति निर्धारण का आधार होता है। सामाजिक गतिविधियों में व्यक्तियों के बीच संबंधों का आधार पारिवारिक संबंध ही होते हैं, जैसे कि विवाह संबंधों में परिवार की पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण होती है।
5. **धर्म को प्राथमिकता** : भारतीय समुदाय की प्रकृति से निकटता के कारण उनमें अलौकिक शक्ति के प्रति भय मिश्रित श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है जो धार्मिक नियमों के अनिवार्यतः पालन के रूप में फलित होता है। स्थानीय देवी–देवताओं, मान्यताओं और अन्य उपासना पद्धतियों की उपस्थिति के कारण भारतीय समुदाय एक नैतिक समुदाय में परिवर्तित हो जाता है। अतः भारतीय समाज में धर्म सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक क्रियाओं के आधार के साथ–साथ अनौपचारिक नियंत्रण का साधन भी बन जाता है। अशिक्षा एवं निरक्षरता जनित भाग्यवादिता इसका प्रमुख कारण है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के गांवों में शिक्षा एवं साक्षरता का प्रतिशत अभी भी अपेक्षाकृत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में छात्र शिक्षा पूरी कर पाएं, इस हेतु और अधिक प्रयास की आवश्यकता है।
6. **श्रमशील ग्रामीण** : भारतीय समाज में सभी काम लगभग सभी लोग कर लेते हैं, अतः कहा जा सकता है कि यहां श्रम के विशेषीकरण का अभाव है। फसल बोना, काटना तथा खेती के अन्य कार्यों की जानकारी अधिकांश ग्रामीण लोगों को होती है।
7. **परस्पर घनिष्ठता** : भारतीय समाज के सभी व्यक्ति आमने–सामने के घनिष्ठ संबंधों के आधार पर अंतःक्रिया करते हैं। पड़ोसी भी परिवार के सदस्य की तरह व्यवहार करता है।
8. **जन्मानुसार भूमिकाओं का निर्धारण** : भारतीय समुदाय में जन्म (जाति) से ही व्यक्ति की भूमिका निश्चित हो जाती है। जाति से व्यक्ति के व्यवसाय का सीधा संबंध है और भारत में सभी जातियां अपने कार्यों से एक–दूसरे को सेवाएं देती हैं और यह सेवाओं का आदान–प्रदान जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत होता है।
9. **सभी के विचारों और भावनाओं को प्रधानता** : भारतीय समाज के व्यक्तियों का व्यवहार व्यक्तिगत न होकर संपूर्ण समाज की इच्छा से प्रभावित

होता है क्योंकि भारतीय समाज परंपरागत विचारों के पालन को प्रमुखता देता है अतः रूढ़िवादिता का बाहुल्य नजर आता है।

10. **भारतीय समाज का बदलता स्वरूप :**

लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास : भारतीय ग्रामीण समाज में पंचायतीराज संस्थाओं के विकास का आधार लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया है। 73वें संशोधन ने पंचायतों को कानूनी मान्यता दी है तथा कमजोर वर्ग में नेतृत्व को उभारने हेतु आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

टिप्पणी

महिलाओं की स्थिति : पंचायतीराज में महिलाएं भी अपनी परंपरागत स्थिति से आगे बढ़ कर कार्य कर रही हैं। देश की 2.5 लाख पंचायतों के लगभग 32 लाख चुने गए प्रतिनिधियों में से करीब–करीब आधी संख्या (13 से 14 लाख) महिला सदस्यों की है। स्वसहायता समूहों ने महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाया है। इन सभी प्रयासों में महिलाओं की सहभागिता ने उन्हें घर व बाहर की दुनिया में स्वतंत्र होकर जीने में सहायता प्रदान की है।

भारतीय समाज के सामाजिक सांस्कृतिक पहलू

1. **संयुक्त परिवार व्यवस्था :** भारतीय समाज की केंद्रीय इकाई संयुक्त परिवार है जिसका आधार एक साझा निवास स्थान, संयुक्त रसोई, संपत्ति में सहभागिता तथा घनिष्ठ प्राथमिक संबंध हैं। भारतीय परिवार आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है। सामाजिक परिवर्तन से परिवार की संरचना में बदलाव तो आया है किंतु प्रकार्यात्मक एकता अभी भी विद्यमान है।
2. **जाति प्रथा का बाहुल्य :** अनेक जातियों में बंटा समाज भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है। जाति समूह जन्म पर आधारित होता है तथा इसमें अंतरविवाह नियम लागू होता है। जाति द्वारा प्रदत्त प्रस्थिति का निर्धारण होता है। जाति व्यवस्था श्रम विभाजन का भी आधार है और यह भारतीय गांवों की कृषि केंद्रित व्यवस्था की विशेषता रही है। जाति समूह के अपने आंतरिक संगठन व नियम होते हैं जिसके अंतर्गत उत्पादन एवं सेवाओं का आदान–प्रदान एवं विनिमय होता है। परंपरागत व्यवसाय, धार्मिक आस्थाएं, प्रथाएं तथा रीतिरिवाज, खानपान के नियम और सजातीय विवाह इन जाति समूहों की आंतरिक एकता को स्थिरता प्रदान करते हैं। भारतीय समाज में जाति आधारित संस्तरण स्पष्टतया देखा जा सकता है।
3. **अर्थ व्यवस्था का आधार :** कृषि आधारित अर्थव्यवस्था भारतीय समाज की संरचना का प्रमुख आधार है। आंद्रे बेते के कथनानुसार, "कृषि मात्र व्यवसाय नहीं बल्कि एक जीवनशैली है।" भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीन वर्ग प्रमुखतया दृष्टिगोचर होते हैं– (1) स्वामी (2) कामकाजी कृषक (3) मजदूर। इसके साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं का विनिमय परंपरागत जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत होता है। जजमानी व्यवस्था के बारे में विलियम वायजर ने अपनी पुस्तक 'द हिंदू जजमानी सिस्टम' में लिखा है कि, "गांव का प्रत्येक जाति समूह अन्य जाति के परिवारों को कुछ निश्चित सेवाएं

प्रदान करता है। बदले में पारितोषिक के रूप में वस्तुएं अथवा अनाज प्राप्त करता है। लेन–देन की यह प्रथा बगैर अनुबंध के होती है। हालांकि अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप वर्तमान में यह प्रथा कमजोर पड़ गई है।

4. **लैंगिक भेदभाव** : परंपरागत मानदंडों पर आधारित भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष में असमानता की स्थिति बहुत अधिक दिखाई देती है। पितृसत्तात्मक मूल्यों तथा जाति आधारित नियमों के पालन से तथा सांस्कृतिक आधार पर निर्मित लैंगिक भूमिकाओं ने महिलाओं की स्थिति को कमजोर बनाया है। इसके अलावा पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा, अंधविश्वास जैसे कारणों ने महिलाओं की स्थिति को ग्रामीण समाज में तुलनात्मक रूप से अधिक कमजोर किया है।

टिप्पणी

5. **वंश व नातेदारी प्रथा के विविध रूप** : भारतीय समाज के परिवारों में एक निश्चित वंश परंपरा होती है जिसे कुल कहते हैं। विवाह संबंध कुल के बाहर ही हो सकते हैं। रक्त संबंध एवं वैवाहिक संबंध, नातेदारी का आधार होते हैं। उत्तर तथा दक्षिण भारत में नातेदारी में भिन्नता पाई जाती है। उत्तर भारत में एक ही गांव या गोत्र में विवाह पर प्रतिबंध है, वहीं दक्षिण भारत में भाई–बहिन के बच्चों एवं ममेरे–फुफेरे भाई–बहनों में विवाहों को प्रमुखता दी जाती है। नातेदारी से उत्तराधिकार निर्धारण भी होता है।

6. **ग्राम पंचायत बनाम जाति पंचायत** : परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना में जमींदारी प्रथा, ग्राम पंचायत तथा जाति पंचायत शक्ति संरचना का आधार रहे हैं। लोगों के भौतिक तथा आर्थिक हितों की प्रतिनिधि जमींदारी प्रथा थी तो ग्राम पंचायतें, जाति पंचायतें, ग्रामीण राजनीति की सामाजिक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती थीं। आधुनिक भारतीय ग्रामीण समाज में पंचायती राज के माध्यम से लोकतांत्रिक नेतृत्व उभर रहा है फिर भी जाति समूह आज भी ग्रामीण शक्ति संरचना के महत्वपूर्ण तत्व हैं।

पारंपरिक भारतीय परिवार

पारंपरिक भारतीय परिवार संयुक्त परिवार प्रणाली की विशेषता से जुड़ा है। भारतीय परिवार की सबसे उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **संयुक्त परिवार**– भारत में परिवार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है संयुक्त परिवार प्रणाली। एक संयुक्त परिवार में पति, पत्नी, चाचा, चाची, बेटे और भतीजे आदि शामिल होते हैं। समस्त अधिकार परिवार के सबसे वरिष्ठ पुरुष सदस्य को प्राप्त होते हैं। परिवार में आम तौर पर साझी रसोई की प्रथा होती है और हर सदस्य का साझा आवास और साझी भोजन व्यवस्था होती है।

2. **महिलाओं के प्रति उच्च सम्मान**– भारतीय परिवारों में महिलाओं को सम्मान प्रदान किया जाता है। भारतीय समाज में महिलाएं, पुरुषों के साथ काम करती हैं।

3. **धार्मिक दृष्टिकोण**– भारतीय परिवार की मुख्य विशेषता है, धार्मिक और आध्यात्मिक आधार। भारतीय परिवार धार्मिकता के सिद्धांतों से बंधा होता है और इसका उद्देश्य भौतिक न होकर आध्यात्मिक होता है। भारत में रहने वाले परिवारों में अधिकारों से ज्यादा, दायित्वों पर जोर दिया जाता है, इसीलिए

टिप्पणी

परिवार के सदस्यों के बीच सौहार्द्रपूर्ण और सम्मानजनक संबंध होते हैं। परिवार का हर सदस्य अलग कार्य करता है और सभी सदस्यों के बीच अनुशासन, सद्भाव और शांति का वास होता है।

4. **मेहमानदारी**– भारतीय परिवार की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है, इसका अपने मेहमानों के प्रति रवैया। इनके घर में मेहमान का सदा स्वागत किया जाता है। भारत में पाई जाने वाली यह मेहमानवाजी, दुनिया को सदा से आकर्षित करती रही है।
5. **सामंजस्य**– भारत में परिवार के सदस्यों के बीच अधिक सौहार्द्रपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण संबंध होता है। गांवों में रहने वाले परिवार आम तौर पर सजातीय इकाई होते हैं।
6. **एक–दूसरे के प्रति प्यार**– भारतीय परिवारों में, परिवार का प्रत्येक सदस्य एक–दूसरे के प्रति प्यार की भावना रखता है।
7. **परिवार में अनुशासन**– भारतीय परिवारों में अधिक अनुशासन और आपसी लेन–देन पाया जाता है। परिवार के सदस्य परिवार के मुखिया के आदेशों का पालन करते हैं। विवाह, सामान्य रूप से, माता–पिता द्वारा तय किए जाते हैं।
8. **परिवार का सम्मान**– भारतीय परिवारों के लिए उनका सम्मान बहुत महत्वपूर्ण होता है। उनकी सामूहिक भावनाएं उनकी व्यक्तिगत भावनाओं से अधिक प्रमुख होती हैं। परिवार को पहुंची कोई भी ठेस प्रत्येक सदस्य द्वारा एक व्यक्तिगत चोट की तरह ली जाती है और परिवार का सम्मान भी व्यक्तिगत सम्मान माना जाता है। इसलिए, परिवार के किसी भी सदस्य को ऐसा कोई काम करने की इजाजत नहीं होती, जिससे परिवार के सम्मान का समझौता करना पड़े।
9. **परंपरा और रीति का प्रभाव**– भारत में, परंपराओं को बहुत मान दिया जाता है और इनकी सुरक्षा की जाती है। जितनी पुरानी परंपरा, भारतीय मानस पर उसकी उतनी ही मजबूत पकड़ होती है। शहरी लोगों की तुलना में, तकनीकी विकास, उन्नति, और सामाजिक बदलाव जैसी चीजों का ग्रामीण लोगों पर ज्यादा असर नहीं होता। परिवार के अंदर संबंध परंपराओं पर निर्धारित होते हैं।
10. **परिवार, एक आर्थिक इकाई**– आर्थिक दृष्टिकोण से, एक भारतीय परिवार को उत्पादन, वितरण और विनिमय के संबंध में एक इकाई समझा जा सकता है। आर्थिक संबंधों में, व्यक्ति के स्थान पर परिवार की केंद्रीय भूमिका होती है। वस्तु विनिमय प्रणाली, कुछ हद तक आज भी गांवों में प्रचलित है।
11. **पैतृक प्रभाव**– भारत के परिवारों में कुलपति प्रणाली प्रचलित है। एक पितृसत्तात्मक परिवार में अधिकार और सम्मान परिवार के पिता में निहित रहता है। इसी प्रकार, ग्रामीण भारत में परिवारों में पिता श्रेष्ठ होते हैं। बच्चे चाहे कितने भी बड़े क्यों न हो जाएं, वे आमतौर पर पिता का सम्मान करते हैं और उनके आदेश के विरुद्ध जाने का साहस नहीं करते।
12. **परिवार नियंत्रण**– भारतीय समाज में, समाज के सदस्यों पर, परिवार के माध्यम से नियंत्रण रखा जाता है। परिवार द्वारा समाज के सदस्यों पर दायित्वों

का बोझ डाला जाता है और परिवार ही इस बात को निश्चित करते हैं कि वे अपने दायित्वों का पालन करें। एक व्यक्ति का स्तर उसके परिवार के स्तर के आधार पर निर्धारित किया जाता है। परिवार ही सदस्यों द्वारा सामाजिक कानूनों का सम्मान और पालन करवाता है।

13. **देवता पूजा**– भारत में, देवताओं की पूजा एक सामान्य बात है। पूजे जाने वाले देव, आमतौर पर पारिवारिक संबंध रखते हैं। उदाहरण के लिए, भगवान शिव देवी पार्वती के पति हैं और भगवान गणेश के पिता।

14. **परिवार, एक सामाजिक इकाई**– भारतीय परिवार, भारतीय समाज की एक धार्मिक, आर्थिक, और सामाजिक इकाई है। कोई नैतिक, सामाजिक या राजनीतिक नियम नहीं तोड़े जाते और ये पारिवारिक संरचना का आधार बनते हैं। भारतीय समाज में सभी नियम और कानून परिवार संरचना की जड़ों को मजबूत करते हैं।

संयुक्त परिवार

पीढ़ी दर पीढ़ी, परिजनों के समूह को संयुक्त परिवार कहा जाता है। यह पारंपरिक भारतीय परिवार की एक विशेषता है। इस परिवार का एक मुखिया, एक निवास, एक चूल्हा, और साझी संपत्ति होती है और परिवार के सदस्य एक–दूसरे के साथ पारस्परिक दायित्वों द्वारा जुड़े होते हैं। एक ही घर, आम रसोई, संयुक्त संपत्ति और आम पूजा पद्धति संयुक्त परिवार की मुख्य विशेषताएं हैं। इस बात को संयुक्त परिवार की निम्न परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. कारवे का मानना है, 'एक संयुक्त परिवार उन लोगों का एक समूह है जो आमतौर पर एक ही छत के नीचे रहते हैं, एक ही चूल्हे से बना खाना खाते हैं, जिनकी संयुक्त संपत्ति होती है, जो आम पूजा में भाग लेते हैं और जो किसी विशेष रूप में एक–दूसरे से संबंधित होते हैं'।
2. जॉली का कहना है, 'न केवल माता–पिता और बच्चे, भाई और सौतेले भाई एक ही संपत्ति पर रहते हैं, लेकिन कई बार अनेक पीढ़ियों के वंशज भी उस घर में रहते हैं'।
3. देसाई के अनुसार, 'पीढ़ियों की अधिक गहराई (यानी, दो अथवा तीन) वाले घर को, जिसके सदस्य एक–दूसरे से संपत्ति, आय और आपसी अधिकार एवं दायित्वों के माध्यम से जुड़े हों, संयुक्त परिवार कहा जाता है।

संयुक्त परिवार के लाभ

संयुक्त परिवार के लाभ इस प्रकार हैं–

1. **आर्थिक लाभ**– आर्थिक दृष्टिकोण से, संयुक्त परिवार की प्रणाली सदा लाभदायक साबित हुई है। इस कारण संपत्ति का विभाजन नहीं होता। परिवार की जमीन टुकड़ों में बंटने से बच जाती है। छोटे टुकड़ों में बंटने के बाद जमीन आर्थिक रूप से उपयोगी नहीं रहती। जमीन को एक साथ जोड़े रखने के अलावा, संयुक्त परिवार आर्थिक उत्पादन में भी सहायता करता है। एक संयुक्त कृषि परिवार में पुरुष सदस्य खेतों में बीजाई और सिंचाई का काम करते हैं।

टिप्पणी

महिलाएं फसलों की जुताई में सहायता करती हैं। बच्चे पशु चराते हैं और ईंधन तथा खाद इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार, परिवार के सभी सदस्यों के सहयोग से पैसे की बचत होती और मजदूरों को काम पर रखने की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले संयुक्त परिवार इस प्रकार के होते हैं जिनमें पुरुष, महिलाएं और बच्चे सब एक–दूसरे के साथ मिलकर काम करते हैं। मध्य एवं उच्च वर्गी परिवार भी व्यापार की स्थापना एवं विस्तार के लिए संयुक्त परिवार की सहायता पर निर्भर करते हैं।

2. **सदस्यों की सुरक्षा**– जवाहरलाल नेहरू, संयुक्त परिवार के पक्षधर थे। नेहरू जी का यह कहना था कि संयुक्त परिवार प्रणाली, परिवार के सदस्यों के लिए बीमे का काम करती है, जो मानसिक एवं शारीरिक तौर से कमजोर सदस्यों की रक्षा की गारंटी लेती है। संकट के समय में संयुक्त परिवार बच्चों, महिलाओं, बूढ़ों, पागल, विधवा और असहाय सदस्यों को सहायता प्रदान कर सकता है। गर्भावस्था, बीमारी आदि जैसी आपातकालीन स्थितियों के समय संयुक्त परिवार सहायता करने की योग्यता रखता है और किसी सदस्य के मर जाने की स्थिति में संयुक्त परिवार मृतक के बच्चों और उसकी पत्नी की पूरी देखभाल करता है। एक संयुक्त परिवार में प्रत्येक सदस्य को एक स्थान मुहैया करवाया जाता है, जहां वह जरूरत पड़ने पर कभी भी जा सकता है और सदस्यों के धन तथा उनकी समृद्धि की सामूहिक तौर पर सुरक्षा की जाती है।

3. **अच्छी आदतों की शुरुआत**– संयुक्त परिवार प्रणाली एक आदमी में अच्छी आदतें डालने के विचार के विकास की संभावना उत्पन्न करती है। परिवार के बड़ों की देख–रेख में, अवांछनीय, और असामाजिक प्रवृत्तियां काबू में रहती हैं, घर के बड़े उन्हें रास्ता भटकने से बचा लेते हैं और वे आत्म–नियंत्रण भी सीख पाते हैं। संयुक्त परिवार में, लड़के और लड़कियां उदारता, धैर्य, सेवा, सहयोग और आज्ञाकारिता जैसे सबक सीखते हैं। त्याग की भावना स्वार्थ को बदल देती है। परिवार के सभी सदस्य परिवार नियंत्रण का पालन करना और अपने से बड़ों का आदर करना सीखते हैं।

4. **सहयोग एवं आर्थिक सहायता**– एक संयुक्त परिवार सभी सदस्य एक–दूसरे का इस कदर सहयोग करते हैं और ऐसी आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं जिसका उदाहरण शायद ही कहीं मिल सके। परिवार के सदस्यों के बीच सहयोग की भावना रहती है। आर्थिक सहयोग के कारण खर्चों में काफी कमी होती है। एक संयुक्त परिवार को सहयोग का आदर्श केंद्र कहना बिल्कुल ठीक होगा।

5. **पैसों के मामले में समाजवाद**– सर हेनरी मेन के अनुसार, संयुक्त परिवार एक व्यापार संघ की तरह है, जिसका ट्रस्टी उसका पिता होता है। परिवार के पिता को कर्ता कहा जाता है। डी.एन. मजूमदार द्वारा कहा गया है, 'संयुक्त परिवार के कर्ता के पास अपने परिवार से संबंधित फैसले लेने का अधिकार होता है। वह परिवार का कार्यकारी मुखिया होता है और जज व जूरी भी। वह परिवार में होने वाले झगड़ों का फैसला करता है। चूंकि सामाजिक, औपचारिक और

सामुदायिक गतिविधियों, तथा स्थानीय ग्राम पंचायत में हर परिवार का प्रतिनिधित्व उसके मुखिया द्वारा किया जाता है, इसलिए, परिवार का पिता उसका राजनीतिक मुखिया होता है'। जेथर और बेरी के अनुसार, 'संयुक्त परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार कमाता है, लेकिन अपनी जरूरत के हिसाब से पाता है, और इस प्रकार यह एक समाजवादी आदर्श उपलब्ध करता है; प्रत्येक अपनी क्षमता लेकर, अपनी जरूरत तक।'

संयुक्त परिवार के नुकसान

संयुक्त परिवार प्रणाली के कुछ मुख्य नुकसान इस प्रकार हैं–

1. **व्यक्तित्व के विकास में बाधा**– संयुक्त परिवार प्रणाली का सबसे बड़ा नुकसान है कि वह सदस्यों के व्यक्तित्व के विकास में रुकावट बनती है। संयुक्त परिवार का मुखिया पूर्ण शासक होता है। वह परिवार का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इसलिए सदस्यों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता या आत्म–निर्भरता के बहुत कम अवसर मिलते हैं।

2. **महिलाओं की दयनीय स्थिति**– महिलाओं की बुरी हालत भी इसके विघटन का एक प्रमुख कारक है। संयुक्त परिवार में एक बहू को अपना व्यक्तित्व विकसित करने के अवसर नहीं मिलते। वह अपने बच्चों और परिवार की जरूरतों का ध्यान रखती है।

4. **घरेलू हिंसा**– यदि अत्याचार की शिकार महिलाएं बुरे व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाती हैं या अपने हक में कोई बात करती हैं तो घर लड़ाई का मैदान बन जाता है। देवरानी और जेठानी के बीच आपसी जलन तथा नफरत, भाइयों के बीच भी संघर्ष की स्थिति पैदा करती है जिससे हालात खतरनाक मोड़ ले सकते हैं। बच्चों को लेकर भी निरंतर लड़ाइयां और मनमुटाव चलते रहते हैं। घर के बड़े, ज्यादातर, इन छोटी समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने में लगे रहते हैं।

4. **आलस्य**– सामान्य जिम्मेदारी के कारण बहुत से लोग काम से मुंह मोड़कर पूरे आलसी बन जाते हैं। इस स्थिति में मेहनत करने वालों और आलसी लोगों की समान हालत होती है। जब किसी व्यक्ति को बिना मेहनत किए आराम से खाने को मिल जाए तो बेशक, वह किसी चीज के लिए मेहनत नहीं करेगा। आमतौर पर, संयुक्त परिवार में कुछ सदस्य कड़ी मेहनत करते हैं और कुछ पूरी सुस्ती और आलस्य का जीवन व्यतीत करते हैं।

5. **बच्चों की अधिक संख्या**– संयुक्त परिवार में बच्चों को पालने और उन्हें शिक्षित करने की साझी जिम्मेदारी होती है। इसलिए, कोई भी व्यक्ति संतान वृद्धि पर रोक लगाने की बात पर जोर देना जरूरी नहीं समझता। परिवार में सदस्यों द्वारा की जाने वाली कमाई और संबंधित बच्चों की संख्या के आधार पर उनकी हैसियत में कोई अंतर नहीं किया जाता। इस प्रकार, एक संयुक्त परिवार में, किसी एक सदस्य को कम बच्चे पैदा करने या ज्यादा धन कमाने का कोई

सीधा लाभ नहीं होता। इसके फलस्वरूप, लोग अपनी परिवार नियोजन विचारधारा खो देते हैं।

टिप्पणी

6. **गरीबी**– तकरीबन दैनिक संघर्ष, महिलाओं की बुरी हालत, सम्पूर्ण शासन, जिम्मेदारी की कमी और अधिक बच्चे होने के कारण, एक संयुक्त परिवार की हालत बहुत खराब होती है। बढ़ते संघर्ष के कारण जमीन और संपत्ति में बंटवारा, हालात को और खराब कर देता है। संयुक्त स्वामित्व वाले परिवार की संपत्ति कई बार व्यर्थ हो जाती है और धीरे–धीरे सब इससे हाथ धो बैठते हैं।
7. **अन्य समस्याएं**– ऊपर व्यक्त की गई मुख्य कमियों के अतिरिक्त, संयुक्त परिवार प्रणाली में अन्य कई छोटी–छोटी कमियां हैं। पारिवारिक संघर्ष की बदौलत कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाने पड़ते हैं। संयुक्त परिवार में परंपराओं और रिवाजों का दृढ़ पालन किया जाता है और यहां सबसे बड़े सदस्य का मार्गदर्शक हाथ होने के कारण, अंधविश्वास का बोलबाला होता है। बूढ़े लोगों के सख्त प्रशासन के कारण युवा सदस्य आत्म–विश्वास और आत्म–निर्भरता जैसी चीजें नहीं सीख पाते, परिणाम स्वरूप, संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है।

जाति व्यवस्था

भारतीय सामाजिक संरचनाओं में जाति एक सर्वाधिक प्राचीन संस्था है। आदिकाल से ही भारत में जाति प्रथा का प्रचलन रहा है। पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है तो भारत में जाति एवं वर्ण। समाजविदों के मत में जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक मुख्य आधार रही है, जिससे हिन्दुओं का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन प्रभावित होता रहा है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र का अध्ययन बिना जाति के विश्लेषण के अपूर्ण ही रहता है। श्रीमती इरावती कर्वे का भी मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों को समझना चाहते हैं तो जाति–व्यवस्था का अध्ययन अत्यन्त अनिवार्य है। यही कारण है कि समय–समय पर इतिहासकारों, भारत–शास्त्रियों, जनगणना–आयुक्तों, समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों एवं अन्य लोगों ने इस संदर्भ में अपने–अपने दृष्टिकोण प्रकट किये हैं।

भारत में जाति की व्यापकता एवं महत्व को बताते हुए डॉ. मजूमदार लिखते हैं, कि ''जाति व्यवस्था भारत में अनुपम है। सामान्यतः भारत जातियों एवं सम्प्रदायों की परम्परात्मक स्थली माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि यहां की हवा में भी जाति घुली हुई है और यहां तक कि मुसलमान तथा ईसाई भी इससे अछूते नहीं बचे हैं।''

जाति : अर्थ, उत्पत्ति एवं विशेषताएं

भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण की एक अतिप्राचीन व्यवस्था पाई गई है, जिसे जाति प्रथा कहते हैं। जाति की सदस्यता व्यक्ति को जन्म से ही मिल जाती है तथा वह संपूर्ण जीवन उसी का सदस्य बना रहता है, अर्थात जाति की सदस्यता को किसी भी तरीके से बदला नहीं जा सकता। इसीलिए इसे सामाजिक स्तरीकरण की बन्द

व्यवस्था भी कहा जाता है। जातियों की सामाजिक स्थिति में काफी अन्तर अर्थात संस्तरण पाया जाता है।

जाति : अर्थ एवं परिभाषाएं

समाज में व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म लेने के स्थान व समूह से निर्धारित होती है। जाति भी व्यक्तियों का एक समूह है। यह कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमानों को मानने वाला वह समूह है, जिसके सदस्यों में रक्त शुद्धि होने का विश्वास किया जाता है, जिसकी सदस्यता व्यक्ति नहीं अर्जित करता है। इस प्रकार का समूह सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता है। इस प्रकार के सदस्य अन्य किसी समूह के सदस्य नहीं होते हैं और न कोई बाहर के समूह के सदस्य इस समूह के सदस्य हो सकते हैं। इस प्रकार जाति एक बन्द वर्ग है।

'जाति' शब्द अंग्रेजी के 'कास्ट' (Caste) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी के Caste शब्द की व्युत्पत्ति पुर्तगाली भाषा के 'Casta' शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'नस्ल', 'प्रजाति' या 'भेद'। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1565 ई. में गार्सिया दी ओरटा 'Garcia de Orta' ने किया था। उसके बाद फ्रांस के अब्बे डुबॉय के इसका प्रयोग प्रजाति के संदर्भ में किया। समाजशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। इसके अर्थ को समझने के लिए विस्तृत रूप से इसकी परिभाषाओं को समझना आवश्यक है। प्रमुख विद्वानों ने जाति की परिभाषाएं भिन्न–भिन्न आधारों पर दी हैं। प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं–

1. चार्ल्स कूले के अनुसार, "जब एक वर्ग आनुवांशिक होता है, तो हम उसे जाति कहते हैं।"
2. मजूमदार के शब्दों में– "जाति एक बन्द वर्ग है।"
3. ब्लश्ट के अनुसार– "एक जाति एक अन्तर्विवाह वाला समूह है या अन्तर्विवाह करने वाले समूहों का संकलन है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता वंशानुगत होती है, जो अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास से सम्बन्धित कुछ प्रतिबन्ध लगाता है, एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय करता है या एक सामान्य उत्पत्ति का दावा करता है और आमतौर से एक सजातीय समुदाय को बनाने वाला समझा जाता है।"
4. मार्टिण्डेल एवं मेनेक्सी के अनुसार– ''जाति व्यक्तियों का ऐसा समूह है। जिसके दायित्व और अधिकार जन्म से निश्चित होते हैं तथा धर्म उनका समर्थन करता है।''
5. हॉबेल के अनुसार–''अन्तर्विवाह तथा आनुवांशिकता द्वारा थोपे हुए पदों को जमा देना ही जाति व्यवस्था है।
6. रिजले के अनुसार–''जाति एक ऐसे परिवारों तथा परिवार समूह का संकलन है, जिसका उसके विशिष्ट पेशों के अनुसार एक सामान्य नाम हो, जो एक ही पौराणिक पितामह–मनुष्य या देवता से अपनी उत्पत्ति मानते हों, तथा जो एक ही व्यवसाय करते हों।''

टिप्पणी

7. मैकाइवर एवं पेज के अनुसार–''जब सामाजिक पद पूर्णतः निश्चित हो, जो जन्म से ही मनुष्य के भाग्य को निश्चित कर दे, जीवनपर्यन्त उसके परिवर्तन की कोई आशा न हो, तब वह जन वर्ग, जाति का रूप धारण कर लेता है।''
8. केतकर के अनुसार–''जाति की सदस्यता उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित होती है जो उसी जाति में जन्म लेते हैं तथा एक कठोर सामाजिक नियम, अपनी जाति से बाहर विवाह करने से रोकता है।
9. एन. के. दत्त के अनुसार–''एक जाति के सदस्य एक जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।...अनेक जातियों में कुछ निश्चित व्यवसाय हैं।.. मनुष्य की जाति का निर्णय जन्म से होता है।''
10. जे. एच. हट्टन के अनुसार–''जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत एक समाज अनेक आत्म–केन्द्रित एवं एक–दूसरे से पूर्णतः इकाइयों में विभाजित रहता है। इन इकाइयों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध ऊंच–नीच के आधार पर सांस्कृतिक रूप से निर्धारित होते हैं।''
11. इरावती कर्वे ने जातिगत अन्तर्विवाह (Caste Endogancy) को इतना अधिक महत्व दिया है कि वे जाति को मूलतः एक अन्तर्विवाही समूह मानती हैं। अन्तर्विवाह के कारण जाति की सामाजिक सीमाएं निर्धारित हो जाती हैं। वे कहती हैं, ''जाति वस्तुतः एक विस्तृत नातेदारी समूह (Extended Kin' Group) है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित है। जो अपने सदस्यों पर खान–पान, विवाह, पेशा और सामाजिक सहवास सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध लागू करती है। भारत में जाति का स्वरूप इतनी विभिन्नता लिए हुए है कि इसकी कोई भी सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों जैसे हट्टन, दत्ता, घुरिये आदि ने जाति की परिभाषा देने के बजाय, विशेषताएं देना महत्वपूर्ण माना है।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति

जाति जैसी जटिल एवं विचित्र व्यवस्था की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस बात को लेकर विद्वानों में विवाद पाया जाता है। जाति सदैव परिवर्तनशील संस्था रही है, अतः इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चिततापूर्वक कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। मैकाइवर कहते हैं, ''उत्पत्तियां सदैव अगम्य होती हैं।'' इस अर्थ में किसी भी संस्था की उत्पत्ति ढूंढ़ना एक कठिन कार्य है।

मजूमदार कहते हैं कि ''जाति संरचना के सम्बन्ध में एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्ण किये गये अनुसंधान यह स्पष्ट नहीं कर पाये हैं कि वस्तुतः मूल रूप से किन्होंने इस विशिष्ट व्यवस्था के निर्माण और विकास में योग दिया है। कितने ही भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने जाति–प्रथा के उद्भव के प्रश्न को सुलझाने के लिए अपने–अपने सिद्धांतों को जन्म दिया है। किसी ने जाति को कर्मकाण्डों का प्रतिफल माना तो किसी ने इसे ब्राह्मणों का स्वार्थ जाल, किसी ने आर्यों को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया तो किसी ने आर्यों एवं अनार्यों के सांस्कृतिक संपर्क को। कुछ ने भारत में होने वाले प्रजातीय मिश्रण में जाति का उद्गम पाया तो कुछ ने पेशा एवं जाति की घनिष्ठता में। कुछ विद्वानों ने धार्मिक विश्वासों, भौगोलिक पृथकता एवं सांस्कृतिक भिन्नता को, तो कुछ ने

जनजातीय विश्वासों आदि को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया। वेदों में श्रद्धा रखने वालों ने ब्रह्मा को ही जाति के उद्गम के लिए उत्तरदायी माना। इन विद्वानों ने तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर अपने मत की पुष्टि करने का प्रयास किया है।

टिप्पणी

भारत एक कृषि व ग्रामप्रधान देश है। यहां की 80% जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण अंचल के जन–जीवन से जुड़ी समग्र विशेषताओं एवं समस्याओं को जानना, समझना तथा कुरीतियों व विषमताओं का निराकरण करना अत्यंत आवश्यक है। यह सब तभी संभव हो सकता है जब हम ग्रामीण परिवेश का गहन अध्ययन करें। भारतीय गांवों में प्रचलित जात–पात, ऊंच–नीच, शिक्षा–अशिक्षा, सामाजिक रीति–रिवाज, हिंसा–अहिंसा आदि से भलीभांति परिचित हों। भारत में प्राचीन काल से प्रचलित ग्रामीण सामाजिक संरचना का प्रभाव वर्तमान अति आधुनिक युग में किस प्रकार गतिशील है यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में 'जाति' भारतीय गांवों की एक प्रमुख सामाजिक संस्था है। यह ऐसे लोगों का गठबंधन है, जो रिश्ते–नातेदारी और विवाह जैसी रस्मों से एक–दूसरे से बंध जाते हैं। किसी निश्चित व्यवसाय में भी इनका आधिपत्य होता है। जाति विभिन्न व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति व उनके कार्यों को निर्धारित करती है। जाति–व्यवस्था ही सामाजिक असमानताओं एवं कुप्रथाओं को भी जन्म देती है जिससे वर्ग–संघर्ष होते रहते हैं। जाति का एक संपन्न व शक्तिशाली नेता होता है। उसके नेतृत्व में ही उस जाति के सभी व्यक्ति कार्य करते हैं। समयानुसार जाति नेतृत्व में काफी परिवर्तन आते रहे हैं।

असमानता एवं जाति

भारतीय समाज के पिछले दो हजार वर्षों के इतिहास में जाति–व्यवस्था यहां सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक स्तरीकरण के निर्धारण का सर्वप्रमुख आधार रही है। यह व्यवस्था सामाजिक विभाजन का एक विशेष रूप है, जिसमें सम्पूर्ण समाज को एक–दूसरे से उच्च और निम्न अनेक भागों में विभाजित कर दिया है। एक ओर, हिन्दू स्मृतियों ने जाति–व्यवस्था को इसकी उपयोगिता के आधार पर एक लाभप्रद संस्था के रूप में स्पष्ट किया, वहीं दूसरी ओर आज यह व्यवस्था एक ऐसे अभिशाप के रूप में विकसित हो गयी, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण हिन्दू समाज एक–दूसरे से पृथक बहुत–सी छोटी–छोटी इकाइयों में छिन्न–भिन्न हो गया। विभिन्न विद्वानों ने इस व्यवस्था की प्रकृति, उत्पत्ति तथा भारतीय समाज के लिए इसकी भूमिका के बारे में एक–दूसरे से भिन्न इतने अधिक विचार प्रस्तुत किये हैं कि अक्सर इस संस्था को समझना भी कठिन हो जाता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि जाति–व्यवस्था सामाजिक संरचना का एक विशेष रूप है, जो पवित्रता और अपवित्रता की धारणा के आधार पर विभिन्न जाति समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करता है।

जाति–व्यवस्था का अध्ययन एक संरचनात्मक यथार्थता के रूप में किया जाता है। भारत में सामाजिक स्तरीकरण का आधार मुख्य रूप से जाति ही रहा है तथा जाति घनिष्ठ रूप से वर्ग एवं शक्ति से सम्बन्धित रही है। उच्च जातियां केवल संस्कारात्मक दृष्टि से ही उच्च नहीं नहीं थीं, अपितु आर्थिक दृष्टि से भी ऊंची थीं, तथा शक्ति की

टिप्पणी

दृष्टि से भी इनका सर्वोच्च स्थान था। यद्यपि जाति के इस पहलू में परिवर्तन हो रहा है, तथापि भारत में पायी जाने वाली असमताओं में जाति का प्रमुख स्थान है। जाति–व्यवस्था भारतीय सामाजिक संरचना की एक अनुपम एवं बहुचर्चित विशेषता है जो कि हिन्दू धर्म द्वारा पूर्णतः अनुमोदित है। यह व्यवस्था मेगस्थनीज के समय से लेकर आज तक किसी भी विदेशी का ध्यान आकर्षित करने से नहीं चूकी है। आर्यों के पूर्वकाल में भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण ही आर्यों के आने के पश्चात् अनेक जातियों में परिवर्तित हो गये। आज भारतवर्ष में लगभग तीन हजार जातियां व उपजातियां हैं जाति–व्यवस्था यद्यपि भारतीय समाज की एक अनुपम विशेषता है तथापि यह नेपाल तथा अन्य देशों, जहां पर हिन्दुओं की काफी संख्या है, में भी पायी जाती है। जाति–व्यवस्था एक ओर, हिन्दू सामाजिक संरचना के प्रकार को प्रकट करती है तो दूसरी ओर, हिन्दुओं के आचरण को भी निश्चित करती है।

जाति–व्यवस्था एक ऐसी धुरी है जिसके चारों ओर सदियों से भारतीय समाज गतिमान रहा है। भारतीय सामाजिक संरचना के केन्द्र में भी यही विराजमान है। जाति और धर्म के सन्दर्भ बिना भारतीय समाज को समझा नहीं जा सकता।

इस विषय में रेमण्ड मूरे मानते हैं कि 'जातीय असमता या स्तरीकरण समाज का वह क्रमबद्ध विभाजन है, जिसमें सम्पूर्ण समाज को कुछ उच्च और निम्न सामाजिक इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है'।

जिस्बर्ट के अनुसार 'सामाजिक स्तरीकरण या जातीय असमता का अर्थ समाज को कुछ ऐसे स्थायी समूहों या श्रेणियों में विभाजित करने वाली व्यवस्था से है, जिसके अन्तर्गत सभी समूह और श्रेणियां श्रेष्ठता और अधीनता के सम्बन्धों द्वारा एक–दूसरे से बंधी होती हैं।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि जाति–व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण समाज उच्च और निम्न परिस्थिति वाली अनेक श्रेणियों में विभाजित हो जाता है। इसके बाद भी विभिन्न परिस्थितियों वाली सभी श्रेणियां एक–दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं तथा अपने–अपने कार्यों के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में योगदान देती हैं।

जाति की विशेषताएं

उपरोक्त विवेचन के आधार पर जाति की निम्नलिखित विशेषताएं हो सकती हैं–

1. **समाज का खण्डनात्मक विभाजन**– जाति असमता एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके द्वारा भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय–वैश्य तथा शूद्र खण्डों में विभाजित हो गया है।
2. **संरचना**– एक सामान्य नियम के अनुसार ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊंचा होता है। जाति संरचना में क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातियों का स्थान क्रमशः दूसरा, तीसरा तथा चौथा होता है।
3. **आनुवांशिक सदस्यता**– किसी व्यक्ति को विशेष जाति की सदस्यता जन्म अथवा आनुवांशिक रूप से प्राप्त होती है। व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है, वह आजीवन उसी जाति का सदस्य बना रहता है।

4. **अन्तर्विवाह**– जाति–व्यवस्था का सबसे कठोर नियम यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही जाति के अंदर विवाह करना आवश्यक है।
5. **पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा**– जातीय असमानता का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है कि जिन जातियों को जन्म अथवा व्यवसाय के आधार पर अपवित्र माना गया, उन पर उच्च अथवा पवित्र जातियों द्वारा समाजिक सम्पर्क रखने पर कठोर प्रतिबंध लगाये गये हैं। सम्पर्क के ये प्रतिबन्ध उन जातियों पर अधिक कठोरता से लागू किये गये, जिन्हें अधिक अपवित्र समझकर एक लम्बे समय तक अछूत जातियां माना जाता रहा है।
6. **खान–पान के प्रतिबंध**– इस प्रतिबंध का सम्बन्ध भी पवित्र और पवित्रता की धारणा से है। जाति–व्यवस्था में सामान्य नियम यह रखा गया कि प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी जाति के व्यक्तियों द्वारा बनाया गया भोजन ही ग्रहण करेगा। इसके बाद भी खान–पान के प्रतिबंध को कच्चे और पक्के भोजन के दो रूपों में विभाजित करके स्पष्ट किया गया। विशेष परिस्थिति में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों को एक–दूसरे के द्वारा बनाये गये भोजन को ग्रहण करने की अनुमति दी गई, लेकिन इनमें से किसी भी जाति को अपने से निम्न जाति द्वारा बनाये गये कच्चे भोजन को ग्रहण करने पर प्रतिबंध लगाया गया।
7. **व्यावसायिक विभाजन**– जातीय–व्यवस्था में प्रत्येक जाति के द्वारा किये जाने वाले व्यवसाय का रूप पूर्व–निर्धारित है। साधारणतया, ब्राह्मण–जातियों के लिए धार्मिक क्रियाओं तथा शिक्षा देने का कार्य, क्षत्रिय जातियों के लिए रक्षा और प्रशासन से सम्बन्धित व्यवस्था, वैश्य जातियों के लिए व्यापार और पशुपालन का व्यवसाय निर्धारित किया गया, जबकि शूद्र जातियों के लिये वे सब व्यवसाय निर्धारित किये गये जिन्हें गंदा और अपवित्र समझा जाता था।
8. **धार्मिक स्वीकृति**– जाति–व्यवस्था सामाजिक संरचना के एक विशेष रूप में ही विकसित नहीं हुई, बल्कि धर्म ग्रन्थों के द्वारा व्यवहार के ऐसे नियम भी बनाये गये जिनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने से उच्च जाति के व्यक्ति का आदर करे और मानसिक रूप से स्वयं को उसके अधीन समझे।

उपर्युक्त विशेषताएं जाति–व्यवस्था की संरचना के साथ–साथ जाति–व्यवस्था की असमानताओं को भी उजागर करती हैं, कि किस प्रकार विभिन्न जन–जातियों में उच्च, निम्न एवं पवित्र, अपवित्र का तत्व विद्यमान था।

भारत में धर्म

भारत एक ऐसा देश है जहाँ धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता को कानून तथा समाज, दोनों द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है। भारत के पूर्ण इतिहास के दौरान धर्म का यहाँ की संस्कृति में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत विश्व की चार प्रमुख धार्मिक परम्पराओं का जन्मस्थान है – हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म तथा सिख धर्म। भारतीयों का एक विशाल बहुमत स्वयं को किसी न किसी धर्म से सम्बन्धित अवश्य बताता है।

टिप्पणी

भारत की जनसंख्या के 79.8% लोग हिन्दू धर्म का अनुसरण करते हैं। इस्लाम (15.23%), बौद्ध धर्म (0.70%), ईसाई पन्थ (2.3%) और सिख धर्म (1.72%), भारतीयों द्वारा अनुसरण किये जाने वाले अन्य प्रमुख धर्म हैं। आज भारत में उपस्थित धार्मिक आस्थाओं की विविधता, यहाँ के स्थानीय धर्मों की उपस्थिति तथा उनकी उत्पत्ति के अतिरिक्त, व्यापारियों, यात्रियों, अप्रवासियों, यहाँ तक कि आक्रमणकारियों तथा विजेताओं द्वारा भी यहाँ लाए गए धर्मों को आत्मसात करने एवं उनके सामाजिक एकीकरण का परिणाम है। सभी धर्मों के प्रति हिन्दू धर्म के आतिथ्य भाव के विषय में जॉन हार्डन लिखते हैं, "वर्तमान हिन्दू धर्म की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसके द्वारा एक ऐसे गैर–हिन्दू राज्य की स्थापना करना है जहाँ सभी धर्म समान हैं।"

मौर्य साम्राज्य के समय तक भारत में दो प्रकार के दार्शनिक विचार प्रचलित थे, श्रमण धर्म तथा वैदिक धर्म। इन दोनों परम्पराओं का अस्तित्व हजारों वर्षों से साथ–साथ बना रहा है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म श्रमण परम्पराओं से निकल कर आये हैं, जबकि आधुनिक हिन्दू धर्म वैदिक परम्परा का ही विस्तार है। साथ–साथ मौजूद रहने वाली ये परम्पराएं परस्पर प्रभावशाली रही हैं।

पारसी धर्म और यहूदी धर्म का भी भारत में काफी प्राचीन इतिहास रहा है और हजारों भारतीय इनका अनुसरण करते हैं। पारसी तथा बहाई धर्मों का पालन करने वाले विश्व के सर्वाधिक लोग भारत में ही रहते हैं। भारत की जनसंख्या के 0.2% लोग बहाई धर्म का पालन करते हैं।

भारत के संविधान में राष्ट्र को एक धर्मनिरपेक्ष गणतन्त्र घोषित किया गया है जिसमें प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म या आस्था का स्वतन्त्र रूप से पालन तथा प्रचार करने का अधिकार है (इन गतिविधियों पर नैतिकता, कानून व्यवस्था, आदि के अन्तर्गत उचित प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं).. भारत के संविधान में धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार को एक मौलिक अधिकार की संज्ञा दी गयी है।

भारत के नागरिक आम तौर पर एक–दूसरे के धर्म के प्रति काफी सहिष्णुता दर्शाते हैं और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण बनाए रखते हैं, हालाँकि अन्तर–धार्मिक विवाह व्यापक रूप से प्रचलित नहीं हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायलय के निर्णय के अनुसार मुसलमानों के लिए शरीयत या मुस्लिम कानून को भारतीय नागरिक कानून के ऊपर वरीयता दी जायेगी। विभिन्न समुदायों के बीच दंगों को सामाजिक मुख्यधारा में अधिक समर्थन प्राप्त नहीं होता है और आमतौर पर यह माना जाता है कि इन धार्मिक संघर्षों का कारण विचारों में मतभेद की बजाय राजनीतिक होता है।

भारतीय समाज में परिवर्तन

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में सामाजिक संबंधों की प्रकृति में अनेक प्रभावशाली रूपांतरण हुए, विशेषतः उन क्षेत्रों में जहां हरित क्रांति लागू हुई। ये बदलाव थे – गहन कृषि के कारण कृषि मजदूरों की बढ़ोतरी, भुगतान में अनाज के स्थान पर नकद भुगतान, पारंपरिक बंधनों में शिथिलता, भूस्वामी एवं किसान या कृषि मजदूरों; जिन्हें बंधुआ मजदूर भी कहते हैं, के मध्य पुश्तैनी संबंधों में कमी होना, 'मुक्त' दिहाड़ी मजदूरों के वर्ग का उदय। भूस्वामियों, जो अधिकतर प्रबल जाति के होते थे, तथा कृषि मजदूरों, जो अधिकतर निम्न जातियों के थे, के मध्य संबंधों की प्रकृति में

परिवर्तन का वर्णन समाजशास्त्री जान ब्रेमन ने किया था। ऐसे परिवर्तन उन तमाम क्षेत्रों में हुए, जहां कृषि का व्यापारीकरण अधिक हुआ, अर्थात् जहां फसलों का उत्पादन मूल रूप से बाजार में बिक्री के लिए किया गया। मजदूर संबंधों का यह बदलाव कुछ विद्वानों द्वारा पूंजीवादी कृषि की ओर एक बदलाव के रूप में देखा जाता है, क्योंकि पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था, उत्पादन के साधन इस मामले में भूमि तथा मजदूरों के पृथक्ककरण तथा 'मुक्त' दिहाड़ी मजदूरों के प्रयोग पर आाधारित होता है।

सामान्यतः, यह सच है कि अधिक विकसित क्षेत्रों के लोग अधिक बाजारोन्मुखी हो रहे थे। कृषि के अधिक व्यापारीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्र भी विस्तृत अर्थव्यवस्था से जुड़ते जा रहे थे। इस प्रक्रिया से मुद्रा का गांवों की तरफ बहाव बढ़ा तथा व्यापार के अवसरों व रोजगार में विस्तार हुआ। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बदलाव की यह प्रक्रिया वास्तव में औपनिवेशिक काल में प्रारंभ हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में भूमियों के बड़े टुकड़े कपास की कृषि के लिए दिए गए थे, तथा कपास की खेती करने वाले किसान सीधे विश्व बाजार से जुड़ गए। हालांकि इसकी गति तथा विस्तार में स्वतंत्रता के बाद तेजी से परिवर्तन हुआ, क्योंकि सरकार ने कृषि की आधुनिक पद्धतियों को प्रोत्साहित किया, तथा अन्य रणनीतियों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण का प्रयास किया। राज्य ने ग्रामीण अधिसंरचना जैसे सिंचाई सुविधाएं, सड़कें तथा सरकारी समितियों द्वारा उधार की सुविधा में निवेश किया। ग्रामीण विकास के इन प्रयासों का समग्र परिणाम न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा कृषि में रूपांतरण था, बल्कि कृषि संरचना तथा ग्रामीण समाज में भी रूपांतरण था।

1960 व 1970 के दशक में भारतीय सामाजिक संरचना को बदलने वाला एक तरीका नयी तकनीक अपनाने वाले मध्यम तथा बड़े किसानों की समृद्धि थी। अनेक संपन्न क्षेत्रों जैसे तटीय आंध्र प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा मध्य गुजरात में प्रबल जातियों के संपन्न लोगों ने कृषि से होने वाले लाभ को अन्य प्रकार के व्यापारों में निवेश करना प्रारंभ कर दिया। विविधता की इस प्रक्रिया से नए उद्यमी समूहों का उदय हुआ, जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों से इन विकासशील क्षेत्रों के कस्बों की ओर पलायन किया, जिससे नए क्षेत्रीय अभिजात वर्गों का उदय हुआ, जो आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से प्रबल हो गए।

वर्ग संरचना के इस परिवर्तन के साथ ही ग्रामीण तथा अर्द्ध–नगरीय क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का विस्तार, विशेषतः निजी व्यावसायिक महाविद्यालयों की स्थापना से नव ग्रामीण अभिजात वर्ग द्वारा अपने बच्चों को शिक्षित करना संभव हुआ, जिनमें से बहुतों ने व्यावसायिक अथवा सफेदपोश व्यवसाय अपनाए अथवा व्यापार प्रारंभ कर नगरीय मध्य वर्गों के विस्तार में योगदान दिया। इस प्रकार त्वरित कृषि विकास वाले क्षेत्रों में पुराने भूमि अथवा कृषि समूह का समेकन हुआ, जिन्होंने स्वयं को एक गतिमान उद्यमी, ग्रामीण नगरीय प्रबल वर्ग के रूप में परिवर्तित कर लिया। लेकिन अन्य क्षेत्रों जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में प्रभावशाली भू–सुधारों का अभाव, राजनीतिक गतिशीलता तथा पुनर्वितरण के साधनों के कारण वहां तुलनात्मक रूप से कृषि संरचना तथा अधिकांश लोगों की जीवन दशाओं में थोड़े बदलाव हुए। इसके विपरीत केरल जैसे

टिप्पणी

राज्य विकास की एक भिन्न प्रक्रिया से गुजरे, जिसमें राजनीतिक गतिशीलता, पुनर्वितरण के साधन तथा बाह्य अर्थव्यवस्था, मूल रूप से खाड़ी के देशों से जुड़ाव ने ग्रामीण परिवेश में भरपूर बदलाव किया। केरल में ग्रामीण क्षेत्र मूल रूप से कृषि प्रधान होने के बजाय मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला है, जिनमें कुछ कृषिकार्य खुदरा विक्रय तथा सेवाओं के एक विस्तृत संजाल के साथ जुड़ा हुआ है, और जहां एक बड़ी संख्या में परिवार विदेश से भेजे जाने वाले धन पर निर्भर हैं।

मजदूरों का प्रवर्जन

प्रवासी कृषि मजदूरों की बढ़ोतरी भारतीय समाज का एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन है, जो कृषि के व्यापारीकरण से जुड़ा है। मजदूरों अथवा पहरेदारों तथा भूस्वामियों के बीच संरक्षण का पारंपरिक संबंध टूटने से तथा पंजाब जैसे हरित क्रांति के संपन्न क्षेत्रों में कृषि मजदूरों की मांग बढ़ने से मौसमी पलायन का एक प्रतिमान उभरा, जिसमें हजारों मजदूर अपने गांवों से अधिक संपन्न क्षेत्रों, जहां मजदूरों की अधिक मांग तथा उच्च मजदूरी थी, की तरफ संचार करते हैं। 1990 के दशक के मध्य से ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती असमानताएं, जिन्होंने अनेक गृहस्थियों को स्वयं को बनाए रखने के लिए बहुस्तरीय व्यवसायों को सम्मिलित करने पर बाध्य किया, से भी मजदूर पलायन करते हैं। जीवन व्यापार की रणनीति के तौर पर पुरुष समय–समय पर काम तथा अच्छी मजदूरी की खोज में पलायन कर जाते हैं, जबकि स्त्रियों तथा बच्चों को अक्सर गांव में बुजुर्ग माता–पिता के साथ छोड़ दिया जाता है। प्रवसन करने वाले मजदूर मुख्यतः सूखाग्रस्त तथा कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों से आते हैं तथा वे वर्ष के कुछ हिस्सों के लिए पंजाब तथा हरियाणा के खेतों में, अथवा उत्तर प्रदेश के ईंट के भट्ठों में, अथवा नयी दिल्ली या बैंगलोर जैसे शहरों में, भवन निर्माण कार्य में काम करने के लिए जाते हैं।

1.4.4 भारतीय कला : वास्तुकला, साहित्य, संगीत और सिनेमा

भारतीय कला का स्वरूप एक वृहत्तर और विविध स्वरूप है जिसमें दो दर्जन भाषाओं तथा उनकी एक या अधिक बोलियों वाले क्षेत्र के भीतर मौजूद जनजीवन के अस्तित्व, संघर्ष, राग-विराग, जय-पराजय तथा अन्य अनेक सांस्कृतिक गतिविधियों के संक्षिप्त और विस्तृत ब्योरों का इतना जीवंत वर्णन मिलता है कि हमेशा ही अध्येताओं को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। भारतीय कला का दायरा न केवल पश्चिम से पूर्व तथा दक्षिण से उत्तर के विस्तारों में निहित है बल्कि उसमें वेदों, स्मृतियों, पुराणों, आरण्यकों, महाभारत, रामायण, बौद्ध ग्रंथों के प्राचीन मूल्यों के टकराव का महाकाव्यात्मक और आख्यात्मक स्वरूपों में भी वर्णन है। कहा जा सकता है कि भारतीय कला का ऐतिहासिक स्वरूप जनाकांक्षाओं और संघर्षों का एक आईना है।

भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य की समग्रता पर आज भी विभिन्न दृष्टियों से विचार करने की संभावना बनी हुई है। उसके सौंदर्यशास्त्र और शिल्प को लेकर विद्वानों ने बहुत कुछ कहा है लेकिन इस बात को अभी भी अधिक विस्तार की जरूरत है। अभी भारतीय साहित्य में अंतर्भाषाई तुलनात्मक अध्ययन की सर्वाधिक जरूरत है क्योंकि एक विशाल देश और भाषिक विविधता के कारण यह बहुत सुचारु रूप से नहीं हो पाया है। भाषाओं के विकास और

उनकी अन्योन्याश्रयिता का संक्षिप्त पाठ तो प्राय: मिल जाता है लेकिन विवाद और तार्किक विवेचन का सर्वथा अभाव है। आज जब हम इस पहलू पर विचार करते हैं तो लगता है कि रचना और अभिव्यक्ति के कई सोपानों को क्रमिक रूप से समझने की गंभीर जरूरत है।

टिप्पणी

इसके साथ ही यहां यह जानना भी एक बुनियादी आवश्यकता है कि भारतीय साहित्य, सिद्ध और अन्य साहित्य का अंतर्सबंध बहुत महान है। संत काव्य का प्रवाह हिंदी, पंजाबी, सिंधी, काश्मीरी आदि में व्यापक रूप से है तो गुजराती, तेलुगु और मराठी में भी यह सहज ही पाया जाता है। कहा जा सकता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में जो आंदोलन हुए उनके प्रभाव से भारतीय भाषाओं का साहित्य अछूता नहीं रहा। एक प्रकार से यह दर्शाता है कि भारतीय जन मानस की सही तस्वीर यहां के साहित्य में अंकित है।

दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति की जो परंपरा शुरू हुई वह आगे बढ़ती हुई उत्तर की ओर गई और स्थानीय सामाजिक संरचनाओं पर उसने गहरा असर डाला। इसी तरह उत्तर भारत में नानक, कबीर, रैदास और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु की रचनाशीलता से दक्षिण का मध्यकालीन साहित्य भी काफी हद तक जीवनी शक्ति ग्रहण करता रहा है। प्रेम और भक्ति तथा सगुण और निर्गुण स्वरूप की व्यापकता संपूर्ण भारतीय साहित्य में दिखाई पड़ती है।

आधुनिक भारतीय साहित्य पर रूढ़ियों से मुक्त होने, अपने मौलिक सौंदर्यबोध का विकास करने और शिल्प तथा प्रविधि के स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाने का गुरुत्तर दबाव रहा है। कहना न होगा कि इस मोर्चे पर भी आधुनिक भारतीय साहित्य ने बहुत बड़ी सफलता पाई है।

वास्तुकला

भारतीय वास्तु की विशेषता यहां की दीवारों के उत्कृष्ट और प्रचुर अलंकरणों में है। भित्तिचित्रों और मूर्तियों की योजनाएं जिनमें अलंकरण के अतिरिक्त अपने विषय के गंभीर भाव भी व्यक्त होते हैं, भवन को बाहर से कभी–कभी पूर्णतया लपेट लेती हैं। इनमें वास्तु के जीवन से संबंध के अलावा आध्यात्मिक जीवन अंकित है, जो न्यूनाधिक उभार में उत्कीर्ण अपने अलौकिक कृत्यों में रत सम्पूर्ण भारत के देवी देवता, तथा युगों पुरानी पौराणिक गाथाओं एवं मूर्तिकला को प्रतीक बनाकर दर्शकों के सम्मुख अत्यंत रोचक कथाओं और मनोहर चित्रों की एक पुस्तक सी खोल देता है।

भारत में वास्तुकला और स्थापत्य की जड़ें यहां के इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति में निहित हैं। भारत की वास्तुकला यहां की परम्परागत एवं बाहरी प्रभावों का मिश्रण है। प्राचीन भारतीय वास्तुकला ने समय के साथ प्रगति की और कालांतर में दुनिया के अन्य क्षेत्रों के कई प्रभावों को आत्मसात कर लिया। भारत में प्रचलित वास्तुशिल्प विधियां इसकी स्थापित वास्तु परंपराओं और बाहर के प्रभावों के कार्यान्वयन का परिणाम हैं।

सिन्धुघाटी का स्थापत्य

दो–तीन हजार ई.पू. विकसित सिंधु घाटी सभ्यता की प्राचीनतम वास्तुकला सौंदर्य की दृष्टि से बहुत विकसित थी। इन बस्तियों का नगर नियोजन बहुत परिपक्व था जिसका

लोहा सभी मानते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त सामग्री उत्कृष्ट कोटि की थी और रचना सुदृढ़ थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से मंदिर, देवालय तो नहीं किन्तु विशाल सामुदायिक भवन अवश्य मिले हैं। विश्व में इतने प्राचीन स्थापत्य अवशेष कम ही देखने को मिलते हैं।

टिप्पणी

प्राचीन भारतीय स्थापत्य

सीमित आवश्यकताओं में विश्वास रखनेवाले, अपने कृषिकर्म और आश्रमजीवन से संतुष्ट आर्य प्रायः ग्रामवासी थे और शायद इसीलिए अपने परिपक्व विचारों के अनुरूप ही समसामयिक सिंधु घाटी सभ्यता के विलासी भौतिक जीवन की चकाचौंध से अप्रभावित रहे। कुछ भी हो उनके अस्थायी निवासों से ही बाद के भारतीय वास्तु का जन्म हुआ प्रतीत होता है। इसका आधार धरती में और विकास वृक्षों में हुआ। जैसा वैदिक वाङ्मय में महावन, तोरण, गोपुर आदि के उल्लेखों से विदित होता है। अतः यदि उस अस्थायी रचनाकाल की कोई स्मारक कृति आज देखने को नहीं मिलती, तो कोई आश्चर्य नहीं।

धीरे–धीरे नगरों की भी रचना हुई और स्थायी निवास भी बने। बिहार में मगध की राजधानी राजगृह शायद 8वीं शती ईसा पूर्व में उन्नति के शिखर पर थी। यह भी पता लगता है कि भवन आदिकालीन झोंपड़ियों के नमूने पर प्रायः गोल ही बना करते थे। दीवारों में कच्ची ईंटें भी लगने लगी थीं और चौकोर दरवाजे–खिड़कियां बनने लगी थीं। पांचवीं शती ईसा पूर्व में चौकोर नगरियां बीचोबीच दो मुख्य सड़कें बनाकर चार–चार भागों में बाँटी गई थीं। एक भाग में राजमहल होते थे। सड़कों के चारों सिरों पर नगरद्वार थे। मौर्यकाल (चौथी शती ई. पू.) के अनेक नगर कपिलवस्तु, कुशीनगर, उरुबिल्व आदि एक ही नमूने के थे, यह इनके नगरद्वारों से प्रकट होता है। जगह–जगह पर बाहर निकले हुए छज्जों, स्तंभों से अलंकृत गवाक्षों, जँगलों और कटहरों से बौद्धकालीन पवित्र नगरियों की भावुकता का आभास मिलता है।

राज्य का आश्रय पाकर अनेक स्तूपों, चैत्यों, बिहारों, स्तम्भों, तोरणों और गुफामंदिरों में वास्तुकला का चरम विकास हुआ। पत्थर और ईंट के साथ–साथ लकड़ी का उपयोग होता था, जिनके विषय में सर जॉन मार्शल ने 'भारत का पुरातात्विक सर्वेक्षण', में लिखा है कि "वे तत्कालीन कृतियों की अद्वितीय सूक्ष्मता और पूर्णता का दिग्दर्शन कराते हैं। उनके कारीगर आज भी यदि संसार में आ सकते, तो अपनी कला के क्षेत्र में कुछ विशेष सीखने योग्य शायद न पाते। सांची, भरहुत, कुशीनगर, बेसनगर (विदिशा), तिगावां (जबलपुर), उदयगिरि, प्रयाग, कार्ली (मुम्बई), अजन्ता, एलोरा, विदिशा, अमरावती, नासिक, जुनार (पूना), कन्हेरी, भुज, कोंडेन, गांधार (वर्तमान कंधार–अफगानिस्तान), तक्षशिला पश्चिमोत्तर सीमान्त में चौथी शती ई. पू. से चौथी शती ई. तक की वास्तुकृतियां कला की दृष्टि से अनूठी हैं। दक्षिण भारत में गुंतूपल्ले (कृष्ण जिला) और शंकरन् पहाड़ी (विजगापट्टम् जिला) में शैलकृत्त वास्तु के दर्शन होते हैं। सांची, नालन्दा और सारनाथ में अपेक्षाकृत बाद की वास्तुकृतियां हैं। पांचवीं शती से ईंट का प्रयोग होने लगा।

हिंदू वास्तुकौशल का विस्तार महलों, समाधियों, दुर्गों, बावड़ियों और घाटों में भी हुआ, किन्तु देश भर में बिखरे मंदिरों में यह विशेष मुखर हुआ है। मंदिरवास्तु में उत्तर की ओर आर्य शैली और दक्षिण की ओर द्रविड़ शैली स्पष्ट दीखती है। ग्वालियर के

'तेली का मंदिर' (11वीं शती) और भुवनेश्वर के 'बैताल देवल मंदिर' (9वीं शती) उत्तरी शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं और सोमंगलम्, मणिमंगलम् आदि के चोल मंदिर (11वीं शती) दक्षिणी शैली का। 10 वीं – 11 वीं शती में पल्लव, चोल, पांड्य, चालुक्य और राष्ट्रकूट सभी राजवंशों ने दक्षिणी शैली का पोषण किया। दोनों ही शैलियों पर बौद्ध वास्तु का प्रभाव है, विशेषकर शिखरों में।

1000 ई. से 1500 ई. के बीच बने भारत के असंख्य मंदिर देश भर में बिखरे पड़े हैं, जो भव्यता, विशालता, उत्कृष्टता और सर्थकता सभी दृष्टियों से अनुपम हैं। देश में साथ–साथ विकसित होते हुए बौद्धवास्तु, जैन वास्तु, हिंदू वास्तु, तथा द्रविड़ वास्तु की ये झांकियां विशाल भारत की परंपरागत धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण हैं।

मध्यकालीन मुस्लिम वास्तु

वास्तुकला पर मुसलमानों के आक्रमण का बहुत प्रभाव पड़ा, जिसका प्रमाण मस्जिद और मंदिर के भेद में स्पष्ट है। मस्जिदें खुली हुई होती हैं, उनका केंद्र सुदूर मक्का की दिशा में होता है; जबकि मंदिर रहस्य का घर होता है, जिसका केंद्र अनेक दीवारों एवं गलियारों से घिरा हुआ बीच का देवस्थान या गर्भगृह होता है। मजिस्द की दीवारें प्रायः सादी या आयतों से उत्कीर्ण होती हैं, उनमें मानव आकृतियों का चित्रण निषिद्ध होता है, जबकि मंदिरों की दीवारों में मूर्तिकला और मानवकृति चित्रण उच्चतम शिखर पर पहुंचा, पर लिखाई का नाम न था। पत्थरों के सहज रंगों से ही इस चित्रण द्वारा मंदिरों में सजीवता आ गई, जबकि मस्जिदों में रंगबिरंगे पत्थरों, संगमरमर और चित्र–विचित्र पलस्तर के द्वारा दीवारें मुखर की गईं।

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर एक ही प्रकार की भारी भरकम संरचनाएं खड़ी करने में सिद्धहस्त, भारतीय कारीगरों की युगों–युगों से एक ही लीक पर पड़ी निष्प्रवाह प्रतिभा विजेताओं द्वारा अन्य देशों से लाए हुए नए सिद्धांत, नई पद्धतियां और नई दिशा पाकर स्फूर्त हो उठी। फलस्वरूप धार्मिक इमारतों जैसे मस्जिदों, मकबरों, रौजों और दरगाहों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार की धर्मनिरपेक्ष इमारतें भी जैसे महल, मंडप, नगरद्वार, कूप, उद्यान और बड़े–बड़े किले, यहां तक कि सारा शहर घेरनेवाले परकोटे तक तैयार हुए। देश में उत्तर से दक्षिण तक जैसे जैसे मुस्लिम प्रभुत्व बढ़ता गया, वास्तुकला का युग भी बदलता गया।

मुस्लिम वास्तु के तीन चरण

मुस्लिम वास्तु के तीन क्रमिक चरण स्पष्ट हैं। पहला चरण जो बहुत थोड़े समय रहा विजयदर्प और धर्मांधता से प्रेरित 'निर्मूलन' का था, जिसके बारे में हसन निज़ामी लिखता है कि प्रत्येक किला जीतने के बाद उसके स्तंभ और नींव तक महाकाय हाथियों के पैरों तले रौंदवाकर धूल में मिला देने का रिवाज था। अनेक दुर्ग, नगर और मंदिर इसी प्रकार अस्तित्वहीन किए गए। तदनंतर दूसरा चरण सोद्देश्य और आंशिक विध्वंस का आया, जिसमें इमारतें इसलिए तोड़ी गईं कि विजेताओं की मस्जिदों और मकबरों के लिए तैयार माल उपलब्ध हो सके। बड़ी–बड़ी धरनें और स्तम्भ अपने स्थान से हटाकर नई जगह ले जाने के लिए भी हाथियों का ही प्रयोग हुआ। प्रायः इसी काल में मंदिरों को विशेष क्षति पहुंची, जो विजित प्रांतों की नई–नई राजधानियों के निर्माण

के लिए तैयार माल की खान बन गए और उत्तर भारत से हिंदू वास्तु की प्रायः सफाई ही हो गई। अंतिम चरण तब आरंभ हुआ, जब आक्रांता अनेक भागों में भली– भांति जम गए थे और उन्होंने प्रत्यास्थापन के बजाय योजनाबद्ध निर्माण द्वारा सुविन्यस्त और उत्कृष्ट वास्तुकृतियां बनाईं।

टिप्पणी

बृहत्तर भारत का वास्तु

भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने भारत के बाहर श्रीलंका, नेपाल, बरमा, स्याम, जावा, बाली, हिंदचीन और कंबोडिया में भी मिलते हैं। नेपाल के शंभुनाथ, बोधनाथ, मामनाथ मंदिर, लंका में अनुराधापुर का स्तूप और लंकातिलक मंदिर, बरमा के बौद्ध मठ और पगोडा, कंबोडिया में अंकोर के मंदिर, स्याम में बैंकाक के मंदिर, जावा में प्रांबनाम का बिहार, कलासन मंदिर और बोरोबंदर स्तूप आदि हिंदू और बौद्ध वास्तु के व्यापक प्रसार के प्रमाण हैं। जावा में भारतीय संस्कृति के प्रवेश के कुछ प्रमाण चौथी शती ईसवी के मिलते हैं। वहां के अनेक स्मारकों से पता लगता है कि मध्य जावा में 625 से 928 ई. तक वास्तुकला का स्वर्णकाल और पूर्वी जावा में 928 से 1478 ई. तक रजतकाल था।

बीसवीं शती का वास्तु

सन् 1911 ई. में ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी के अनुरूप एक नई दिल्ली में और सारे भारत के जिला सदर स्थानों तक में, सुंदर इमारतें बनवाई गईं, जिनमें अनेक कार्यालय भवन, गिरजे और ईसाई कब्रिस्तान कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सरकारी प्रयास से नई दिल्ली में राजभवन (अब राष्ट्रपति भवन), सचिवालय भवन, संसद् भवन जैसी भव्य इमारतें बनीं, जिनमें पाश्चात्य कला के साथ हिंदू, बौद्ध और मुस्लिम कला का सुखद सम्मिश्रण दिखाई देता है।

मंदिर वास्तु भी, जो केवल व्यक्तिगत प्रयास से अपना अस्तित्व बनाए रहा, कुछ–कुछ इसी दिशा में झुका। मुस्लिम वास्तु के अनुकरण पर अशोककालीन शिलालेखों की प्रथा पुनः प्रतिष्ठित हुई और मंदिरों में भीतर बाहर, मूर्तियों और चित्रों के साथ लेखों को भी स्थान मिलने लगा। दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मंदिर और हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, का शिवमंदिर बीसवीं शती के मंदिरवास्तु की उत्कृष्ट कृतियां हैं। मंदिरों के अतिरिक्त राजाओं के महल और विद्यालय आदि भी कला को प्रश्रय देते रहे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय की सभी इमारतें और वाराणसी का भारतमाता मंदिर, काशी विश्वनाथ की मंदिरोंवाली नगरी में दर्शकों के लिए विशेष आकर्षण के केंद्र हैं। कुशीनगर में बने निर्वाण बिहार, बुद्ध मंदिर और सरकारी विश्रामगृह में बौद्ध कला को पुनर्जीवन मिला है। दिल्ली में लक्ष्मीनारायण मंदिर के साथ भी एक बुद्ध मंदिर है। इस प्रकार किसी शैली विशेष के प्रति अनाग्रह और उत्कृष्टता के लिए समन्वय 20 वीं शती की विशेषता समझी जा सकती है।

भारतीय संगीत

भारतीय संगीत प्राचीन काल से भारत में सुना और विकसित हुआ संगीत है। इस संगीत का प्रारंभ वैदिक काल से भी पूर्व का है। इस संगीत का मूल स्रोत वेदों को माना जाता है। हिंदु परंपरा में ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मा ने नारद मुनि को संगीत वरदान में दिया था।

पंडित शारंगदेव कृत "संगीत रत्नाकर" ग्रंथ में भारतीय संगीत की परिभाषा को "गीतम, वादयम् तथा नृत्यं त्रयम संगीतमुच्यते" के रूप में कहा गया है। गायन, वाद्य वादन एवम् नृत्य; तीनों कलाओं का समावेश संगीत शब्द में माना गया है। तीनों स्वतंत्र कला होते हुए भी एक–दूसरे की पूरक हैं। भारतीय संगीत के दो प्रकार प्रचलित हैं; प्रथम कर्नाटक संगीत, जो दक्षिण भारतीय राज्यों में प्रचलित है और हिन्दुस्तानी संगीत शेष भारत में लोकप्रिय है। भारतवर्ष की सभी सभ्यताओं में संगीत का बड़ा महत्व रहा है। धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं में संगीत का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। इस रूप में, संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है। वैदिक काल में अध्यात्मिक संगीत को मार्गी तथा लोक संगीत को 'देशी' कहा जाता था। कालांतर में यही शास्त्रीय और लोक संगीत के रूप में दिखता है।

वैदिक काल में सामवेद के मंत्रों का उच्चारण उस समय के वैदिक सप्तक या सामगान के अनुसार सातों स्वरों के प्रयोग के साथ किया जाता था। गुरु–शिष्य परंपरा के अनुसार, शिष्य को गुरु से वेदों का ज्ञान मौखिक ही प्राप्त होता था व उन में किसी प्रकार के परिवर्तन की संभावना की मनाही थी। इस तरह प्राचीन समय में वेदों व संगीत का कोई लिखित रूप न होने के कारण उनका मूल स्वरूप लुप्त होता गया।

भारतीय संगीत के सात स्वर

भारतीय संगीत में सात शुद्ध स्वर हैं–

षड्ज (सा)

ऋषभ (रे)

गंधार (ग)

मध्यम (म)

पंचम (प)

धैवत (ध)

निषाद (नी)

शुद्ध स्वर से ऊपर या नीचे विकृत स्वर आते हैं। सा और प के कोई विकृत स्वर नहीं होते। रे, ग, ध और नी के विकृत स्वर नीचे होते हैं और उन्हें कोमल' कहा जाता है। म का विकृत स्वर ऊपर होता है और उसे तीव्र कहा जाता है। समकालीन भारतीय शास्त्रीय संगीत में ज्यादातर यही बारह स्वर प्रयोग किये जाते हैं। पुरातन काल से ही भारतीय स्वर सप्तक संवाद–सिद्ध हैं। महर्षि भरत ने इसी के आधार पर 22 श्रुतियों का प्रतिपादन किया था जो केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत की ही विशेषता है।

भारतीय संगीत के प्रकार

भारतीय संगीत को सामान्यतः 3 भागों में बाँटा जा सकता है–

- शास्त्रीय संगीत – इसको 'मार्गी' भी कहते हैं।
- उपशास्त्रीय संगीत
- सुगम संगीत

भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख पद्धतियां हैं –

हिन्दुस्तानी संगीत – जो उत्तर भारत में प्रचलित हुआ।

कर्नाटक संगीत – जो दक्षिण भारत में प्रचलित हुआ।

हिन्दुस्तानी संगीत मुगल बादशाहों की छत्रछाया में विकसित हुआ और कर्नाटक संगीत दक्षिण के मन्दिरों में। इसी कारण दक्षिण भारतीय कृतियों में भक्ति रस अधिक मिलता है और हिन्दुस्तानी संगीत में श्रृंगार रस।

उपशास्त्रीय संगीत में ठुमरी, टप्पा, होरी,दादरा, कजरी, चैती आदि आते हैं।

सुगम संगीत जनसाधारण में प्रचलित है जैसे –

भजन

भारतीय फिल्म संगीत

गजल

भारतीय पॉप (Pop) संगीत

लोक संगीत

चित्रपट–संगीत

भारतीय लोगों की संगीत के लिए दीवानगी विश्व भर में प्रसिद्ध हैद्य आज भारतीय संगीत अनेक प्रकार से विश्व की पसंद बनता जा रहा है और इसमें फिल्मी संगीत के आलावा पंजाबी और अन्य भाषाओं के संगीत का बहुत योगदान हैद्य

भारतीय सिनेमा

भारतीय सिनेमा के अन्तर्गत भारत के विभिन्न भागों और भाषाओं में बनने वाली फिल्में आती हैं जिनमें हिन्दी सिनेमा (बॉलीवुड), तेलुगू सिनेमा (टॉलीवुड), असमिया सिनेमा (असम), मैथिली सिनेमा (बिहार), ब्रजभाषा चलचित्रपट (उत्तर प्रदेश), गुजराती सिनेमा (गुजरात), हरियाणवी सिनेमा (हरियाणा), कश्मीरी (जम्मू एवं कश्मीर), झॉलीवुड (झारखंड), कन्नड सिनेमा (कर्नाटक), मलयालम सिनेमा (केरल), मराठी सिनेमा (महाराष्ट्र), उड़िया सिनेमा (ओडिशा), पंजाबी सिनेमा (पंजाब), राजस्थान का सिनेमा (राजस्थान), कॉलीवुड (तमिलनाडु) और बांग्ला सिनेमा (पश्चिम बंगाल) शामिल हैं। भारतीय सिनेमा ने 20वीं सदी की शुरुआत से ही विश्व के चलचित्र जगत पर गहरा प्रभाव छोड़ा है।। भारतीय फिल्मों का अनुकरण पूरे दक्षिणी एशिया, ग्रेटर मध्य पूर्व, दक्षिण पूर्व एशिया और पूर्व सोवियत संघ में भी होता है। भारतीय प्रवासियों की बढ़ती संख्या की वजह से अब संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम भी भारतीय फिल्मों के लिए एक महत्वपूर्ण बाजार बन गए हैं। एक माध्यम (परिवर्तन) के रूप में सिनेमा ने देश में अभूतपूर्व लोकप्रियता हासिल की। भारतीय सिनेमा किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक लोगों द्वारा देखी जाने वाली फिल्मों का उत्पादन करता है।

दादा साहेब फाल्के भारतीय सिनेमा के जनक के रूप में जाने जाते हैं। दादा साहब फाल्के के भारतीय सिनेमा में आजीवन योगदान के प्रतीक स्वरुप और 1969 में दादा साहब के जन्म शताब्दी वर्ष में भारत सरकार द्वारा दादा साहेब फाल्के पुरस्कार

की स्थापना उनके सम्मान में की गयी। आज यह भारतीय सिनेमा का सबसे प्रतिष्ठित और वांछित पुरस्कार हो गया है।

टिप्पणी

20वीं सदी में भारतीय सिनेमा, संयुक्त राज्य अमेरिका के सिनेमा हॉलीवुड तथा चीनी फिल्म उद्योग के साथ एक वैश्विक उद्योग बन गया। भारत वार्षिक फिल्म निर्माण में पहले स्थान पर था। भारतीय सिनेमा ने 90 से ज़्यादा देशों में बाजार पाया है जहाँ भारतीय फिल्में प्रदर्शित होती हैं।

सत्यजीत रे, ऋत्विक घटक, मृणाल सेन, अडूर गोपालकृष्णन, बुद्धदेव दासगुप्ता, जी अरविंदन, अपर्णा सेन, शाजी एन करुण, और गिरीश कासरावल्ली जैसे निर्देशकों ने समानांतर सिनेमा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और वैश्विक प्रशंसा प्राप्त की है। शेखर कपूर, मीरा नायर और दीपा मेहता सरीखे फिल्म निर्माताओं ने विदेशों में भी सफलता पाई है। 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रावधान से 20वीं सेंचुरी फॉक्स, सोनी पिक्चर्स, वॉल्ट डिज्नी पिक्चर्स और वार्नर ब्रदर्स आदि विदेशी उद्यमों के लिए भारतीय फिल्म बाजार को आकर्षक बना दिया गया है। एवीएम प्रोडक्शंस, प्रसाद समूह, सन पिक्चर्स, पीवीपी सिनेमा,जी, यूटीवी, सुरेश प्रोडक्शंस, इरोज फिल्म्स, अयनगर्न इंटरनेशनल, पिरामिड साइमिरा, आस्कार फिल्म्स, पीवीआर सिनेमा, यशराज फिल्म्स, धर्मा प्रोडक्शन्स और एडलैब्स आदि भारतीय उद्यमों ने भी फिल्म उत्पादन और वितरण में सफलता पाई। मल्टीप्लेक्स के लिए कर में छूट से भारत में मल्टीप्लेक्सों की संख्या बढ़ी है और फिल्म दर्शकों के लिए सुविधा भी। फिल्म निर्माण / वितरण / प्रदर्शन से सम्बंधित 30 से ज़्यादा कम्पनियां भारत के नेशनल स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध हैं जो फिल्म माध्यम के बढ़ते वाणिज्यिक प्रभाव और व्यावसायीकरण का सबूत हैं।

भारतीय सिनेमा उद्योग भाषा द्वारा खंडित है। बॉलीवुड या हिंदी भाषा फिल्में सबसे बड़ा 43 प्रतिशत बॉक्स ऑफिस राजस्व का योगदान करता है। तमिल सिनेमा और तेलुगू सिनेमा फिल्में 36 प्रतिशत राजस्व प्रदान करते हैं। दक्षिण भारतीय फिल्म उद्योग दक्षिण भारत की चार फिल्म संस्कृतियों को एक इकाई के रूप में परिभाषित करता है। ये कन्नड़ सिनेमा, मलयालम सिनेमा, तेलुगू सिनेमा और तमिल सिनेमा हैं। हालाँकि ये स्वतंत्र रूप से विकसित हुए हैं लेकिन इनमें फिल्म कलाकारों और तकनीशियनों के आदान–प्रदान और वैश्वीकरण ने इसे एक नई पहचान दी है।

भारत से बाहर निवास कर रहे प्रवासी भारतीय जिनकी संख्या आज लाखों में हैं, उनके लिए भारतीय फिल्में डीवीडी या व्यावसायिक रूप से संभव जगहों में स्क्रीनिंग के माध्यम से प्रदर्शित होती हैं। इस विदेशी बाजार का भारतीय फिल्मों की आय में 12 प्रतिशत तक का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इसके अलावा भारतीय सिनेमा में संगीत भी राजस्व का एक साधन है। फिल्मों के संगीत अधिकार एक फिल्म की 4 –5 प्रतिशत शुद्ध आय का साधन हो सकते हैं।

भारत में सिनेमा का इतिहास विश्व पटल पर फिल्म युग के आरम्भ से ही माना जा सकता है। ल्यूमियर और रॉबर्ट पॉल की लंदन (1896) में चलती हुई तस्वीरों की स्क्रीनिंग के बाद, व्यावसायिक छायांकन दुनिया भर में सनसनी बन गया और 1896 के मध्य तक बंबई (अब मुंबई) में ल्यूमियर और रॉबर्ट पॉल की दोनों फिल्मों को दिखाया गया था। यह सफर मूक फिल्मों (1890 – 1920) से आरम्भ हुआ जब दादा साहब फाल्के ने राजा हरिश्चन्द्र (1913), मराठी भाषा की मूक फिल्म का निर्माण किया। फिर

ध्वनि युक्त टाकीज (1930 – 1940) फिल्मों का युग आया और पहली बोलती फिल्म आलमआरा बनी।

टिप्पणी

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के बाद, 1944 से 1960 की काल अवधि फिल्म इतिहासकारों द्वारा भारतीय सिनेमा का स्वर्ण युग माना जाता है। सम्पूर्ण भारतीय सिनेमा इतिहास में समीक्षकों द्वारा सर्वाधिक प्रशंसित फिल्में इस काल में निर्मित हुई थीं। 'चेतन आनंद' की नीचा नगर (1946), 'ऋत्विक घटक' की नागरिक (1952), और 'बिमल रॉय' की दो बीघा ज़मीन (1953) और 'सत्यजित राय' की पथेर पांचाली (1955) कुछ चमकते नगीने हैं।

आधुनिक भारतीय सिनेमा

1970 के दशक में व्यावसायिक सिनेमा ने भी कुछ चिरस्थायी फिल्में दी जैसे आनंद (1971), अमर प्रेम (1971) तथा कटी पतंग (1972), जिन्होंने राजेश खन्ना को भारतीय सिनेमा का पहला सुपरस्टार (महानायक) बनाया। 1970 दशक के आखिरी सालों में अमिताभ बच्चन ने जंजीर (1974), दीवार (1975) और भारतीय सिनेमा की सफलतम फिल्मो में से एक शोले (1975) जैसी एक्शन फिल्मों के साथ अपनी एंग्री यंग मैन की छवि बनायी और भारत के दूसरे महानायक का दर्ज़ा प्राप्त किया। धार्मिक फिल्म जय संतोषी माँ जिसने सफलता के कई रिकॉर्ड तोड़े 1975 में रिलीज़ हुई। यश चोपड़ा द्वारा निर्देशित और सलीम–जावेद की लिखी हुई दीवार, एक आपराधिक ड्रामा फिल्म थी जिसमें एक पुलिस अफसर शशि कपूर अपने गैंगस्टर भाई (अमिताभ बच्चन) से लड़ता है जिसका चरित्र असली स्मगलर हाजी मस्तान पर आधारित था। इस फिल्म को डैनी बॉयल ने भारतीय सिनेमा की असली पहचान बताया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत के पुनरुद्धार की कहानी बताती 1979 की तेलुगु फिल्म संकरभरणम् को 1981 के बेसांको फ्रेंच फिल्म समारोह का जनता का पुरुस्कार मिला।

व्यवासयिक हिंदी सिनेमा 1980 और 1990 के दशक में एक दूजे के लिए (1981), मिस्टर इंडिया (1987), क़यामत से क़यामत तक (1988), तेज़ाब (1988), चांदनी (1989), मैंने प्यार किया (1989), बाज़ीगर (1993), डर (1993), हम आपके हैं कौन..! (1994), दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे (1995) और कुछ कुछ होता है (1998) जैसी फिल्मों की रिलीज़ के साथ और बढ़ता रहा। इनमें कई नए कलाकार जैसे शाहरुख खान, माधुरी दीक्षित, श्रीदेवी, अक्षय कुमार, आमिर खान और सलमान खान ने अभिनय किया था। इस बीच में शेखर कपूर' की कल्ट श्रेष्ट फिल्म बैंडिट क्वीन (1994) भी बनी जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली।

1990 के दशक के अंत में 'समानांतर सिनेमा' का व्यावसायिक और समीक्षक रूप से सफल फिल्म सत्या (1998) के कारण पुनर्जन्म हुआ। भारतीय माफिया, मुंबई अंडरवर्ल्ड से प्रेरित यह एक अपराधिक ड्रामा था जिसका निर्देशन राम गोपाल वर्मा ने किया था और इसके लेखक थे अनुराग कश्यप। इस फिल्म की सफलता से एक नयी भिन्न शैली मुंबई नोयर का उदय हुआ। ये शहरी फिल्में मुंबई की सामाजिक समस्याओं का चित्रण करती हैं। कुछ और मुंबई नोयर फ़िल्में है मधुर भंडारकर' की चांदनी बार (2001) और ट्रैफिक सिग्नल (2007), राम गोपाल वर्मा की कंपनी (2002) और इसकी पिछली कड़ी डी (2005), अनुराग कश्यप की ब्लैक फ्राइडे (2004) आदि।

विशाल भारद्वाज की 2014 में आई फिल्म हैदर, उनकी विलियम शेक्सपियर के भारतीय रूपांतरण त्रयी की मक़बूल (2003) तथा ओमकारा (2006) के बाद तीसरी फिल्म थी। यह फिल्म 9वें रोम फिल्म समारोह में मोंडो श्रेणी में पीपल्स चॉइस अवार्ड जीतकर ऐसा करने वाली पहली भारतीय फिल्म बन गयी। आज के युग में अन्य सक्रिय कला फिल्म निर्देशक हैं मृणाल सेन, मीर शानी, बुद्धदेव दासगुप्ता, गौतम घोष, संदीप रे और अपर्णा सेन आदि।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को किस आधार पर समझा जा सकता है?

   (क) गुणात्मक　　(ख) गणनात्मक

   (ग) तुलनात्मक　　(घ) प्रयोगात्मक

6. सूचना के संकलन के कितने प्रमुख स्रोत हैं?

   (क) सात　　(ख) दो

   (ग) छह　　(घ) तीन

1.5 छात्र सामाजिक अध्ययन कैसे सीखते हैं?

सामाजिक अध्ययन सीखने की विधियां वे तरीके हैं, जो किसी व्यक्ति को स्वयं चीजों का पता लगाने या खोजने के तरीके के बारे में मार्गदर्शन देते हैं। इसे ऐसे तरीकों के रूप में भी देखा जा सकता है, जो छात्रों को सीखने की प्रक्रिया के दौरान सक्रिय होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यहां सामाजिक अध्ययन सीखने की विभिन्न विधियों के बारे में जानकारी दी गयी है :

1. **चर्चा विधि** (Discussion Method) : यह एक ऐसी विधि है, जो छात्रों को शिक्षक और अन्य लोगों के साथ बातचीत करने का अवसर देती है। उदाहरण के लिए, एक शिक्षक एक विषय दे सकता है और छात्रों को कक्षा में इस पर चर्चा करने की अनुमति दे सकता है। यह तरीका एक-दूसरे से सीखने का मौका देता है।
2. **पूछताछ विधि** (Inquiry Method) : यह एक ऐसी विधि है, जो छात्रों या शिक्षार्थियों को पहले से ज्ञात तथ्यों को समझने में सहायता करती है। यह लोगों, पुस्तकों, इंटरनेट आदि से सीखने के कौशल को विकसित करने में सहायता करती है।
3. **निरीक्षण के तरीके** (Observation Method) : यह विधि शिक्षार्थियों को विवाह समारोहों, त्योहारों आदि जैसी घटनाओं का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है।
4. **साक्षात्कार विधि** (Interview Method) : यह विधि शिक्षार्थियों को प्रश्न पूछने और अधिक जानकारी एकत्र करने के लिए जगह देती है।
5. **वर्णनात्मक विधि** (Expository Method) : यह विधि शिक्षार्थियों को विषय का पूरा विवरण प्राप्त करने में सक्षम बनाती है।

टिप्पणी

6. **सीखने की विधि** (Learning Method) : यह एक विधि है जिसमें छात्र और शिक्षार्थी संस्कृति, विवाह, परिवार, जीवन, स्कूल प्रणाली आदि जैसी अवधारणा सीखते हैं।
7. **फील्ड ट्रिप विधि** (Field trip Method) : इस विधि को भ्रमण विधि भी कहते हैं। इसमें छात्रों को चीजों को देखने के साथ-साथ उपयोगी जानकारी नोट करने के लिए महत्वपूर्ण स्थानों का दौरा करना शामिल है। यह विधि सामाजिक अध्ययन के बेहतर अध्ययन के लिए जगह देती है।
8. **अनुसंधान विधि** (Reaserch Method) : इस विधि का प्रयोग अधिकतर उच्च संस्थानों में किया जाता है। यह छात्रों को विभिन्न विषयों का विस्तृत अध्ययन करने में सहायता करती है।

सामाजिक अध्ययन सीखने की विधियों का महत्व

1. ये आमने-सामने बातचीत के लिए जगह प्रदान करती हैं।
2. ये शिक्षार्थी को चीजों का व्यावहारिक ज्ञान रखने में सक्षम बनाती हैं।
3. ये शिक्षार्थियों को यात्रा करने और चीजों को स्वयं देखने के लिए अवसर प्रदान करती हैं।
4. ये शिक्षार्थियों को घटनाओं के बारे में प्रश्न पूछने का अवसर देती हैं।
5. ये संस्कृति और पारिवारिक जीवन के बारे में जानने में सहायता करती हैं।

बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशल

सामाजिक अध्ययन एक बहुत व्यापक क्षेत्र है, जिसमें कुछ लोगों की रुचि होती है क्योंकि इसमें मानव व्यवहार और प्रवृत्तियों का अध्ययन करना शामिल है। यह किसी को गहराई से समझने में सक्षम बनाता है तथा यह बताता है कि मानव मस्तिष्क कैसे काम करता है और फलस्वरूप यह समझाता है कि लोग इस तरह से व्यवहार क्यों करते हैं। सामाजिक अध्ययन, विज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो मानव शरीर की संरचना की खोज करने का प्रयास करने वाले जीव विज्ञान के विपरीत मनुष्यों के व्यवहार संबंधी पहलू पर अधिक कार्य करता है।

सामाजिक अध्ययन एक दिलचस्प विषय है क्योंकि मानव व्यवहार को समझना और भविष्यवाणी करना वास्तव में बहुत कठिन है। लोगों का मिजाज हर मिनट बदलता है और उनके दिमाग के काम करने का तरीका भी हर मिनट बदलता है। हम शायद ही जानते हैं कि मानव के मस्तिष्क के अंदर क्या है और वहां क्या चल रहा है? लेकिन सामाजिक अध्ययन पूरी तरह से मानव व्यवहार के बारे में नहीं है क्योंकि इसमें इतिहास और भूगोल भी शामिल हैं। दोनों अभी भी मानव जीवन से बहुत अधिक जुड़े हुए हैं लेकिन मनुष्यों को प्रभावित करने वाले बाहरी कारकों से अधिक संबंधित हैं। यदि आप मानव व्यवहार को समझना चाहते हैं तो बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशल हैं, जिन्हें आपको अपने ज्ञान का पूरी तरह से दोहन करने और ऐसी जटिल प्रजातियों को समझने में सक्षम होने के लिए सीखने की आवश्यकता है।

अवलोकन कौशल

एक सामाजिक अध्ययन के छात्र के रूप में, आपको प्रवृत्तियों और मानव व्यवहार पैटर्न की भविष्यवाणी करने के लिए बहुत चौकस होना चाहिए। यह बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशलों में से एक है, जिसे छात्रों को सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में जाने के लिए चुना जाता है। उन्हें प्रवृत्तियों और प्रतिमानों की भविष्यवाणी करने के लिए मानवीय व्यवहारों का गहन पर्यवेक्षक होना चाहिए ताकि वे ऐसे नियमों और विनियमों को विकसित करने में सक्षम हों जिनकी लोग ऐसे व्यवहार के कारण प्रतिक्रिया देंगे।

संचार और पारस्परिक कौशल

यह सबसे महत्वपूर्ण बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशल है, जो छात्र कभी भी स्कूल में सीखेंगे। चूंकि वे हर समय सभी प्रकार के लोगों के साथ व्यवहार करेंगे, संचार बहुत महत्वपूर्ण है। उन्हें अपनी पढ़ाई के लिए आवश्यक सभी आवश्यक जानकारी निकालने के लिए अन्य लोगों के लिए अच्छी तरह से अनुवाद करने में सक्षम होना चाहिए। बहुत से लोग अच्छे संचारक नहीं होते हैं इसलिए यह एक ऐसा कौशल है, जिसे केवल विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को सीखने और अभ्यास करने का अवसर दिया जाता है। पारस्परिक कौशल संचार के साथ हाथ में आते हैं क्योंकि छात्र सीखेंगे कि यदि वे दोनों कौशल सीखते हैं तो अन्य लोगों से अच्छी तरह से कैसे संबंधित हैं। अन्य लोगों के साथ अच्छी तरह से संवाद करने के लिए जिन्हें आप मुश्किल से जानते भी हैं, आपको पहले अपने पारस्परिक कौशल को सुधारना होगा ताकि बिना किसी नुकसान के अन्य लोगों को प्रभावी ढंग से शब्दों, वाक्यांशों और वाक्यों को संप्रेषित किया जा सके।

टेबल, चार्ट और ग्राफ को पढ़ना और उनकी व्याख्या करना

यह बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशलों में से एक है, जिसे प्रत्येक छात्र को सीखना चाहिए। मानव व्यवहार पैटर्न का मानचित्रण और भविष्यवाणी करने के लिए निष्कर्ष निकालने के लिए बहुत सारे चार्ट और ग्राफ बनाने और बनाने की आवश्यकता होती है। चार्ट, टेबल और ग्राफ आपके द्वारा एकत्रित की गई जानकारी को सारांशित करते हैं और ऐसे उपकरण आपके रुझानों और पैटर्न की भविष्यवाणी में बहुत सहायक उपकरण होंगे।

इस तरह के उपकरण आपको मानव व्यवहार को और भी अधिक समझने में सहायता करेंगे। उनका उपयोग ऐतिहासिक घटनाओं से शुरू होने वाले भविष्य के रुझानों की भविष्यवाणी करने और कुछ पैटर्न और रुझानों की खोज करने के लिए भी किया जा सकता है जो अंततः आपको एक निष्कर्ष पर ले जाएंगे। तालिकाओं, चार्टों और ग्राफ को पढ़ने और व्याख्या करने में सक्षम होना महत्वपूर्ण है क्योंकि वे सभी मात्रात्मक और गुणात्मक डेटा को सारांशित करते हैं, दोनों का उपयोग सामाजिक अध्ययन में किया जाता है।

ये तीन बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशल हैं, जिन्हें प्रत्येक छात्र को सीखना चाहिए। वे न केवल सामाजिक विज्ञान में अपना करियर बनाने में बल्कि हमारी रोजमर्रा की स्थितियों में भी महत्वपूर्ण हैं। संचार और पारस्परिक कौशल अन्य लोगों के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाने की कुंजी है, जबकि चौकस रहने से व्यक्ति को जानकारी एकत्र करने और जटिल तरंगों के बारे में अनुमान लगाने की अनुमति मिलती है जो मानव मस्तिष्क है। चार्ट, टेबल और ग्राफ हमेशा के लिए व्याख्या और भविष्यवाणी करने के

लिए सामाजिक अध्ययन का एक हिस्सा होंगे, इस प्रकार सभी को बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशल में शामिल किया गया है, जिसमें छात्रों को महारत हासिल करनी है।

1.5.1 कक्षा में छात्रों के सामाजिक और भौतिक परिवेश जनित विचारों और अनुभवों को साझा करना

टिप्पणी

वातावरण छात्रों के अधिगम या सीखने की प्रक्रिया को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। इसके लिये आवश्यक है कि शिक्षक विद्यालय में ऐसा वातावरण निर्मित करें, जो छात्रों के लिये अनुकूल हों तथा वे सफलतापूर्वक कक्षा-शिक्षण में भाग लेकर अधिगम कार्य को कर सकें। आइये यहां हम इसी विषय पर चर्चा करते हैं।

सहयोग और प्रासंगिकता

सहकारी अधिगम वातावरण बनाने से प्रत्येक प्रतिभागी छात्र पर सकारात्मक सामाजिक और शैक्षिक प्रभाव पड़ता है। सहयोग एक महत्वपूर्ण कौशल है, जिसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है और यह आपके छात्रों को कक्षा में, साथ ही साथ उनके दैनिक जीवन में भी सहायता कर सकता है। सहयोग, छात्रों को उनके बीच विविधता का पता लगाने और उसे समझने में मदद करता है, उनके मतभेदों को दूर करता है। छात्र सक्रिय रूप से सुनकर सीखता है, एक टीम के रूप में काम करता है, मजबूत पारस्परिक कौशल विकसित करता है, अपने साथियों से संबंधित होता है, नये मित्र बनाता है, उनकी सामाजिक बातचीत में सुधार करता है तथा अपने साथियों से अतिरिक्त प्रतिक्रिया प्राप्त करता है। इसके साथ ही वह नए विचारों का आदान-प्रदान भी करता है। ये सभी लाभ बेहतर तरीके से व्यापक अधिगम में योगदान करते हैं।

सीखने के सफल वातावरण के लिए यह भी आवश्यक है कि सीखने के उद्देश्य आपके छात्रों और कक्षा के बाहर उनके जीवन के लिए प्रासंगिक हों। यह पता लगाने की क्षमता के बिना कि जानकारी दैनिक जीवन पर कैसे लागू होती है, आपके छात्रों के अपने पाठों में शामिल होने और उस जानकारी को याद रखने की संभावना कम होती है।

भौतिक वातावरण

आश्चर्यजनक रूप से, शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि भौतिक वातावरण का छात्रों पर इतना प्रभाव पड़ सकता है कि यह छात्र की शैक्षणिक प्रगति को 25% तक प्रभावित कर सकता है। रंग, कक्षा का संगठन, साफ-सफाई, पर्याप्त आपूर्ति और चमकदार रोशनी अधिगम के अनुभव को बढ़ा सकते हैं और छात्र उपलब्धि में वृद्धि कर सकते हैं। वैकल्पिक रूप से, भीड़-भाड़ वाले कमरे और छात्रों की उच्च-घनत्व के परिणामस्वरूप अक्सर कुछ छात्र निम्न अधिगम क्षमता वाले बन जाते हैं। शोध से पता चलता है कि छात्रों को संतोषजनक रूप से भीड़भाड़ महसूस करने और अपने सीखने के माहौल का अधिकतम लाभ उठाने के लिए 2-4 फीट व्यक्तिगत स्थान की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, जो छात्र अपने पर्यावरण के निर्माण में शामिल होते हैं (कलाकृति, विन्यास, या कक्षा की भौतिक गतिशीलता में भागीदारी के माध्यम से) वे सशक्तिकरण और समुदाय की भावना का अनुभव करते हैं, जो उनकी समग्र प्रेरणा को बढ़ाने में मदद कर सकते हैं।

संगठन

अव्यवस्थित कक्षाएं सीखने से ध्यान हटा सकती हैं। छात्रों को आराम से और अपनी पढ़ाई पर केंद्रित रहने में मदद करने के लिए फर्नीचर अच्छी स्थिति में होना चाहिए। डेस्क और कुर्सियाँ जो जीर्ण-शीर्ण हैं, विचलित रूप से असहज हो सकती हैं और बैठने, दृश्यता और आराम की कमी छात्रों का ध्यान पाठों से हटा सकती हैं। बैठने की जगह जो अच्छी तरह से और आरामदायक हो, आपके छात्रों को एक अच्छी सहूलियत प्रदान कर सकती है जिससे पूरे पाठ को स्पष्ट रूप से देखा जा सके। उचित बैठने से आपको डेस्क के बीच स्वतंत्र रूप से चलने की क्षमता भी मिलती है और आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान देने की सुविधा मिलती है।

टिप्पणी

शिक्षक का व्यवहार, सकारात्मकता, प्रेरणा और स्पष्ट संरचना

जिस प्रकार यह आवश्यक है कि कक्षा का वातावरण भौतिक रूप से अच्छा होना चाहिये, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि कक्षा का वातावरण मनोवैज्ञानिक रूप से भी अच्छा होना चाहिये। शांत और तर्कसंगत व्यवहार प्रदर्शित करने वाले प्रशिक्षक एक सहायक वातावरण बनाए रखने में मदद कर सकते हैं, जो छात्र के अधिगम को प्रोत्साहित करता है। उचित समर्थन के बिना, छात्र अध्ययन चिंता, खराब प्रदर्शन और नकारात्मक व्यवहार का जोखिम उठाते हैं। एक सहायक और आकर्षक सीखने का माहौल छात्र की सफलता के लिए नुस्खा में एक महत्वपूर्ण घटक है।

सकारात्मकता, एक सक्रिय और सहायक सीखने के माहौल का मुख्य आधार है। सकारात्मक कार्य एक सुखद सीखने के अनुभव का समर्थन करते हैं, समस्या-समाधान और निर्णय लेने को प्रभावित करते हैं, बेहतर प्रदर्शन और बेहतर सामाजिक वातावरण की ओर ले जाते हैं और प्रत्येक छात्र को निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने और अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने में सहायता करते हैं।

1.5.2 छात्रों की विविधता को समझना और कक्षा में अभिव्यक्ति के विविध रूपों को प्रोत्साहित करना

शिक्षण व्याख्यानों, प्रयोगों, कार्यकलापों या ट्यूटोरियल के माध्यम से ज्ञान प्रदान करने की एक प्रक्रिया है। शिक्षण में एक शिक्षक होता है जो शिक्षा देता है और एक छात्र होता है जो शिक्षा ग्रहण करता है। शिक्षण अधिकांशतः स्कूलों में किया जाता है, किंतु यह पूरी तरह से स्कूल तक ही सीमित नहीं रहता; यह एक गतिशील प्रक्रिया है, किंतु स्कूल में शिक्षण को छात्रकेंद्रित होना चाहिए।

शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक का, पाठ की समय रहते तैयारी करना आवश्यक होता है किंतु, प्रसंग आधारित शिक्षण रचनात्मक मूल्यांकन पर निर्भर करता है जिसमें शिक्षा के उद्देश्यों का इस मूल्यांकन से ताल–मेल रहता है। हाल के वर्षों में, शिक्षण एक बहुत ही जटिल उद्यम हो गया है। इसलिए, बच्चों को बदलते विश्व के अनुरूप तैयारी करने की जरूरत है, क्योंकि उनमें से बहुत से बच्चों को यथार्थ जगत की कठिनाइयों का सामना करना है। छात्रों के प्रति यह सोचना गलत है कि वे किसी समरूप समूह में बेहतर ढंग से सीखते हैं। वस्तुतः, छात्रों को उच्च, औसत और निम्न

क्षमता के समूहों में बांटने से यथार्थ अर्थों में, सामग्री में अंतर के कारण, वे जो सीखते हैं उसमें अंतर होता है।

शिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया

शिक्षण महज छात्रों को शिक्षा और कौशल प्रदान करने की एक प्रक्रिया है। औपचारिक रूप से, शिक्षण की परिभाषा लोगों की जरूरतों, अनुभवों और अनुभूतियों पर ध्यान देने, तथा विशेष विषयों को सीखने में उनकी सहायता करने के विशिष्ट प्रयासों के रूप में की जा सकती है। शिक्षण की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शिक्षण का मुख्य लक्ष्य शिक्षा है। वस्तुतः शिक्षण और शिक्षा एक दूसरे के सहचर हैं। यदि शिक्षण छात्र को वांछित कौशल प्रदान न कर सके, तो इसे एक निरर्थक प्रक्रिया या कार्य माना जाता है। इसलिए, शिक्षण का मुख्य अभिप्रेत शिक्षा है।

प्रक्रिया के रूप में शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है। शिक्षण ज्यादातर स्कूल में दिया जाता है किंतु यह स्कूल तक ही सीमित नहीं है। शिक्षण स्कूल की चारदीवारी से आगे जाता है और लोगों को उनके अनुभवों से कुछ न कुछ सिखाता जाता है। जब बात स्कूल में शिक्षण की होती है, तो इस प्रक्रिया का छात्र–केंद्रित होना इस अर्थ में जरूरी होता है कि शिक्षण प्रक्रिया का केंद्रबिंदु छात्र हों और शिक्षण के हर पहलू में यह सुनिश्चित हो कि छात्र अति प्रभावकारी ढंग से शिक्षा प्राप्त करें। छात्र–केंद्रित शिक्षण छात्रों को कौशलों का विकास करने योग्य बनाता है जो शिक्षा से जीवन भर के लिए सक्षम बनाते हैं। स्कूल में छात्र–केंद्रित शिक्षण ऐसा हो कि जिसमें शिक्षक छात्रों की योग्यताओं, अभिरुचियों, कौशलों और सहज योग्यताओं को ध्यान में रखें। छात्र–केंद्रित शिक्षण प्रक्रिया में, छात्रों को जो सिखाया जाता है उसमें वे सक्रियता से भाग लेते हैं और महज निष्क्रिय छात्र नहीं होते। दूसरे शब्दों में, छात्र केवल वही नहीं सुनते और सीखते हैं जो शिक्षक उन्हें पढ़ाते हैं, बल्कि जो कुछ सिखाया जाता है उसमें सक्रियता से भाग लेते और प्रयोग करते हुए सीखते हैं, इसलिए जब शिक्षक महज व्याख्यान देने की बजाय छात्रों की जरूरतों पर ध्यान देते हैं तो वे अधिक प्रभावकारी ढंग से सीखते हैं।

शिक्षण प्रक्रिया का लक्ष्य शिक्षा होता है। जानकारी देने की बजाय छात्रों के अध्ययन को सुगम करना शिक्षकों का दायित्व होता है। शिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- शिक्षक उत्तर की बजाय छात्रों के समक्ष प्रश्न रखते हैं। शिक्षकों के लिए यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि छात्र शिक्षा प्रक्रिया में सक्रियता से भाग लें। छात्र निष्क्रिय न रहें बल्कि पठित विषय की व्याख्या की मांग करें। शिक्षकों के लिए खुले प्रश्न पूछना जरूरी है ताकि छात्रों के लिए शिक्षा का प्रभावकारी होना सुनिश्चित हो। शिक्षण प्रक्रिया शिक्षा उन्मुखी होने पर ही छात्र जानकारी को आत्मसात कर सकते हैं जो उनकी स्मृति में दीर्घ काल तक रह सकती है।

- शिक्षण प्रक्रिया शिक्षा उन्मुखी होने पर शिक्षक छात्रों के साथ ज्ञान साझा करते हैं। अपनी मानक भूमिका का निर्वाह करने की बजाय, शिक्षक छात्रों के साथ सहभागिता करते हैं ताकि वे छात्रों की सीखने में सहायता कर सकें। शिक्षक कक्षा में व्याख्यान नहीं देते बल्कि छात्रों को विषयवस्तु का अन्वेषण करने की छूट देते हैं ताकि वे विषय की बेहतर समझ का विकास कर सकें।
- शिक्षा उन्मुखी शिक्षण अनुप्रयोग के अवसर मुहैया कराता है। दूसरे शब्दों में, यह सुनिश्चित करने के लिए कि छात्र बेहतर ढंग से सीख सकें, उन्हें उस ज्ञान का व्यावहारिक रूप से अनुप्रयोग करने की अनुमति दी जाती है जो उन्होंने सीखा हो। छात्रों को व्यावहारिक अनुभव मिलने पर उन्हें विषय लंबे समय तक स्मरण रह सकता है।
- शिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया प्रभावकारी ढंग से सीखने के लिए छात्रों को शिक्षा की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के योग्य बनाती है। शिक्षा की इस प्रक्रिया में गतिविधियों और उद्दीपन का समावेश होता है जो बड़ी संख्या में उन छात्रों की शिक्षा की प्रक्रिया और क्षमताओं को उद्दीप्त करते हैं, जो विषय की शिक्षा अपनी ही विशिष्ट विधि से ग्रहण करते हैं।
- शिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया संवादमूलक होती है। शिक्षक जब छात्रों को पढ़ाएं, तो उन्हें छात्रों का संवाद करना और प्रश्न पूछना अनिवार्य रूप से सुनिश्चित करना चाहिए ताकि छात्रों में विषय की समझ विकसित हो। इस तरह छात्र पढ़ाई में अधिक से अधिक तल्लीन रहते हैं और इसीलिए अपेक्षाकृत अधिक बेहतर ढंग से शिक्षा ग्रहण करते हैं।

शिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया के लिए शिक्षकों का शिक्षण सत्र तैयार करना आवश्यक होता है। इस तैयारी में निम्नलिखित पहलुओं को शामिल किया जा सकता है –

- शिक्षक या शिक्षिका को अपनी और छात्रों की रुचि के अनुरूप विषयवस्तु का चयन करना चाहिए। विषयवस्तु ऐसी हो कि छात्र इसमें प्रभावकारी शिक्षा के लिए शामिल हों।
- शिक्षक को यह पता लगाने की जरूरत हो सकती है कि छात्र कौन हैं, उनकी पृष्ठभूमि, उन्हें प्राप्त ज्ञान, उनके ज्ञान का स्तर क्या है, आदि। इस प्रकार के आयोजन से शिक्षक यह जानने में सफल होते हैं कि छात्रों की जरूरतें क्या हैं और शिक्षक तदनुरूप शिक्षण सत्र की योजना तैयार कर सकते हैं।
- शिक्षक को चिंतन प्रक्रिया और विषयवस्तु से संबद्ध सभी विचारों को लिखने की जरूरत हो सकती है। फिर वह उस विचार का चयन कर सकते हैं जो विषयवस्तु के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो और एक प्रभावकारी ढंग से छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करे।
- शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्यों का विश्लेषण भी करना चाहिए, अर्थात् वे यह देखें कि छात्रों को क्या, कैसे और क्यों सीखना है। शिक्षक को इस पर

टिप्पणी

गंभीरता से विचार कर लेना चाहिए कि शिक्षण सत्र के अंत तक छात्र क्या सीखेंगे।

- तदनंतर शिक्षक को शिक्षण की उन रणनीतियों और विधियों का निर्धारण करना चाहिए जिनका उपयोग शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। शिक्षकों के लिए ऐसी रणनीतियों और विधियों का चयन करना आवश्यक है जो सभी शिशिक्षुओं के हितों और जरूरतों के अनुरूप हों।
- शिक्षकों को यह सुनिश्चित करने के लिए करना चाहिए कि जो विषय पढ़ाया जाना हो उसकी प्रस्तुति में चित्रों और उदाहरणों का उपयोग हो, ताकि छात्र उसे बेहतर ढंग से समझ सकें।
- शिक्षकों को पाठ योजना इस तरह से बनानी चाहिए कि उसमें विषयवस्तु के सभी आवश्यक तत्वों का समावेश हो।
- शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्रों को इस तरह से तैयार करें कि वे पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु से संबद्ध तथ्य स्वयं पढ़ सकें। शिक्षकों को विषयवस्तु से संबद्ध गतिविधियों में छात्रों को शामिल करना चाहिए।
- व्याख्यान प्रस्तुति के बाद शिक्षकों को छात्रों का मूल्यांकन भी करना चाहिए ताकि यह ज्ञात हो कि छात्र विषय को कितना और किस प्रकार समझ पाए हैं और शिक्षा के उद्देश्य पूरे हुए हैं या नहीं। शिक्षक/शिक्षिका को लगे कि शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाई है, तो वह पाठ और शिक्षण की रणनीतियों में सुधार कर सकता/सकती है।

शिक्षा उन्मुखी शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों को सक्रिय होना चाहिए। उन्हें पिछली शिक्षा और अनुभवों का मनन करना चाहिए ताकि वे नए ज्ञान का सृजन कर सकें। छात्रों का नए विचारों के लिए प्रस्तुत रहना और नम्य होना तथा जो कुछ उन्होंने सीखा है उस पर गंभीरता से सोचना आवश्यक है।

इस शिक्षा में छात्र किसी विषय या क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा पूर्व निर्धारित किसी विषयवस्तु का अध्ययन करते हैं। इसका पाठ्यक्रम प्रधान होता है और इसमें न केवल शिक्षक बल्कि छात्र भी अपने कार्यकलापों और कथनों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। विषय–वस्तुएं प्रभाव छोड़ने और यहां तक कि शिक्षकों तथा छात्रों की चिंतन प्रक्रियों को उद्दीपित करने के लिए अपने आप में सक्षम होती हैं। विषय शिक्षकों के लिए एक सूत्रधार के रूप में कार्य करता है। विषय में शिक्षकों के विषय के प्रति सच्चे उत्साह और ललक को प्रकाश में लाने की क्षमता होती है। उनका ध्यान यथासंभव शिक्षा के वितरण पर केंद्रित होता है।

छात्र–केंद्रित शिक्षा : यह शिक्षा छात्रों और शिक्षकों के बीच संवाद को प्रोत्साहन देती है। यह शिक्षा की वह पद्धति है जिसमें छात्रों की जरूरतों को केंद्र में रखा जाता है। छात्रों की अभिव्यक्ति को महत्व दिया जाता है और उसे शिक्षा के समस्त अनुभव का केंद्रबिंदु माना जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, छात्रों से उनकी

शिक्षा– ग्रहण प्रक्रिया में सक्रिय और अग्रसक्रिय होने की अपेक्षा की जाती है। इसमें व्यावहारिक गतिविधियों और सीखने की विशिष्ट शैलियों के साथ–साथ छात्रों के लिए शिक्षा के उन लक्ष्यों की प्राप्ति के अवसर का समावेश होता है, जो उनके जीवन पर्यंत काम आ सकें और इस तरह उनकी शिक्षा पर उनका पूरा नियंत्रण हो। इसके लाभ इस प्रकार हैं :

- छात्रों को अभिप्रेरणा देती है।
- समकक्षों के साथ संवाद–संचार को बढ़ावा देती है।
- विघटनकारी व्यवहार पर अंकुश लगाती है।
- शिक्षक–छात्र संबंध को प्रबल करने को प्रोत्साहित करती है।
- छात्र/छात्राओं को उनकी शिक्षा के प्रति उत्तरदाई बनाती है।
- छात्र/छात्राओं को उनकी पसंद के विषय का चयन करने की छूट देती है।
- छात्र/छात्राओं को यह निश्चय करने की अनुमति देती है कि वे अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग कैसे करें।
- शिक्षक के मार्गदर्शन में अध्ययन की मौजूदा सामग्री की नई व्याख्या करने की अनुमति देती है।
- छात्र आपस में बातचीत और चर्चा–परिचर्चा करते हैं तथा शिक्षक से ज्ञान के एक स्रोत का काम लेते हैं। छात्र पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में सहायता के साथ–साथ पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तुओं का चयन करने में शिक्षकों की सहायता भी करते हैं। छात्र और शिक्षक विचारों का आदान–प्रदान करते हैं और इसलिए कक्षा गतिविधि व चहल–पहल से भरी रहती है।

छात्र–केंद्रित बनाने के लिए शिक्षण की सांस्कृतिक रूप से अनुक्रियाशील पद्धतियां

यह मान लेना एक आम चलन है कि छात्र समरूप समूहों में बेहतर ढंग से सीखते हैं। वस्तुतः, छात्रों को विभिन्न सामग्री देकर उच्च, औसत और निम्न–क्षमता वाले समूहों के आयोजन से उन्हें दी जाने वाली शिक्षा में असमानता बढ़ती है। समूह परिपाटियों के कारण कक्षा में भेद–भाव का माहौल पनपता है।

निर्धन छात्र और अफ्रीकी अमेरिकी, एशियाई/प्रशांत द्वीपीय, स्पेनी/लातीनी अमेरिकी, एशियाई अमेरिकी, मूल अमेरिकी, मध्य पूर्वी अमेरिकी या बहुजातीय अंतरराष्ट्रीय अमेरिकी छात्रों (Coloured Students/अश्वेत छात्र) के व्यावसायिक या निम्न–योग्यता समूह तक सीमित रह जाने की बहुत संभावना रहती है। योग्यता के आधार पर सामूहीकरण से छात्रों की स्व–अवधारणाओं और समूहों से सार्थक संबंध कायम करने के उनके अवसर प्रभावित होते हैं। 'मंद समूह' से संबद्ध इन छात्रों को 'मूक' का ठप्पा लग सकता है और उन्हें यह देखकर कष्ट होता है कि उनसे कितनी

सीमित अपेक्षाएं रखी जाती हैं। वे उपहास के शिकार होकर रह जाते हैं। ऐसा बच्चों के साथ भी हो सकता है और वयस्क छात्रों के साथ भी।

इसी प्रकार, 'चतुर' या 'मेधावी' के रूप में वर्गीकृत छात्र स्वयं को सामाजिक स्तर पर अलग–थलग पा सकते हैं। यह स्थिति छात्रों में एक दूरी पैदा करती है और असमानताओं में विस्तार करती है।

टिप्पणी

छात्रों को, खास तौर पर बच्चों को यदि उनके समकक्षों से, जो कुछ हटकर हों, अलग कर दिया जाए, तो वे समझना, मूल्यांकन करना या समाज में मिलना–जुलना सीख नहीं सकते। असमानताओं के प्रति सकारात्मक (धनात्मक) अनुक्रियाओं को बढ़ावा देने के लिए महज संपर्क काफी नहीं है और इसीलिए पंचमेल कक्षाएं आवश्यक हैं।

प्रसंग आधारित शिक्षण

प्रसंग आधारित शिक्षण शिक्षण के संरचनावादी सिद्धांत पर आधारित है। प्रसंग आधारित शिक्षण वह है जिसमें शिक्षक विचार और जानकारी इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं जिससे छात्रों को इस विचार और जानकारी को इस तरह ढालने में सहायता मिलती है कि उनके अपने मूल विचार में या उनके अपने दृष्टिकोण से इसका एक उचित अर्थ निकल आता है। दूसरे शब्दों में, प्रसंग आधारित शिक्षण में शिक्षक शिक्षा इस प्रकार देते हैं जिससे छात्र अपने अनुभवों के आधार पर एक अर्थ का सृजन करने में सफल होते हैं।

प्रसंग आधारित शिक्षण शिक्षा के परिवेश के विभिन्न पहलुओं पर बल देता है और छात्रों को अपने परिवेश के विषयों के बीच संबंधों का पता लगाते हुए सीखने के योग्य बनाता है। प्रसंग आधारित शिक्षण में, शिक्षक विभिन्न अनुभवों को अपनाते हुए परिवेशों का निर्माण करते हैं ताकि छात्र एक प्रभावकारी ढंग से शिक्षा ग्रहण कर सकें और शिशिक्षा के वांछित परिणाम प्राप्त हों।

प्रसंग आधारित शिक्षा की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

- यह शिक्षण समस्या के समाधान पर बल देता है। शिक्षक सुनिश्चित करते हैं कि छात्र विभिन्न सदंर्भों में अनुभव प्राप्त करें और विभिन्न समस्याओं का समाधान आसानी से ढूंढ़ सकें।
- प्रसंग आधारित शिक्षण में शिक्षक छात्रों की उनके ज्ञान के निरीक्षण में सहायता करते हैं। इसलिए इस शिक्षण का ध्येय छात्रों का विकास स्व–निर्देशित और स्व–नियमित शिशिक्षुओं के रूप में करना है।
- प्रसंग आधारित शिक्षण में, शिक्षक छात्रों को एक–दूसरे से सीखने और किसी समस्या के समाधान में सहयोग करने को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रसंग आधारित शिक्षण में मूल्यांकन पारंपरिक नहीं होता और खुले प्रश्नों पर आधारित भी नहीं होता। वस्तुतः इस शिक्षण में शिक्षकों को पठित विषय के संदर्भ में एक मूल्यांकन प्रक्रिया का विकास करना चाहिए।

अति जटिल उद्यम के रूप में शिक्षण

हाल के वर्षों में, शिक्षण एक बहुत ही जटिल उद्यम का रूप ले चुका है। शिक्षा में, उद्यम का अर्थ शिक्षण और पठन का एक उद्यमशील मार्ग है। उद्यम सभी युवाओं की ज्ञानार्जन, जीवन और कार्य के उनके कौशलों के विकास में सहायता करता है। युवाओं को बदलते विश्व के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें भविष्य में परिस्थितियों का सामना करने, बाधाओं से निपटने की योग्यता हासिल करने और अपने जीवन के शेष समय तक सीखना जारी रखने के कौशल प्राप्त करने चाहिए।

उत्तम उद्यमशील शिक्षण एवं शिक्षा में

- छात्रों को एक अवसर दिया जाना चाहिए जो उनमें चिंतन करने और उद्यमशील ढंग से कार्य करने का ज्ञान पैदा कर सके।
- छात्रों को उद्यम संबंधी अनुभव दिए जाने चाहिए।
- छात्रों को कौशलों का विकास करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए जैसे निर्णय निर्माण और समस्या समाधान आदि।
- छात्रों को उद्यमी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- छात्रों को कार्य से जुड़ा अनुभव ग्रहण करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए।

विविध कक्षाओं में शिक्षण का विश्लेषण

विविधता को उन मार्गों के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो लोगों के अनुकूल और विपरीत होते हों। विविधता के आयामों में जाति, नृजातीयता, लिंग, काम उन्मुखकता, भाषा, संस्कृति, धर्म, मानसिक और शारीरिक क्षमता, वर्ग और आव्रजन की स्थिति आते हैं। एक विविधतापूर्ण कक्षा वह आदर्श स्थान है जहां छात्रों का विश्व–समाज के नानाविध दृष्टिकोणों से परिचय होता है। जो छात्र विभिन्न संस्कृतियों के अपने सहपाठियों के साथ सीखते हैं, विश्व की उन बाधाओं के प्रति उनकी समझ बेहतर होती है, जिनसे उन्हें उनके भविष्य में रू–ब–रू होना पड़ सकता है।

जीशर (1992) ने विभिन्न समाजों के लिए सफल शिक्षण की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन किया है। भाषा की प्रभावकारी शिक्षा और नृजातीय अल्पसंख्यक छात्रों के लिए उन्होंने 12 महत्वपूर्ण तत्वों का प्रतिपादन किया है, जो इस प्रकार हैं–

- शिक्षकों को छात्रों की सांस्कृतिक और नृजातीय विशिष्टताओं की जानकारी होनी चाहिए।
- शिक्षकों को छात्रों को पढ़ाने की अपनी अभिवृत्ति के जरिए उनके जीवन को बेहतर बनाने में विश्वास रखना चाहिए।
- शिक्षकों को यह मानना चाहिए कि सभी छात्र अपने विविधतापूर्ण मार्ग में सफल हो सकते हैं।

टिप्पणी

- शिक्षकों को अपने शिष्यों के साथ अपनेपन का भाव कायम करना चाहिए।
- स्कूलों का शैक्षिक दृष्टि से एक चुनौतीपूर्ण पाठ्यक्रम होना चाहिए, ताकि छात्र अपने उच्च स्तर के संज्ञानात्मक कौशलों का विकास कर सकें।
- शिक्षकों को शिक्षा के एक संवादमूलक और सहयोगी परिवेश में छात्रों के विषय के प्रति अर्थ के सृजन पर ध्यान देना चाहिए।
- शिक्षा को एक अर्थपूर्ण कार्य के रूप में देखने के लिए शिक्षकों को छात्रों की सहायता करनी चाहिए।
- पाठ्यक्रम में समाज के विभिन्न नृजातीय सांस्कृतिक वर्गों की विषयवस्तुएं होनी चाहिए।
- शिक्षकों को एक 'मचान' का निर्माण करना चाहिए जो छात्रों की अलग–अलग संस्कृतियों को शैक्षिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण पाठ्यक्रम से जोड़े।
- शिक्षकों को विभिन्न नृजातीयताओं से छात्रों को अवगत कराने पर ध्यान देना चाहिए।
- शिक्षा में छात्रों की सहायता के लिए शिक्षण सत्रों में माता–पिता, अभिभावकों और समाज के लोगों को शामिल किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को उन राजनीतिक संघर्षों में भाग लेना चाहिए जिनका लक्ष्य समाज को बेहतर बनाना हो।

भारत में, अनेकानेक कक्षाओं में बड़ी सीमा तक विविधता है। संस्कृतियों, जातियों, धर्मों में भिन्नताओं को देखते हुए, समुचित शिक्षा देते हुए शिक्षकों को छात्रों के बीच के अंतर को दूर करना चाहिए।

इस प्रकार की कक्षा का मुख्य उद्देश्य सभी समूहों को एक ही कक्षा में समाविष्ट करना है। छात्रों को साथ मिलकर काम करना सीखना चाहिए।

कक्षा का प्रधान होने के कारण शिक्षक जो छात्रों से चाहते हों उसे स्वयं करते हुए उनका नेतृत्व करना चाहिए। उन्हें कक्षा में सक्षम होना चाहिए। कक्षा में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है तथा विविधता और छात्रों के बीच संतुलन बनाना उनका उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य होता है।

एक शिक्षक के लिए कक्षा में सभी बच्चों के साथ समान व्यवहार करना आवश्यक है। बच्चों की सामाजिक पृष्ठभूमि के निरपेक्ष, यह जरूरी है कि बच्चों के साथ समानता का व्यवहार हो। उदाहरण के लिए, कक्षा में पढ़ाते समय एक शिक्षक को सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी निर्दिष्ट विषय की व्याख्या के लिए दिए गए उदाहरण किसी खास धर्म या सामाजिक पृष्ठभूमि से संबद्ध न हों।

सबसे पहले, शिक्षण सत्र के आरंभ में कक्षा के शिक्षक को मूलभूत नियम निर्धारित करने चाहिए। ये नियम प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होने चाहिए। ये नियम अच्छी तरह सोच–समझ कर तैयार किए जाने चाहिए। ये नियम सरल और सुदृढ़ हों। मूलभूत

नियम का एक उदाहरण यह है कि दिए गए कार्य निर्धारित तिथि तक जमा कर दिए जाने चाहिए। इससे न केवल अनुशासन बनाए रखने में सहायता मिलेगी बल्कि छात्रों के साथ समानता का व्यवहार भी सुनिश्चित होगा।

1.5.3 'सामाजिक अध्ययन' विषय के अध्ययन हेतु प्रक्रिया एवं कौशल : पियाजे, ब्रूनर, वायगोत्स्की और चाम्सकी के विचार

हम कैसे सीखते हैं? एक बालक को शैशवावस्था से बाल्यावास्था तक विकसित होते देखकर हमें उसकी अधिगम क्षमता पर आश्चर्य होता है और जिसमें वह अपने आस-पास विस्तारित होते हुये वातावरण में सीखता है। यह प्रारम्भ उसका सामाजिक और संवेगात्मक विकास करता है। विद्यालय में कदम रखने के पूर्व उस बालक ने पर्याप्त ज्ञानात्मक विकास कर लिया होता है।

बालक ने स्वयं को अपने आस-पास के वातावरण से जानकारी प्राप्त करके अनुभव प्राप्त किया होता है। यह अधिगम रचनावाद का एक उदाहरण है जो कि ऐसा विचार है जिसने पूरे विश्व के शिक्षाविदों को उत्साहित किया है। रचनावाद में अधिगम के अनुभव में ज्ञान, विश्वास और कौशल के प्रयोग पर पर जोर दिया जाता है। इसे नये ज्ञान की समझ को पुराने अधिगम नयी जानकारी और सीखने की तत्परता के सम्मिश्रण के रूप में देखते हैं । व्यक्ति अपने विचारों को स्वीकार करने के विषय में चुनाव करते हैं और फिर उस चयनित विचार को अपने स्थापित विचारों में उपयुक्त स्थान पर स्थापित करते हैं।

कक्षा में एक रचनावादी शिक्षक छात्रों के समक्ष समस्याएं प्रस्तुत करते हैं और छात्रों के अन्वेषण की निगरानी करते है, उन्हें सही दिशा में निर्देशित करते हैं और नये तरीके से सोच को बढ़ावा देते हैं। अन्वेषण में अप्रत्याशित घुमाव आ सकते हैं क्योंकि छात्रों को खोज करके निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी जाती है। ज्ञान के निर्माण में बढ़ावा देने वाली प्रक्रियाएँ आधुनिक शिक्षा जगत में प्रचलित होती जा रही हैं।

पियाजे, ब्रूनर, वायगोत्स्की और चाम्सकी के विचार

बालक का शैशवास्था से बाल्यावस्था का विकास देखा जाये तो वह अपने आसपास के वातावरण को देखकर ही क्रिया करता है। इस अवस्था में उसमें भाषा, शारीरिक क्षमता, शारीरिक तथा नैतिक समझ विकसित होती है। यहां हम विभिन्न विद्वानों द्वारा बालकों के विकास एवं समयानुसार उनमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे।

पियाये का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

जीन पियाजे स्विट्जरलैंड के एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री थे। उन्होंने संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त (theory of cognitive development) का प्रतिपादन किया। यह मानव बुद्धि की प्रकृति एवं उसके विकास से सम्बन्धित सिद्धांत है। पियाजे का सिद्धान्त, विकासी अवस्था सिद्धान्त कहलाता है। यह सिद्धान्त ज्ञान की प्रकृति के बारे में है और बताता है कि मानव कैसे क्रमशः ज्ञान का अर्जन करता है, कैसे इसे एक-एक कर जोड़ता है और कैसे इसका उपयोग करता है। पियाजे का मानना था कि व्यक्ति के विकास में उसका बचपन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

जीन पियाजे ने व्यापक स्तर पर संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया। पियाजे के अनुसार, बालक द्वारा अर्जित ज्ञान के भण्डार का स्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में बदलता है और परिमार्जित होता रहता है। उनके अनुसार, बालक के भीतर संज्ञान का विकास अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है, इसलिये इसे अवस्था सिद्धान्त भी कहा जाता है।

उन्होंने कहा कि व्यक्ति वातावरण के तत्वों का प्रत्यक्षीकरण करता है; अर्थात् पहचानता है, प्रतीकों की सहायता से उन्हें समझने का प्रयास करता है तथा संबंधित वस्तु/व्यक्ति के संदर्भ में अमूर्त चिन्तन करता है। इन सभी कार्यों से उसके भीतर एक ज्ञान भण्डार या संज्ञानात्मक संरचना उसके व्यवहार को निर्देशित करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोई भी व्यक्ति वातावरण में उपस्थित किसी भी प्रकार के उद्दीपकों से प्रभावित होकर सीधे प्रतिक्रिया नहीं करता है, पहले वह उन उद्दीपकों को पहचानता है, ग्रहण करता है फिर उनकी उसकी व्याख्या करता है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि संज्ञात्मक संरचना वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों और व्यवहार के बीच मध्यस्थता का कार्य करती है।

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है-

1. संवेदिक पेशीय अवस्था : जन्म के 2 वर्ष
2. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था : 2-7 वर्ष
3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था : 7 से 12 वर्ष
4. अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था : 12से 15 वर्ष

1. **संवेदिक पेशीय अवस्था :** यह अवस्था जन्म के 2 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में बालक केवल अपनी संवेदनाओं और शारीरिक क्रियाओं की सहायता से ज्ञान अर्जित करता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसके भीतर सहज क्रियाएँ होती हैं। इनकी सहायता से बच्चा वस्तुओं ध्वनियों, स्पर्श, रसों एवं गंधों का अनुभव प्राप्त करता है और इन अनुभवों की पुनरावृत्ति के कारण वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की कुछ विशेषताओं से परिचित होता है। यह अवस्था छह उप-अवस्थाओं में विभाजित होती है।
2. **पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था :** यह अवस्था 2 से 7 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में बालक स्वकेन्द्रित व स्वार्थी न होकर दूसरों के सम्पर्क से ज्ञान अर्जित करता है। वह खेल, अनुकरण, चित्र निर्माण तथा भाषा के माध्यम से वस्तुओं के बारे में अपनी जानकारी को बढ़ाता है। धीरे-धीरे वह प्रतीकों को भी ग्रहण करना प्रारंभ कर देता है। इस अवस्था में अनुक्रमणशीलता पायी जाती है। इस अवस्था में बालक के अनुकरणों में परिपक्वता आ जाती है।
3. **मूर्त संक्रियात्मक अवस्था :** यह अवस्था 7 से 12 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में बालक विद्यालय जाना प्रारंभ कर देता है। वह वस्तुओं एवं घटनाओं के बीच समानता, भिन्नता समझने की कोशिश करने लगता है। इस अवस्था में बालकों में संख्या बोध, वर्गीकरण, क्रमानुसार व्यवस्था किसी भी वस्तु, व्यक्ति के मध्य पारस्परिक संबंध का ज्ञान हो जाता है। अब वह थोड़ा-थोड़ा तर्क भी करने लगता है। इस अवस्था में वह अपने चारों ओर के पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने के लिये अनेक नियम सीख लेता है।

4. **अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था :** इस अवस्था का समय मुख्यतया 12 से 15 वर्ष तक माना जाता है। पियाजे ने इस अवस्था को 'अतंर्ज्ञान' की संज्ञा दी है। इस अवस्था में बालक में तार्किक चिंतन की क्षमता एवं समस्या समाधान की क्षमता का विकास होने लगता है। वह वास्तविक-आवास्तविक में अन्तर समझने का प्रयास करता है तथा वास्तविक अनुभवों को काल्पनिक परिस्थितियों में ढालने की क्षमता का विकास करने लगता है। इस समय बालक में परिकल्पना विकसित करने की क्षमता एवं विसंगंतियों के संबंध में विचार करने की क्षमता का भी विकास होने लगता है।

ब्रूनर का सिद्धांत

ब्रूनर अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने मानव के संज्ञानात्मक मनोविज्ञान तथा संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त पर उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने मुख्य रूप से दो बातों पर ध्यान दिया। पहला, यह कि शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से किस प्रकार व्यक्त करता है और दूसरा यह कि शैशवावस्था और बाल्यावस्था में बालक चिन्तन कैसे करता है?

ब्रूनर का सिद्धान्त बालक के पूर्व अनुभवों तथा नई विषय-वस्तु में समन्वय के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने पर बल देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विषय-वस्तु जो सिखाई जानी है, ऐसे अनुक्रम व बारम्बारता से प्रस्तुत की जाये, जिससे बच्चे तार्किक ढंग से एवं अपनी कठिनाई स्तर के अनुसार सीखते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, शिक्षा बालक में व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों गुणों का विकास करती है। यह सिद्धान्त सीखने में पुनर्बलन, पुरस्कार व दण्ड आदि पर बल देता है।

ब्रूनर ने दो प्रकार की सम्बद्धता पर बल दिया-

(1) व्यक्तिगत सम्बद्धता

(2) सामाजिक सम्बद्धता

ब्रूनर के अनुसार, पाठ्यक्रम तैयार करके बच्चों को सीखने की लिए तत्पर करें। सीखने की परिस्थिति में बच्चे सक्रिय रूप से भाग लें।

सीखने सिखाने की प्रक्रिया में अन्तदर्शी चिन्तन अधिक उपयोगी है। हर विषय की संरचना होती है, उनके मूल सम्प्रत्यय, नियम व विधियां होती हैं, उसको सीखे बिना विषय का ज्ञान सम्भव नहीं। जो ज्ञान स्वयं खोज द्वारा प्राप्त किया जाता है, वही उसके लिए सार्थक व टिकाऊ होता है। जो कुछ पढ़ाया-सिखाया जाये उसका व्यक्ति व समाज दोनों से सम्बन्ध हो।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। उन्होंने मानसिक अवस्थाओं का वर्णन किया। इन अवस्थाओं के अनुसार शिक्षण विधियों व प्रविधियों का प्रयोग करना चाहिये। इनकी अन्वेषण विधि द्वारा छात्रों में समस्या समाधान की क्षमता का विकास किया जा सकता है। इसके ज्ञान से छात्र पर्यावरण को समझ कर उसका उपयोग कर सकता है।

वायगोत्स्की के विचार

रूसी वैज्ञानिक लेव वायगोत्स्की ने संज्ञानात्मक विकास को सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में स्पष्ट किया है। पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत, जिसमें बालक को स्वयं

खोज करके सीखने (Exploration) की प्रक्रिया और परिपक्वता पर बल दिया गया था, उसे वायगोत्स्की ने स्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार बालक के संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक कारक और भाषा का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। उनका मत था कि बालक योग्य साथी बालकों के साथ, विभिन्न जटिल संकल्पनाओं और विचारों को भी समझ सकता है जो अकेले शायद वह न समझ सके।

टिप्पणी

वायगोत्स्की के अनुसार, बालक जिस आयु में भी कोई संज्ञानात्मक कौशल सीखते हैं उनका अधिगम इस बात पर निर्भर करता है कि उनकी संस्कृति में वह कौशल कितना स्वीकार्य है। उनके मतानुसार, संज्ञानात्मक विकास एक अन्तर्वैयक्तिक सामाजिक परिस्थिति में सम्पन्न होता है। इस परिस्थिति में बालक के वास्तविक विकास के स्तर जहां से बिना किसी की मदद के कार्य कर सकते हैं, की पहचान की जाती है। फिर बालक को उसके सम्भाव्य विकास के स्तर तक ले जाने का प्रयास किया जाता है जहाँ वह योग्य एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों के सहारे से पहुंच सकता है। इन दोनों स्तरों के अन्तर को वायगोत्स्की ने समीपस्थ विकास का क्षेत्र का नाम दिया। समीपस्थ विकास के क्षेत्र को इस तरह से समझा जा सकता है कि वह ऐसे कठिन कार्यो की एक सीमा है, जिन्हें वह अकेले नहीं कर सकता लेकिन अगर कुछ योग्य व्यक्तियों, बड़े व कुशल लोगों का सहारा मिले तो उस कार्य को करना संभव हो जाता है।

उसे एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। दो हमउम्र बालक क और ख अपनी समायोजन की समस्याओं का समाधान नहीं कर पा रहे हैं। इन दोनों को माता-पिता, शिक्षक एवं साथियों से निर्देशन की व्यवस्था की गई। अब पाया गया कि इन सबके बावजूद क समायोजन नहीं कर पाता है परन्तु ख कर पाता है। यहां यह कहना उचित नहीं होगा कि क और ख दोनों का संज्ञानात्मक विकास बराबर है। वायगोत्स्की के अनुसार दोनों बालकों के समीपस्थ विकास के क्षेत्र में अन्तर है। समीपस्थ विकास के क्षेत्र का इतना महत्व इसलिए है क्योंकि यह जानने में मदद करता है बच्चे अपने स्तर पर क्या कर सकते हैं तथा शिक्षक या माता-पिता बालक के संज्ञानात्मक विकास को उनकी जैविक परिपक्वता के सीमा क्षेत्र तक बढ़ा सकते हैं। जब बालक वयस्कों के साथ सामाजिक अन्तः क्रिया करता है तब एक प्रकार से पारस्परिक शिक्षण की ही तकनीक से होता है। वहाँ शिक्षक और बालक किसी क्रिया को क्रमानुसार करते हैं और शिक्षक बालक के लिए एक आदर्श होता है जिसका बालक अनुसरण करता है।

इन सारी अन्तः क्रियाओं में शिक्षक (या पालक) बालक के लिए एक पाड़ (Scaffolding) की तरह कार्य करता है, जिसमें बालक के द्वारा किये गये नवीन कार्यो को शिक्षक समर्थन या सहारा प्रदान करते हैं, जब तक आवश्यक है। फिर धीरे-धीरे छात्र बिना समर्थन को पूर्ण स्वतंत्र होकर कार्य करने लगते हैं। पाड़ से तात्पर्य एक ऐसी मानसिक संरचना से है, जो नये कार्यो या नये चिन्तन को करते समय शिक्षक (या पालक) बालक को सहारे के रूप में प्रदान करते हैं।

वायगोत्स्की के अनुसार, संज्ञानात्मक विकास में भाषा और चिन्तन का प्रमुख स्थान है। इनके अनुसार बालक अपने व्यवहार को नियोजित और निर्देशित करने के लिए भाषा का प्रयोग करते हैं, सिर्फ सम्प्रेषण के लिए नहीं। वे कहते हैं कि प्रारम्भ में चिंतन एक-दूसरे में स्वतंत्र होते हैं परन्तु धीरे-धीरे वे आपस में मिल जाते हैं। उनका मत है कि कोई भी मानसिक कार्य करने से पहले बालक में बाहरी समाज से संवाद होना

आवश्यक है। बाहरी दुनिया से बात करने के लिए भाषा को सीखना आवश्यक है। बालक जैसे ही भाषा सीखता है वह भीतरी सम्भाषण प्रारम्भ कर देता है। सभी बालक अपने अन्दर आत्म वार्तालाप की आदत बना लेते हैं। यही वार्तालाप आगे जाकर उनका चिन्तन बनकर सामने आता है।

निर्मितवादी शिक्षक की भूमिका

निर्मितवादी दृष्टिकोण से ज्ञान की अस्थायी, विकासशील, आन्तरिक निर्मित तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, मध्यस्थ होना बताया गया है। ज्ञान का निर्माण किया जाता है । अधिगम के लिए क्रिया आवश्यक है। यह एक अन्वेषण आधारित अधिगम है जिसमें साहचर्य, समूह आदि के द्वारा अधिगम किया जाता है। इस दृष्टिकोण में शिक्षक एक सहयोगी व निर्देशक का कार्य करता है। शिक्षक के कुछ उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं-

1. शिक्षक, छात्र को प्रोत्साहित करें और उसे स्वतन्त्र एवं पहल करने का अवसर दें।
2. शिक्षक प्राथमिक सामग्री व अव्यवस्थित आँकड़ों के साथ-साथ भौतिक सामग्री व एक-दूसरे को प्रभावित करने वाले हस्तकौशलों का प्रयोग करें।
3. कार्य का निर्धारण करते समय शिक्षक संज्ञानात्मक तथ्य, जैसे-वर्गीकरण, निरीक्षण, परीक्षण और रचना को भी ध्यान में रखें।
4. शिक्षक छात्रों की अनुक्रियाओं को नयी युक्तियों आदि में परिवर्तित करें।
5. शिक्षक छात्र के पूर्व ज्ञान को अवश्य जाँचें तब ही उन्हें नयी जानकारी दें।
6. शिक्षक छात्रों को स्वयं से व एक-दूसरे से आपस में वार्तालाप करने को कहें।
7. शिक्षक छात्रों को स्वयं से प्रश्न पूछने व आपस में प्रश्न पूछने को प्रोत्साहित करते रहें।
8. शिक्षक छात्रों की प्रारम्भिक अनुक्रियाओं को थोड़ा-सा विस्तार दें ताकि उनकी समझ बढ़े।
9. शिक्षक छात्रें को कुछ नये अनुभव प्रदान करें ताकि वे वार्तालाप में कुछ पुरानी और नयी परिकल्पना में अन्तर कर सकें ।
10. प्रश्न करने के लिये समय भी दें ।
11. शिक्षक छात्रों को किसी ज्ञान के निर्माण व कुछ सृजनात्मक कार्य करने के लिए भी समय दें।
12. शिक्षक छात्रों की उत्सुकता को हमेशा विकसित करें।

चाम्सकी का सिद्धांत

चाम्सकी पोलैंड मूल के अमेरिकी भाषाविद् हैं। इन्होंने व्यवहारवाद में भाषा की आदत की प्रवृत्ति के स्थान पर मानव की भाषिक क्षमता को नियमों के समुच्चय के रूप में निरूपित किया।

आज सबसे अधिक मान्यता प्राप्त विचारकों में से एक उनका काम व्यापक और बहुमुखी है। उन्होंने भाषा विज्ञान, विकास मनोविज्ञान, दर्शन और राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में सिद्धांतों, अध्ययनों और गहन ज्ञान का विकास किया है।

टिप्पणी

चाम्सकी के अनुसार, बच्चे भाषण के लिए जन्मजात क्षमता के साथ पैदा होते हैं। वे संचार और भाषाई संरचनाओं को सीखने और आत्मसात करने में सक्षम हैं। चाम्सकी ने भाषा के विकास में एक नया प्रतिमान प्रस्तावित किया। इसके अनुशीलन के अनुसार, सभी भाषाएं जो मानव उपयोग करता है उनकी अपनी संरचना में सामान्य विशेषताएं हैं। प्रोफेसर चाम्सकी ने कहा कि बचपन के दौरान भाषा का अधिग्रहण भाषा की बुनियादी संरचना को पहचानने और आत्मसात करने के लिए मनुष्य की क्षमता के लिए कारगर हो सकता है, संरचना जो किसी भी भाषा की अनिवार्य जड़ है।

बचपन के दौरान भाषा के विकास का जो सिद्धांत, चाम्सकी ने दिया था, एक विवादास्पद उपदेश पर आधारित है- "मानव भाषा हमारे जीन द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को डिक्रिप्ट करने का उत्पाद है"। यह स्थिति विकास के पर्यावरणीय सिद्धांतों के साथ गहराई से टकराती है, जो कि व्यक्ति पर पर्यावरण के प्रभाव की भूमिका और व्यक्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न संदर्भों के अनुकूल होने की क्षमता पर जोर देती है।

इसके अलावा, चाम्सकी ने कहा कि बच्चों में भाषा के व्याकरण को समझने की सहज क्षमता होती है। वे अपने अनुभवों और सीखने के माध्यम से कौशल विकसित करते हैं, अपने परिवार या सांस्कृतिक संदर्भ की परवाह किए बिना। व्याकरण को समझने के लिए चाम्सकी "सार्वभौमिक व्याकरण", शब्दों का उपयोग करते हैं।

यह सर्वविदित है कि बचपन के दौरान, एक अवधि है "महत्वपूर्ण" जिसके दौरान हमारे लिए भाषा सीखना आसान हो जाता है। चाम्सकी कहते हैं कि बच्चे जो कहते हैं उसके एक चरण से गुजरते हैं "भाषाई चेतावनी"। इस प्रमुख अवधि के दौरान, अन्य जीवन चरणों की तुलना में नई भाषाओं की समझ और सीखने की क्षमता अधिक होती है। चाम्सकी के शब्दों में "हम सभी एक विशिष्ट गणितीय अवधि से गुजरते हैं, जिसमें पर्याप्त बाहरी उत्तेजनाओं के लिए धन्यवाद, एक भाषा बोलने की हमारी क्षमता तेजी से विकसित होगी"। इसलिए, जिन बच्चों को उनके बचपन और किशोरावस्था के दौरान कई भाषाएं सिखाई जाती हैं, निश्चित रूप से वे इन भाषाओं के आधारों को सही ढंग से हासिल कर पाएंगे। वयस्कों के साथ ऐसा नहीं होता है। चाम्सकी के सिद्धांत के अनुसार, भाषा अधिग्रहण की प्रक्रिया केवल तभी होती है, जब बच्चा भाषा के निहित मानदंडों को घटाता है, जैसे कि वाक्य रचना या व्याकरण की धारणाएं।

हमारे लिए बचपन में भाषा विकसित करने और सीखने में सक्षम होने के लिए, चाम्सकी ने तर्क दिया कि हम सब एक हैं, "भाषा अधिग्रहण डिवाइस" हमारे दिमाग में है। इस उपकरण के अस्तित्व की परिकल्पना हमें उन मानदंडों और पुनरावृत्तियों को सीखने में सक्षम करेगी जो भाषा का निर्माण करते हैं। इन वर्षों में, चाम्सकी अपने सिद्धांत की समीक्षा कर रहे थे और इसमें बचपन के दौरान अधिग्रहण के संबंध में भाषा के कई मार्गदर्शक सिद्धांतों का विश्लेषण शामिल था।

जैसा कि चाम्सकी बताते हैं, मानव भाषा हमें विचारों, सूचनाओं और भावनाओं के अनंत को व्यक्त करने की अनुमति देती है। नतीजतन, भाषा एक सामाजिक निर्माण है, जो विकसित होना बंद नहीं करता है। समाज अपने मौखिक और लिखित दोनों संस्करणों में भाषा के मानदंडों और सामान्य उपयोगों पर दिशा-निर्देश निर्धारित कर रहा है। वास्तव में, बच्चों के लिए भाषा का विशेष रूप से उपयोग करना बहुत आम है। अवधारणाओं का मिश्रण करना, शब्दों का आविष्कार करना, दूसरों को विकृत करना, अपने तरीके से

वाक्यों का निर्माण करना ... थोड़ा-थोड़ा करके, बच्चों का मस्तिष्क भाषा के नियमों और पुनरावृत्तियों को आत्मसात करता है, प्रत्येक को प्रतिबद्ध करता है। कम समय की गलतियों और ठीक तरह से कलाकृतियों की विस्तृत शृंखला का उपयोग करता है, जो भाषा प्रदान करती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. छात्रों के अधिगम या सीखने की प्रक्रिया को क्या गंभीर रूप से प्रभावित करता है?

   (क) घर (ख) शहर

   (ग) वातावरण (घ) राष्ट्र

8. प्रसंग आधारित शिक्षण शिक्षण के किस सिद्धांत पर आधारित है?

   (क) संरचनावादी (ख) भाग्यवादी

   (ग) राष्ट्रवादी (घ) समाजवादी

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)
4. (घ)
5. (क)
6. (ख)
7. (ग)
8. (क)

1.7 सारांश

प्रारम्भ में सामाजिक अध्ययन विषयों के उस समूह के लिए नाम दिया गया था जिसमें इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा अर्थशास्त्र आदि सम्मिलित थे। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो इस विषय के आरम्भ के लिए विश्व, संयुक्त राज्य अमेरिका का ऋणी है। यह नामकरण 1892 ई. में किया गया था। बाद में इस समूह में समाजशास्त्र को और जोड़ा गया परन्तु सामाजिक अध्ययन विषय के इस स्वरूप को सरकार की ओर से 1916 तक मान्यता प्राप्त नहीं हुई। 1916 में कमेटी ऑन दी सोशल स्टडीज ऑफ दी नेशनल एजुकेशन एसोसियेशन्स कमीशन ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन रिआरगेनाइजेशन ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन के प्रतिवेदन में इस विषय को मान्यता प्रदान की गई और उसे एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय के रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया गया।

1921 में सामाजिक अध्ययन विषय के सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन करने के लिए अमेरिका में राष्ट्रीय परिषद का निर्माण किया गया। इस परिषद के समन्वित रूप की सम्भावनाओं पर गहन अध्ययन किया गया। 1934 में सोशल स्टडीज पर एक कमीशन की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने इसके विकास के लिए सुझाव दिए।

इसके उपरान्त उस क्षेत्र में बहुत से अनुसंधान कार्य किये गये, जिनके फलस्वरूप सामाजिक अध्ययन विषय के एकीकृत स्वरूप का विकास हुआ और इसको एक क्षेत्रीय अध्ययन विषय के रूप में मान्यता दी गई। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इग्लैण्ड और यूरोप जैसे अन्य देशों पर भी विषयों के समन्वयीकाण पर आधारित इस विचारधारा पर प्रभाव पड़ा। हमारे देश में महात्मा गांधी द्वारा प्रचलित 'बेसिक शिक्षा' के माध्यम से विभिन्न विषयों को समन्वित करने का प्रयास किया गया। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग तथा विश्वविद्यालय आयोग ने भी एक समन्वित विषय को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में शैक्षिक तकनीक सीखने के साधनों की योजना और व्यवस्था के लिए आधार प्रस्तुत करते हुए शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है। इसलिए इस विषय की उपयोगिता को देखते हुये राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद ने शैक्षिक तकनीकी का विभाग खोला है। इसमें दृश्य– श्रव्य सहायक सामग्री विभाग को सम्मिलित कर दिया गया है। सामाजिक अध्ययन के वर्तमान पाठ्यक्रम का अवलोकन करने पर उसमें जो दोष दिखाई देते हैं उनके आधार पर इसमें सुधार की बहुत आवश्यकता है। किसी विषय के विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का बहुत बड़ा योगदान होता है।

प्रत्येक सामाजिक क्रिया के मूल में कोई न कोई आवश्यकता निहित होती है। यह आवश्यकता किसी भी विषय की आधारशिला होती है, जिसके सहारे विषय आगे बढ़ता है। सामाजिक अध्ययन का सीधा संबंध सामाजिक वास्तविकता को यथासंभव वस्तुनिष्ठ एवं क्रमबद्ध रूप में समझना तथा नियमों का प्रतिपादन करना है। पी.वी. यंग के अनुसार – ''सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य जटिल सामाजिक घटनाओं को स्पष्ट रूप देना, अनिश्चित तथ्यों को निश्चित रूप प्रदान करना, सामाजिक जीवन की भ्रमित धारणाओं से संबंधित तथ्यों को संशोधित करना है।

भारतीय समाज के विभिन्न रूपों के उदाहरण हैं– ग्रामीण समाज, नगरीय समाज तथा जनजातीय समाज। इन सभी समाजों के सामुदायिक स्वरूप, संबंधों के सांस्कृतिक आधार तथा धनोपार्जन के तरीकों में भिन्नता होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि में, समाज अनौपचारिक, घनिष्ठ प्राथमिक संबंधों की प्रधानता तथा आकार से पहचाना जाता है। समाज का प्रकृति एवं मनुष्य दोनों से करीबी संबंध होता है।

ए.आर. देसाई के कथनानुसार, "भारतीय समाज की इकाई गांव है, यह एक रंगमंच है, जहां ग्रामीण जीवन का प्रमुख भाग स्वयं प्रकट होता है और कार्य करता है। ग्राम सामूहिक निवास की प्रथम स्थापना है और कृषि अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति है।"

जे.पी. सिंह ने 'समाज विज्ञान विश्वकोष' में समाज के बारे में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं– "किसी स्थानीय क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं के

बीच साहचर्य भाव के कारण गठित समुदाय जिसमें अधिकांश व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और दूसरी सेवाओं का सामूहिक जीवन में उपयोग करते हैं तथा मूल प्रवृत्तियों और व्यवहार में सामान्य एकता होती है ऐसे समुदाय का आकार छोटा, जनसंख्या के घनत्व का कम होना एवं कृषि मुख्य व्यवसाय होता है।

टिप्पणी

सामाजिक अध्ययन एक बहुत व्यापक क्षेत्र है, जिसमें कुछ लोगों की रुचि होती है क्योंकि इसमें मानव व्यवहार और प्रवृत्तियों का अध्ययन करना शामिल है। यह किसी को गहराई से समझने में सक्षम बनाता है तथा यह बताता है कि मानव मस्तिष्क कैसे काम करता है और फलस्वरूप यह समझाता है कि लोग इस तरह से व्यवहार क्यों करते हैं। सामाजिक अध्ययन, विज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो मानव शरीर की संरचना की खोज करने का प्रयास करने वाले जीव विज्ञान के विपरीत मनुष्यों के व्यवहार संबंधी पहलू पर अधिक कार्य करता है।

सामाजिक अध्ययन एक दिलचस्प विषय है क्योंकि मानव व्यवहार को समझना और भविष्यवाणी करना वास्तव में बहुत कठिन है। लोगों का मिजाज हर मिनट बदलता है और उनके दिमाग के काम करने का तरीका भी हर मिनट बदलता है। हम शायद ही जानते हैं कि मानव के मस्तिष्क के अंदर क्या है और वहां क्या चल रहा है? लेकिन सामाजिक अध्ययन पूरी तरह से मानव व्यवहार के बारे में नहीं है क्योंकि इसमें इतिहास और भूगोल भी शामिल हैं। दोनों अभी भी मानव जीवन से बहुत अधिक जुड़े हुए हैं लेकिन मनुष्यों को प्रभावित करने वाले बाहरी कारकों से अधिक संबंधित हैं। यदि आप मानव व्यवहार को समझना चाहते हैं तो बुनियादी सामाजिक अध्ययन कौशल हैं, जिन्हें आपको अपने ज्ञान का पूरी तरह से दोहन करने और ऐसी जटिल प्रजातियों को समझने में सक्षम होने के लिए सीखने की आवश्यकता है।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **गहन** - गहरा, गंभीर
- **उपरांत** - पश्चात, बाद
- **तात्पर्य** - आशय, अर्थ, मतलब
- **जटिल** - कठिन, विकट, मुश्किल
- **विद्वान** - योग्य, काबिल, दिग्गज
- **दक्षता** - योग्यता, महारत
- **समानता** - बराबरी, एकरूपता

1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक अध्ययन क्या है?
2. मानवीय ज्ञान को मूलतः कितने भागों में विभाजित किया गया है?
3. समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक अध्ययन विषय का पाठ्यक्रम में क्या स्थान है?

4. सूचना एवं साक्ष्यों के संकलन के प्रमुख स्रोत क्या हैं?
5. सामाजिक अध्ययन सीखने की मुख्य विधियां क्या हैं?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक अध्ययन के अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
2. विद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित एक विषय के रूप में सामाजिक अध्ययन की समीक्षा कीजिए।
3. न्याय, समानता तथा समता के संदर्भ में सामाजिक वास्तविकताओं का विश्लेषण कीजिए।
4. समाज का अध्ययन करने की प्रमुख विधियों की व्याख्या कीजिए।
5. पियाजे, ब्रूनर, वायगोत्सकी तथा चाम्सकी द्वारा बालकों के विकास तथा उनमें समयानुसार होने वाले परिवर्तनों के बारे में किए गए अध्ययन की विवेचना कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Bhattachraya, S and Darji. 1996. *Teaching Social Studies Indian School*. Baroda: Acharya Book Depot.

Jarolimiek, John. 1977. *Social Studies in Elementary Education*. New York: Macmillan Publishing Co.

NCERT. 2005. *National Curriculum Framework*. New Delhi.

Sharma, R.A. 2001. *Social Science Teaching*. Meerut: Loyal Book Depot.

Wesley, E. B. 2004. *Teaching Social Studies in Elementary Schools*. Boston: D C Health and Company.

विनईंग एंड विनईंग, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज इन सेकंडरी स्कूल*, न्यूयॉर्क।

ब्लूम बी.एस., *टेक्सोनोमी ऑफ एजुकेशनल ऑब्जेक्टिव्स*, एम.सी.के. न्यूयॉर्क।

कोचर एस.के., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*, नेथून एंड कं. लिमिटेड, लंदन।

ऑल इण्डिया कॉउंसिल, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*।

शर्मा आर.ए., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*, सूर्या प्रकाशन, मेरठ।

इकाई 2 लक्ष्य, उद्देश्य, विधियां और मूल्यांकन

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य
- 2.2.1 उच्चतर प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य
- 2.2.2 माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य

2.3 शिक्षण अधिगम के संसाधन
- 2.3.1 विद्यालय और समुदाय में शिक्षण अधिगम संसाधनों की पहचान और उनके प्रकार
- 2.3.2 कम लागत और शून्य लागत वाले जसत का चयन और निर्माण

2.4 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के शैक्षणिक उपागम (पद्धतियां)
- 2.4.1 व्यवहारवादी से रचनावादी दृष्टिकोण की ओर परिवर्तन
- 2.4.2 प्रोजेक्ट विधि और पर्यटन/भ्रमण विधि
- 2.4.3 सिमुलेशन (अनुकरण) विधि और भूमिका निर्वहन विधि तथा अन्य शिक्षण अधिगम विधियां
- 2.4.4 व्याख्यान और विचार-विमर्श विधि
- 2.4.5 विचार-विमर्श विधि
- 2.4.6 कहानी कथन विधि

2.5 सामाजिक अध्ययन अधिगम का मूल्यांकन
- 2.5.1 मूल्यांकन : अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य
- 2.5.2 आकलन, मापन और मूल्यांकन में अंतर
- 2.5.3 मूल्यांकन के प्रकार
- 2.5.4 मूल्यांकन की तकनीकें और उपकरण
- 2.5.5 शिक्षक निर्मित परीक्षण
- 2.5.6 शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण उपक्रम (तैयारी)

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

सामाजिक अध्ययन शिक्षण अधिगम में शिक्षण के लक्ष्यों, उद्देश्यों, विधियों और मूल्यांकन की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षण अधिगम में कई संसाधन प्रयोग किए जाते हैं, जिनके द्वारा सामाजिक अध्ययन अधिगम का मूल्यांकन करना सहज और सरल हो जाता है।

अधिगम अथवा सीखना मानव जीवन की अहम प्रक्रिया है जो मानव के विकास में अनिवार्य भूमिका निभाती है। व्यक्ति के जन्म से ही अधिगम प्रक्रिया का आरंभ हो जाता है। मां के गर्भ से ही शिशु का शिक्षण आरंभ हो जाता है जोकि संपूर्ण जीवन तक निरंतर चलता रहता है। अधिगम अथवा सीखने का कोई निश्चित आधार नहीं है।

व्यक्ति किसी भी घटना, उदाहरण आदि से कुछ भी ज्ञानपूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सीख सकता है। अधिगम बाह्य व आंतरिक दोनों हो सकते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति का अधिगम स्तर भी भिन्न होता है।

टिप्पणी

मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिगम को विविध तरह से प्रतिपादित किया गया है। परंपरागत विधियों के साथ–साथ आधुनिक विधियों का भी प्रतिपादन किया गया है जिनमें से कई विधियों को प्रभावकारी तो कई दूसरी विधियों को इतना महत्वपूर्ण नहीं माना गया है।

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य, उद्देश्य, शिक्षण अधिगम के संसाधन, शिक्षण के शैक्षणिक उपागम तथा सामाजिक अध्ययन अधिगम के मूल्यांकन का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्यों को समझ पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण–अधिगम के विभिन्न संसाधनों की पहचान, उनके प्रकार, कम लागत तथा शून्य लागत वाले TLR के चयन और निर्माण की विधियों का अध्ययन कर पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण की विभिन्न विधियों तथा उनसे संबंधित कौशल के बारे में जान पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन अधिगम के मूल्यांकन के प्रकार, तकनीकों, उपकरणों और प्रयुक्त परीक्षणों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर पाएंगे।

2.2 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य

सामाजिक अध्ययन शब्द से अभिप्राय है "मानवीय परिप्रेक्ष्य में समाज का अध्ययन।" सामाजिक अध्ययन में समाज से संबंधित सभी विषयों व क्रियाओं का, मनुष्य के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का तथा विश्व की संपूर्ण मानव जाति का अध्ययन किया जाता है।

प्राचीन काल में समाज की संरचना इतनी जटिल नहीं थी। उस समय उसकी समस्याएं भी सरल हुआ करती थीं। परंतु समय परिवर्तन के साथ–साथ समाज की समस्याएं भी जटिल होती गईं। विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने एक ओर जहां सुख–सुविधाएं प्रदान की, वहीं दूसरी ओर कई जटिल समस्याओं को भी जन्म दिया। इन समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने तथा उनके उचित समाधान के लिए सहयोग देने का प्रशिक्षण व्यक्ति को बचपन से ही प्राप्त होना चाहिए। तभी आगे चलकर वह समाज का उपयोगी सदस्य सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान या सामाजिक अध्ययन विषय को स्कूली शिक्षा में सम्मिलित किया गया है।

प्रायः सामाजिक अध्ययन तथा सामाजिक विज्ञान का एक ही अर्थ लगाया जाता है परंतु वास्तव में इन दोनों में अंतर है। दोनों में मानवीय संबंधों का अध्ययन करते हैं इसलिए यह अंतर बाह्य रूप में दिखाई नहीं देता। सामाजिक अध्ययन का संबंध मुख्यतः मानव के सामाजिक पक्ष से होता है और इसका संबंध विद्यालय पाठ्यक्रम से होता है। सामाजिक विज्ञान का संबंध मानवीय संबंधों के उच्चतर एवं विद्वतापूर्ण अध्ययन से है, जिसमें अनुसंधान, प्रयोग तथा खोज के लिए स्थान होता है।

2.2.1 उच्चतर प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य

उच्चतर प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्यों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

लक्ष्य

प्राथमिक स्तर पर छात्रों में धीरे-धीरे सामाजिकता का विकास होता है। इस स्तर पर बच्चों को सामाजिक अध्ययन की शिक्षा देते समय इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखा जाना चाहिए। यह स्तर छात्रों के सीखने का सबसे पहला स्तर होता है तथा इस स्तर पर उनके अनुभव सीमित होते हैं। इस स्तर पर छात्रों को सामाजिक अध्ययन की शिक्षा देकर उनमें सामाजिकता का विकास किया जा सकता है। प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम में प्रमुख कुशलताओं के साथ-साथ छात्रों को समाज में रहने के तौर-तरीकों से भी परिचित कराया जाना आवश्यक होता है।

उद्देश्य

प्राथमिक स्तर पर छात्रों को सामाजिक अध्ययन की शिक्षा देने के निम्न उद्देश्य होने चाहिए-

- सामाजिक अध्ययन की शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जो उनकी भावनाओं एवं अभिरुचियों के अनुकूल हो।
- इससे छात्रों का सर्वांगीण विकास हो सके।
- सामाजिक अध्ययन की शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जिससे छात्रों को घर एवं विद्यालय की विभिन्न बातों का ज्ञान प्राप्त हो सके। इसका कारण यह है कि इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से छात्र का शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास होता है।
- जब छात्र घर, परिवार और समुदाय के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं तो उनमें समझ विकसित होती है तथा वे परिवार का महत्व समझ पाते हैं।
- सामाजिक अध्ययन के शिक्षण का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह छात्रों में निम्न प्रकार की समझ विकसित करे :
    1. परिवार वह मूलभूत संस्था है, जो हमारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करती है।
    2. परिवार के प्रत्येक सदस्य की अपने परिवार के प्रति कुछ जिम्मेदारियां होती हैं।

3. परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे से प्रेम एवं आदर का भाव रखते हैं तथा वे एक-दूसरे के विचारों को समझते हैं।
4. परिवार के सभी सदस्यों को एक-दूसरे की परेशानी या आवश्यकताएं समझनी चाहिए तथा उनके बारे में एक-दूसरे को सहयोग करना चाहिए।

टिप्पणी

- विद्यालय के बारे में छात्रों को यह बताना चाहिए कि यह भी एक परिवार की तरह होता है, जिसमें छात्र एवं शिक्षक होते हैं।
- छात्रों को इस बात की शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे समाज का पालन किस प्रकार करें तथा एक-दूसरे का आदर कैसे करें।
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में चारित्रिक गुणों का विकास करना होता है।
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत छात्रों को आस-पड़ोस के बारे में शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे कि उनका सर्वांगीण विकास हो सके।
- सामाजिक अध्ययन के अंतर्गत छात्रों को भारत की विविधता के बारे में परिचित कराया जाना चाहिए। उन्हें यह बताना चाहिए कि भारत में विभिन्न धर्म, जाति, संस्कृति, रीति-रिवाजों के लोग रहते हैं लेकिन अंत में वे सभी भारतीय हैं तथा एक ही देश के नागरिक हैं।
- सामाजिक अध्ययन के अंतर्गत छात्रों को एकता का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए।

2.2.2 माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य

माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्यों को क्रमश: इस प्रकार समझा जा सकता है-

लक्ष्य

लक्ष्य पूर्व निर्धारित साध्य होते हैं, जो किसी क्रिया का मार्गदर्शन करते हैं। विद्वानों ने माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के निम्न दो लक्ष्य बताएं हैं-

1. सामान्य लक्ष्य

- छात्रों को वातावरण, रुचि एवं योग्यतानुसार, भावी जीवन की तैयारी के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना।
- छात्रों को लोकतांत्रिक एवं प्रजातांत्रिक विषयों की जानकारी देना।
- छात्रों को सामाजिक अध्ययन के व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान देना।
- छात्रों में सहनशीलता, सामाजिकता, धैर्य, सहयोग एवं मानवीय गुणों का विकास करना।

2. मुख्य लक्ष्य

- छात्रों को समाजशास्त्र के तत्वों का ज्ञान देना।
- इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र एवं अर्थशास्त्र का संयुक्त स्वरूप प्रस्तुत करके उसकी जानकारी देना।

- छात्रों में स्वस्थ चिंतन तथा तर्कशक्ति का विकास करना।
- छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करना।
- छात्रों में विश्व-बंधुत्व की भावना को विकसित करना।
- छात्रों को आदर्श एवं नैतिक जीवन की कला का ज्ञान देना।
- छात्रों में नैतिकता की भावना का विकास करना।

उद्देश्य

माध्यमिक स्तर पर छात्रों को सामाजिक अध्ययन की शिक्षा देने के निम्न उद्देश्य होते हैं:

- **संस्कृति व सभ्यता के बारे में ज्ञान प्रदान करना :** सामाजिक अध्ययन मानव के सामाजिक संबंधों का अध्ययन करता है। मानव सभ्यता का विकास और इसका प्राचीन इतिहास छात्रों को वांछित ज्ञान प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक अध्ययन शिक्षण का मुख्य उद्देश्य रहन-सहन तथा वेशभूषा, राष्ट्रीय पर्व, उत्सव, विभिन्न धर्मों के सिद्धांत आदि का ज्ञान छात्रों के लिए अति आवश्यक है, तभी उन्हें समाज के व्यापक स्वरूप तथा सांस्कृतिक विविधता का विस्तृत ज्ञान हो पायेगा।
- **प्रजातंत्र के बारे में शिक्षित करना :** आज लगभग पूरे विश्व के देशों द्वारा प्रजातांत्रिक पद्धति को अपनाया जा चुका है। यह लोगों की, लोगों द्वारा लोगों के लिए की गई व्यवस्था है। चुनाव के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों को चुनना फिर उनके द्वारा सरकार बनाना एवं संतोषजनक कार्य न करने पर सरकार को हटाना तथा जनता के लिए कानून बनाना तथा समय-समय पर उसमें आवश्यक संशोधन करना आदि कार्य कभी प्रत्यक्ष तथा कभी अप्रत्यक्ष तरीके से नागरिकों के द्वारा ही किये जाते हैं। वैसे तो यह कार्य सरकार के प्रतिनिधि करते हैं लेकिन उनका चयन जनता द्वारा किया जाता है इसलिए यह माना जाता है कि यह कार्य जनता ने किया है। दूसरे शब्दों में, किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता पूर्णतया नागरिकों पर निर्भर करती है। इस प्रकार, सामाजिक अध्ययन हमें प्रजातंत्र के बारे में शिक्षित करता है।
- **नागरिक गुणों का विकास :** मानव समाज के साथ-साथ राज्य का भी सदस्य होता है। किसी भी राज्य का नागरिक होने की वजह से उसके कुछ कर्तव्य भी होते हैं, जिनका निर्वहन आवश्यक होता है। अपने इन कर्तव्यों का पालन करना उसके लिए कानूनी रूप से भी जरूरी है। इससे बालकों को अपने भावी जीवन के लिए नागरिकता की शिक्षा मिलती है तथा उनके आदर्श नागरिक बनने का मार्ग प्रशस्त होता है।
- **सामाजिक आचरण का विकास करना :** सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक अन्य उद्देश्य छात्रों में सामाजिक आचरण का विकास करना भी होता है, जिससे कि उनके गुणों में सामाजिकता का समावेश हो सके। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है तथा उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सफल जीवन यापन के लिए हर कदम पर समाज की आवश्यकता होती है। इन भावनाओं को विकसित करना एवं छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना ही सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य होता है। किसी भी कार्य को करते समय छात्रों के मन में यह बात अवश्य होनी चाहिए

कि वे समाज का अभिन्न अंग हैं तथा उन्हें ऐसा व्यवहार करना है, जिससे कि समाज के अन्य सदस्यों को असुविधा का सामना न करना पड़े।

टिप्पणी

- **सामाजिक विकास का ज्ञान :** सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य छात्रों के सम्मुख समाज के अतीत एवं विकास की स्पष्ट झांकी प्रस्तुत करना है, जिससे कि वर्तमान ढांचे को आसानी से समझा जा सके। उदाहणार्थ: मानव का विकास कैसे हुआ? वह क्या खाता था? वह क्या पहनता था? आज उसके सापेक्ष किस प्रकार की स्थिति है? आदि।
- **सामाजिक ज्ञान की प्राप्ति :** सामाजिक अध्ययन क्रियाओं का अध्ययन है, जिसमें छात्रों को सामाजिक रीति-रिवाजों, सभ्यता, संस्कृति व नियमों से परिचित कराया जाता है। सामाजिक अध्ययन का उचित ज्ञान संपूर्ण इतिहास व मानव अनुभवों के परिवर्तन तथा विकास के माध्यम के रूप में दिखाता है, जिससे छात्र इस बात से अवगत हो जाते हैं कि वर्तमान समय में व्यक्ति के स्थान पर समाज का महत्व बढ़ रहा है, क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति के कारण सामाजिक परिवर्तन होने स्वाभाविक हैं।
- **व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास :** सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों को भौतिक तथा सामाजिक वातावरण का ज्ञान प्रदान किया जाता है। इसके द्वारा उन्हें सामाजिक समस्याओं से अवगत कराकर परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की शक्ति का विकास किया जाता है, जो कि छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में सहायक होते हैं।
- **छात्रों को सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से परिचित कराना :** छात्रों का सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से परिचित होना आवश्यक है। ये वे वातावरण हैं, जिनमें रहकर छात्र के व्यक्तित्व का विकास होता है। बच्चे के लिए यह जानना आवश्यक है कि वातावरण का निर्माण कैसे होता है, चारों ओर का वातावरण कैसा है तथा उसमें किस प्रकार सुधार किया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन के एकीकृत विषय से छात्र वर्तमान एवं भूतकाल का ज्ञान प्राप्त करके भावी जीवन के लिए तैयार होते हैं।
- **विश्व बंधुत्व की भावना का विकास :** वैज्ञानिक आविष्कारों के बीच परस्पर निर्भरता ने आज के युग में अंतर्राष्ट्रीयता के महत्व को उजागर किया है। उग्र राष्ट्रवाद की वजह से मानव इतिहास ने युद्धों की कड़वाहट का स्वाद चखा है। इसके पश्चात विश्व में शांति तथा सुरक्षा की स्थापना में विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने किस प्रकार की भूमिका निभाई है, उसके बारे में भी उसका जानना आवश्यक है। वर्तमान युग राष्ट्रीयता के संकुचित दायरों में कैद न हो कर वसुधैव कुटुंबकम के सिद्धांत को अपनाए हुए है। अत: यही भावना छात्रों में विकसित करने की आवश्यकता है। इस भावना को जाग्रत करने में सामाजिक अध्ययन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **परस्पर निर्भरता के महत्व को दर्शाना :** वर्तमान युग में सभ्यता की आवश्यकताएं अत्यधिक हो गई हैं। कोई भी व्यक्ति या देश अपनी इन आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अपने दम पर नहीं कर सकता है। आज विश्व व्यापार और विशिष्ट रूप से निर्मित वस्तुओं के आयात-निर्यात के बिना वैश्विक अर्थव्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह निर्भरता आर्थिक क्षेत्र के साथ ही सामाजिक एवं

राजनीतिक क्षेत्र में भी होती है। इन सभी के बारे में छात्रों को जागरूक करना अति आवश्यक है तभी उनमें सहयोग की भावना का विकास हो सकता है।

- **तर्क और चिंतन शक्ति का विकास करना :** सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक अन्य उद्देश्य छात्रों में तर्क और चिंतन शक्ति का विकास करना है। ठोस तथ्यों, तुलनात्मक विश्लेषण तथा समस्या समाधान से संबंधित विषय सामग्री छात्रों में स्पष्ट चिंतन व तर्कशक्ति के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। व्यक्तिगत जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान में छात्रों को इस चिंतन शक्ति और तर्क योग्यता में कदम-कदम पर लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार, सामाजिक अध्ययन इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है।
- **वातावरण के अनुसार स्वयं को ढालने की योग्यता का विकास :** सामाजिक अध्ययन शिक्षण छात्रों में वातावरण के अनुसार स्वयं को ढालने की योग्यता का विकास करता है। भूतकाल तथा वर्तमान समय में घटने वाली घटनाओं की संपूर्ण जानकारी उन्हें वातावरण के अनुरूप ढलने की प्रेरणा प्रदान करती है।
- **अच्छी आदतों व उचित कौशल का विकास :** सामाजिक अध्ययन शिक्षण छात्रों में अच्छी आदतों व उचित कौशल का विकास करता है। उचित अभिवृत्तियां मानव व्यवहार का महत्वपूर्ण अंग हैं। इस विषय के अध्ययन से छात्रों में उचित अभिवृत्तियों का विकास होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण का संबंध निम्न में से किससे होता है?
   (क) मानव के सामाजिक पक्ष से
   (ख) विद्यालय के पाठ्यक्रम से
   (ग) मानवीय संबंधों के उच्चतर एवं विद्वतापूर्ण अध्ययन से
   (घ) उपर्युक्त सभी
2. विद्यालय में किस स्तर पर सामाजिक अध्ययन का शिक्षण होता है?
   (क) उच्चतर प्राथमिक स्तर पर (ख) माध्यमिक स्तर पर
   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

2.3 शिक्षण अधिगम के संसाधन

सामाजिक अध्ययन के संसाधनों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– प्रथम भौगोलिक स्थितियां, जैसे– पर्वत, पठार, पहाड़ियां, सड़कें, फैक्टरी, मिलें, अजायबघर, ऐतिहासिक खण्डहर तथा अन्य स्थान एवं वस्तुएं जिनका निरीक्षण किया जा सके। द्वितीय सामाजिक संस्थाएं– इनमें परिवार, न्यायालय, संघ, टीम, क्लब समुदाय आदि का समावेश होता है। तृतीय संस्कृति से सम्बन्धित विचार– इसमें रीति–रिवाज, परम्पराएं नियम, दृष्टिकोण, विश्वास आदि को सम्मिलित किया गया है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में सामुदायिक संसाधनों का प्रयोग कर छात्रों के ज्ञान में

अधिकाधिक वृद्धि की जा सकती है। इससे शिक्षण भी रोचक, सजीव और प्रभावपूर्ण बनता है।

2.3.1 विद्यालय और समुदाय में शिक्षण अधिगम संसाधनों की पहचान और उनके प्रकार

टिप्पणी

साधारण भाषा में वे सभी साधन जिनका प्रयोग एक शिक्षक शिक्षण के समय करता है; उन्हें शिक्षण सहायक सामग्री या शिक्षण अधिगम के संसाधन कहते हैं। यह श्रव्य–दृश्य साधनों अथवा विधियों में प्रयुक्त होती है। इनके प्रयोग द्वारा शिक्षक सरसता, सहजता एवं स्पष्टता के साथ छात्रों को प्रभावी ढंग से अपनी बात समझा सकता है।

एम. पी. मफोत के अनुसार, "सहायक सामग्री अनुभव कराती है, साथ ही शब्द एवं वस्तु में संबंध स्थापित करती है। यह छात्र के समय की बचत करती है, सरल एवं विश्वसनीय सूचना प्रदान करती है। यह सौन्दर्यात्मक ज्ञान का विकास एवं अभिवृद्धि करती है। मनमोहक मनोरंजन प्रदान करती है। जटिल प्रदत्तों को सरलतम दृष्टिकोण प्रदान करती है। कल्पना को उत्तेजित करती है तथा छात्रों की निरीक्षण शक्ति का विकास करती है।"

ई.सी. डेन्ट के अनुसार, "सहायक सामग्री का अभिप्राय उन समस्त साधनों से है जो कक्षा में अथवा अन्य शिक्षण परिस्थितियों में लिखित अथवा बोली हुई पाठ्यवस्तु को समझाने में सहायता देती है।"

ई.वी. वेस्ले के अनुसार, "श्रव्य दृश्य साधन अनुभव प्रदान करते हैं। उनके प्रयोग से शब्दों व वस्तुओं का संबंध सरलता पूर्वक जुड़ जाता है। बालकों के समय की बचत होती है तथा उनकी सहायता से सरल परंतु सही–सही बातों का पता चलता है। उनसे जहां बालकों का मनोरंजन होता है, वहीं वे विभिन्न वस्तुओं की प्रशंसा करना भी सीख जाते हैं। वे जटिल बातों को भी सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं। बालकों की कल्पना शक्ति को प्रेरित करते हैं और उनकी निरीक्षण शक्ति को विकसित करते हैं। संभव है, ऐसी सहायक सामग्री की व्यवस्था की व्याख्या तो करनी पड़े, पर उनके लिए अनुवादक की कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उनमें प्रकृति, रंग, स्थिति तथा गति– सर्वत्र पाई जाने वाली भाषा प्रयुक्त होती है। इस प्रकार ये सीखने के लिए राजमार्ग का काम दे सकते हैं।"

मेकल्सकी के अनुसार, "उचित प्रकाश प्रयोग किए जाने पर श्रव्य–दृश्य सामग्री उन अनेक भ्रमों को उत्पन्न नहीं होने देती है, जो साहित्यिक भाषा के कारण उत्पन्न होते हैं।"

क्रो एंड क्रो के अनुसार, "श्रव्य–दृश्य उपकरण सीखने वालों को व्यक्तियों, घटनाओं, वस्तुओं और कारण तथा प्रभाव संबंधों के नियोजित अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर देते हैं।"

विटिच व शूलर के अनुसार, "श्रव्य–दृश्य विधियां और वस्तुएं, भावपूर्ण सीखने, प्रबल छात्र रुचि और उत्साह तथा विद्यालय में सफलता के लिए अति लाभदायक आधार हैं।"

शिक्षण अधिगम संसाधन (सहायक सामग्री) का तत्वगत महत्व

टिप्पणी

1. शिक्षण सहायक सामग्री जटिल प्रत्यय को रुचिकर, सरल व स्पष्ट बनाने में सहायक है।
2. शिक्षण सहायक सामग्री से छात्रों की समस्या का समाधान आसानी से किया जा सकता है।
3. शिक्षण सहायक सामग्री की सहायता से छात्रों के ध्यान को केंद्रित किया जा सकता है।
4. प्राथमिक व माध्यमिक स्तरीय बालकों के ज्ञान को उन्नत बनाया जा सकता है।
5. इसके माध्यम से छात्रों की शब्द सामर्थ्य को बढ़ाया जा सकता है।
6. इसके माध्यम से कठिन क्रियाओं को सरलता से किया जा सकता है।
7. इसके द्वारा ज्ञान को स्थायी बनाया जा सकता है।
8. मन्दबुद्धि बालकों को सिखाने में सहायता मिलती है।
9. इनके प्रयोग से विशेषज्ञों की कमी को दूर किया जा सकता है, जैसे– टी.वी., रेडियो के पाठ–प्रदर्शन द्वारा पाठों को बिना शिक्षक की सहायता से सीखा जा सकता है।

शिक्षण अधिगम संसाधन (सहायक सामग्री) का कार्यगत महत्व

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के दौरान कक्षा शिक्षण को रुचिकर, सार्थक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसी शिक्षण सामग्री की आवश्यकता होती है जिसका प्रयोग कर, एक शिक्षक छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करके अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है। शिक्षक सहायक सामग्री के कार्यों को निम्न महत्वपूर्ण बिंदुओं के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. **प्रेरणा**– शिक्षण सहायक सामग्री का प्रयोग कर शिक्षक छात्रों को प्रेरणा प्रदान कर नए पाठ के प्रति उत्सुक बना सकता है। सहायक सामग्री की सहायता से बच्चों में पाठ के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।
2. **स्पष्टीकरण**– पाठ को अधिक स्पष्टता प्रदान करने के लिए सहायक सामग्री की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसके प्रयोग द्वारा छात्र कक्षा में शिक्षक द्वारा किए गए शिक्षण में जो सुनते हैं उसे प्रत्यक्ष रूप से देख भी लेते हैं।

   परिणामस्वरूप आंखों से देखने के कारण उसकी कक्षागत शंकाओं का समाधान होता रहता है और छात्र कठिन से कठिन प्रत्यय को भी आसानी से समझने में सक्षम होते हैं।
3. **प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करने का सर्वोत्तम विकल्प**– जिस परिस्थिति में किसी प्रकरण को प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा समझाना संभव नहीं होता, ऐसी परिस्थितियों में सहायक सामग्री प्रत्येक अनुभवों का सर्वोत्तम विकल्प हो सकती है, जैसे– चार्ट, चित्र आदि।
4. **रटने की प्रवृत्ति पर अंकुश**– सहायक सामग्री के प्रयोग से छात्रों में रटने की प्रवृत्ति में कमी आ जाती है। उस पर लगाम कस जाती है, क्योंकि जब एक

शिक्षक कक्षा में छात्रों को क्रिया कराकर सिखाने का प्रयास करता है तो उनका ज्ञान सुनिश्चित व स्थायी बन जाता है।

5. **क्रिया का सिद्धांत**– शिक्षण सहायक सामग्री के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया में छात्रों को अनेक क्रियाएं करने के अवसर प्राप्त होते हैं, जैसे– छात्र अपनी समस्या का समाधान करते हैं। आपस में वाद–विवाद के द्वारा अपनी शंका का हल ढूंढ़ लेते हैं। तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं तथा उसको छू कर या स्पर्श करके सीखते हैं। इस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया में क्रिया करने के बाद छात्र नवीन ज्ञान को आसानी से आत्मसात कर पाते हैं।
6. **शब्द सामर्थ्य में वृद्धि**– जब छात्र आधुनिक सहायक सामग्री, जैसे– रेडियो, चल चित्र, दूरदर्शन, फोन आदि का प्रयोग करते समय नए–नए शब्दों को सुनकर ग्रहण करके सीखने का प्रयास करते हैं तब उनकी शब्दावली में वृद्धि होती है।
7. **समय व परिश्रम की बचत**– सामाजिक अध्ययन विषय के शिक्षण में अर्थशास्त्र विषय के जिन नियमों एवं सिद्धांतों को व्याख्या द्वारा समझाने में अधिक परिश्रम तथा समय लगता है यदि उन्हें सहायक सामग्री के माध्यम से समझाया जाए तो आसानी से छात्र उसको कम समय व कम परिश्रम से सीख सकता है।
8. **वैयक्तिक भिन्नताओं के शिक्षण में सहायक**– मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रत्येक छात्र मानसिक स्तर, आयु व आवश्यकताओं की दृष्टि से एक–दूसरे से भिन्न होता है। सहायक सामग्री के प्रयोग से यदि छात्र को शिक्षण कराया जाता है तो प्रत्येक छात्र को उस तथ्य को समझने में सहायता मिलती है।
9. **शिक्षण सिद्धांतों, सूत्रों एवं नवीन विधियों के प्रयोग में सहायक**– शिक्षक सहायक सामग्री का प्रयोग विभिन्न विधियों, प्रविधियों, शिक्षण सूत्रों एवं उन्नतशील शिक्षण विधियों, जैसे– समस्या, योजना, स्रोत आदि के प्रयोग का उचित अवसर प्रदान कर अध्ययन–अध्यापन के कार्य में सफलता प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है व ज्ञान में वृद्धि करता है।
10. **कक्षा के वातावरण को सजीव व सक्रिय बनाना**– शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए कक्षा का वातावरण ऐसा होना चाहिए ताकि छात्र आसानी से ज्ञान प्राप्त कर सकें। सहायक सामग्री का प्रयोग कर कक्षा वातावरण को सहज ही सजीव व सक्रिय बनाया जा सकता है।

सहायक सामग्री (शिक्षण अधिगम संसाधन) के चयन हेतु आवश्यक सावधानियां

अध्यापक को शिक्षण सहायक सामग्री का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. सहायक सामग्री का चुनाव प्रकरण को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।
2. पाठ के शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति संभव हो, शिक्षक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए।
3. शिक्षण सहायक सामग्री का चुनाव प्रभावशीलता व अनुकूलता को आधार मानकर किया जाना चाहिए।
4. शिक्षक द्वारा चयन की गई सहायक सामग्री आसानी से उपलब्ध होनी चाहिए।

5. प्रयोग में आने वाली चयनित सामग्री समय व क्षमता की दृष्टि से उपयुक्त होनी चाहिए।
6. सहायक सामग्री मूल्य की दृष्टि से भी उपयुक्त होनी चाहिए।
7. शिक्षक द्वारा चयनित सहायक सामग्री छात्रों के पूर्व ज्ञान से संबंधित होनी चाहिए।
8. सहायक सामग्री छात्रों की आयु, आवश्यकता एवं मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
9. शिक्षक को सहायक सामग्री का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह किसी निश्चित योजना के अनुरूप हो।
10. शिक्षक द्वारा चुनी गई सहायक सामग्री परिणामों का मूल्यांकन करने में समर्थ होनी चाहिए।

शिक्षण अधिगम संसाधनों के प्रकार

शिक्षण सहायक सामग्री को हम मूलतः निम्नांकित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

(अ) परंपरागत शिक्षण सहायक सामग्री।

(ब) शैक्षिक तकनीकी के उपागमों पर आधारित शिक्षण सामग्री।

(अ) परंपरागत शिक्षण सहायक सामग्री

किसी भी विषय के शिक्षण में परंपरागत शिक्षण सहायक सामग्री का महत्वपूर्ण स्थान होता है। परंपरागत सहायक सामग्री के महत्व बताने के लिए शिक्षा विशेषज्ञों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके मत में, "ये साधन अध्यापक के आधारभूत कक्षागत यंत्र हैं। जिस प्रकार किसी सेना के सिपाही का युद्ध क्षेत्र में बिना हथियार के कोई अस्तित्व नहीं होता उसी प्रकार अध्यापक का परंपरागत सहायक सामग्री के अभाव में कोई महत्व नहीं होता है।" परंपरागत सहायक सामग्री के अंतर्गत पाठ्य पुस्तक, श्यामपट्ट, बुलेटिन पट्ट, फिलेनल पट्ट एवं वास्तविक पदार्थ आदि को सम्मिलित किया जाता है।

प्राचीन काल से ही पाठ्य पुस्तकों का सहायक सामग्री के रूप में बहुत महत्व है, क्योंकि यह शिक्षक व छात्र के लिए शिक्षण को आधार प्रदान करती है। यहां हम श्यामपट्ट का अध्ययन कर रहे हैं।

श्यामपट्ट

श्यामपट्ट शिक्षण का एक महत्वपूर्ण और आवश्यक उपकरण ही नहीं है अपितु अध्यापक का एक अच्छा सहयोगी भी है, क्योंकि इसकी सहायता से कुशल अध्यापक चित्र, आदि उपलब्ध न होने पर भी अपने शिक्षण को रुचिकर एवं बोधगम्य बना सकता है। प्राचीन समय से वर्तमान समय में कक्षाओं में लकड़ी, धातु अथवा सीमेंट के पट्टों के स्थान पर शीशे तथा प्लास्टिक के पट्टों का प्रयोग होने लगा है तथा उन पर काले पेण्ट की अपेक्षा भूरे, हरे एवं अन्य हल्के रंग का पेण्ट होने लगा है व लिखने के लिए भी चॉक के अलावा मार्कर आदि का प्रयोग भी किया जाने लगा है।

श्यामपट्ट का महत्व

कक्षा शिक्षण प्रक्रिया में श्यामपट्ट की अहम् भूमिका है, क्योंकि एक शिक्षक कक्षा शिक्षण में व्याख्यान के साथ–साथ श्यामपट्ट का प्रयोग करके छात्रों की श्रवणेन्द्रियों को ही नहीं, अपितु नेत्रेन्द्रियों को भी सक्रिय बनाकर उनके ज्ञान में वृद्धि करता है। इसकी महत्ता निम्नांकित है–

1. अर्थशास्त्र व भूगोल जैसे विषय में श्यामपट्ट का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इसमें ऐसे प्रकरणों का समावेश होता है जिन्हें बिना श्यामपट्ट का प्रयोग किए पढ़ाया नहीं जा सकता है।
2. श्यामपट्ट का प्रयोग अन्य सहायक सामग्री की अपेक्षा कम खर्चीला है।
3. श्यामपट्ट पर आवश्यकतानुसार लिखा जा सकता है, या आलेख बनाया जा सकता है। यह लिखित सामग्री कितनी ही अवधि तक रखी या तुरंत मिटाई जा सकती है।
4. श्यामपट्ट पर बनाया गया दण्डचित्र, रेखाचित्र, ग्राफ कम समय में विषय को स्पष्ट करके ज्ञान में वृद्धि कर सकता है।
5. श्यामपट्ट में लिखी हुई मुख्य बातों को छात्र लंबे समय तक याद रख सकता है।
6. श्यामपट्ट की सहायता से छात्रों को सुलेख सुधारने के अवसर भी दिए जा सकते हैं।

श्यामपट्ट का उपयोग

कक्षा में श्यामपट्ट का उपयोग अग्रलिखित कार्यों के लिए किया जाता है–

1. नियम, परिभाषा लिखने हेतु।
2. चार्ट, रेखाचित्र, ग्राफ व उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु।
3. सारांश लिखने हेतु।
4. किसी नाम, शब्द या संबंध को स्पष्ट करने हेतु।
5. योजना की रूप–रेखा लिखने हेतु।
6. मुख्य निर्देश देने हेतु।
7. किसी वस्तु के क्रम को स्पष्ट करने हेतु।
8. सूचना–अंकन, तिथि–ज्ञान देने व तालिका आदि लिखने हेतु।

श्यामपट्ट उपयोग करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

1. श्यामपट्ट पर लिखी हुई पंक्तियां सीधी होनी चाहिए।
2. श्यामपट्ट पर बड़े आकर्षक व सुडौल रूप में स्पष्ट अक्षर लिखे जाने चाहिए ताकि छात्र उन्हें आसानी से पढ़ व समझ सकें।
3. श्यामपट्ट को साफ करते समय डस्टर का प्रयोग करें।
4. श्यामपट्ट पर केवल आवश्यक एवं मुख्य बातें ही लिखें।

5. श्यामपट्ट पर बने चित्र, रेखाचित्र को इंगित करते समय संकेतक का प्रयोग करें।
6. श्यामपट्ट पर लिखित सामग्री क्रमबद्ध व व्यवस्थित हो।
7. श्यामपट्ट पर लिखते समय बोलते भी रहना चाहिए।
8. श्यामपट्ट पर लिखते समय शिक्षक को एक ओर खड़ा होना चाहिए ताकि सभी छात्र श्यामपट्ट पर लिखा हुआ देख सकें।
9. श्यामपट्ट पर चित्र आदि बनाते समय रंगीन चॉक का प्रयोग करना चाहिए। यदि श्यामपट्ट काले रंग का हो तो सफेद चॉक का प्रयोग करें।
10. श्यामपट्ट पर लिखे हुए कार्य को आवश्यकता समाप्त होने पर मिटा देना चाहिए।
11. जब छात्र श्यामपट्ट कार्य को अपनी पुस्तिकाओं में उतारें तो शिक्षक को निरीक्षण करते रहना चाहिए।

(ब) शैक्षिक तकनीकी पर आधारित शिक्षण सामग्री

प्रो. बी. एफ. स्कीनर के अनुसार, शैक्षिक तकनीकी आधारित शिक्षण सहायक सामग्री में निम्नांकित दो उपागमों का प्रयोग किया जाता है—

1. सॉफ्टवेयर उपागम
2. हार्डवेयर उपागम।

सॉफ्टवेयर उपागम में शिक्षण तथा सीखने के सिद्धांतों के प्रयोग द्वारा छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाया जाता है। इस तकनीकी में समाचार—पत्र मैगजीन, शैक्षिक खेल, फ्लैश बोर्ड आदि को सम्मिलित किया जाता है।

हार्डवेयर उपागम शिक्षण प्रक्रिया का मशीनीकरण करता है। इसके अंतर्गत टेलीविजन, टेपरिकॉर्डर, शिक्षण मशीन व कम्प्यूटर आदि आते हैं।

मौखिक शिक्षण सहायक सामग्री

मौखिक सहायक सामग्री शिक्षण का प्रथम चरण है क्योंकि इसके अंतर्गत कहानी, उदाहरण, अभिनय आदि माध्यम शामिल होते हैं और यह ऐसे माध्यम हैं जिनका उपयोग बालक के शिक्षण में सर्वप्रथम शामिल हो जाता है। प्रमुख मौखिक शिक्षण सहायक सामग्री के माध्यमों का वर्णन निम्न प्रकार से है—

● कहानी कथन प्रविधि

कहानी कथन प्रविधि का अर्थ है— कहानी कहना अथवा सुनना। मनोवैज्ञानिक हार्वट के मत में कम आयु के बालक कहानी कहने अथवा सुनाने से कठिन से कठिन विषयवस्तु को सरलता पूर्वक समझ सकते हैं। परंतु कहानी कथन या श्रवण एक कला है और इस कला में निपुण होना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र आदि ऐसे विषय हैं जिनको कुछ विषयवस्तु में कहानी कथन प्रविधि का प्रयोग कर छात्रों के ज्ञान का विकास किया जा सकता है, जैसे— कृषि की समस्याएं, जीवन स्तर, भारत के राजनीतिज्ञ, बाजार, भारत के राज्यों की राजधानी, उद्योग धंधे, प्राचीन काल के राजाओं की शासन व्यवस्था आदि। इस प्रविधि के माध्यम से जब कक्षा

में शिक्षण कराया जाता है तो छात्रों के जिज्ञासु एवं कल्पनाशील मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव पड़ता है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को इस प्रविधि का प्रयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

टिप्पणी

1. कहानी विषयवस्तु से संबंधित होनी चाहिए ताकि निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके।
2. अध्यापक जिस कहानी को अपने छात्रों को सुनाना चाहता है, उसकी विषयवस्तु पर अध्यापक का पूर्ण अधिकार होना चाहिए।
3. अध्यापक को कक्षा में कहानी को बड़े रोचक, स्वाभाविक तथा भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए।
4. कहानी की विषयवस्तु एवं भाषा–शैली बालकों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
5. शिक्षक द्वारा छात्रों को क्रमबद्ध तरीके से कहानी सुनानी चाहिए।

● उदाहरण प्रविधि

उदाहरण प्रविधि का सामाजिक अध्ययन शिक्षण में बहुत महत्व है। इसके प्रयोग से अर्थशास्त्र, इतिहास आदि विषयों की कठिन एवं अमूर्त सामग्री को सरल एवं सुगम बनाया जा सकता है तथा छात्रों को रुचिपूर्ण एवं प्रभावी तरीके से ज्ञान उपलब्ध कराया जा सकता है अथवा उनका ज्ञान बढ़ाया जा सकता है।

दृश्य सहायक सामग्री

सामाजिक अध्ययन शिक्षण की दृश्य सहायक सामग्री के अंतर्गत वस्तुओं के दृश्यमय रूप को देखा–परखा जाता है। इसमें निम्न सहायक होते हैं–

● बुलेटिन बोर्ड

दृश्य सहायक सामग्री के रूप में सामाजिक अध्ययन शिक्षण में बुलेटिन बोर्ड का भी अत्यधिक महत्व है। इसका हिंदी रूपांतर 'सूचना पट्ट' या 'विज्ञप्ति पत्र' है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में इसका प्रयोग निम्नलिखित रूपों में होता है–

1. विषय की पुस्तकों के शीर्षक प्रदर्शित करने के लिए।
2. विषय संबंधी सूचनाएं देने हेतु।
3. कार्टून चिपकाने के लिए तालिका के रूप में।
4. दंड चित्र दर्शाने के लिए।
5. ग्राफ को प्रदर्शित करने के लिए।
6. विभिन्न समस्याओं की रूपरेखा को प्रदर्शित करने के लिए।

फैल्ट या फ्लालेन बोर्ड भी बुलेटिन बोर्ड का एक स्वरूप है। यह बोर्ड लकड़ी का बना हुआ होता है जिस पर फैल्ट या फ्लालेन चढ़ा रहता है। इस बोर्ड का उपयोग आर्थिक तथ्यों के तुलनात्मक प्रदर्शन के लिए व आर्थिक तथ्यों को एक क्रम में प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।

• ऐतिहासिक चार्ट

चार्ट वह प्रदर्शनात्मक साधन है जो तथ्यों व चित्रों का समन्वय कर छात्रों को अधिगम में सुगमता प्रदान करता है। इसमें क्रमबद्ध व तार्किक रूप में चित्रात्मक तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है। इसकी सहायता से किसी घटना को क्रमिक रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है। विषयवस्तु से संबंधित चार्ट बाजार से उपलब्ध हो जाते हैं। यदि नहीं मिल पाते तो शिक्षक स्वनिर्मित चार्टों का प्रयोग करके भी अपने शिक्षण को अधिक स्पष्ट बना सकता है।

चार्टों का उपयोग करते समय ध्यान रखने योग्य बातें निम्नांकित हैं–

1. एक चार्ट का केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिए।
2. चार्ट बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह पीछे बैठे छात्रों को भी स्पष्ट दिखाई दे।
3. विषयवस्तु से संबंधित चार्ट का ही प्रयोग करना चाहिए।
4. चार्टों का निर्माण शिक्षक की देख–रेख में ही किया जाना चाहिए।
5. चार्टों द्वारा छात्रों को विभिन्न घटनाओं तथा तथ्यों का ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।
6. सामाजिक अध्ययन की ही भांति अर्थशास्त्र विषय में भी विभिन्न तथ्यों के वर्गीकरण के लिए चार्टों का विशेष महत्व है, जैसे– आवश्यकताओं का वर्गीकरण, उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण, उपभोग की वस्तुओं का वर्गीकरण आदि।

चार्टों के प्रकार– सामाजिक अध्ययन विषय के शिक्षण में निम्न प्रकार के चार्टों का प्रयोग किया जा सकता है–

1. वृक्ष की आकृति वाला चार्ट
2. समय चार्ट
3. प्रवाह चार्ट
4. समस्या चार्ट
5. दण्ड चार्ट
6. पोस्टर चार्ट
7. वृत चार्ट–(i) चक्र चार्ट, (ii) रिंग चार्ट, (iii) स्फीयर चार्ट
8. व्यंग्य चार्ट।

1. वृक्ष की आकृति वाला चार्ट

ऐसे चार्ट जिसमें किसी आर्थिक घटना एवं संगठन के विकास को प्रदर्शित करने के लिए वृक्ष जैसी आकृतियां बनाई जाएं; वे वृक्ष की आकृति वाले चार्ट कहलाते हैं।

2. समय चार्ट

इस प्रकार के चार्ट आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं को स्पष्ट करने के लिए बनाए जाते हैं।

3. प्रवाह चार्ट

आम तौर पर इनको 'फ्लो' (flow) चार्ट के नाम से जाना जाता है। इस तरह के चार्टों का प्रयोग किसी वस्तु के क्रमिक विकास, आर्थिक संगठन वर्गीकरण, राजा–महाराजाओं के उत्थान–पतन आदि के प्रवाह यानी 'फ्लो' को क्रमबद्ध तरीके से दर्शाने के लिए किया जाता है।

4. समस्या चार्ट

इन चार्टों को 'इशू' (Issues) चार्ट भी कहा जाता है। ऐसे चार्ट आर्थिक जीवन से संबंधित समस्याओं को अच्छी तरह से स्पष्ट करने अथवा सुलझाने हेतु बनाए जाते हैं। उदाहरणार्थ– विनिमय मूल्य को स्पष्ट करने हेतु समस्या चार्ट का प्रयोग होता है।

किसी वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु कितनी मिल सकती है वही उसका विनिमय मूल्य होगा। उदाहरण के लिए यदि एक गाय तथा दो बकरी के बदले में एक बैल मिल सकता है तो एक बैल का विनियम मूल्य = 1 गाय + 2 बकरियां।

5. दंड चार्ट

इस तरह के चार्टों का एक और नाम 'बार' (Bar) चार्ट भी है। इस चार्ट में दंडों के प्रयोग द्वारा भौगोलिक या आर्थिक तथ्यों से संबंधित आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

6. पोस्टर चार्ट

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के चार्टों में वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थानों या घटनाओं से संबंधित चित्रात्मक अभिव्यक्ति होती है। उदाहरण के लिए जीवन बीमा निगम, राष्ट्रीय बचत संस्थान, बैंक, परिवार नियोजन, परिवार कल्याण आदि से संबंधित जानकारी और प्रचार हेतु पोस्टरों का प्रयोग किया जा सकता है। इसका छात्रों में स्वास्थ्य संबंधी आदतें विकसित करने, आचरण, वांछित रुचियों, अभिव्यक्तियों आदि गुणों को विकसित करने एवं बचत की आदतों को विकसित करने की दिशा में बहुत महत्व है।

7. वृत्त चार्ट

इन चार्टों में वृत्त खंडों के माध्यम से आर्थिक जीवन से संबंधित आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है। वृत्त चार्टों को निम्न तीन रूपों में दर्शाया जा सकता है–

(क) चक्र चार्ट–इसका एक और नाम 'व्हील' चार्ट भी है। इसमें आंकड़ों को क्रमबद्ध तरीके से चक्र बनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

(ख) रिंग चार्ट–इस चार्ट का प्रयोग दो या दो से अधिक प्रकार के आंकड़ों को वृत्त के रूप में प्रदर्शित करने के लिए होता है।

(ग) स्फीयर चार्ट—ऐसे चार्टों का प्रयोग भी आंकड़ों के तुलनात्मक प्रदर्शन के लिए होता है। इसमें एक मापक के आधार पर आंकड़ों की मात्रा के छोटे—बड़े स्फीयर बनाए जाते हैं। जनसंख्या के वितरण संबंधी आंकड़ों के प्रदर्शन में इसका क्रमिक रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

8. व्यंग्य चार्ट

इन चार्टों से व्यंग्य द्वारा आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन की शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है। कई बार बालकों के मानसिक झुकाव, रुचियों, आदतों, अभिवृत्तियों आदि में समाज के अनुरूप परिवर्तन लाना होता है। व्यंग्य चार्ट अपने व्यंग्यों की तीखी चुभन अथवा हास्य की गुदगुदी से यह सभी कुछ प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट करने की योग्यता रखते हैं।

अध्यापक चार्टों के माध्यम से प्रश्न आदि पूछकर अपने शिक्षण को स्पष्ट, रुचिकर एवं प्रभावपूर्ण बना सकता है, जिससे अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति सफलतापूर्वक हो सकती है।

चार्ट का प्रयोग करते समय ध्यान रखने योग्य बातें—

कक्षा शिक्षण में चार्टों का प्रयोग करते समय शिक्षक को निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

1. चार्ट शुद्ध व स्पष्ट होने चाहिए।
2. चार्ट विषय से संबंधित होने चाहिए।
3. चार्ट द्वारा किया गया प्रस्तुतीकरण उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिए।
4. इनका आकार कक्षा के आकार के अनुसार होना चाहिए।
5. चार्ट के स्केल पूर्व निर्धारित होने चाहिए।
6. एक बार में एक ही चार्ट पर लिखित शिक्षण सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।

● ऐतिहासिक मानचित्र

भूगोल शिक्षण में मानचित्र, शिक्षण का उपयोगी साधन है। अध्यापक इसके माध्यम से भारत की उपज, उद्योग—धन्धे, वनस्पतियां, सिंचाई के साधन, खनिज पदार्थ एवं जनसंख्या का घनत्व आदि की जानकारी को आसानी से छात्रों को आत्मसात करा सकता है।

मानचित्र उपयोग में ध्यान देने योग्य बातें

1. शिक्षक को विभिन्न स्थानों की उपज एवं उद्योग—धंधों को मानचित्र में प्रदर्शित करते समय उनकी शुद्धता एवं विश्वसनीयता का पूरा ध्यान रखना चाहिए।
2. मानचित्र स्पष्ट के साथ—साथ पठनीय होना चाहिए।
3. मानचित्रों में एक निर्धारित पैमाना होना चाहिए।

4. मानचित्र पर प्रदर्शित किए गए तथ्यों को स्पष्ट करने हेतु संकेतिका बनानी चाहिए।
5. मानचित्र की जब आवश्यकता हो तभी प्रदर्शित करें अन्यथा तुरंत हटा दें।
6. मानचित्र लगाने के लिए कक्षा में उस स्थान को चुना जाना चाहिए जहां कक्षा के सभी छात्र उसे ध्यानपूर्वक देखकर समझ सकें।

टिप्पणी

मानचित्र का सोदाहरण प्रयोग

प्रकरण का नाम– वनों के प्रकार

कक्षा –IX

मानचित्र

विकासात्मक प्रश्न (मानचित्र के माध्यम से)

शिक्षक – इस मानचित्र के अनुसार 'सदाबहार वन' किन–किन प्रदेशों में पाए जाते हैं?

छात्र – संकेतक द्वारा इंगित किए गए स्थानों के आधार पर उत्तर देंगे।

शिक्षक – इस मानचित्र में मानसून शुष्क एवं कोणधारी वनों को किस–किस स्थान पर दर्शाया गया है?

छात्र – छात्र संभावित उत्तर देंगे।

शिक्षक – इससे क्या निष्कर्ष निकलता है?

छात्र – चुप रहते हैं तो

शिक्षक का कथन : इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में छह प्रकार के वन पाए जाते हैं– 1. सदाबहार वन, 2. मानसून वन, 3. पर्णपाती वन, 4. शुष्क वन, 5. मैंग्रोव वन और 6. कोणधारी वन। ये सभी वन प्राकृतिक सम्पदा के प्रतीक हैं।

● वास्तविक वस्तुएं

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में जहां या जिस प्रकरण में वास्तविक पदार्थ या मॉडल का प्रयोग संभव नहीं होता, वहां पर चित्र द्वारा शिक्षण को रुचिकर व सजीव बनाने का प्रयास किया जाता है। माइकेलिस के अनुसार, "सतर्कतापूर्वक चयन किए हुए चित्रों के नियोजित प्रयोग से शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करना संभव है।" ऐसा इसलिए कहा गया क्योंकि चित्रों के माध्यम से कठिन प्रकरणों को भी सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए– बाजार, उत्पादन के साधन, कृषि एवं उद्योग, भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक–अनार्थिक क्रियाएं आदि से संबंधित विषय–वस्तु को चित्र के माध्यम से अधिक रुचिकर, प्रभावी एवं स्पष्टता के साथ पढ़ाया जा सकता है।

शिक्षण में चित्र का प्रयोग

प्रकरण का नाम – आर्थिक एवं अनार्थिक क्रियाएं

कक्षा –IX

आर्थिक क्रिया अनार्थिक क्रिया

टिप्पणी

विकासात्मक प्रश्न (चित्र के माध्यम से)

अध्यापक – प्रथम चित्र में क्या दर्शाया गया है?

छात्र – एक किसान खेत में हल जोत रहा है।

अध्यापक – अर्थशास्त्र में 'किसान का खेत में हल जोतना' इस क्रिया को क्या कहा जाता है?

छात्र – अर्थशास्त्र में किसान द्वारा हल जोतने की क्रिया को आर्थिक क्रिया कहा जाता है।

अध्यापक – द्वितीय चित्र में क्या दर्शाया गया है?

छात्र – एक पुजारी शिवलिंग की पूजा कर रहा है।

अध्यापक – पूजा करना कैसी क्रिया है?

छात्रा – अर्थशास्त्र में पूजा करने सरीखी क्रिया को अनार्थिक क्रिया कहा जाता है।

आर्थिक और अनार्थिक क्रियाओं में भेद बताते हुए अध्यापक का कथन– इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य की वे समस्त क्रियाएं जो धन की प्राप्ति से संबंधित हैं आर्थिक क्रियाएं कहलाती हैं तथा वे क्रियाएं जिनका धन–प्राप्ति से कोई संबंध नहीं होता, वे अनार्थिक क्रियाएं कहलाती हैं।

• मॉडल या प्रतिमान

कई बार किन्हीं कारणों से वास्तविक पदार्थों और उनसे संबंधित प्रतिक्रियाओं को कक्षा में दिखा पाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में वास्तविक वस्तुओं की नकल अथवा उनका लघु रूप जिसमें लंबाई–चौड़ाई, मोटाई अथवा ऊंचाई दी हुई रहती है, का शिक्षण में प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए– संचार, यातायात आदि के साधनों जैसे– स्टीमर, वायुयान, रेलगाड़ी, टेलीफोन केंद्र, हवाई अड्डा, रेलवे पुल आदि के बारे में पढ़ाते समय इन वस्तुओं के लघु रूप ही मॉडल के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं।

- **ग्लोब**– ग्लोब को प्रदर्शित कर छात्रों को भौगोलिक परिस्थितियों एवं प्राकृतिक संपदा को समझाया जा सकता है।
- **स्टीरियोस्कोप**– यह दृश्य सामग्री का एक ऐसा उपकरण है जिसमें छात्रों को जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण दृश्यों को दर्शाया जाता है। शिक्षक इस उपकरण पर महत्वपूर्ण चित्रों को एक–एक करके चढ़ाता रहता है और छात्र उन चित्रों का बड़ा रूप कक्षा में देखते हैं।

टिप्पणी

- **मैजिक लालटेन**– स्टीरियो में एक समय में एक छात्र ही चित्रों को बड़े आकार में देख पाता है। मैजिक लालटेन द्वारा छात्रों के एक समूह अथवा पूरी कक्षा द्वारा एक चित्र को एक समय में बड़े आकार में देखा जा सकता है। कक्षा शिक्षण में जीवन से संबंधित मूक फिल्म बनाकर मैजिक लालटेन से छात्रों को दिखाकर ज्ञान प्रदान कराया जा सकता है।

- **एपिस्कोप**– इस सामग्री के लिए स्लाइड्स (चित्र विस्तारक यंत्र) बनाने की आवश्यकता नहीं होती। इसके माध्यम से शिक्षक अथवा छात्रों द्वारा तैयार किया गया चित्र या अन्य किसी अपारदर्शी वस्तु को सीधा पर्दे पर लाया जा सकता है। इस उपकरण की सहायता से लोकसभा, मंत्रिपरिषद, उच्चतम न्यायालय आदि की बैठकों को छात्रों के सम्मुख प्रदर्शित किया जा सकता है। इसी तरह कक्षा में यदि किसी छात्र ने प्रकरण से संबंधित कोई सुंदर चित्र बनाया है तो इस उपकरण द्वारा उसकी बड़ी आकृति पर्दे पर प्रदर्शित कर अन्य छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

- **फिल्म स्ट्रिप्स**– फिल्म स्ट्रिप्स अर्थात फिल्म पट्टियों से आशय उन लंबी पट्टियों से है जिन पर एक निश्चित क्रम अथवा लड़ी के रूप में अनेक फोटोग्राफ बने होते हैं या कहा जा सकता है कि एक फिल्म स्ट्रिप पर जितने भी चित्र बने होते हैं, उन्हें प्रोजेक्टर द्वारा क्रमबद्ध रूप से इस प्रकार से प्रदिर्शत किया जा सकता है जिससे संबंधित प्रक्रिया या घटना या विषयवस्तु की सुनियोजित एवं क्रमबद्ध सूचना या विवरण प्राप्त हो सके। जैसे मतदान करने की विधि, किसी प्रजातांत्रिक संस्था की कार्य प्रणाली व कर्तव्यों का पालन करता हुआ नागरिक आदि।

प्रोजेक्टर्स– प्रोजेक्टर वे दृश्यात्मक उपकरण हैं जिनकी सहायता से सामग्री को पर्दे पर बड़ा करके दिखाया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के प्रोजेक्टरों का प्रयोग किया जा सकता है–

1. स्लाइड्स या फिल्म स्ट्रिप्स प्रोजेक्टर
2. शिरोपरि प्रोजेक्टर
3. अपारदर्शी प्रोजेक्टर

स्लाइड या फिल्म प्रोजेक्टरों की सहायता से स्लाइड्स तथा फिल्म स्ट्रिप दोनों को ही पर्दे पर दिखाया जा सकता है।

शिरोपरि प्रोजेक्टर द्वारा भी स्लाइड्स की सहायता से पर्दे पर अथवा दीवार पर अथवा शयामपट्ट पर प्रक्षेपित कर स्वाभाविक शिक्षण किया जा सकता है किंतु अपारदर्शी प्रोजेक्टर द्वारा पारदर्शी तथा अपारदर्शी सभी प्रकार की दृश्य सामग्रियों को पर्दे पर प्रक्षेपित किया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में विषय से संबंधित सभी प्रकार के चित्र, ग्राफ, मानचित्र, रेखाचित्र, मॉडल, नमूने, वास्तविक पदार्थ चाहे वह सजीव हो या निर्जीव उन्हें बड़ा करके पर्दे पर दिखाकर छात्रों को ज्ञानार्जन कराया जा सकता है।

• तालिकाएं

तालिकाओं की सहायता से भी शिक्षक छात्रों को ज्ञान प्रदान कर सकता है। इसके माध्यम से शिक्षक विभिन्न वस्तुओं को प्रस्तुत करके पाठ को अधिक स्पष्ट एवं सरल बना सकता है। जैसे— बेरोजगारी की समस्या, जनसंख्या वृद्धि, उत्पादन, आदि ऐसे प्रकरण हैं, जिनकी तुलना करके छात्रों को बड़ी सुगमता से वृद्धि व कमी को समझाया जा सकता है।

तालिकाओं का महत्व

शिक्षण में तालिकाओं का बहुत महत्व है, जो निम्नलिखित हैं—

1. आर्थिक नियमों के स्पष्टीकरण हेतु निर्धारित तालिका के आधार पर रेखाचित्र निर्मित करना आसान होता है।
2. आर्थिक आंकड़ों को ग्राफ के माध्यम से प्रदर्शित या व्यक्त करना संभव है।
3. शिक्षक आर्थिक नियमों व सिद्धांतों का सामान्यीकरण तालिकाओं के माध्यम से करा सकता है।
4. तालिका आर्थिक पद एवं प्रत्ययों के स्पष्टीकरण करने में सहायक होती है।
5. अध्ययन विषय के विभिन्न प्रत्ययों की तुलना को तालिकाओं के माध्यम से दर्शाया जा सकता है।

तालिकाओं के उपयोग से संबंधित निर्देश—

1. तालिकाओं का आकार कक्षा के अनुकूल हो।
2. तालिकाएं सही व स्पष्ट शब्दों में होनी चाहिए।
3. तालिकाएं वांछित उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए।
4. तालिकाएं अन्तिम परिणाम देने में सहायक होनी चाहिए।

• ग्राफ व रेखाचित्र

ग्राफ व रेखाचित्र का अर्थ— किसी वस्तु को पूर्ण रूप से स्पष्ट करने के लिए रेखाओं द्वारा बनाया गया चित्र रेखाचित्र कहलाता है। ग्राफ उन गणितीय संरचनाओं को कहते हैं जो वस्तुओं के मध्य युग्मित संबंधों को प्रस्तुत करने में प्रयुक्त होती हैं। पाठ्यक्रम के विषयों की विषयवस्तु को रेखाचित्रों की सहायता से दृश्यात्मक रूप में अच्छी तरह अभिव्यक्त किया जा सकता है। रेखाचित्रों को श्यामपट्ट पर भी तैयार किया जा सकता है। भारत में गत पांच वर्षों के चाय उत्पादन को ग्राफ के माध्यम से दर्शाया जा सकता है; जबकि आर्थिक नियमों व सिद्धांतों के प्रस्तुतीकरण हेतु रेखाचित्र का प्रयोग किया जा सकता है जैसे— कुल उपयोगिता, सीमान्त उपयोगिता, उपभोक्ता की बचत, मांग एवं पूर्ति, जनसंख्या का सिद्धांत आदि।

ग्राफ व रेखाचित्र का उपयोग करते समय ध्यान रखने योग्य बातें—

1. रेखाचित्र का उपयोग करते समय उनकी शुद्धता एवं विश्वसनीयता को ध्यान में रखना चाहिए।

टिप्पणी

2. ग्राफ का प्रयोग करते समय शिक्षक को उन्हीं संख्यात्मक तथ्यों को प्रदर्शित करना चाहिए जिनका पाठ्यवस्तु से प्रत्यक्ष संबंध हो।
3. ग्राफ की प्रामाणिकता हेतु एक निर्धारित पैमाना होना अनिवार्य है।
4. शिक्षक को ग्राफ एवं रेखाचित्र की निर्माण प्रक्रिया का ज्ञान होना अनिवार्य है, क्योंकि तभी वह छात्रों को उनके निर्माण में सहायता प्रदान कर सकता है।
5. आर्थिक नियमों, सिद्धांतों एवं प्रवृत्तियों के स्पष्टीकरण हेतु इनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

कक्षा शिक्षण में ग्राफ के प्रयोग का उदाहरण

प्रकरण का नाम – पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत भारत में बेरोजगारी की स्थिति

कक्षा –X

विकासात्मक प्रश्न (ग्राफ के माध्यम से)

शिक्षक – प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में भारत में कितने लोग बेरोजगार थे?

छात्र – प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरंभ में भारत में 33 लाख लोग बेरोजगार थे।

शिक्षक – तृतीय व पांचवीं योजना के अंत में बेरोजगारों की संख्या बढ़कर कितनी हो गई।

छात्र – तृतीय पंचवर्षीय योजना में 96 लाख एवं पांचवीं पंचवर्षीय योजना में 221 लाख लोग बेरोजगार थे।

पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत भारत में बेरोजगारी की स्थिति

शिक्षक– उपर्युक्त ग्राफ में प्रथम पंचवर्षीय योजना से आठवीं पंचवर्षीय योजना तक बेरोजगारी की दर कैसी है?

छात्र– ग्राफ में बेरोजगारी की दर बढ़ती हुई दिख रही है।

शिक्षक का कथन– प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 52 लाख थी जो पांचवीं योजना तक 221 लाख व सातवीं योजना के अंत में बढ़कर 305 लाख हो गई और आठवीं पंचवर्षीय योजना पूर्ण होने से पहले ही उनकी संख्या तीन करोड़ 71 लाख हो गई।

श्रव्य सहायक सामग्री

श्रव्य सामग्री का अभिप्राय उन उपकरणों से है जिसमें छात्र श्रवणेन्द्रियों द्वारा अधिगम ग्रहण करते हैं। ऐसे प्रमुख उपकरणों का संक्षिप्त विवरण इस्र प्रकार है–

- **रेडियो**

रेडियो मनोरंजन का ही नहीं अपितु शिक्षा प्राप्ति का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। विदेशों व भारत की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में विभन्न स्तरों पर रेडियो का प्रयोग शिक्षण साधनों के रूप में किया जाता है। जॉर्ज वाटसन के शब्दों में, "रेडियो शिक्षा का नवीन अंग नहीं है, रेडियो शिक्षण से श्रेष्ठ मानी जाने वाली वस्तु नहीं है, रेडियो स्वयं शिक्षा है।"

सैयद अली जहीर के अनुसार, "रेडियो शिक्षण अथवा अधिगम की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है।"

शैक्षिक कार्यक्रमों के अंतर्गत ज्ञानवर्द्धक एवं पाठ्यक्रम पर आधारित पाठों का प्रसारण किया जाता है। रेडियो पर शिक्षा–शास्त्रियों एवं अन्य विद्वानों की वार्ताएं व भाषण भी प्रसारित किए जाते हैं।

शिक्षण में रेडियो का प्रयोग

रेडियो को शिक्षण उपकरण के रूप में प्रयुक्त किए जाते समय शिक्षक को निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए–

1. रेडियो के शैक्षिक पाठों के विषय में उपलब्ध साहित्य को संग्रहीत कर उसका अध्ययन करना चाहिए।
2. इस अध्ययन से एकत्रित सूचना के आधार पर शिक्षक को अपने विषय के शिक्षण के संदर्भ में पाठ प्रसारण को छात्रों को सुनाने की योजना ध्यानपूर्वक बनानी चाहिए।
3. अपना पाठ प्रसारण सुनाने के पश्चात शिक्षक छात्रों को प्रेरित करे कि वे ध्यानपूर्वक एवं रुचिपूर्ण रेडियो पर प्रसारण को सुनें।
4. जिस विषय से संबंधित प्रसारण हो रहा है, रेडियो सैट का प्रबंध उसी विषय के कक्ष में होना चाहिए।
5. रेडियो प्रसारण के समय कक्षा में शान्तिपूर्ण वातावरण होना चाहिए।
6. रेडियो प्रसारण सुनने के पश्चात सुने गए पाठ पर छात्रों को वाद–विवाद करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

रेडियो की शिक्षण में उपयोगिता

1. रेडियो प्रसारण का दूर–दराज के क्षेत्रों के लिए बहुत अधिक महत्व है, जहां शैक्षणिक सुविधाएं कम हैं।
2. रेडियो प्रसारण द्वारा प्रत्येक व्यक्ति व छात्र को देश व विदेश के प्रसिद्ध विद्वानों के विचार सुनने, समझने और जानने का अवसर प्राप्त होता है।
3. रेडियो प्रसारण से शिक्षक को कक्षा में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होती है।
4. यह साधन कम खर्चीला है।

● ग्रामोफोन व लिंग्वाफोन

रेडियो की भांति ग्रामोफोन तथा लिंग्वाफोन भी सामाजिक अध्ययन शिक्षण का महत्वपूर्ण साधन है। ग्रामोफोन द्वारा सामाजिक अध्ययन विषय में ग्रामीण, सामाजिक, नगरीय, कृषि, आधुनिकीकरण आदि से संबंधित विषयवस्तु को कहानियों एवं नाटकों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है; जबकि लिंग्वाफोन का विषय संबंधित शब्दावली का शुद्ध उच्चारण कराने के लिए प्रयोग किया जाता है।

- **टेपरिकॉर्डर**

टेपरिकॉर्डर रेडियो की तुलना में शिक्षण का एक उपयोगी साधन है, क्योंकि रेडियो पर प्रसारण करने वाले कार्यक्रमों की समय सारिणी होती है जिसका समय निश्चित होता है। इस कारण रेडियो प्रसारण के कार्यक्रमों के अनुसार कक्षा में शिक्षण नहीं कराया जा सकता है परंतु टेपरिकॉर्डर पर रेकॉर्ड करके किसी भी समय या स्थान पर शिक्षण करना संभव होता है। साथ ही साथ जितनी बार चाहें उस कार्यक्रम को सुनकर ज्ञान को स्थायी बनाया जा सकता है। इस तरह अपनी कमियों व अशुद्धियों को सुधारा भी जा सकता है।

- **श्रव्य–दृश्य सामग्री**

श्रव्य–दृश्य सामग्री का अभिप्राय उन साधनों से लिया जाता है जिनमें छात्र कर्ण एवं चक्षु दोनों इंद्रियों का प्रयोग करके ज्ञान में वृद्धि करते हैं। इसके अंतर्गत निम्नलिखित उपकरण आते हैं–

चलचित्र

चलचित्र भी शिक्षण का एक महत्वपूर्ण साधन या उपकरण है। क्रो और क्रो के अनुसार, "चलचित्रों का शैक्षिक महत्व इसलिए है, क्योंकि वे गति को व्यक्त करते हैं, विचार और कार्य की निरंतरता का विकास करते हैं। मानव क्षेत्र की सीमाओं की पूर्ति करते हैं और अपने प्रस्तुतीकरण में प्रारंभ व अंत तक एक से होते हैं।"

जरोलीमेक के शब्दों में– "चलचित्रों द्वारा बालक सुदूर–अतीत का शताब्दियों से संबंधित ज्ञान सहज ही प्राप्त कर सकता है। स्थान विशेष, व्यक्तियों तथा प्रक्रियाओं का चित्र प्रस्तुत करने से वह जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसको किसी अन्य तरीके से प्राप्त करना उसके लिए असंभव है।"

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में चलचित्र का उपयोग

चलचित्र का प्रयोग सामाजिक अध्ययन शिक्षण में निम्नलिखित तथ्यों को सरलता पूर्वक स्पष्ट करने के लिए किया जा सकता है–

1. किसानों की दीन–हीन दशा के कारणों को स्पष्ट करने हेतु।
2. ग्रामीण समस्याओं को दर्शाने व समस्या समाधान के उपाय बताने में।
3. अर्थिक जीवन से संबंधित समस्याओं, घटनाओं, व्यक्तियों तथा पदार्थों का ज्ञान करने हेतु।
4. प्राकृतिक वातावरण (बढ़ती हुई जनसंख्या, पक्षियों, जानवरों, हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं, सागर की उठती लहरों आदि) के सजीव चित्रण में।
5. आर्थिक क्रियाओं के कारण व परिणाम प्रदर्शित करने हेतु।
6. सामाजिक व राजनीतिक वातावरण से संबंधित समसामयिक घटनाओं का स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण करने में।

भारत में दूरदर्शन पर एनसीईआरटी के श्रव्य–दृश्य विभाग ने भी सामाजिक अध्ययन के लिए समय–समय पर फिल्में बनाई हैं, जिन्हें केंद्रीय पुस्तकालय का सदस्य बनकर प्राप्त किया जा सकता है। कुछ फिल्में इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा और मानव शक्ति
2. पृथ्वी की संपदा
3. भारत का भौतिक एवं आर्थिक भविष्य
4. ग्रामीण भारत की समस्याएं
5. भारतीय कृषि का पिछड़ापन

● टेलीविजन या दूरदर्शन

दूरदर्शन उपकरण का हमारे शिक्षण को प्रभावपूर्ण बनाने में विशेष महत्व है, क्योंकि इस उपकरण के माध्यम से एक शिक्षक सुनाकर ही नहीं अपितु दिखाकर भी छात्रों के ज्ञान में वृद्धि कर सकता है।

थट एवं गेरबेरिच (Thut – Gerberich) के शब्दों में, "यह (दूरदर्शन) सबसे अधिक आशापूर्ण श्रव्य–दृश्य उपकरण है, क्योंकि संदेशवाहन के इस एक यंत्र में रेडियो तथा चलचित्र का सम्मिश्रण है।"

टेलीविजन का शिक्षण में उपयोग

1. शैक्षिक कार्यक्रमों द्वारा सामाजिक कल्याण विषयक विभिन्न पक्षों का ज्ञान कराने के लिए।
2. क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय समचारों से ज्ञान में वृद्धि करने के लिए।
3. आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिचर्चा द्वारा समस्याओं के निदान के उपाय बताने के लिए।
4. गोष्ठियों द्वारा ज्ञान प्रदान कराने के लिए।
5. शिक्षा–शास्त्रियों की विभिन्न विषयों पर वार्ता सुनाने के लिए।
6. साक्षात्कार की सुविधा प्रदान कराने के लिए।
7. कृषि कार्यक्रम के प्रसारण के लिए।
8. महिला जगत सरीखे कार्यक्रमों की प्रस्तुति के लिए।
9. घर, परिवार से संबंधित शैक्षिक जानकारियों के लिए।
10. स्वास्थ्य से संबंधित ज्ञान प्रदान करने के लिए।

निष्कर्षतः शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शन का उपकरण के रूप में प्रयोग करने से हमें चलचित्रों से कहीं अधिक ही लाभ प्राप्त होता है।

वीडियो टेप

शिक्षा के क्षेत्र में यह तकनीक एक आंदोलन के रूप में उभर कर सामने आई है। अब छात्र दृश्य–श्रव्य कैसेटों के आधार पर शिक्षण ग्रहण कर सकता है। इसमें किसी भी

दृश्य या घटना अथवा भाषण को टेप कर के बार–बार देखा या सुना जा सकता है। शिक्षण के विभिन्न विषयों पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT), केंद्रीय प्रोद्यौगिक शिक्षण संस्थान (Central Institute of Educational Technology) तथा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU) द्वारा विभिन्न विषयों पर ऐसे कैसेट तैयार कराए गए।

वीडियो टेप का शिक्षण में उपयोग

1. इससे शिक्षक छात्रों की कल्पनाशक्ति एवं निरीक्षण शक्ति का विकास करता है।
2. इसके द्वारा कराया गया ज्ञान अधिक स्थायी होता है।
3. इसके द्वारा औद्योगिक प्रगति, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक घटनाओं एवं आविष्कारों की नवीनतम जानकारी प्राप्त होती है।
4. विशेष रूप से मंदबुद्धि छात्र वीडियो टेप की सहायता से सरलता से सीख पाते हैं।
5. इनके माध्यम से छात्रों को विभिन्न देशों की स्थितियों व विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से अवगत कराया जा सकता है।

वीडियो टेप के प्रयोग हेतु निम्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है–

1. टेलीजिवन सैट
2. वीडियो कैसेट
3. वीडियो कैसेट रिकॉर्डर।

दृश्य–श्रव्य सामग्री के कार्य

दृश्य–श्रव्य सामग्री के निम्न कार्य होते हैं–

1. **सर्वोत्तम प्रेरक**– श्रव्य–दृश्य सामग्री का प्रयोग करके जब शिक्षक पढ़ाता है तो छात्रों की अध्ययन में रुचि व उत्सुकता बढ़ती है। परिणामस्वरूप छात्र नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ते हैं।
2. **स्पष्टीकरण**– इसकी मदद से छात्रों को शिक्षक कठिन से कठिन प्रकरण को भी आसानी से समझा सकता है, क्योंकि छात्रों की पाठ में रुचि बढ़ जाती है और वे पाठ के प्रति आकर्षित भी होते हैं।
3. **शब्दावली में वृद्धि**– श्रव्य–दृश्य सामग्री स्पष्ट अवधारणाएं प्रदान करती है और अधिगम में शुद्धता लाती है। साथ ही उसे अर्थ प्रदान करती है, जो शब्दों द्वारा प्रदान किया जाता है। ये साधन छात्रों की शब्दावली में भी वृद्धि करते हैं।
4. **सार्थक अनुभव**– इन सामग्रियों की सहायता से छात्रों को प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किए जा सकते हैं व प्रत्यक्ष अनुभवों की सहायता से सीखा हुआ ज्ञान अधिक स्पष्ट एवं शुद्ध होता है। जटिल अनुभवों को इनकी सहायता से सार्थक व सरल बनाया जा सकता है।
5. **विविध अनुभव**– इनके प्रयोग द्वारा छात्रों को अपनी ज्ञानेंद्रियों का प्रयोग करके सीखने में सहायता मिलती है और छात्र कठिन व जटिल प्रत्यय को भी अनुभव द्वारा शीघ्र सीख पाते हैं।

6. **रटने की प्रवृत्ति का कम होना**– दृश्य–श्रव्य सामग्री के प्रयोग द्वारा छात्रों में रटने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है, क्योंकि यदि शिक्षक कक्षा शिक्षण में इन साधनों का प्रयोग करता है तो छात्रों को पाठ में रुचि उत्पन्न होती है तथा वे समझ जाते हैं। इससे ज्ञान को स्वयं सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है। ऐसे में उन्हें किसी प्रकरण को रटने की आवश्यकता नहीं होती है।
7. **कक्षा के वातावरण में परिवर्तन लाने में सहायक**– इनके प्रयोग द्वारा कक्षा के वातावरण को रुचिकर एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है ताकि छात्रों की रुचि पढ़ने या सीखने में बनी रहे।
8. **करके सीखने पर बल**– दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग छात्रों को प्रेरित करता है कि छात्र स्वयं क्रिया करके सीखें।
9. **नीरस पाठ को भी सरस बनाने में सहायक**– इनका प्रयोग कर छात्रों को उन नीरस प्रकरणों को भी सरलता पूर्वक समझाया जा सकता है जिनसे वे ऊब जाते हैं। जैसे– परिचर्चा, भाषण आदि।

सामुदायिक संसाधन

सामुदायिक संसाधन का अर्थ उन वस्तुओं, स्थानों, संस्थाओं तथा सामाजिक क्रियाकलापों से है जो किसी समुदाय विशेष से सम्बन्धित होते हैं। इनके प्रयोग से छात्र व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रत्येक समुदाय के अपने भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, परम्पराएं, साधन व संस्थाएं होती हैं।

इन सबका सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में समावेश होता है। शिक्षा शब्दकोश में संसाधनों के विषय में लिखा है–''कोई सामुदायिक संस्था, व्यक्ति विशेष, सीमा चिन्ह संगठन आदि को संसाधन के रूप में माना जा सकता है यदि इसे छात्रों के सामाजिक अवबोध की वृद्धि में उपयोग किया जाता है।''

एम. पी. मोफात के शब्दों में– ''प्रत्येक समुदाय अपने संसाधनों के सम्बन्ध में अनूठा स्थान रखता है। हमें इसके अजायबघर, पुस्तकालय, आर्ट गैलरी, तीर्थ स्थान, यातायात केन्द्र, मनोरंजन, व्यापार, उद्योग, कृषि तथा विज्ञान के प्रयोगात्मक स्थल आदि को उपयोग में लाने का प्रयास करना चाहिए।''

प्रमुख सामुदायिक संसाधन

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में प्रयोग किये जाने वाले संसाधनों को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं–

1. **ऐतिहासिक संसाधन**– प्रत्येक क्षेत्र और समुदाय का अपना इतिहास होता है। आज जो घटनाएं घटित होती है वे ही कल का इतिहास बनती है। जहां पर कोई ऐतिहासिक भवन, किला, खण्डर, अथवा कोई स्थापत्य या कोई वस्तु हो तो ये आज ऐतिहासिक साधन है। शिक्षक इनका निरीक्षण करके उनका यथार्थ ज्ञान छात्रों को करा सकता है और आवश्यकतानुसार तत्कालीन परिस्थितियों की चर्चा भी कर सकता है। इससे छात्रों की रुचि इतिहास के ज्ञान प्राप्ति में बढ़ेगी।
2. **भौगोलिक संसाधन**– इनके अन्तर्गत पर्वत, पठार, नदी, झील, मरूस्थल, घाटी, झरना, आदि से मानव जीवन प्रभावित होता है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष

किसी भी रूप में हो सकता है। भौगोलिक स्थलाकृतियों का मनुष्य सांस्कृतिक विकास से गहन सम्बन्ध रहा है। इनके प्रभाव को प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा जाना जा सकता है। अतः शिक्षक को छात्रों के साथ इनका अवलोकन करना और आवश्यकतानुसार इनका विवेचन भी करना चाहिए।

टिप्पणी

3. **संग्रहालय**– सामाजिक अध्ययन शिक्षण की दृष्टि से संग्रहालय एक उपयोगी संसाधन है। इसमें विविध प्रकार की ऐतिहासिक, भौगोलिक सामग्री, रेखाचित्र, मॉडल, चित्र, मानचित्र, अस्त्र–शस्त्र, प्राचीन परिधान तथा अन्य उपयोगी सामग्री का संकलन होता है। छात्रों को संग्रहालय में ले जाकर शिक्षक सभी संकलित वस्तुओं को दिखा सकते हैं और आवश्यकतानुसार उनका विवेचन कर सकते हैं।
4. **सार्वजनिक सेवा संस्थाएं**– सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अन्तर्गत समुदाय की सेवा हेतु अनेक सार्वजनिक संस्थाएं होती हैं जैसे– डाकघर, तारघर, बैंक, अस्पताल, विद्युत संस्थान, जल संस्थान आदि। इनका ज्ञान छात्रों को शिक्षक अवश्य प्रदान करें और आवश्यकतानुसार छात्रों के साथ ले जाकर इनका अवलोकन कराएं तथा इनकी विवेचना करें।
5. **व्यक्ति–संसाधन एवं विज्ञान–विशेषज्ञ**– सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विचारों से ली गई विषय सामग्री का समन्वित रूप है। अतः इनसे सम्बन्धित व्यक्ति जो अतीत की घटनाओं, तथ्यों, विचारधाराओं का विशेष ज्ञान या अनुभव रखता हो, उसे विद्यालय में आमन्त्रित करके उसके ज्ञान व अनुभव का लाभ उठाना चाहिए। इसी प्रकार किसी अन्य समस्या के समाधान हेतु विषय विशेषज्ञ को आमन्त्रित करके समस्या की विवेचना और समाधान करना चाहिए। इससे छात्रों के ज्ञान में वृद्धि होगी।
6. **प्रशासनिक कार्यों से सम्बन्धित संस्थाएं**– जिन संस्थाएं के माध्यम से स्थानीय प्रशासनिक कार्यों का संचालन होता है। वे सभी प्रशासनिक संस्थाएं कहलाती हैं इनमें ग्राम पंचायत, जिला परिषद, नगरपालिका, तहसील, कलेक्ट्रेट, जेल एवं कोतवाली आदि प्रशासन से सम्बन्धित संस्थाएं हैं। इन संस्थाओं का ज्ञान छात्रों को स्थानीय संस्थाओं में ले जाकर कराना अधिक उपयुक्त है। इससे उनको व्यावहारिक जानकारी उपलब्ध हो जाएगी।

सामुदायिक साधनों के सम्बन्ध में मुफात का मत है, ''प्रत्येक समुदाय अपने साधनों के सम्बन्ध में अनूठा स्थान रखता है। हमें इसके अजायबघरों, पुस्तकालयों, आर्ट गैलरियों, तीर्थस्थानों, यातायात के केन्द्रों, मनोरंजन, व्यापार, उद्योगों, कृषि तथा विज्ञान के प्रयोगात्मक स्थलों आदि को उपयोग में लाने का प्रयास करना चाहिए।"

सामुदायिक संसाधनों का महत्व

सामुदायिक संसाधनों के महत्व को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं–

1. **रोचक और गतिशील अनुभव**– समुदाय के विविध कार्यकलाप, विभिन्न जीवन शैलियां आदि का ज्ञान छात्रों को अत्यन्त रोचक और गतिशील अनुभव प्रदान करते हैं।

2. **सामुदायिक जीवन के ढंग का ज्ञान**– समुदाय के सर्वेक्षण द्वारा तथा शैक्षिक भ्रमण के द्वारा बालक को सामुदायिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। उसके रीति–रिवाज, खाने, पहनने, रहने के तरीकों का पता चलता है और इसके साथ ही आपसी सम्बन्धों का ज्ञान भी प्राप्त होता है।
3. **विविध क्रियाओं–कलापों को अवसर**– समुदाय में प्रत्येक क्रिया के लिए अवसर प्राप्त होता है। यह क्रिया अतीत से जुड़ी हो सकती है अथवा वर्तमान से सम्बन्धित हो सकती है।
4. **ज्ञान के अक्षय भण्डार**– समुदाय स्वयं अनुभवों के केन्द्र हैं। ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं, जो सदैव बने रहते हैं और चिरन्तन रूप में सभी को उपलब्ध हैं।
5. **आध्यात्मिक विकास की प्रेरणा देने वाले**– समुदाय आध्यात्मिकता को प्रेरित करते हैं। ये केवल भौतिक ज्ञान ही नहीं देते अपितु आत्मा के विकास के लिए प्रेरणा देते हैं, समय देते हैं और अभ्यास भी कराते हैं। समुदाय के चर्च, मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद आदि धार्मिक स्थल पूर्वजों के प्रयासों का प्रतिफल है जो निरन्तर आत्मिक विकास को गति प्रदान करते हैं।
6. **प्रशासनिक समस्याओं का समाधान**– सामुदायिक संसाधन ग्राम पंचायतें आदि प्रशासनिक दृष्टि से मनुष्य के समक्ष आई अनेक समस्याओं का समाधान खोजते हैं और योग्य प्रशासक भी प्रदान करते हैं।
7. **स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धि**– समुदाय में स्थापित स्थानीय अस्पताल एवं डॉक्टर की सेवओं की प्राप्ति से स्वास्थ्य सम्बन्धी बीमारियों की जानकारी निरन्तर मिलती रहती है।
8. **प्रौद्योगिकी समाज द्वारा आधुनिक शिक्षा का संचालन**– विज्ञान और तकनीकी के विकास के साथ–साथ शिक्षा को आधुनिक रूप प्रदान करने में समुदाय महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसे और अधिक रोचक और चुनौतीपूर्ण बनाया जा सकता है और इसमें उन आशाओं और आकांक्षाओं का समावेश किया जा सकता है जो मनुष्य को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक क्षण प्रेरित करते हैं। शिक्षा को और अधिक चुनौतीपूर्ण बनाने के लिए सामुदायिक संसाधनों का चयन समुचित रूप से किया जाना चाहिए।
9. **मूलभूत बाल आकांक्षाओं–आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक**– सामुदायिक संसाधन और सामुदायिक जीवन के अध्ययन द्वारा विद्यालय बालकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता कर सकता है और समुदाय के विस्तृत रूप को समझने का आधार प्रदान कर सकता है। इससे सामुदायिक जीवन को समझने में सहायता मिलती है। सामुदायिक संसाधनों के महत्व को स्पष्ट करते हुए एम. पी. मुफात का कथन है– ''आधुनिक समुदाय अपने उपलब्ध साधनों के भण्डार के फलस्वरूप सीखने के लिए एक प्रयोगशाला का रूप ग्रहण कर लेता है।''

आधुनिक समुदाय चाहे उसका स्वरूप कैसा ही क्यों न हो, नवयुवकों की शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह सीखने के विभिन्न प्रकार के अनुभवों को सजीव तथा विस्तृत करके एक प्राकृतिक प्रयोगशाला के रूप में कार्य करता है। वह नवयुवकों को

अवकाश के सदुपयोग के लिए विभिन्न क्रियाओं तथा उनके मनोरंजन के हेतु अवसर प्रदान करता है। समुदाय के सांस्कृतिक साधन उनकी बौद्धिक अभिवृद्धि एवं विकास के लिए अवसर प्रदान करते हैं। साथ ही उसके अन्य साधन प्रभावकारी जीवन–यापन तथा नागरिकता के लिए वांछित निर्देशन प्रदान करते हैं।

सामुदायिक संसाधनों का उपयोग

समुदायिक संसाधनों का दो प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। प्रथम– समुदायों को छात्रों अथवा शिक्षालयों के निकट लाकर तथा द्वितीय– विद्यालय को समुदाय के समीप ले जाकर। इन दोनों रूपों का विस्तृत विवेचन नीचे दिया जा रहा है–

(अ) समुदाय को विद्यालय के निकट लाना

समुदाय को छात्रों के निकट अथवा विद्यालय के निकट लाने के लिए निम्नलिखित उपायों को काम में लाया जा सकता है–

(1) **समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमन्त्रित करके**– विद्यालय समुदाय के विभिन्न क्षेत्र– नागरिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यावसायिक आदि में कार्य करने वाले व्यक्तियों को आमन्त्रित करे। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विद्यालय शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता, विभिन्न सामाजिक तथ्यों पर प्रकाश डालकर छात्रों को समुदाय के विषय में महत्वपूर्ण ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।

इनके द्वारा समुदाय के विभिन्न पक्षों पर विस्तापूर्वक प्रकाश डाला जा सकता है। उदाहरणार्थ, नगरपालिका का चेयरमैन स्थानीय शासन के सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों पर बड़ी अच्छी तरह प्रकाश डाल सकता है। वह छात्रों के समक्ष वास्तविक परिस्थितियों को स्पष्ट करके उन्हें व्यापारिक अनुभव प्रदान करने में समर्थ हो सकता है।

बैंक का कर्मचारी छात्रों को अपने भाषण द्वारा बैंक पद्धति के विषय में व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार इन्जीनियर, डॉक्टर, सम्पादक, सौदागर, वकील आदि अपने–अपने पेशों की वास्तविक स्थितियों से छात्रों को अवगत कराकर व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कराने में समर्थ हो सकेंगे।

(2) **अभिभावक–शिक्षण संघ**– समुदाय को विद्यालय में लाने के लिए अभिभावक शिक्षक संघ महत्वपूर्ण कार्य–भाग अदा कर सकता है। छात्रों के माता–पिता को शिक्षक–कार्य में अधोलिखित प्रकार से सम्बद्ध किया जा सकता है–

(i) जो प्रकरण या यूनिट स्थानीय मामलों से सम्बनधित हों, उनके प्रतिपादन के समय अभिभावकों को विद्यालयों में बुलाया जाए। अभिभावक छात्रों के समक्ष विषय से सम्बन्धित स्थानीय तथ्यों को प्रस्तुत करें।

(ii) विद्यालय द्वारा किसी प्रकरण के सम्बन्ध में अभिभावकों से प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाएं मंगाई जाएं।

इस संघ के महत्व को स्पष्ट करते हुए एम. पी. मुफात ने लिखा है, ''अभिभावक–शिक्षक संघ अभिभावकों, शिक्षकों तथा छात्रों को एक–दूसरे के समीप लाने के लिए विभिन्न बैठकों का आयोजन करता है। ऐसी बैठकों में शिक्षक तथा अभिभावक आपसी मामलों पर विचार–विमर्श कर सकते हैं।''

(3) **विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं का आयोजन करके**– समुदाय को छात्रों के निकट लाने के लिए विद्यालय में विभिन्न सामाजिक क्रियाओं का आयोजन किया जाए। जिस समुदाय में विद्यालय स्थित है, उसके अशिक्षित प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए विद्यालय के समय के उपरान्त व्यवस्था की जाए। इस व्यवस्था से विद्यालय तथा समुदाय एक–दूसरे के निकट आएंगे और समुदाय अपने विभिन्न अनुभवों से छात्रों को अवगत करने में समर्थ होगा।

(4) **फिल्मों के द्वारा**– फिल्मों के माध्यम से समुदाय को विद्यालय के निकट लाया जा सकता है। विभिन्न कार्य–कलापों में संलग्न व्यक्तियों को फिल्मों के माध्यम से समुदाय के सम्बन्ध में उपयोगी ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

(5) **मेलों, उत्सवों का आयोजन करके**– विद्यालय में विभिन्न स्थानीय मेलों उत्सवों तथा त्योहारों को मनाकर समुदाय को विद्यालय के निकट लाया जा सकता है। इसमें भाग लेने के लिए स्थानीय समुदाय को भी आमन्त्रित किया जाए।

(ब) विद्यालय को समुदाय के निकट लाना

विद्यालय को समुदाय के निकट लाने के लिए निम्नलिखित उपायों को काम में लाया जा सकता है–

(1) **साक्षात्कार** (Interviews)– प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान–प्राप्ति के लिए साक्षात्कार आधार का कार्य करते हैं। छात्र समुदाय के विभिन्न लोगों से साक्षात्कार करके विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं। समुदाय के बहुत से लोग उनको प्रकाशित साहित्य तथा श्रव्य–दृश्य समाग्री प्रदान करके महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान कर सकते हैं।

(2) **सर्वेक्षण** (Survey)– विद्यालय को समुदाय में ले जाने का एक महत्वपूर्ण उपाय 'सर्वेक्षण' है। बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों के लिए स्थानीय समुदाय का सर्वेक्षण आयोजित किया जा सकता है। सर्वेक्षण द्वारा वे समुदाय के इतिहास, उसकी वर्तमान क्रियाओं, रीति–रिवाजों, सांस्कृतिक परम्पराओं, लोक गीतों, लोक कथाओं आदि विभिन्न बातों का अध्ययन कर सकते हैं। सर्वेक्षण उन्हें समुदाय को वर्तमान समस्याओं को समझने में भी सहायक होता है। सर्वेक्षण करना विशेष कठिन नही होता है। बस, इसमें अध्यापक के सक्रिय मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

सर्वेक्षण के विद्यार्थियों को सामाजिक कार्यकर्ताओं, पुराने निवासियों, विशिष्ट व्यक्तियों तथा सरकारी कर्मचारियों को मिलने के लिए कहा जा सकता है। उन्हें पुराने मानचित्रों, रिकार्डों तथा प्रमाण–पत्र के अध्ययन के लिए भी कहा जा सकता है। इस प्रकार व्यवस्थित रूप से सर्वेक्षण–कार्य आयोजित करके विद्यालय को समुदाय के निकट लाने में सहायता मिलती है।

(3) **भ्रमण तथा यात्राएं** (Field trips and Excursions)– विद्यार्थियों के लिए अधिक से अधिक भ्रमण तथा यात्राएं आयोजित करनी चाहिए। कक्षा में पाठ पढ़ाने के पश्चात् यदि विद्यार्थियों को पढ़ी हुई बातों का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने का अवसर मिले तो वे बातें उनके ज्ञान–कोष का अक्षय भण्डार बन जाती है। भ्रमण से विद्यार्थियों को कई प्रकार के स्थलों तथा वस्तुओं को देखने का अवसर मिलता

है। उन्हें सिचाई की सुविधाओं, सड़कों, रेल–मार्ग, उत्पादनों तथा वास्तविक लाभ तभी हो सकती है जब उनके लिए व्यवस्थित रूप से योजना बनाई जाए। भ्रमण तथा यात्राओं के पश्चात विद्यार्थियों को अनुभव व्यक्त करने का अवसर भी प्रदान करना चाहिए।

(4) **राहत कार्यों का संगठन** (Organisation of Relief Services)– प्राकृतिक विपत्तियों जैसे बाढ़, महामारी, भूकम्प, अग्निकांड आदि में अध्यापकों के सहयोग से छात्रों द्वारा राहत–कार्य संगठित करने से विद्यालय को समुदाय के निकट ले जाने में बहुत सहायता मिलती है।

(5) **सामाजिक सेवाओं का आयोजन** (Planning of Social Services)– मेलों, त्योहारों, समारोहों आदि सामूहिक कार्यों में विद्यार्थियों द्वारा सामाजिक–सेवाओं का आयोजन किया जा सकता है। विद्यार्थी निकटवर्ती गांवों में सफाई, पानी की व्यवस्था, वृक्षारोपण तथा स्वास्थ्य–सम्बन्धी कार्यों को आयोजित कर सकते हैं। इन आयोजनों से विद्यार्थियों को समुदाय के विभिन्न लोगों से मिलन समझने के अवसर मिलते हैं।

विद्यालयों के लिए सामुदायिक सहयोग प्राप्ति के उपाय

समुदाय भी विद्यालयों की स्थापना करते हैं, उनका संचालन करते हैं और इस प्रकार राज्यों के शैक्षिक कार्यों में सहायता करते हैं। विद्यालय चाहे सरकार द्वारा स्थापित हो या समुदाय द्वारा स्थापित हो वे अपना कार्य तब तक पूरा नहीं कर सकते जब तक उन्हें परिवारों और समुदायों का सहयोग प्राप्त नहीं होता। उन्हें समुदाय से आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है, विशेषज्ञों के सहयोग की आवश्यकता होती है और जब तक विद्यालय और समुदाय में सामंजस्य नहीं होता तब तक बच्चे आचरण की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते। विद्यालयों को समुदायों का सहयोग प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए–

1. **स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति**– लोकतन्त्रीय भारत में शिक्षा की पाठ्चर्या लचीली बनाई जाती है, उसमें कुछ विषयों, उद्योगों एवं क्रियाओं का चयन स्थानीय आवश्यकताओं अर्थात समुदाय की मांगों के अनुसार किया जाता है। विद्यालयों को समुदाय की मांग के अनुसार ही इनका चयन करना चाहिए, उस स्थिति में विद्यालय और समुदाय एक–दूसरे के निकट आ सकते हैं।
2. **विशेषज्ञों का सहयोग**– प्रायः सभी समुदायों में पाठ्य विषयों और क्रियाओं से सम्बन्धित ज्ञान व दक्षता रखने वाले सदस्य होते हैं। विद्यालयों को समय–समय पर इन्हें आमन्त्रित करना चाहिए। इनके व्याख्यान कराने चाहिए, इनके साथ चर्चा करनी चाहिए। इस प्रकार विद्यालयी कार्यों में समुदाय का सहयोग बढ़ सकता है।
3. **पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं में विशेषज्ञों का सहयोग**– प्रायः सभी समुदायों में खेलकूद विशेषज्ञ और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में दक्षता एवं रुचि रखने वाले व्यक्ति होते हैं, विद्यालयों को इन्हें अपनी तत्सम्बन्धी समितियों का सदस्य बनाना चाहिए। इन्हें सम्मान देकर इनकी योग्यता एवं दक्षता का लाभ उठाना चाहिए।

4. **सामुदायिक आयोजनों में विद्यालयों का सहयोग**– समुदाय द्वारा आयोजित खेलकूद, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं अन्य उत्सवों में विद्यालयों को सहयोग करना चाहिए। उस स्थिति में समुदाय के सदस्य विद्यालयों से प्रभावित होंगे।
5. **समाज सेवा**– समुदाय को जब विश्वास हो जाता है कि विद्यालय समुदाय के हित में कार्य कर रहे हैं, तब वे विद्यालयों को सहयोग अवश्य करेंगे। विद्यालयों को चाहिए कि वे अपने अन्दर समाज सेवा संगठनों का गठन करें। उनके द्वारा सफाई अभियान चलाएं, सड़क निर्माण करें, साक्षरता अभियान चलाएं, रोगियों की सेवा करें और समुदाय द्वारा आयोजित धार्मिक उत्सवों और मेलों में समाज सेवा कार्य करें।
6. **समुदाय को विद्यालय भवन और खेल के मैदान की सुविधा**– सामुदायिक कार्यों के लिए, समुदाय को विद्यालय संगठन, फर्नीचर, खेल के मैदान व अन्य सामग्री उपलब्ध कराये। ऐसा करते समय यह अवश्य देख लें कि विद्यालय के कार्य में कोई बाधा न आए। इससे विद्यालय समुदाय के निकट आएंगे, विद्यालय समुदाय को अपना अभिन्न अंग समझेंगे और उन्हें हर प्रकार की सहायता व सहयोग करेंगे।
7. **समुदाय को पुस्तकालय व वाचनालय की सुविधा**– विद्यालय विद्यालयी समय के बाद अपने पुस्तकालय एवं वाचनालय समुदाय के लिए भी खोल सकते हैं। इस व्यवस्था हेतु सदस्य शुल्क निर्धारित कर सकते हैं। इससे इनका समुचित उपयोग हो सकेगा।
8. **रेडियो, टीवी आदि की सुविधा**– विद्यालय अपने रेडियो, टीवी, समाचार सुनने व अन्य शैक्षिक कार्यक्रम के सुनने व देखने की सुविधा प्रदान कर सकते हैं। इस कार्यक्रम से दोनों में निकटता आएगी और इनका उपयोग भी होगा।
9. **विद्यालय के अधिकारियों की कर्तव्यनिष्ठा**– विद्यालय प्रधानाचार्य व अन्य अधिकारी अपने कार्यों को ईमानदारी से सफलतापूर्वक करते हैं तो छात्रों द्वारा इनका गुणगान समुदाय में अवश्य होगा। तब समुदाय अवश्य ही विद्यालय की ओर आकर्षित होंगे।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण अधिगम सहायक सामग्री

सामाजिक अध्ययन विषय अनेक विषयों को अध्ययन में शामिल करता है। इसकी अध्ययन–सामग्री एक–सी नहीं हो सकती। विषयानुरूप विविध अध्ययन–सामग्री का वर्णन निम्न प्रकार है–

भारत के उद्योग–धन्धे, खनिज क्षेत्र, फसलों की पैदावार, भारतीय कुटीर उद्योग, आर्थिक निमय एवं सिद्धांत आदि प्रकरणों से संबंधित चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, दण्डचित्र, वृत्तचित्र, पोस्टर आदि का संग्रह कर प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

नवीन शिक्षण उपकरणों जैसे– प्रोजेक्टर, मैजिक लैन्टर्न, एपिस्कोप, एपिडाइस्कोप, रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकॉर्डर, वीडियो कैसेट, शिक्षण मशीन, स्लाइड्स फिल्म आदि उचित उपकरणों की व्यवस्था होनी चाहिए।

टिप्पणी

छात्रों को प्रायोगिक अथवा क्रियात्मक कार्य करने हेतु लकड़ी अथवा गत्ते के विभिन्न आकार के टुकड़े, विभिन्न रंगों के कागज, गोंद, कैंची, धागे, कृषि के यंत्र, खाद, बीज, उद्योगों की कच्ची सामग्री, दिशा–सूचक यंत्र, वर्षामापी यंत्र, ग्राफ पेपर, चित्र एवं आकृतियां बनाने हेतु उपयुक्त बोर्ड, रंग–रोगन आदि को व्यवस्थित ढंग से अलमारी में रखा जाना चाहिए।

अनुसंधान कार्य को बढ़ावा देने के लिए संबंधित पुस्तकें, सहायक पुस्तकें, संदर्भ ग्रंथ, पत्र–पत्रिकाएं, प्रतिवेदन, बुलेटिन आदि होनी चाहिए।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं, स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के चित्र होने चाहिए। इनके साथ ही इनमें गणतंत्र दिवस परेड तथा स्वतंत्रता दिवस पर लालकिले पर प्रधानमंत्री द्वारा ध्वजारोहण आदि के चित्र आदि भी सम्मिलित किए जाने चाहिए। इनमें से कुछ प्रभावपूर्ण चित्रों को कक्ष की दीवार पर भी लटकाया जाए।

आदर्श ग्राम, पंचायत घर, विद्यालय आदि के मॉडलों को स्थान दिया जाना चाहिए।

प्राकृतिक चित्रों तथा फोटो की व्यवस्था समुचित ढंग से की जाए जिससे छात्र अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। फोटो को दीवार में फ्रेम के अन्दर लगाया जाए और उनके नीचे विवरण भी दिया जाए। आदिवासियों के चित्र तथा फोटो के नीचे उनके नाम तथा दिखलाई गई क्रियाओं के संबंध में विवरण भी दिया जाए। बड़े चित्रों को दीवार पर लगा सकते हैं।

मानचित्रों को स्टैण्ड पर रखना चाहिए। इससे उनका उपयोग सरल होता है। अतः इन्हें अलमारियों में बंद करके नहीं रखना चाहिए। मानचित्रों को एक क्रम में रखना चाहिए। मानचित्रों पर उनका विवरण भी लिखा रहना चाहिए जिससे ढूंढने में सुगमता रहती है। कुछ विशिष्ट मानचित्रों को दीवार पर भी लगा सकते हैं। पिक्टोरीयल मानचित्रों को दीवार पर ही लगाना चाहिए, क्योंकि शिक्षण में इनका प्रयोग नहीं करते हैं।

पृथ्वी के ग्लोब कई आकार के तथा विभिन्न बातों को प्रकट करने वाले होने चाहिए। इन्हें भूगोल कक्ष में भी बाहर रखा जाए। इन्हें शीशे की अलमारियों मे भी रख सकते हैं। ग्लोब के कई प्रकार के मॉडल होना परमावश्यक है।

भौगोलिक उपकरण– स्थानीय भौगोलिक निरीक्षणों तथा प्रदर्शन के लिए भूगोल कक्ष में तापमापक, बैरोमीटर (वायुमापक), वर्षामापक यंत्र भी रखे जाएं। दैनिक निरीक्षणों का आलेख तैयार किया जाए। उच्चतम–न्यूनतम तापमापक एवं बैरोमीटर का प्रयोग किया जाए। भूगोल कक्ष के ऊपर छत पर वायु–दर्शक तथा वर्षामापक यंत्र रखना चाहिए।

सामाजिक अध्ययन संग्रहालय

संग्रहालय से बालक स्वयं सीखते हैं, क्योंकि बालकों को वस्तुओं को भौतिक रूप में देखने का अवसर मिलता है। प्रत्यक्ष निरीक्षण से सीखे हुए अनुभव अधिक स्थायी होते हैं। उनका स्मरण करना भी सरल होता है। ये शिक्षा के साथ स्वस्थ मनोरंजन का भी काम करते हैं।

संग्रहालय की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. प्रकृति एवं वस्तुओं से सीधा संपर्क होता है।

2. शिक्षार्थी स्वाभाविक ढंग से अनुभव प्राप्त करते हैं।
3. निरीक्षण शक्ति का विकास होता है।
4. उससे सीखे हुए अनुभव अधिक स्थायी तथा स्मरण के लिए सरल होते हैं।
5. भौतिक तथ्यों एवं वस्तुओं के बारे में जानने के लिए रुचि बढ़ती है।
6. संग्रहालय के लिए वस्तुओं को एकत्रित करने तथा बनाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि उन पर छात्रों के नाम अंकित रहते हैं।

सामाजिक अध्ययन संग्रहालय की सामग्री

संग्रहालय में दो प्रकार की वस्तुएं रखी जाती हैं। कुछ वस्तुओं का मौलिक रुप से तथा अन्य कुछ वस्तुओं में छात्रों द्वारा बनी हुई वस्तुओं का मॉडल चित्रों के रूप में संग्रह किया जाता है। संग्रहालय की वस्तुओं का शिक्षण सहायक सामग्री के लिए प्रयोग नहीं किया जाता है; परंतु इसे संग्रहालय का ही एक अंग माना जाता है। इसमें निम्नलिखित वस्तुओं का संग्रह किया जाता है–

- विभिन्न प्रकार की चट्टानों के टुकड़ों तथा खजिन पदार्थों को मौलिक रूप में शो–केसों में रखते हैं।
- विभिन्न देशों के निवासियों तथा आदिवासियों के फोटो दीवार पर फ्रेम में लगाते हैं।
- विभिन्न प्रदेशों के आवासीय घरों के चित्रों को भी रखा जाता है।
- मशीनों, कारखानों, कृषि संबंधी फसलों के चित्र तथा नमूने रखे जाते हैं।
- विभिन्न देशों के पशु, पौधों, जीव–जन्तुओं के चित्र तथा मॉडल रखे जाते हैं।
- विभिन्न देशों की बनी वस्तुओं के नमूने रखे जाते हैं।
- स्थानीय तथा विभिन्न देशों के कपड़े, टोकरी, लकड़ी का काम, पेंटिंग, चित्रकारी की वस्तुओं का संग्रह किया जाता है।
- दूसरे देशों के डाक टिकट, राष्ट्रीय ध्वज, मूंगा, सीप, समुद्र फेन आदि वस्तुएं भी रखी जाती हैं।
- इतिहास कक्ष में उत्तम प्रकार के चित्रों का चयन किया जाए जो ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों से संबंधित हों। कुछ बड़े तथा कुछ छोटे चित्र हों। बड़ों को दीवार पर लगा देना चाहिए। अतीत की चित्रकारी के नमूने भी लगाने चाहिए। छोटे चित्रों के लिए एलबम तैयार करनी चाहिए जिसमें कालक्रम का ध्यान रखा जाए। उन्हें इतिहास कक्ष में रखा जाए।
- शोकेस– इतिहास कक्ष के शोकेस में अतीत के सिक्कों, अस्त्र–शस्त्र, राजाओं की पोशाक तथा अन्य अवशेषों को रखा जाए। उनका विवरण भी साथ में दिया जाए।
- मानचित्र तथा चार्ट– इतिहास कक्ष में बड़े ऐतिहासक मानचित्रों को दीवार पर लगा देना चाहिए और शिक्षण में प्रयोग किए जाने वाले मानचित्रों को स्टैण्ड में रखना चाहिए। महत्वपूर्ण युद्धों के चित्रों को भी दीवार पर लगाया जाना चाहिए।

टिप्पणी

ऐतिहासिक मानचित्रों के अवगुण तथा सेनाओं के मार्गों तथा युद्ध–स्थलों को भी प्रदर्शित किया जाए।

- समय रेखा तथा समय–ग्राफ– कक्ष में कालक्रम अनुभूति की विभिन्न प्रविधियों की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे छात्रों में समय–अनुभूति का विकास किया जा सके। वर्तमान और अतीत के अध्ययन के लिए समय–ग्राफ द्वारा अतीत के उत्थान, पतन को रेखाओं के उतार–चढ़ाव से प्रदर्शित किया जाए। भिन्न–भिन्न राजाओं तथा महापुरुषों के काल का अंतर आदि भी समय रेखाओं द्वारा स्पष्ट किया जाए।

  समय रेखा या तो कमरे की दीवार पर अंकित की जाए या कार्ड–बोर्ड की एक रेखा बनाकर दीवार पर लगा दी जाए। सम्पूर्ण रेखा को कुछ समान भागों में विभक्त कर लेना चाहिए, जो शताब्दियों को प्रदर्शित करें। महत्वपूर्ण तिथियों तथा महान पुरुषों को समय रेखा पर उपयुक्त स्थान पर अंकित किया जाए। जूनियर कक्षाओं के लिए तिथि के साथ महान पुरुषों तथा राजाओं का चित्र भी लगाया जा सकता है। विश्व–इतिहास के शिक्षण के लिए भी समय रेखा बनायी जा सकती है। यह पुनरावृत्ति में अधिक उपयोगी होती है।

  दीवार पर सबसे ऊंचे भाग पर समय रेखा बनाई जाए। प्रत्येक देश के लिए समय रेखाएं पृथक रूप में बनाई जा सकती हैं। ऐतिहासिक घटनाओं तथा सामाजिक उत्थान, पतन को समय–ग्राफ से भी दिखाया जा सकता है।

- इतिहास कक्ष के विकास के लिए स्थानीय चित्रों, फोटो, मानचित्रों, सिक्कों, टिकटों के संग्रह तथा चित्रकारी से प्रयास प्रारंभ किया जा सकता है।
- छात्रों से प्रतिवर्ष कुछ न कुछ मॉडल, चित्र तथा मानचित्र तैयार कराये जा सकते हैं।
- मौलिक रूप में जैसे– सिक्के, यंत्र, अस्त्र–शस्त्र, पोशाक, शिलालेख, आज्ञापत्र, संधियां, न्यायालयों के निर्णय, आदेश, फरमान, बर्तन, ताम्रपात्र तथा चित्रकारी शिल्पकला आदि।
- सहायक स्रोत– जैसे– जीवन चरित्र, आत्मकथाएं, जीवनियां, पाठ्य पुस्तकें, फोटो, चित्र, मानचित्र आदि।
- अतीत के बहुमूल्य वस्त्रों, सिक्कों, जेवरात, यंत्रों आदि को शोकेस में रखना चाहिए। उनके विवरण भी साथ लिखे रहने चाहिए।
- महान पुरुषों तथा राजाओं के फोटो आदि दीवारों पर लगाने चाहिए। ऐतिहासिक जरनल्स के कटिंग भी रखे जा सकते हैं।
- विभिन्न वस्तुओं के नमूने तथा मॉडल भी रखे जा सकते हैं।
- अतीत काल की चित्रकारी, शिल्पकला को शीशे की अलमारियों तथा शोकेस में लगाया जाना चाहिए। इसके साथ पूर्ण विवरण भी दिया जाए।
- पुस्तकें, संदर्भ ग्रंथ, आत्मकथाएं, जीवनियां आदि शीशे की अलमारियों में रखी जाएं। ऐतिहासिक एलबम की व्यवस्था भी की जा सकती है।

- विश्व–इतिहास के ज्ञान की दृष्टि से विभिन्न देशों के सिक्के, डाक टिकटें, ध्वज आदि भी रखे जा सकते हैं।
- छात्रों से स्थानीय ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह भी कराया जा सकता है। छात्रों से भी मॉडल, चार्ट आदि तैयार कराए जा सकते हैं।
- **सामुदायिक अधिगम सहायक सामग्री**– विभिन्न सामुदायिक संस्कृतियों के सामाजिक रीति–रिवाज, अनुष्ठान, उनके लोकगीत, परंपराओं, इतिहास, मान्यताओं, रीतियों और भेद–भावों से संबंधित सभी प्रकार की दृश्य सामग्री, श्रव्य सामग्री का उचित प्रदर्शन सामाजिक अध्ययन के शिक्षण और अधिगम को मनोरंजक और सार्थक बनाने में बहुत सहायक है।

टिप्पणी

सामाजिक अध्ययन पुस्तकालय

सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों की व्यवस्था के लिए इसके पुस्तकालय के संबंध में जानकारी होना भी आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में सीखने के अनुभवों की दृष्टि से इस पुस्तकालय के निम्नलिखित उपयोग हैं–

1. छात्रों में स्वतंत्र अध्ययन की प्रवृत्ति का विकास होता है।
2. सहायक पाठ्य पुस्तकें अध्यापकों तथा छात्रों को पढ़ने हेतु मिल जाती हैं।
3. पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों, पत्रिकाओं, कहानियों, भौगोलिक यात्राओं को पढ़ने का अवसर भी मिल जाता है।
4. पुस्तकालय से स्वाध्याय की आदत का विकास होता है।
5. गरीब छात्रों को पाठ्य पुस्तकें प्राप्त हो जाती हैं जिससे उनकी सहायता हो जाती है।
6. उच्च कक्षाओं तथा अध्यापकों को संदर्भ पुस्तकों तथा ग्रन्थों को देखने तथा पढ़ने की सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

सामाजिक अध्ययन पुस्तकालय की पुस्तकों के स्वरूप

1. पाठ्य पुस्तकें– विद्यालय की सभी कक्षाओं के लिए सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तकों की दस–दस प्रतिलिपियां होनी चाहिए।
2. सहायक पाठ्य पुस्तकें– पाठ्य वस्तु से संबंधित विशिष्ट ज्ञान के निमित्त सहायक पाठ्य पुस्तकों की भी व्यवस्था होनी आवश्यक है। इससे अध्यापकों को शिक्षण में अधिक सहायता मिलती है। कश्मीर की यात्रा, बद्रीनाथ की यात्रा, समुद्री यात्राओं का वर्णन, आदिम वासियों की जीवन–गाथाएं तथा अन्वेषण, उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी ध्रुव तथा चन्द्रमा से जुड़ी जानकारी वाली पुस्तकें रखी जाएं। छात्र कहानी की पुस्तकों में अधिक रुचि लेते हैं।
3. विशिष्ट पुस्तकें– सामाजिक अध्ययन पुस्तकालय में प्राकृतिक, खगोल, आर्थिक, राजनैतिक तथा मानव भूगोल संबंधी पुस्तकें भी रखी जाएं। कुछ प्रयोगात्मक पुस्तकें एवं सर्वेक्षण तथा मानचित्र–कला संबंधी पुस्तकों की भी व्यवस्था की जाए। ये विशिष्ट पुस्तकें संदर्भ के लिए अधिक उपयोगी होती है।
4. मानचित्रावली– सामाजिक अध्ययन पुस्तकालय में विविध प्रकार की मानचित्रावली भी होनी चाहिए। भारत की राष्ट्रीय मानचित्रावली की एक प्रतिलिपि रखी जाए।

पिक्टोरियल एटलस भी होनी चाहिए, क्योंकि विद्यार्थी इनमें अधिक रुचि लेते हैं। आर्थिक वस्तुओं के विवरण के लिय विशिष्ट एटलसों की व्यवस्था होनी चाहिए।

5. पत्र–पत्रिकाएं– सामाजिक अध्ययन कक्ष का ही एक विभाग पुस्तकालय का होना चाहिए। इसके लिए सामाजिक अध्ययन संबंधी पत्र–पत्रिकाएं मंगवाई जाएं तथा कुछ रिपोर्ट और आलेखों की भी व्यवस्था करना चाहिए। इनकी संदर्भ के लिए अधिक आवश्यकता रहती है और अध्यापक को तत्कालीन सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं।

पुस्तकालयी पुस्तकों के विषय में ध्यातव्य बातें

1. विविध प्रकार की पुस्तकों को उनके वर्गों में ही रखा जाए, जिससे उनको प्राप्त करने में अधिक सुगमता रहे।
2. संदर्भ पुस्तकों को पढ़ने की सुविधाएं केवल पुस्तकालय में ही सुलभ हों। उन्हें घर के लिए नहीं देना चाहिए।
3. पुस्तकालय में नई पुस्तकों का मुखपृष्ठ, सूचनापट पर लगा देना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को नवीन पुस्तकें पढ़ने हेतु प्रोत्साहन मिलेगा।
4. पुस्तकालय का वातावरण शांत तथा ऐसा होना चाहिए जो अध्ययन के लिए उत्साहित करे। जिससे विद्यार्थियों में स्वाध्याय की आदत का विकास हो सके।
5. शिक्षा के शोध कार्यों से कुछ परिणाम निकाले गए हैं कि पुस्तकालय का पर्याप्त होने और विद्यार्थियों के उपयोग का, विद्यालय के उच्च परीक्षाफल से सहसंबंध होता है। इसका अर्थ है कि सामाजिक अध्ययन के पुस्तकालय में पर्याप्त पुस्तकें हैं और विद्यार्थी उनका अधिक से अधिक प्रयोग करते हैं। ऐसे में सामाजिक अध्ययन विषय का परीक्षाफल भी उत्तम रहेगा।
6. पुस्तकालय को बेहतर बनाने में अध्यापक का ही विशेष योगदान रहता है। वही उसके महत्व को समझता है।
7. अध्यापक को विद्यार्थियों हेतु पुस्तकें अनुदान रूप में लेनी चाहिए। अपनी प्रतिलिपियों (Specimen) को भी पुस्तकालय को दे देना चाहिए।
8. शिक्षक– पुस्तकालय के इतिहास कक्ष में शिक्षक की सहायता के लिए संदर्भ ग्रंथ, पत्रिकाएं, जर्नल्स और शिक्षण विधि की पुस्तकों की भी व्यवस्था की जाए। प्रत्येक इतिहास–शिक्षक उनका अध्ययन इतिहास कक्ष में कर सकता है।
9. विद्यार्थी– पुस्तकालय के इतिहास कक्ष में विद्यार्थियों के लिए उत्तम कोटि की पाठ्य पुस्तकें हिन्दी, अंग्रेजी तथा प्रादेशिक भाषा में होनी चाहिए। इसमें संदर्भ पुस्तकें और सहायक पुस्तकों की भी व्यवस्था होनी चाहिए। नाटकीय ढंग से लिखी गई ऐतिहासिक–पुस्तकों का संकलन किया जाए। कुछ ऐतिहासिक एलबम, जीवन–कथाएं तथा इतिहास की कहानी के रूप में लिखी गई पुस्तकों को रखा जाए, क्योंकि विद्यार्थी इस प्रकार की पुस्तकों के अध्ययन में अधिक रुचि लेते हैं।

सामाजिक अध्ययन में सहायक क्रियाएं

सामाजिक अध्ययन की विविध सहायक क्रियाओं को अग्रांकित बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

● शैक्षिक–पर्यटन

प्रोफेसर रेन ने शैक्षिक–पर्यटन विधि का विकास किया जिसके द्वारा भूगोल, प्रकृति–अध्ययन, इतिहास, वनस्पति–विज्ञान, जीवविज्ञान तथा अन्य विषयों का शिक्षण वास्तविकता में किया जा सकता है। इसमें छात्रों को खुले तथा स्वतन्त्र वातावरण में ले जाया जाता है। इसमें सामाजिक प्रशिक्षण का भी अवसर उन्हें मिलता है।

विभिन्न विद्यालयों की पाठ्य वस्तु का वास्तविक अनुभवों द्वारा ज्ञान प्रदान करने के लिए शैक्षिक पर्यटन अधिक उपयोगी है। स्थानीय निरीक्षण द्वारा उद्योग, भौगोलिक परिस्थिति, ऐतिहासिक स्थलों, व्यापार केंद्रों, बैंक, कचहरी, राजकीय इमारतों का वास्तविक ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

शैक्षिक–पर्यटन के उद्देश्य

1. छात्रों में भ्रमण की प्रवृत्ति तथा उनकी शैक्षिक उपादेयता का विकास करना।
2. छात्रों को उनके वातावरण से अवगत कराना।
3. छात्रों को अपने प्रत्यक्ष अनुभवों को व्यवस्थित रूप में अर्थापन करने की क्षमता हेतु विकास अभिप्रेरित करना।
4. छात्रों में निरीक्षण, कल्पना–शक्ति एवं अन्वेषण की क्षमताओं का विकास करना।
5. छात्रों में स्थलों, दृश्यों की सौंदर्यानुभूति के लिए वास्तविक रुझान विकसित करना।
6. छात्रों में सहानुभूति एवं सहयोग की भावना का विकास करना।

शैक्षिक–पर्यटन का नियोजन

शैक्षिक–पर्यटन के नियोजन में अधोलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाना चाहिए–

1. शैक्षिक–पर्यटन के विशिष्ट उद्देश्यों का प्रतिपादन करना चाहिए।
2. उन साधनों का चयन करना चाहिए जिनसे उद्देश्यों की प्राप्ति समुचित रूप से की जा सके।
3. विद्यालय के नियमों को ध्यान में रखते हुए अधिकारियों से पर्यटन के लिए अनुमति भी प्राप्त करनी चाहिए।
4. पर्यटन का कार्यक्रम–तिथि, समय, छात्रों की संख्या, आर्थिक व्यवस्था आदि सुनिश्चित करनी चाहिए।
5. प्रत्येक छात्र को निर्देशन–पत्र तैयार करना चाहिए।
6. उन संस्थाओं से संपर्क करके, जिनमें छात्रों को जाना है ठहरने के स्थानों को सुनिश्चित कर लेना चाहिए।
7. शैक्षिक–पर्यटन के स्थलों के लिए यातायात के साधनों का भी प्रबंध करना चाहिए। तत्पश्चात कार्यक्रम तैयार करना चाहिए।
8. छात्रों को निर्देश देना चाहिए कि उन्हें क्या देखना तथा विवरण तैयार करना है।
9. पर्यटन आरम्भ करने से पूर्व निर्देशन–पत्र तैयार करना चाहिए।

पर्यटन शिक्षण में प्रयोग

1. छात्रों को तैयार करना
2. पर्यटन की व्यवस्था करना
3. पर्यटन का अनुकरण करना
4. छात्रों का परीक्षण करना
5. शिक्षण की समीक्षा करना।

शैक्षिक पर्यटन का महत्व

शैक्षिक पर्यटनों की अधोलिखित उपादेयताएं/विशेषताएं होती हैं–

1. शिक्षण को रोचक, बोधगम्य तथा वास्तविक बनाया जाता है।
2. छात्रों में निरीक्षण तथा सौंदर्यानुभूति की क्षमताएं विकसित होती हैं।
3. शिक्षण के ज्ञानात्मक तथा भावात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।
4. छात्रों में समूह में कार्य करने तथा सहयोग की भावना का विकास होता है।

- **उत्खनन**

उत्खनन की तकनीकों का विकास खजाने खोजने के क्रम में प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। अन्वेषक किसी स्थल पर मानवीय गतिविधियों द्वारा पड़ने वाले संपूर्ण प्रभाव को जानने का प्रयास करते थे। साथ ही इस स्थल का दूसरे स्थलों के साथ (जिस भूदृश्य में यह स्थित है) संबंध को जानने का भी प्रयास होता था। जहां तक शिक्षार्जन और शिक्षण में उत्खनन की उपादेयता की बात है, इस हेतु अध्यापकों को प्रयास करना चाहिए कि संबंधित विषय से संबद्ध जगहों की खोज की जाए और छात्रों के समूहों को वहां ले जाया जाए। यद्यपि यह एक दुष्कर कार्य है। इसकी संभावना न बनने पर छात्रों को संबद्ध संग्रहालय में ले जाया जा सकता है। वहां उपलब्ध वस्तुओं के महत्व को समझाया जा सकता है। अध्यापक इसके लिए एक अलग समय–सारणी बना सकते हैं।

संबंधित विभाग द्वारा यदि अनुमति मिल जाए तो छात्र, अध्यापक इस प्रक्रिया को अपना कर व्यावहारिक ज्ञान की व्यवस्था कर सकते हैं। उत्खनन के प्रारंभ में मशीन द्वारा ऊपरी मिट्टी के ढेर को हटाया जाना सम्मिलित होता है। इस सामग्री का मेटल डिटेक्टर द्वारा परीक्षण किया जाता है ताकि भूल से अलग रह गई कोई भी सामग्री खोजी जा सके, परंतु यदि इसके परित्याग से लेकर अब तक यह अनछुई नहीं रही है, तो इसमें आधुनिक सामग्रियों की एक परत मिलेगी जिसमें पुरातात्विक रुचि का अभाव होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित कोई फीचर सतह के नीचे दिखाई पड़ जाता है परंतु शहरी क्षेत्रों में मानवीय निक्षेप की एक मोती परत हो सकती है।

प्रारंभ में सबसे ऊपरी संदर्भ ही प्रदर्शित होगा तथा इसे अन्य संदर्भों से अलग करके देखना होगा। संदर्भों तथा फीचर के नमूने लेने की एक रणनीति बनाई जाती है जिसमें प्रत्येक फीचर के पूर्ण उत्खनन अथवा आंशिक उत्खनन के विषय में निर्णय लिया जाता है। उत्खनन का वरीयता प्राप्त लक्ष्य यह होता है कि सभी पुरातात्विक निक्षेपों तथा फीचर को उनके निर्माण के उलटे क्रम में हटाया जाए। कालानुक्रमिक रिकॉर्ड अथवा "अनुक्रम" के रूप में हैरिस मैट्रिक्स का प्रयोग ज्ञान की सतत बढ़ती हुई इकाइयों की

व्याख्या तथा इन्हें जोड़ने में किया जाता है। पुरातात्विक रिकॉर्ड से सामग्री को हटाने हेतु कुछ बुनियादी दिशा–निर्देशों का पालन किया जाता है।

● फील्ड वर्क

विषय कोई भी हो जब तक उसका व्यावहारिक ज्ञान न हो, तब तक वह पूरी तरह से ग्राह्य नहीं हो पाता। इसीलिए इन दिनों विद्यालयों में प्रैक्टीकल यानी व्यावहारिक ज्ञान पर बल दिया जाने लगा है। अध्यापक का दायित्व बनता है कि वह अपने छात्रों के लिए ऐसा कार्यक्रम बनाए अथवा अपने छात्रों में से ऐसे छात्रों को चुने जिससे आगे चलकर उन्हें व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कराया जा सके। इसके लिए कुछ निम्न बातों को ध्यान में रखा जाए–

टिप्पणी

1. अध्यापक को छात्रों में ऐसी रुचि का विकास करना चाहिए। विषय से संबंधित नई–नई जानकारी देने वाले क्षेत्रों का पता लगाना चाहिए।
2. कुछ ऐसे छात्रों का चयन करें, जिनमें नेतृत्व की क्षमता हो।
3. छात्र नेता को धैर्यवान, दूसरों से मेलजोल बनाने की क्षमता से युक्त अपने अधीनस्थों के साथ मिलजुल कर कार्य करने का गुण होना चाहिए।
4. छात्र नेता का सहयोगी होना भी आवश्यक है।
5. सदा ऐसे कार्यक्षेत्र का चुनाव करें, जहां जाना जोखिम भरा न हो।
6. यदि जोखिम वाला कार्यक्षेत्र हो तो अपने सभी अधीनस्थ छात्रों को समय रहते पूर्ण प्रशिक्षण देना चाहिए। पूर्णतः संतुष्ट हो जाने के बाद ही अपनी योजना को कार्यरूप देने का प्रयास करना चाहिए।
7. जिस दिन कार्यक्षेत्र में जाना हो, उस दिन की पूर्व संभावनाओं पर समय–पूर्व विचार कर लेना चाहिए यानी उस दिन कोई राजपत्रित अवकाश न हो, मौसम औसत से ज्यादा ठंडा, गर्म अथवा वर्षा का न हो आदि।

● प्रदर्शनी

प्रदर्शनी में छात्रों के सहयोग से निर्मित वस्तुओं को एक स्थान पर सजाया जाता है। शैक्षिक महत्व की वस्तुओं का प्रदर्शन शैक्षिक प्रदर्शनी कहलाता है। इस प्रदर्शनी का हम दो भागों में वर्गीकरण कर सकते हैं– 1. कक्षा प्रदर्शनी तथा 2. विद्यालय प्रदर्शनी।

1. कक्षा प्रदर्शनी के अंतर्गत कक्षा–विशेष के छात्रों द्वारा निर्मित शैक्षिक महत्व की वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है। तथा
2. विद्यालय प्रदर्शनी के अंतर्गत विद्यालय के समस्त स्तरों के छात्रों द्वारा निर्मित शैक्षिक महत्व की सामग्री का प्रदर्शन किया जाता है। सामाजिक अध्ययन विषय से संबंधित प्रदर्शनी में मॉडल, चित्र, रेखाचित्र, चार्ट आदि को स्थान दिया जा सकता है।

प्रदर्शनी की व्यवस्था में ध्यातव्य बातें

1. प्रदर्शनी में छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं को प्राथमिकता देनी चाहिए।
2. प्रदर्शनी में सजाई गई वस्तुएं विषय से संबंधित होनी चाहिए।
3. प्रदर्शनी की व्यवस्था में छात्रों का सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए।

4. प्रदर्शनी में सजाई गई वस्तुओं के विषय में समझाने का कार्य छात्रों को ही सौंपा जाए।
5. प्रदर्शनी से अभीष्ट शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति होनी चाहिए।
6. प्रदर्शनी में अभिभावकों को भी आमंत्रित किया जाना चाहिए।
7. प्रदर्शनी ऐसी होनी चाहिए कि स्वयं छात्रों के आत्मविश्वास में वृद्धि हो।
8. प्रदर्शनी से छात्रों को विषय एवं प्रकरण से संबंधित नई विधियों एवं तकनीक को जानने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण की प्रयोगशाला

परंपरागत पद्धतियों की तुलना में यह एक नवीन एवं अधिक उपयुक्त पद्धति है। इसमें 'करके सीखने' के सिद्धांत को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है अर्थात इस पद्धति के अंतर्गत छात्र स्व–क्रियाओं अथवा स्व–प्रयासों के आधार पर ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस पद्धति के माध्यम से प्राप्त अनुभव उनके मस्तिष्क का स्थायी अंग बन जाते हैं। इस पद्धति के अंतर्गत शिक्षक को मात्र कार्य का निर्धारण करना होता है, तथा कार्य से संबंधित संक्षिप्त रूपरेखा छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करनी होती है, जिस के आधार पर छात्र स्वयं प्रयोगशाला में बैठकर अपने निर्धारित कार्य को पूर्ण करते हैं।

छात्रों को कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ही कार्य से संबंधित विभिन्न सहायक साधनों तथा पुस्तकों आदि के संबंध में जानकारी प्रदान कर दी जाती है। छात्र उन साधनों के आधार पर निर्धारित समय में अपने कार्य को पूर्ण करने हेतु संलग्न हो जाते हैं। प्रयोगशाला में छात्रों को निर्धारित कार्य पूर्ण करने की पर्याप्त स्वतंत्रता होती है। वहां वे संबंधित पुस्तकों का अध्ययन कर सकते हैं, लिखित कार्य कर सकते हैं, शब्द–कोष एवं मानचित्र देख सकते हैं तथा सामूहिक रूप से पाठ्यविषय पर वाद–विवाद भी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क में विशेष जिज्ञासा उत्पन्न होने पर वे अध्यापकों से उचित मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

इस विधि में छात्रों के समक्ष ऐसी परिस्थितियां पैदा की जाती हैं, जिनमें बालक करके सीखता है अर्थात क्रिया द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है और इस ज्ञान का अर्जन वह प्रयोगशाला के माध्यम से करता है। प्रयोगशाला विधि के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं–

बैस्ले और रोन्सकी के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन की प्रयोगशाला से अभिप्राय है कि कोई एक कमरा या कमरों का एक समूह जिसमें सामाजिक अध्ययन शिक्षण से संबंधित लिखित तथा अन्य श्रव्य–दृश्य सामग्री रखी होती है।" (A social study laboratory may be defined as a room or group of roos in which contained all written audio and visual materials pertaining of the social studies instructions.)

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार, "प्रयोगशाला विधि शैक्षणिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कारण, प्रभाव, प्रकृति अथवा किसी तत्व के गुण (सामाजिक, मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक) को नियंत्रित दशाओं के अंतर्गत वास्तविक अनुभव अथवा प्रयोग द्वारा सुनिश्चित किया जाता है।" (Lobaratory method is the instructional procedure by which the cause, effect, nature or property of any phenomenon whether (social, psychological

or physical) is determined by actual experience of experiment under controlled condititions.)

प्रयोगशाला में प्रयुक्त सामग्री

1. सामाजिक अध्ययन विषय की पाठ्यपुस्तकें।
2. फर्नीचर (मेज, कुर्सी)।
3. श्यामपट्ट, बुलेटिन बोर्ड, शिक्षण की मेज, अलमारियां, पत्रिकाएं आदि।
4. चित्र, मानचित्र, प्रदर्शन सामग्री आदि रखने के लिए कैबिनेट तथा फाइलें, अभिलेख, रेखाचित्र, रेडियो, टेप (वीडियो, ऑडियो), टी.वी., ओवरहेड प्रोजेक्टर, ऐपिडास्कोप, फिल्म, फिल्म खंड, स्क्रीन कम्प्यूटर आदि।

प्रयोगशाला विधि की प्रक्रिया

इस विधि में सर्वप्रथम शिक्षक छात्रों के लिए कार्य करते हैं। बाद में शिक्षक छात्रों द्वारा किए गए कार्य का निरीक्षण करता है। जहां पर कार्य में अशुद्धियां दिखाई देती हैं उनका वह उनसे सुधार कराने का प्रयास करता है तथा सुझाव भी देता है। इस विधि के अनुसार छात्रों के समक्ष एक समस्या रखी जाती है तथा छात्रों को उनका समाधान खोजने के लिए कहा जाता है। इस समस्या के समाधान हेतु निम्न पदों का अनुसरण किया जाता है–

1. **समस्या का चयन**– सर्वप्रथम शिक्षक छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार उनके लिए समस्या की खोज करता है और उसमें उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है।
2. **समस्या का प्रस्तुतीकरण**– जब शिक्षक छात्रों के लिए समस्या का चुनाव कर लेता है तो उसे विभिन्न माध्यमों से छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है, जैसे– पूछकर, चित्र दिखाकर आदि।
3. **तथ्यों का विश्लेषण**– छात्र समस्या के विषय में आपस में वाद–विवाद एवं पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से समस्या से संबंधित विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण करते हैं।
4. **सामान्यीकरण**– छात्र विभिन्न तरीकों से पाठ्यपुस्तक या समस्या के लक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है व उसका सामान्यीकरण कर लेता है।
5. **अभिलेखन**– इस पद में छात्रों द्वारा किए गए कार्य को क्रमबद्ध तरीके से लिखने का कार्य किया जाता है।
6. **मूल्यांकन**– लिखने के बाद उस संपूर्ण कार्य या समस्या के समाधान को शिक्षक के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तथा शिक्षक उस कार्य के विषय में निर्णय देता है। यदि उसमें सुधार की आवश्यकता होती है तो सुझाव भी देता है।

शिक्षण विषयों में नवाचार एवं उनका भविष्य

वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास तथा भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप शिक्षा तथा शिक्षा प्रबन्ध का रूप परिवर्तित होता जा रहा है। जन शिक्षा का भी सम्पूर्ण

शिक्षा पर प्रभाव पड़ा है। औद्योगीकरण का तत्व भी प्रभावपूर्ण है। जनसंचार तथा यातायात के साधनों ने जनसंख्या की गतिशीलता बढ़ाई है। साथ ही ज्ञान का विस्फोट अति तीव्र गति से हो रहा है। इन सब कारणों से जो नई तकनीकें तथा सिद्धान्त शिक्षा के विभिन्न पक्षों को प्रभावित कर रहे हैं, उन्हें नवाचार कहते हैं।

टिप्पणी

शिक्षा में दूरदर्शन का प्रयोग जब आरम्भ हुआ था, तो इसे नई तकनीक कहा जाता था।

इसी प्रकार तकनीक नई है अथवा पुरानी है– इसका आधार उपलब्ध साधनों पर निर्भर करता है। विकासशील व विकसित देशों तथा अति पिछड़े देशों में 'नई तकनीक' सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। शीघ्र परिवर्तनशील परिस्थितियों में 'नई तथा पुरानी' अवधारणा में बहुत अन्तर आ जाता है।

आज की परिस्थिति में निम्न तकनीकों को नई तकनीकें कहा जाता है–

1. मल्टी मीडिया एप्रोच (Multi Media Approach)
2. पर्सनलाइज्ड सिस्टम ऑफ इन्स्ट्रक्शन (PSI)
3. कम्प्यूटर असिस्टिड इन्स्ट्रक्शन (CAI)
4. सैटेलाइट सम्प्रेषण (Satellite Communication)
5. मॉड्यूलर उपागम (Modular Approach)
6. रेडियोविजन (Radiovision)
7. इण्टरनेट (Internet)
8. ई–मेल (E-mail)
9. सीडी–रोम (CD-ROM)
10. सिमुलेटेड शिक्षण (Simulated Teaching)
11. अन्तःक्रिया प्रणाली (Interactions System)
12. सिस्टम्स एप्रोच (Systems Approach)
13. अभिक्रमित अध्ययन (Programmed Instruction)
14. शैक्षिक दूरदर्शन (Educational Television)
15. टेलीकॉन्फ्रेंसिंग (Teleconferencing)
16. इण्ट्रानेट (Intranet)
17. शिक्षण मशीन (Teaching Machine)
18. वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग (Video Conferencing)
19. वीडियो टैक्स्ट (Video Text)
20. वीडियो डिस्क (Video Disc)
21. शिक्षा में नवाचार

2.3.2 कम लागत और शून्य लागत वाले TLR का चयन और निर्माण

कम लागत वाली शिक्षण सामग्री वह है, जो देश के स्थानीय कारखानों द्वारा उत्पादित की जाती है। इसके अन्य हिस्से (स्पेयर पार्ट्स) भी आसानी से मिल जाते हैं तथा इसकी कीमत सदैव दूसरे देशों से आयातित उपकरणों की तुलना में कम होती है। कम लागत वाली शिक्षण सामग्री में न्यूनतम लागत शामिल होती है क्योंकि ये घरेलू कचरे एवं अनुपयोगी वस्तुओं से या हमारे तत्काल परिवेश और प्राकृतिक वातावरण में आसानी से उपलब्ध सामग्री से बने होते हैं।

भारत जैसे विकासशील देश के लिए दिए गए स्तर पर सभी छात्रों के लिए उपकरणों में निवेश एक भारी वित्तीय बोझ है। बड़ी संख्या में स्कूलों को देखते हुए सहायक शिक्षण सामग्री का उपयोग काफी वित्तीय भार डालता है। परिसर में विकसित और निर्मित ये सामग्रियां, विद्यालयों को आत्मनिर्भर बनने और शिक्षा की लागत को कम करने में सहायता करती हैं। कम लागत वाली शिक्षण सहायक सामग्री का वृद्धिशील और चयनात्मक उपयोग शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को अधिक विविध, रोचक और प्रभावी बनाता है।

कई बार मानक शिक्षण सहायक सामग्री पहुंच से बाहर होती है। इसका कोई भी कारण हो सकता है। चारों ओर देखें, संभव है कि किसी को अपने आसपास से कुछ मिल जाए, जो विषय के लिए एक बेहतर शिक्षण सामग्री के रूप में काम कर सकता है। इसके अतिरिक्त, कम लागत वाली शिक्षण सामग्री का निर्माण वह अभिनव प्रयोग है, जहां अनुपयोगी एवं बेकार की चीजों से उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण कर लिया जाता है। इस सामग्री की लागत कम या कई बार तो शून्य तक होती है। नि:शुल्क शिक्षण सामग्री को एक शिक्षक स्थानीय स्रोतों से लेता है तथा उसका उपयोग कक्षा शिक्षण में छात्रों को शिक्षित करने में सहायक उपकरणों के रूप में करता है। नर्सरी, प्राइमरी, माध्यमिक, सेकेंडरी और सीनियर सेकेंडरी स्कूलों में कम लागत वाली शिक्षण सामग्री का उपयोग किया जा सकता है।

वैसे यह हो सकता है कि किसी दिए गए विषय में उपयोग की जाने वाली सामग्री के प्रकार और संख्या एक कक्षा से दूसरी कक्षा में भिन्न हो सकती है। लेकिन मोटे तौर पर, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के छात्रों को प्राथमिक सामग्री जैसे- कागज के टुकड़े, कार्डबोर्ड और थर्मोकोल के साथ कैंची, गोंद आदि का उपयोग करके साधारण वस्तुएं बनाने में लगाया जा सकता है। इसी प्रकार, वरिष्ठ स्कूल के छात्र धातु, लकड़ी, प्लास्टिक, रबर आदि का उपयोग करके शिक्षण सहायक सामग्री का निर्माण कर सकते हैं।

विकासशील देशों की प्रमुख समस्याएं खाद्य आपूर्ति, आजीविका, स्वास्थ्य, पोषण और विकास और अर्थव्यवस्था हैं। छात्र और उसके परिवार के स्तर पर भोजन, स्वास्थ्य और आजीविका का गहरा प्रभाव पड़ता है। विकास में देश स्तर पर (विज्ञान) शिक्षण में आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है और अधिक महत्वपूर्ण रूप से शिक्षक स्तर पर भी।

कम लागत वाली शिक्षण सामग्री के लाभ

भारत जैसे विकासशील देशों में विज्ञान शिक्षा के लिए कम लागत/बिना लागत वाली शिक्षण सामग्री के उपयोग के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. **सस्तापन :** कम लागत/बिना लागत वाली शिक्षण सामग्री सस्ती होती है। एक निश्चित स्तर पर सभी छात्रों के लिए उपकरणों में निवेश एक विकासशील देश के लिए एक भारी वित्तीय बोझ है। उपकरण के शैक्षणिक और तकनीकी उपयोग में शिक्षक प्रशिक्षण, रखरखाव के प्रावधान और पुन:पूर्ति आदि जैसी आवश्यक अनुवर्ती में कई बार धन का अभाव होता है।
2. **खो जाने का भय नहीं :** चूंकि कम लागत/बिना लागत वाली शिक्षण सामग्री महंगी नहीं होती है इसलिए इसके चोरी हो जाने या खो जाने का भय नहीं होता है।
3. **वित्तीय बोझ नहीं :** कम लागत/बिना लागत वाली शिक्षण सामग्री के निर्माण में धन की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती है, इसकी वजह से इनसे वित्तीय बोझ नहीं पड़ता है तथा विद्यालय एवं देश के धन की बचत होती है।
4. **समान सिद्धांत :** कम लागत/बिना लागत वाली शिक्षण सामग्री ठीक उसी सिद्धांत पर कार्य करती है, जिस सिद्धांत पर महंगी शिक्षण सामग्री। इस वजह से इनके उपयोग में कोई आशंका भी नहीं होती है।
5. **रखरखाव और मरम्मत :** यदि उपकरण डिजाइन में सरल है तो शिक्षक और प्रयोगशाला तकनीशियन उसका आसानी से मरम्मत और रखरखाव कर लेते हैं।
6. **पाठ्यचर्या की प्रासंगिकता :** व्यवहार में, कम लागत वाले उपकरणों का विकास अक्सर पाठ्यक्रम डिजाइन में शामिल होता है।
7. **उच्च विद्यालय सामग्री :** छात्रों से परिचित भागों और सामग्री से बने उपकरण छात्रों की सहायता करने की अधिक संभावना रखते हैं।
9. **आत्मनिर्भरता :** इनका उपयोग शिक्षक के लिए वास्तविक जीवन से संबंधित आत्मविश्वास और विशेषज्ञता पैदा करता है।
10. **शिक्षक के ज्ञान में वृद्धि :** यह सामग्री शिक्षक को सामाजिक अध्ययन शिक्षा में व्यावहारिक कार्य के साथ-साथ प्रयोगशाला गतिविधियों में सामाजिक संसाधनों के उपयोग के महत्व को समझाती है तथा उसके ज्ञान में वृद्धि करती है।
11. **उपयोग में आसानी :** इस प्रकार की सामग्री कम लागत वाली चीजों से बनी होती है, इसकी वजह से इसके उपयोग में आसानी होती है तथा उनकी टूट-फूट का जोखिम भी ज्यादा नहीं होता है।

उपकरण खरीद के संबंध में पाठ्यक्रम में परिकल्पित परिवर्तनों को कभी-कभी ध्यान में नहीं रखा जाता है, भले ही वे निकट भविष्य में होने वाले हों। दूसरी ओर, पाठ्यचर्या के व्यावहारिक कार्यान्वयन में कभी-कभी व्यावहारिक कार्य के लिए बहुत कम या बिल्कुल भी समय नहीं दिया जाता है। एक और संभावना यह है कि प्रयोगों का शैक्षिक मूल्य कम है क्योंकि वे वैज्ञानिक धारणाओं को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने में विफल होते हैं या वैज्ञानिक सिद्धांतों और वास्तविक दुनिया के बीच संबंध को स्पष्ट नहीं करते हैं।

सामाजिक अध्ययन विषय के शिक्षण में पूरक और उदाहरणात्मक शिक्षा के लिए कम लागत वाली शिक्षण सहायता का उपयोग आसानी किया जा सकता है। भारत जैसे

संसाधनों की कमी वाली अर्थव्यवस्था में जहां आम जनता को इस बारे में शिक्षित करने की आवश्यकता है कि घरेलू कचरे और इस्तेमाल की गई वस्तुओं का सही तरीके से निपटान कैसे किया जाता है और कचरे और कचरे के विशाल ढेर को सड़कों और सड़क के किनारों पर फेंक दिया जाता है, घरेलू कचरे से बने कम लागत वाले शिक्षण सहायक उपकरण और कचरा एक विशेष रूप से उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करता है। थोड़ी सी रचनात्मकता और कल्पना के साथ, धातु, लकड़ी, प्लास्टिक, रबर, कागज आदि के स्क्रैप मूल्यवान वस्तुओं में रूपांतरित हो सकते हैं, जिनका उपयोग प्रभावी शिक्षण उपकरण के रूप में किया जा सकता है। कम लागत वाली शिक्षण सहायक सामग्री का व्यापक उपयोग न केवल शिक्षक/छात्र रचनात्मकता और भागीदारी को बढ़ावा देगा, संस्थागत बजट को लंबा रास्ता तय करने में मदद करेगा, बल्कि हमारे तत्काल वातावरण को साफ रखने में भी सहायक होगा। उपकरण हमेशा पाठ्यक्रम के लिए प्रासंगिक नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, यह उन प्रयोगों के लिए डिजाइन किया गया होता है, जो पाठ्यक्रम के अनुकूल नहीं हैं।

अतः उपलब्ध उपकरण हमेशा पाठ्यक्रम के लिए प्रासंगिक नहीं होते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कम या शून्य लागत वाली सहायता शिक्षण सामग्री का उपयोग काफी फायदेमंद होता है लेकिन इनका उपयोग एवं चयन काफी सोच-समझकर किया जाना चाहिए। यदि ऐसा कर लिया जाता है तो इससे फिर कई प्रकार के लाभ भी प्राप्त होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सामाजिक अध्ययन शिक्षण–अधिगम के संसाधनों को मुख्यतः कितने वर्गों में बांटा जा सकता है?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छः

4. निम्न में से कौन विद्यालय में प्रयुक्त होने वाला परंपरागत संसाधन प्रकार है?

   (क) श्यामपट्ट (ख) पुस्तक

   (ग) बुलेटिन बोर्ड (घ) उपर्युक्त सभी

2.4 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण के शैक्षणिक उपागम (पद्धतियां)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत शैक्षिक उपागम की कई विधियां (पद्धतियां) अपनाई जाती हैं, जिनमें व्यवहारवादी, रचनावादी, प्रोजेक्ट विधि, पर्यटन भ्रमण विधि, अनुकरण विधि, निर्वहन आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

प्रतिमान समझ का एक व्यापक मॉडल है, जो एक विशिष्ट क्षेत्र के शिक्षार्थियों को नियमों के साथ दृष्टिकोण प्रदान करता है कि क्षेत्रों की समस्याओं को कैसे देखा जाए और उन्हें कैसे हल किया जाए, इसे प्रतिमान कहा जाता है। प्रतिमान कुछ समस्याओं को हल

करने में अपने प्रतिस्पर्धी विधियों की तुलना में अधिक सफल है। जब निर्दिष्ट प्रतिमान सफलता के एक चरण तक पहुंच जाता है तो प्रतिमान की परिपक्वता और सीमाएं स्थापित हो जाती हैं तथा एक नया प्रतिमान उभर कर सामने आता है। मौजूदा प्रतिमान की सीमा एक बदलाव की ओर ले जाती है जिसे गहराई से प्रतिमान बदलाव कहा जाता है। यहां उस प्रतिमानात्मक परिवर्तन की चर्चा करेंगे, जो शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहारवाद से रचनावाद तक ले गया है।

2.4.1 व्यवहारवादी से रचनावादी दृष्टिकोण की ओर परिवर्तन

व्यवहारवाद मूल रूप से मानव के देखने योग्य और मापने योग्य पहलुओं के व्यवहार से संबंधित है। व्यवहार को परिभाषित करने में, व्यवहारवादी अधिगम सिद्धांत व्यवहार में परिवर्तन पर जोर देते हैं, जो शिक्षार्थी द्वारा बनाए गए उद्दीपन-प्रतिक्रिया संघों का परिणाम है। यह मानते हुए कि मानव व्यवहार को सीखा जाता है, व्यवहारवादियों का यह भी मानना है कि सभी व्यवहारों को सीखा नहीं जा सकता है और नए व्यवहार द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है। सीखने के इस सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व पुरस्कृत प्रतिक्रिया है। वांछित प्रतिक्रिया सीखने के लिए पुरस्कृत किया जाना चाहिए। व्यवहारवादी प्रतिमान में पुरस्कार के लिए लक्ष्य निर्धारित करने वाले शिक्षार्थी के व्यवहार में संशोधन आवश्यक है। व्यवहारवादी सिद्धांत शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक-केंद्रित दृष्टिकोण से सामग्री वितरित करने की धारणा है। उनका एकमात्र उद्देश्य शिक्षार्थी के मूल तथ्यों, उपलब्धियों और संबंधों में निहित है, जो विशिष्ट प्रकार की ज्ञान प्राप्ति में सहायक होता है।

व्यवहारवाद में बुनियादी धारणाएं

व्यवहारवाद में बुनियादी धारणाएं इस प्रकार हैं-

1. एक व्यवहारवादी प्रतिमान में, सीखना अवलोकनीय है और यह इस प्रकार प्रदान की गई उत्तेजना का परिणाम है।
2. सीखने को वातावरण द्वारा निर्धारित और स्वीकार किए जाने के लिए व्यवहार का एक संशोधन रूप प्रस्तुत करना।
3. व्यवहारवाद भौतिक विज्ञानों का अनुकरण करने का प्रयास करता है, जिसके बारे में अनुमान लगाना कठिन होता है।
4. कक्षा में अंत:क्रियात्मक प्रक्रिया व्यवहारवाद में कोई स्थान नहीं पाती है। प्रतिमान व्यवहारवाद प्रयोगों पर आधारित है।
5. व्यवहारवाद मुख्य रूप से देखने योग्य व्यवहार से संबंधित है।
6. व्यवहार उत्तेजना-प्रतिक्रिया का परिणाम है।
7. व्यवहार, परिवेश द्वारा निर्धारित किया जाता है।

व्यवहारवादी शिक्षण प्रतिमान के मूल सिद्धांत

व्यवहारवादी शिक्षण प्रतिमान के मूल सिद्धांत इस प्रकार हैं :

1. अवधारणाओं, सिद्धांतों और नियमों की स्थिति में एक पूर्ण उद्देश्य होता है।

2. अलगाव, जो परिवेश से अप्रभावित है, जिसमें व्यक्ति (शिक्षक, शिक्षक) शामिल हैं।
3. एक विशेष कक्षा के बच्चे द्वारा सीखी जाने वाली अवधारणाओं को किसके द्वारा पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है? विशेषज्ञों की सिफारिशों का सुविचारित दृष्टिकोण (पाठ्यक्रम की प्रधानता का सिद्धांत)
3. पाठ्यपुस्तकें इन अवधारणाओं का उदाहरणों, गैर उदाहरणों के साथ विस्तृत वर्णन करती हैं।
4. शिक्षक का काम इन स्थिर और चुनौती न देने योग्य अवधारणाओं को कक्षा में प्रसारित करना है।
5. निष्क्रिय शिक्षार्थी के रूप में देखे जाने वाले बच्चे को केवल वही प्राप्त करना होगा, जो प्रेषित होता है (सीखने की निष्क्रियता का सिद्धांत)।
6. बच्चे द्वारा सीखने की मात्रा या स्तर को उसके व्यवहार में परिवर्तन का आकलन करके मापा जाता है।

रचनावाद : एक प्रतिमान बदलाव

शिक्षा का रचनावादी सिद्धांत समस्या समाधान और आलोचनात्मकता में छात्र की सक्रिय भागीदारी पर आधारित है। यह एक सीखने की गतिविधि के बारे में छात्र में एक सोच उत्पन्न करता है। छात्र विचारों का परीक्षण करके अपने ज्ञान का निर्माण करते हैं और उनके पूर्व ज्ञान और अनुभव के आधार पर दृष्टिकोण विकसित कर उन्हें नई स्थिति में लागू करने और पहले से मौजूद बौद्धिक निर्माणों के साथ प्राप्त नए ज्ञान को एकीकृत करते हैं। शिक्षक एक सहायक माध्यम है, जो सीखने की प्रक्रिया के दौरान छात्र की महत्वपूर्ण सोच, विश्लेषण और संश्लेषण क्षमताओं का मार्गदर्शन करता है। शिक्षक इस प्रक्रिया में सह-शिक्षक भी है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, सामाजिक अध्ययन शिक्षण को हमेशा रोचक बनाया जाना चाहिए क्योंकि यह बच्चे को अपने अंदर संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावनात्मक विकास आदि जैसे सभी पहलू विकसित करने में मदद कर सकता हैं। यह बालक की अधिगम की स्थिति पर निर्भर करता है। इसके अनुसार, यदि अधिगम का वातावरण सहायक है, तो यह सीखने में रुचि पैदा करेगा। रचनावादी दृष्टिकोण के अनुसार, बालक में अधिगम का कार्य प्रयोगों द्वारा किया जाना चाहिए, जिससे छात्र में बहुत आत्मविश्वास पैदा होगा। यह वैज्ञानिक सोच के अधिग्रहण में मदद करेगा।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में ऐसी वैज्ञानिक पद्धति शामिल होनी चाहिए जो बच्चे को सोचने में मदद करे। आलोचनात्मक रूप से उनमें वैज्ञानिक कौशल विकसित करें। लेकिन वर्तमान कक्षा पद्धति यह उद्देश्य पूरा नहीं करती है।

आमतौर पर कक्षा में सामाजिक अध्ययन शिक्षण पारंपरिक माध्यम से होता है। इस तरह के निर्देश से संज्ञानात्मक विकास नहीं होता है। परंपरागत पद्धति में केवल तथ्यों की जानकारी और परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास छात्रों को एक वैज्ञानिक के रूप में सोचने में मदद करता है। इसलिए आवश्यकता है, उन तरीकों को आजमाएं, जो छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमताओं

टिप्पणी

को तेज करने में मदद करते हैं। कक्षा में शिक्षकों का वर्चस्व बना रहता है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षक-केंद्रितता आती है। हालांकि हम बाल-केंद्रित शिक्षा की बात करें तो हमने कभी भी शिक्षार्थी के अनुकूल वातावरण बनाने की कोशिश नहीं की है। वस्तुनिष्ठता इस धारणा पर आधारित है कि ज्ञान वस्तुपरक, सार्वभौम है और पूर्ण है तथा यह उनके द्वारा प्रदान किया जा सकता है जिनके पास यह है। दूसरी ओर, रचनावाद इस धारणा पर आधारित है कि ज्ञान व्यक्तिपरक है, प्रासंगिक है। यह देखना आवश्यक है कि बच्चा पहले से किसके साथ संबंध जानता है, वर्तमान ज्ञान से यह कैसे संबंधित है और वह किसी विशेष अवधारणा को कैसे सीखता है। महत्व इस तथ्य में निहित है कि केवल पढ़ाने या पढ़ने और रटने मात्र से अर्थपूर्ण शिक्षण का कार्य नहीं हो जाता है। हम अपने संज्ञान और उसके अनुप्रयोग में जिस विचार का निर्माण करते हैं, वही सच्ची सीख है।

रचनावादी आंदोलन अनिवार्य रूप से शिक्षा के प्रति असंतोष से विकसित हुआ है। ऐसी विधियां, जहां रटना, याद करना, तथ्यों का पुनरुत्पादन और ज्ञान का विभाजन हो, अलग-अलग विषयों ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी, जहां शिक्षार्थी जरूरी नहीं कि वे वह लागू कर सकें, जिसे लागू करने में उन्हें सक्षम होना चाहिए।

यह पूर्व ज्ञान के आलोक में सामाजिक रूप से स्वीकार्य संदर्भ में है। ड्रिस्कॉल के अनुसार, ''यह सिद्धांत इस बात की परिकल्पना करता है कि व्यक्ति उन सभी सूचनाओं को समझने की कोशिश करेंगे, जो वे अनुभव करते हैं। उस रचनावादी सिद्धांत का दावा है कि ज्ञान केवल मानव मन के भीतर ही मौजूद हो सकता है, और वह, किसी भी वास्तविक दुनिया की वास्तविकता से मेल नहीं खाता है। शिक्षार्थी लगातार ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।''

सामान्य तौर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के रचनावादी सिद्धांत में निम्न उपागमों को शामिल किया गया है :

1. दार्शनिक रचनावाद
2. सामाजिक रचनावाद
3. शैक्षिक रचनावाद जो तीन श्रेणियों से मिलकर बनता है :
   (क) संज्ञानात्मक रचनावाद
   (ख) कट्टरपंथी रचनावाद
   (ग) सांस्कृतिक रचनावाद
4. सांस्कृतिक रचनावाद
5. महत्वपूर्ण रचनावाद
6. आनुवंशिक रचनावाद
7. विकासात्मक रचनावाद
8. ज्ञानमीमांसात्मक रचनावाद।

इस प्रकार, सामाजिक शिक्षण के अध्ययन में व्यवहारवाद के साथ ही रचनावाद भी एक महत्वपूर्ण उपागम माना गया है।

शिक्षण विधि का अर्थ एवं प्रकार

शिक्षण विधियां शिक्षक को प्रभावशाली शिक्षण में सहायता करती है, क्योंकि शिक्षण एक कला है। शिक्षण विधि से तात्पर्य कक्षा में किसी विषय से संबंधी पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतीकरण करते समय प्रयोग की गई तकनीक से है। शिक्षण विधि का निर्धारण किसी विषय सामग्री के प्रस्तुतीकरण से होता है। इसमें पाठ्यवस्तु तथा प्रस्तुतीकरण का ढंग प्रमुख होता है। विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण करते समय शिक्षक विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है। सामान्यतः शिक्षण में प्रयुक्त की जाने वाली शिक्षण विधियां हैं– व्याख्यान विधि, प्रदर्शन विधि, कहानी कथन विधि, समस्या समाधान विधि आदि।

इन शिक्षण विधियों का प्रयोग पाठ्यवस्तु पर निर्भर करता है। एक ही पाठ्यवस्तु के लिए कई शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ प्रमुख शिक्षण विधियों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

2.4.2 प्रोजेक्ट विधि और पर्यटन/भ्रमण विधि

प्रोजेक्ट विधि का मूल आधार जॉन ड्यूवी (Jan Dewey) की विचारधारा है। जॉन ड्यूवी के शिष्य किलपैट्रिक ने उनकी विचारधारा के आधार पर शिक्षण की 'प्रोजेक्ट विधि' का आविष्कार किया।

प्रोजेक्ट विधि में एक प्रोजेक्ट का चयन करके उसे सामाजिक परिस्थितियों में पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है। इस विधि का एक निश्चित उद्देश्य होता है तथा छात्र उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाएं करते हैं। इन क्रियाओं को उचित रूप से पूरा करने के लिए छात्र सूचनाएं एकत्रित करते हैं। इसके बाद वे ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रोजेक्ट विधि के मुख्य सिद्धांत हैं- उद्देश्यपूर्णता, क्रियाशीलता, उपयोगिता, अनुभवशीलता, वास्तविकता एवं स्वतंत्र वातावरण। प्रोजेक्ट विधि के लिए एक निश्चित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। सबसे पहले छात्र को प्रोजेक्ट की जानकारी दी जाती है। इससे वह उस प्रोजेक्ट एवं उससे संबंधित समस्या से परिचित होता है। इसके बाद वह अपना कार्य आरंभ करता है तथा अंत में उसके कार्य का मूल्यांकन किया जाता है।

प्रोजेक्ट विधि की परिभाषाएं

- किलपैट्रिक के अनुसार : ''हम चाहते हैं कि शिक्षा वास्तविक जीवन की गहराई में प्रवेश करे, केवल सामाजिक जीवन में नहीं, वरन उस समय के उत्तम जीवन में जिसकी हम आशा करते हैं।''
- बेलार्ड के अनुसार : ''प्रोजेक्ट यथार्थ जीवन का एक ही भाग है जो विद्यालय में प्रयोग किया जाता है।''
- स्टीवेन्सन के अनुसार : ''प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है, जो स्वाभाविक स्थिति में पूरा किया जाता है।''
- पार्कर के अनुसार : ''प्रोजेक्ट कार्य की एक इकाई है, जिसमें छात्रों को कार्य की योजना और सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।''

प्रोजेक्ट विधि के आधारभूत सिद्धान्त

प्रोजेक्ट विधि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है :

1. रोचकता,
2. प्रोजेक्ट का उद्देश्य,
3. क्रियाशीलता,
4. सामाजिकता,
5. वास्तविकता या यथार्थता,
6. स्वतंत्रता,
7. उपयोगिता,
8. व्यक्तिगत भिन्नता।

प्रोजेक्ट विधि के चरण

प्रोजेक्ट विधि में निम्नलिखित चरण होते हैं :

1. **परिस्थिति का निर्माण :** शिक्षक, बालकों की योग्यताओं तथा क्षमताओं के आधार पर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करें जिनके द्वारा किसी न किसी समस्या या प्रोजेक्ट को चुन सकें। इस प्रकार बालक स्वयं कुछ प्रयोजनाएं प्रस्तुत करेंगे। प्रोजेक्ट में छात्रों की रुचि और आकर्षण के कारण वे उस सम्बन्ध में शिक्षक से विचार-विमर्श करेंगे। शिक्षक, बालकों को भिन्न-भिन्न मेलों, प्रदर्शनियों, दर्शनीय स्थलों इत्यादि पर ले जाएगा तथा त्योहारों और अन्य सामाजिक गतिविधियों से परिचित कराएगा।
2. **प्रोजेक्ट का चयन :** इसके बाद शिक्षक द्वारा प्रोजेक्ट का चयन किया जाता है। यह प्रोजेक्ट ऐसा होना चाहिए, जिसमें छात्रों की रुचि हो। शिक्षक विचार-विमर्श के द्वारा प्रोजेक्ट के गुण और दोषों से बालकों को परिचित कराता है एवं उनका मार्गदर्शन करता है। योजना के चयन की स्वीकृति तथा निर्णय छात्रों के द्वारा ही होना चाहिए।
3. **कार्यक्रम का निर्माण :** प्रोजेक्ट निश्चित हो जाने के पश्चात् उसको पूरा करने के लिए कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। वास्तविक तथा स्वाभाविक परिस्थितियों में पूरा होने वाला कार्यक्रम विचार-विमर्श के द्वारा निश्चित किया जा सकता है। प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य मिलता है और उस योजना को सब मिलकर ही पूरा करते हैं।
4. **क्रियान्वयन :** कार्यक्रम के निर्माण के बाद प्रत्येक बालक अपना कार्य 'क्रिया द्वारा सीखना' के आधार पर स्वयं करता है। सभी छात्र अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने-अपने उत्तदायित्व को निभाते हैं। शिक्षक को उनके कार्य में सहायता, निरीक्षण, प्रोत्साहन तथा आदेश भी देना चाहिए। इस चरण के अंतर्गत छात्र विभिन्न प्रकार की क्रियाएं संपन्न करते हैं।

5. **मूल्यांकन :** प्रोजेक्ट पूरा कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि बालक अपने किए हुए कार्य का स्वयं निरीक्षण तथा मूल्यांकन करें। इसके बाद अंत में शिक्षक द्वारा प्रोजेक्ट का मूल्यांकन किया जाता है।

प्रोजेक्ट विधि का महत्व

प्रोजेक्ट विधि के महत्व को निम्न बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **प्रत्यक्ष अनुभव होना :** इस विधि के द्वारा छात्रों को स्वयं अवलोकन या मापन आदि के अवसर मिलते हैं, जिससे उन्हें स्थिति और तथ्यों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। इस प्रकार अर्जित ज्ञान स्थायी बनता है।
2. **करके सीखना :** बालक स्वयं 'करके सीखते' हैं, जिससे छात्रों में विषय के प्रति अधिक रुचि, उत्साह और आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है।
3. **प्रयोगात्मकता :** इस विधि द्वारा स्वयं प्रयोग करके विभिन्न उपकरणों आदि के माध्यम से अपने कार्य को पूरा करते हैं, जिसकी वजह से उनमें प्रयोगात्मकता की भावना का विकास होता है।
4. **मनोवैज्ञानिकता :** छात्रों में जिज्ञासा, क्रियाशीलता और रचना की प्रवृत्ति उग्र रूप से विद्यमान रहती है।
5. **उपयोगिता या व्यावहारिकता :** इस विधि से छात्र उपयोगिता या व्यावहारिकता सीखता है। वह सीखे हुए ज्ञान और तथ्यों तथा नियमों को दैनिक जीवन की समस्याओं में उपयोग कर सकता है।
6. **अधिगम में सरलता :** उनका अधिगम सरल, सुबोध तथा रोचक होता है।
7. **स्वाध्याय की प्रवृत्ति :** इससे छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित होती है।

प्रोजेक्ट विधि के गुण

प्रोजेक्ट विधि के निम्न गुण हैं–

1. प्रोजेक्ट विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होती है। बालकों की स्वाभाविक रुचियों, मनोवृत्तियों तथा चेष्टाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है।
2. प्रोजेक्ट के द्वारा बालकों के सर्वांगीण विकास में पर्याप्त सहायता मिलती है। उनमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, सामाजिक गुणों, सौन्दर्यानुभूति, नेतृत्व तथा भावात्मक स्थिरता आदि का विकास होता है।
3. इसके द्वारा छात्रों में रचनात्मकता एवं अन्वेषणात्मक प्रवृत्तियों का पोषण होता है। अनुभव से सीखने का अवसर मिलता है।
4. इसमें छात्र व अध्यापक दोनों क्रियाशील रहते हैं।
5. इससे बालक की सृजनात्मक तथा क्रियात्मक प्रवृत्तियों का विकास होता है।
6. इस विधि द्वारा बालक अपने वास्तविक जीवन की समस्याओं को सुलझाने का प्रशिक्षण लेते हैं। यह विधि 'करके सीखना' नियम पर आधारित है।
7. प्रोजेक्ट विधि में पिछड़े या मंद बालकों को भी अभिव्यक्ति के अनेक अवसर प्रदान किये जाते हैं। इससे उनमें स्वावलम्बन की भावना सुदृढ़ होती है।

8. इस विधि द्वारा बालकों में निरीक्षण, तर्क, चिन्तन, अन्वेषण तथा निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है।
9. इससे छात्रों में प्रजातन्त्रवादी भावना का विकास होता है।
10. बालक स्वतंत्रता से कार्य करते हैं। बालकों में उत्तदायित्व की भावना, धैर्य, सहिष्णुता, कर्त्तव्यनिष्ठा, पारस्परिक प्रेम एवं सहयोग की भावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है।

टिप्पणी

11. इस विधि में रटने का महत्व नहीं है। विद्यार्थी सतत् सक्रिय होकर पूरी लगन और प्रत्यक्ष अनुभवों एवं क्रियाओं द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे उन्हें स्थायी व स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।
12. इस विधि में बालक मानसिक व शारीरिक परिश्रम करते हैं। वे स्वयं हाथ से काम करते हैं और श्रम के महत्व को समझते हैं।
13. इसमें विद्यार्थी पूर्ण रुचि और उत्साह के साथ अपने-अपने उत्तदायित्व को निभाते हैं। अतः सदैव रचनात्मक अनुशासन बना रहता है। इसमें गृह कार्य देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

प्रोजेक्ट विधि के दोष

प्रोजेक्ट विधि के निम्न दोष होते हैं–

1. इस विधि के प्रयोग में अधिक व्यय करना पड़ता है क्योंकि विभिन्न प्रकार की सामग्री तथा यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है।
2. प्रोजेक्ट विधि के आधार पर उचित पाठ्य-पुस्तकें नहीं मिलतीं।
3. इस विधि से यदि शिक्षा दी जाए तो पूरा पाठ्यक्रम एक वर्ष की अवधि में पूरा नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोग कुछ प्रकरणों में ही सम्भव हो पाता है।
4. अध्यापक को मनोवैज्ञानिक रूप से छात्रों की योग्यताओं, आवश्यकताओं, क्षमताओं एवं रुचियों इत्यादि से परिचित होना पड़ता है तथा समय- समय पर मार्ग-निर्देशन एवं निरीक्षण भी करना पड़ता है। इतना कार्य एक अध्यापक द्वारा सम्भव नहीं होता।
5. छात्रों की संख्या अधिक होने पर उसके अनुपात में योग्य, प्रशिक्षित एवं अनुभवी अध्यापक नहीं मिलते हैं। शिक्षण में छात्रों पर अधिक भार पड़ जाता है।
6. इस विधि में क्रमबद्ध अध्ययन का अभाव पाया जाता है।

पर्यटन/भ्रमण विधि

पर्यटन/भ्रमण विधि का जनक 'पेस्टालॉजी' को माना जाता है। उन्होंने ही इसे सामाजिक अध्ययन शिक्षण की एक विधि के रूप में स्थापित किया। इस विधि में छात्रों को विद्यालय से बाहर पर्यटन पर ले जाया जाता है, जहां बालक स्वयं के अवलोकन द्वारा विभिन्न चीजों से परिचित होते हैं। इस विधि को शैक्षिक पर्यटन, शैक्षिक भ्रमण क्षेत्राटन, सरस्वती यात्रा आदि नामों से भी जाना जाता है।

छात्रों को नियमित शैक्षिक भ्रमण पर ले जाया जाता है, जहाँ पर छात्र खुले वातावरण में शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों से परिभाषित करते हैं। शैक्षिक भ्रमण के

माध्यम से छात्रों में एक अनुभूति जागृत होती है, जिससे वे भारत की विभिन्नताओं जैसे- इतिहास, विज्ञान, शिष्टाचार और प्रकृति को व्यक्तिगत रूप से जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त छात्रों में समूह में रहने की प्रवृति, नायक बनने की क्षमता तथा आत्मविश्वास एवं भाई-चारे की भावना प्रबल होती है।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण को कक्षा की चारदीवारी तक सीमित नहीं रखना चाहिए। कक्षा शिक्षण के साथ-साथ विद्यार्थियों को बाहर जाने के अच्छे अवसर दिए जाने चाहिए। भौगोलिक तथ्यों और ऐतिहासिक चीजों का अध्ययन करने के लिए छोटी और लंबी क्षेत्र यात्राओं या भ्रमण पर छात्रों को ले जाना काफी लाभदायक होता है। इस प्रकार, प्रारंभ से ही भ्रमण अनिवार्य रूप से होना चाहिए तथा इसे सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

ई.ए. मैक्नी के अनुसार, ''यह आवश्यक है कि भौगोलिक ज्ञान का आधार प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हो तथा इसके लिए शिक्षण की भ्रमण या पर्यटन विधि एक प्रभावी विधि है।'' कक्षा शिक्षण में छात्र चाहे जितनी भी पुस्तकों का अध्ययन कर लें, उन्हें उतना प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है, जितना कि भ्रमण से प्राप्त होता है। शिक्षण की यह विधि विशेष रूप से भूगोल विषय के अध्ययन में अत्यंत लाभकारी विधि मानी जाती है।

भ्रमण विधि के प्रकार

1. **स्थानीय भ्रमण :** इस प्रकार का भ्रमण प्राथमिक कक्षाओं के लिए आयोजित किया जाता है। स्थानीय यात्राएं गांव में सुविधाजनक स्थानों के लिए बहुत छोटी यात्राएं हैं तथा एक या कुछ पाठ अवधि के लिए स्कूल के पास का शहर इनके लिए उचित हो सकता है। इनके द्वारा छात्र विभिन्न भौगोलिक घटनाओं और ऐतिहासिक स्थानों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं तथा अपने परिवेश का अध्ययन करके प्रत्यक्ष ज्ञान और जानकारी एकत्र करते हैं। स्थानीय कृषि प्रकार, औद्योगिक उत्पाद, स्थानीय बाजार, परिवहन व्यवस्था, आदि के बारे में जानकारी देने के लिए छात्रों को स्थानीय भ्रमण पर ले जाना अत्यंत लाभदायक होता है, विशेष रूप से भूगोल के छात्रों के लिए। ऐसी यात्राओं का उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं होता है, बल्कि इनके माध्यम से स्थानीय भूगोल या अन्य बातों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षण को वास्तविकता का स्वरूप प्रदान करना होता है।
2. **सामान्य क्षेत्रीय भ्रमण :** यह शिक्षण में सर्वाधिक आयोजित किया जाने वाला भ्रमण है। ऐसी यात्राएं आधे या पूरे दिन की होती हैं और इसलिए या तो शनिवार दोपहर या रविवार को या किसी अन्य अवकाश दिवस पर आयोजित की जा सकती हैं। ऐसे भ्रमण में पहाड़ी क्षेत्र या नदी के किनारे या कारखाने या खदान या बंदरगाह आदि की यात्रा शामिल हो सकती है। ऐसी यात्राओं पर, छात्रों को देखने, अध्ययन करने और जांच करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इनमें छात्र भौगोलिक वस्तुएं और ऐतिहासिक स्थान को देखते हैं तथा शिक्षक से प्रश्न पूछकर अपनी आशंकाओं को दूर करते हैं। इससे उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। मिट्टी की प्रकृति, जलवायु, सिंचाई सुविधाएं, परिवहन, उत्पादन आयात जैसी चीजें और निर्यात आदि की जानकारी के लिए इस प्रकार का भ्रमण काफी उपयोगी होता है। उपयोगी ज्ञान प्रदान करने के अलावा ऐसी यात्राएं मनोरंजन भी प्रदान करती हैं।

3. **विस्तृत क्षेत्रीय भ्रमण :** इस प्रकार का भ्रमण तीन से सात दिनों के लिए आयोजित किया जाता है। माध्यमिक और उच्च माध्यमिक छात्रों के लिए, भौगोलिक और ऐतिहासिक भ्रमण विशेष रूप से उपयोगी होता है। यह भ्रमण कई दिनों तक चलने वाला, लाभप्रद रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है। इसके लिए पर्याप्त तैयारी होनी चाहिए। भ्रमण के लिए शिक्षक और छात्रों दोनों द्वारा निर्णय लिया जाता है। इनके लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाने की आवश्यकता होती है। यह सलाह दी जाती है कि शिक्षक इस प्रकार के भ्रमण से पहले स्वयं उस स्थान का दौरा करें, जिससे कि उस स्थान की एक सूची बनायी जा सके। इसके अलावा शिक्षक को छात्रों के ठहरने, भोजन एवं आने-जाने की आवश्यक व्यवस्था भी करनी चाहिए।

वैसे छात्रों को भ्रमण हेतु ले जाने से पूर्व उन्हें समूहों में विभाजित कर देना चाहिए। इससे शिक्षकों के लिए उनकी देखरेख आसान हो जाएगी तथा उनकी सभी जिज्ञासाओं को आसानी से पूरा किया जा सकेगा।

भ्रमण विधि के लाभ

1. यह सीधे सीखने का अनुभव प्रदान करता है।
2. यह व्यावहारिक सामाजिक प्रशिक्षण प्रदान करता है।
3. यह छात्रों के स्वाभाविक आग्रह को संतुष्ट करता है।
4. यह विषय में रुचि उत्पन्न करने में सहायता करता है।
5. यह छात्रों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है।

भ्रमण विधि की सीमायें या हानियां

1. इसमें समय एवं धन दोनों व्यय होते हैं।
2. कई शिक्षकों में पहल और संसाधन की कमी होती है।
3. इसमें माता-पिता के सहयोग की सामान्य कमी पायी जाती है।
4. यह एक पूर्ण विधि नहीं है और पाठ्यक्रम में सभी विषय सामग्री के लिए लागू नहीं होती है।
5. इसमें उचित संगठन और मार्गदर्शन का अभाव पाया जाता है।

2.4.3 सिमुलेशन (अनुकरण) विधि और भूमिका निर्वहन विधि तथा अन्य शिक्षण अधिगम विधियां

सिमुलेशन, निर्वहन विधि तथा अन्य शिक्षण अधिगम विधियों को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

सिमुलेशन और रोल प्ले

रोलप्ले सिमुलेशन एक अनुभवात्मक अधिगम विधि है जिसमें या तो शौकिया या पेशेवर भूमिका निभाने वाले (जिसे अंतःक्रियात्मक भी कहा जाता है) शिक्षार्थियों के साथ एक परिदृश्य अनुकरण के हिस्से के रूप में सुधार करते हैं। रोलप्ले को मुख्य रूप से एक सुरक्षित और सहायक वातावरण में प्रथम–व्यक्ति अनुभव बनाने के लिए डिज़ाइन किया

जाता है। रोलप्ले को व्यापक रूप से प्रशिक्षण और शिक्षा के कई तरीकों में से एक शक्तिशाली तकनीक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

हावर्ड बार ने 1963 में दक्षिणी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में चिकित्सा रोगी की भूमिका निभाने के लिए मॉडल का आविष्कार किया था। इस कार्यक्रम ने डॉक्टरों को मेडिकल हिस्टरी लेने और शारीरिक परीक्षा का अभ्यास करने की सुविधा दी, जो एक खिलाड़ी के साथ एक–एक परिदृश्य में भाग लेते हैं। भूमिका–खिलाड़ियों (जिन्हें मानकीकृत मरीज़ या एसपी कहा जाता है) को भी परिदृश्य के कथा साहित्य के पूरा होने के बाद प्रदर्शन मूल्यांकन प्रदान करने पर प्रशिक्षित किया गया था। बैरो ने इस मॉडल को विकसित करना जारी रखा, अंततः इसे 1970 के दशक में अन्य चिकित्सकों और 1980 के दशक में अकादमिक दुनिया में लाया गया। आज, कई अस्पतालों और चिकित्सा विश्वविद्यालयों के अपने स्वयं के मानकीकृत रोगी कार्यक्रम हैं जो अंशकालिक भूमिका–खिलाड़ियों को बातचीत के विशिष्ट मानकों के लिए प्रशिक्षित करते हैं। मानकीकृत रोगी शिक्षकों के संघ में छह अलग–अलग महाद्वीपों के सदस्य हैं।

1990 के दशक के अंत में व्यावसायिक कौशल प्रशिक्षण का एक उद्योग उभरा, मुख्य रूप से यूनाइटेड किंगडम में। कंपनियों ने अनुभवजन्य शिक्षण पद्धति के हिस्से के रूप में शिक्षार्थियों द्वारा किए जाने हेतु स्थितिजन्य नाटक बनाने के लिए अभिनय पेशेवरों को काम पर रखना शुरू किया। आज, यूके में बीस से अधिक कंपनियां हैं जो कार्यस्थल सिमुलेशन के लिए भूमिका–खिलाड़ी प्रदान करने में माहिर हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 11 सितंबर, 2001 के हमलों की प्रतिक्रिया के रूप में पेशेवर सैन्य भूमिका–खिलाड़ियों को 2001 से, मुख्य रूप से अमेरिकी सेना द्वारा नियोजित किया गया है। युद्ध ने अफगानिस्तान में भाषा और वर्तमान रीति–रिवाजों की सांस्कृतिक भूमिका निभाने वाले खिलाड़ियों की आवश्यकता पैदा की। युद्ध के थिएटर नकली गांवों को आबाद करने और शहरी वातावरण प्रदर्शित करने के लिए इस विधा का प्रयोग किया गया था।

आज सामाजिक अध्ययन के शिक्षण–अधिगम हेतु भी इस विधि का भरपूर प्रयोग किया जा रहा है यह शिक्षार्थियों के सामाजिक अध्ययन–अधिगम को मनोरंजक, आकर्षक और रटंत तरीकों के विकल्प के रूप में बहुत लोकप्रिय हो रहा है।

सामाजिक अध्ययन में गतिविधियों के माध्यम से अनुभवात्मक शिक्षण

अनुभवात्मक अधिगम शिक्षा का एक दर्शन है जो एक शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच होने वाली प्रक्रिया का वर्णन करता है। छात्र सीखने के माहौल और सामग्री के साथ प्रत्यक्ष अनुभव को ग्रहण करता है। शब्द अनुभवात्मक अधिगम के साथ विनिमेय नहीं है; हालांकि अनुभवात्मक अधिगम एक उप–क्षेत्र है और अनुभवात्मक शिक्षा की पद्धतियों के अंतर्गत संचालित होता है। अनुभवात्मक शिक्षण–अधिगम को "एक दर्शन के रूप में माना जाता है जो कई कार्यप्रणालियों को इंगित करता है जिसमें शिक्षक जानबूझकर प्रत्यक्ष अनुभव में शिक्षार्थियों के साथ संलग्न होते हैं और ज्ञान को बढ़ाने, कौशल विकसित करने, मूल्यों को स्पष्ट करने और उनके विकास हेतु केंद्रित प्रतिबिंब होते हैं।

जॉन डेवी एक शिक्षक और एक दार्शनिक थे। जॉन डेवी हाथ से सीखने या अनुभवात्मक अधिगम के सबसे प्रसिद्ध प्रस्तावक थे। उन्होंने शिक्षा की पारंपरिक और

प्रगतिशील शैली, दोनों में कमजोरियों को देखा। उन्होंने अपनी पुस्तक एक्सपीरियंस एंड एजुकेशन (1938) में शिक्षा के दोनों रूपों की आलोचना की। अनुभवात्मक शिक्षा को एक दर्शन के रूप में संदर्भित किया जाता है। डेवी के काम ने 20 वीं शताब्दी में दर्जनों अन्य प्रमुख अनुभवात्मक मॉडल और अधिवक्ताओं को प्रभावित किया, जिसमें फॉक्सफायर, कर्ट हाहा, आउटवर्ड बाउंड और पाउलो फ्रेयर शामिल हैं।

डेवी ने इस बात की वकालत की कि शिक्षा अनुभव की गुणवत्ता पर आधारित हो। शैक्षिक होने के अनुभव के लिए, डेवी का मानना था कि कुछ मापदंडों को पूरा करना होगा, जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण यह है कि अनुभव में निरंतरता और सहभागिता हो। निरंतरता वह विचार है जो अनुभव से आता है और अन्य अनुभवों की ओर जाता है, संक्षेप में व्यक्ति को और अधिक सीखने के लिए प्रेरित करता है। सहभागिता तब होती है जब अनुभव किसी व्यक्ति की आंतरिक आवश्यकताओं या लक्ष्यों को पूरा करता है। डेवी अनुभवों को संभवतः गलत और शिक्षाप्रद होने के रूप में भी वर्गीकृत करता है। एक गलत शिक्षाप्रद अनुभव वह है जो भविष्य के अनुभवों के लिए विकास को रोकता है या विकृत करता है। एक गैर–शिक्षाप्रद अनुभव वह है जिसमें किसी व्यक्ति ने कोई प्रतिबिंब नहीं किया है और इसलिए मानसिक विकास के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं किया है जो स्थायी है (अनुभव और शिक्षा, डेवी)।

डेवी द्वारा प्रतिपादित धारणाओं के अलावा, हाल के शोध से पता चला है कि अनुभवात्मक शिक्षण सीखने के पारंपरिक तरीकों को प्रतिस्थापित नहीं करता है, बल्कि दृष्टिकोण और संबंधों की समझ का अतिरिक्त कौशल प्रस्तुत कर के प्रयोगशाला और नैदानिक अधिगम के रूप में इसके पूरक का काम भी करता है। इसके अलावा अनुभवात्मक शिक्षण अधिगम के तरीकों का पता लगाने और उन्हें खोजने की स्वतंत्रता के साथ ही समझ में सुधार को प्रोत्साहित करता है जो उनके लिए सबसे उपयुक्त है।

अनुभवात्मक शिक्षण–अधिगम में भौतिक अनुभव को प्रतिबिंब के साथ जोड़ा जाना चाहिए जिसमें हम अपने और जिनके साथ हम काम कर रहे हैं, उनके गुणों का निरीक्षण कर सकते हैं। अनुभवात्मक शिक्षण–अधिगम की प्रभावकारिता के लिए, अनुभवों को अलग किया जाना चाहिए, जिससे शिक्षार्थी को सूचना को संसाधित करने के लिए पर्याप्त समय मिल सके।

अनुभवात्मक शिक्षण–अधिगम स्कूलों में और स्कूल से बाहर (अनौपचारिक शिक्षा) कार्यक्रम में चल रहे कई शैक्षिक अभ्यासों की जानकारी देता है । कई शिक्षण विधियों क्रिया और प्रतिबिंब के माध्यम से सीखने के लिए संदर्भ और रूपरेखा प्रदान करने के लिए अनुभवात्मक शिक्षा विश्वसनीय है जबकि अन्य विधियां उच्च स्तर (विश्वविद्यालय और व्यावसायिक शिक्षा) पर क्षेत्र कौशल और मॉडलिंग पर अधिक केंद्रित होती हैं।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में रचनात्मकता

शिक्षण एवं अध्ययन, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बहुत से कारक शामिल होते हैं। सीखने वाला जिस तरीके से अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ते हुए नया ज्ञान, आचार और कौशल को समाहित करता है ताकि उसके सीख्नने के अनुभवों में विस्तार हो सके, वैसे ही ये सारे कारक आपस में संवाद की स्थिति में आते रहते हैं।

पिछली सदी के दौरान शिक्षण पर विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण उभरे हैं। इनमें एक है ज्ञानात्मक शिक्षण, जो शिक्षण को मस्तिष्क की एक क्रिया के रूप में देखता है। दूसरा है, रचनात्मक शिक्षण जो ज्ञान को सीखने की प्रक्रिया में की गई रचना के रूप में देखता है। इन सिद्धांतों को अलग–अलग देखने के बजाय इन्हें संभावनाओं की एक ऐसी श्रृंखला के रूप में देखा जाना चाहिए जिन्हें शिक्षण के अनुभवों में पिरोया जा सके। एकीकरण की इस प्रक्रिया में अन्य कारकों को भी संज्ञान में लेना जरूरी हो जाता है– ज्ञानात्मक शैली, शिक्षण की शैली, हमारी मेधा का एकाधिक स्वरूप और ऐसा शिक्षण जो उन लोगों के काम आ सके जिन्हें इसकी विशेष जरूरत है और जो विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं।

रचनात्मकता का सिद्धांत

रचनात्मकता शिक्षण की एक ऐसी रणनीति है जिसमें विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान, आस्थाओं और कौशल का इस्तेमाल किया जाता है। रचनात्मक रणनीति के माध्यम से विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान और सूचना के आधार पर नई किस्म की समझ विकसित करता है।

इस शैली पर काम करने वाला शिक्षक प्रश्न उठाता है और विद्यार्थियों के जवाब तलाशने की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है, उन्हें निर्देशित करता है तथा सोचने–समझने के नए तरीकों का सूत्रपात करता है। कच्चे आंकड़ों, प्राथमिक स्रोतों और संवादात्मक सामग्री के साथ काम करते हुए रचनात्मक शैली का शिक्षक, छात्रों को कहता है कि वे अपने जुटाए आंकड़ों पर काम करें और खुद की तलाश को निर्देशित करने का काम करें। धीरे–धीरे छात्र यह समझने लगता है कि शिक्षण दरअसल एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इस किस्म की शैली हर उम्र के छात्रों के लिए कारगर है, यह वयस्कों पर भी काम करती है।

परिदृश्य

ब्रूनर के सैद्धांतिक ढांचे में एक प्रमुख विचार यह है कि शिक्षण एक ऐसी सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें सीखने वाला अपने पूर्व व वर्तमान ज्ञान के आधार पर नए विचार या अवधारणाओं को रचता है। सीखने वाला सूचनाओं को चुनकर उनका रूपांतरण करता है, प्रस्थापनाएं बनाता है, निर्णय लेता है और ऐसा करते समय वह एक ज्ञानात्मक ढांचे पर भरोसा करता है। ज्ञानात्मक संरचनाएं (योजना, मानसिक प्रारूप) अनुभवों को संगठित कर सार्थक बनाती हैं और व्यक्ति को 'उपलब्ध सूचनाओं' के पार जाने का मौका देती हैं।

जहां तक निर्देशों का सवाल है, तो निर्देशक को छात्रों को सिद्धांतों की खुद खोज करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। निर्देशक और छात्र को सक्रिय संवाद की स्थिति में होनी चाहिए।

(सुकरात का सिद्धांत) निर्देशक का काम शिक्षण संबंधी सूचना को छात्र की समझदारी के मुताबिक रूपांतरित करना होता है। पाठ्यक्रम को कुंडलाकार तरीके से विकसित किया जाना चाहिए ताकि पढ़ने वाला अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर लगातार और ज्यादा सीखता रहे।

ब्रूनर (1966) का कहना है निर्देशन के सिद्धांत को चार प्रमुख पक्षों पर केन्द्रित होनी चाहिए:

1. सीखने की ओर झुकाव,
2. किसी भी ज्ञान की इकाई को किस तरीके से पुनर्संरचित किया जाए जिससे कि सीखने वाला उसे सबसे आसानी से आत्मसात कर सके,
3. शिक्षण सामग्री को प्रस्तुत करने का सबसे प्रभावी क्रम,
4. पुरस्कार और दंड का स्वरूप,

ज्ञान की पुनर्संरचना ऐसे तरीके से की जानी चाहिए जिससे नई प्रस्थापनाएं आसान बन सकें और सूचना को आसानी से परोसा जा सके।

ब्रूनर ने (1986, 1990, 1996) अपने सैद्धांतिक ढांचे को विस्तार देते हुए शिक्षण के सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं समेत कानूनी कार्रवाइयों को भी इसमें समाहित किया है।

संभावना/प्रयोग

ब्रूनर का रचनात्मकता का सिद्धांत, ज्ञान के अध्ययन पर आधारित शिक्षण दिशा–निर्देशों के लिए एक सामान्य ढांचे का कार्य करता है। सिद्धांत का अधिकांश प्रयास बाल विकास शोध (खासकर पियाजे) से जाकर जुड़ता है। ब्रूनर (1960) के सिद्धांत में जिन विचारों को रेखांकित किया गया है, वे विज्ञान और गणित शिक्षण पर केंद्रित एक सम्मेलन से निकले थे। ब्रूनर ने अपना सिद्धांत छोटे बच्चों के लिए गणित और सामाजिक अध्ययन कार्यक्रमों के संदर्भ में प्रतिपादित किया था। तर्क प्रक्रिया के लिए एक ढांचे के विकास को ब्रूनर, गुडनाउ और ऑस्टिन (1951) के काम में विस्तार से वर्णित किया गया है। ब्रूनर (1983) बच्चों में भाषा शिक्षण पर जोर देते हैं।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि रचनात्मकता का सिद्धांत दर्शन और विज्ञान में एक व्यापक अवधारणात्मक संरचना है और ब्रूनर का सिद्धांत इसके सिर्फ एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य को ही सामने लाता है।

उदाहरण : यह उदाहरण ब्रूनर (1973) से लिया गया है।

"'अभाज्य अंकों के ज्ञान को एक बच्चा ज्यादा आसानी से आत्मसात कर लेता है जब वह रचनात्मक तरीके से यह सीखता है कि संपूर्ण पंक्तियों के भरे होने पर कुछ फलियों को उसमें नहीं डाला जा सकता। ऐसी फलियों की संख्या को या तो एक फाइल या अपूर्ण पंक्तियों में डाला जा सकता है जहां हमेशा पूरी पंक्ति को भरने में एक अतिरिक्त या एक कम फली रह जाती है। तब जाकर बच्चा समझता है कि इन्हीं पंक्तियों को अभाज्य कहते हैं। यहां से बच्चे के लिए एक से अधिक टेबल पर जाना आसान हो जाता है, जहां वह अभाज्य संख्याओं में घटक निकालने, गुणनफल आदि को साफ–साफ देख सकता है।"

सिद्धांत

1. दिशा–निर्देश अनुभवों और उन संदर्भों से जुड़े होने चाहिए जिससे बच्चा सीखने को तत्पर हो सके।
2. दिशा–निर्देश संरचित होने चाहिए ताकि ये बच्चों को आसानी से समझ में आ सकें। (कुंडलाकार ढांचा)

3. दिशा—निर्देश ऐसे होने चाहिए जिनके आधार पर अनुमान लगाए जा सकें और रिक्त स्थानों को भरा जा सके (यानी प्रदत्त सूचना का अतिक्रमण संभव हो सके)

2.4.4 व्याख्यान और विचार-विमर्श विधि

टिप्पणी

यह शिक्षण की सबसे प्राचीन विधि है। सदियों से शिक्षकों द्वारा शिक्षण कार्य को संपन्न करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता रहा है। व्याख्यान विधि के अंतर्गत शिक्षक पाठ्यवस्तु या विषयवस्तु का गहराई से विश्लेषण कर उसे विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। व्याख्यान शिक्षक की मौखिक अभिव्यक्ति होती है। इसमें शिक्षक विषय तथा उसकी विषयवस्तु पर अधिकार रखता हुआ क्रमबद्ध रूप में अपने ज्ञान को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करता है। इस विधि में शिक्षक कक्षा शिक्षण की लगभग सभी गतिविधि के आयोजन, संचालन तथा नियंत्रण में प्रमुख भूमिका निभाता है। अतः इसे शिक्षक केंद्रित विधि के रूप में भी जाना जाता है।

व्यावहारिक रूप में कक्षा में व्याख्यान विधि और विचार—विमर्श विधियों का प्रयोग सुविधानुसार क्रमशः अथवा साथ—साथ भी हो सकता है। यह विषय वस्तु, व्याख्याता और विद्यार्थियों के आपसी सामंजस्य पर निर्भर करता है। यहां इन विधियों का क्रमशः अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

व्याख्यान विधि के लाभ

व्याख्यान विधि के लाभ निम्नलिखित हैं—

1. यह विधि शिक्षक केंद्रित होने के कारण शिक्षक को कक्षा की गतिविधियों एवं विद्यार्थियों पर नियंत्रण रखने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करती है। इससे शिक्षक द्वारा सीमित समय अवधि में व्यवहारात्मक उद्देश्यों की पूर्ति आसानी से संभव हो सकती है तथा विद्यार्थियों के ध्यान को भी विषय पर केंद्रित करने में आसानी हो सकती है।
2. इस विधि की सहायता से शिक्षक न केवल निम्न स्तर के ज्ञानात्मक उद्देश्यों, जैसे— सूचना प्रदान करना और समझ विकसित करना को आसानी से प्राप्त कर सकता है बल्कि उच्च स्तर के ज्ञानात्मक उद्देश्यों, जैसे— विश्लेषण, मूल्यांकन और सृजनात्मक चिंतन आदि के विकास में भी मदद मिलती है।
3. शिक्षक विद्यार्थियों के समक्ष विषय का मौलिक चित्रण एवं प्रस्तुतीकरण उचित रूप में कर सकता है तथा विषय की रूपरेखा को प्रभावी रूप से विद्यार्थियों के सामने रखने में भी मदद मिलती है।
4. यह आर्थिक दृष्टि से एक सस्ती शिक्षण विधि है, क्योंकि एक शिक्षक बिना कोई विशेष खर्च किए विद्यार्थियों के समूह को प्रभावी शिक्षण प्रदान कर सकता है।
5. व्याख्यान विधि में शिक्षक विषय से संबंधित सभी सूचनाओं और तथ्यों को पहले से ही अच्छे से नियोजित और संगठित कर लेता है। इससे शिक्षक को विषयवस्तु को विद्यार्थियों के समक्ष तार्किक क्रम में प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है। साथ ही साथ शिक्षक अपने विचारों और अवधारणाओं को शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत कर सकता है।

टिप्पणी

6. इस विधि के द्वारा विषयवस्तु को तार्किक क्रम में प्रस्तुत करने के कारण शिक्षक कक्षा में पर्याप्त रुचि, उत्साह और प्रेरणायुक्त वातावरण का निर्माण कर सकता है। छात्रों द्वारा शिक्षण में पर्याप्त रुचि लेने से शिक्षक को भी पुनर्बलन प्राप्त होता है तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया भी सुचारू रूप से चलती है।
7. व्याख्यान विधि के अंतर्गत नियोजित एवं संगठित तरीके से विषयवस्तु को प्रस्तुत करके जो ज्ञान व सूचना छात्रों को प्रदान की जाती है उसका छात्रों पर स्थाई प्रभाव पड़ता है।
8. यह विधि समय की दृष्टि से भी उपयोगी है, क्योंकि कक्षा के सीमित घंटे या पीरियड और सत्र के नियत दिनों में बहुत अधिक विषय सामग्री एवं पाठ्यक्रम को पूरा किया जा सकता है।
9. इस विधि के द्वारा छात्रों के छोटे और बड़े दोनों समूहों को शिक्षण प्रदान किया जा सकता है।

व्याख्यान विधि की सीमाएं

व्याख्यान विधि की निम्नलिखित सीमाएं हैं–

1. व्याख्यान विधि में विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण ही मुख्य आधार होता है, परंतु कई बार शिक्षक रटी–रटाई विषय सामग्री छात्रों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं तथा इस बात को नजरअंदाज कर देते हैं कि व्यवहारात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही है या नहीं। साथ ही कई बार प्रस्तुत विषय सामग्री समय के अनुरूप अद्यतन भी नहीं होती है।
2. विषयवस्तु पर ही केंद्रित होने के कारण सामान्यतः शिक्षक अपने पाठ्यक्रम को समय पर समाप्त करने पर ही जोर देते हैं तथा छात्रों की रुचियों, आवश्यकताओं एवं योग्यता के स्तर को नजरअंदाज कर देते हैं।
3. यह विधि एकतरफा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर आधारित है जिसमें शिक्षक बोलता रहता है तथा छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में व्याख्यान सुनते रहते हैं।
4. इस विधि में विषय का प्रयोगात्मक पक्ष पूर्णतया उपेक्षित रहता है। इसलिए यह विधि विषयों के उन पाठ्यवस्तुओं के लिए अनुपयुक्त है जिनमें प्रयोगों के आधार पर शिक्षण किया जाना है।
5. यह विधि छोटी कक्षाओं की दृष्टि से अमनोवैज्ञानिक विधि है।
6. व्याख्यान विधि शिक्षक केंद्रित होने के कारण शिक्षक को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करती है। अतः इस विधि में इस बात की पूरी संभावना रहती है कि शिक्षक अपने विषय से भटक जाए। शिक्षक द्वारा विषय से अलग बात करने व बार–बार कथनों की पुनरावृत्ति करने से छात्रों का काफी समय व्यर्थ चला जाता है।

7. जैसा कि हम जानते हैं कि यह विधि मुख्यतः प्रस्तुतीकरण पर आधारित है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक विषय का प्रस्तुतीकरण करते समय पाठ्यवस्तु के नियोजन एवं संचालन, सूचनाओं की क्रमबद्धता, छात्रों के मानसिक स्तर आदि का पर्याप्त ध्यान रखें।

टिप्पणी

यदि शिक्षक उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान नहीं में रखता है तो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया बहुत अधिक अरुचिकर, बोझिल व थकाने वाली बन जाती है। फलस्वरूप विषय से छात्रों की रुचि एवं उत्साह कम होने लगता है।

व्याख्यान विधि की उपरोक्त सीमाओं को देख कर यह नहीं समझना चाहिए कि शिक्षण प्रक्रिया में इस विधि का कोई महत्व नहीं है तथा यह एक अनुपयुक्त शिक्षण विधि है। यदि शिक्षक वर्ग इस विधि का प्रयोग करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखे तो इस विधि को काफी प्रभावी ढंग से उपयोग कर वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

आइए, देखते हैं कि व्याख्यान विधि को प्रभावी बनाने हेतु किन सुझावों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रभावी व्याख्यान विधि हेतु सुझाव

1. सर्वप्रथम शिक्षक को यह स्पष्ट होना चाहिए कि किन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति की जानी है। उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्ट निर्धारण आवश्यक है।
2. विषयवस्तु को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व शिक्षक को छात्रों के व्यवहार, प्रकृति व मानसिक स्तर की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। इससे विषयवस्तु को कक्षा अनुरूप बनाने में आसानी होती है।
3. विषयवस्तु को रुचिकर बनाने हेतु सूचनाओं के विभिन्न स्रोतों जैसे विषय संबंधी अन्य पुस्तकों, सहायक एवं संदर्भ ग्रंथों, पत्र–पत्रिकाओं, इंटरनेट आदि की भी समुचित सहायता लेनी चाहिए ताकि छात्रों को विषय से संबंधित नया एवं महत्वपूर्ण ज्ञान प्रदान किया जा सके। इससे छात्रों की रुचि एवं उत्साह को लंबे समय तक बनाए रखने में सहायता मिलती है।
4. विषयवस्तु का नियोजन करते समय मुख्य बिंदुओं व अवधारणाओं को आधार बनाया जाना चाहिए तथा उनसे संबंधित उचित उदाहरणों एवं दृष्टांतों के चयन पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके साथ–साथ भाषा के प्रयोग पर भी ध्यान देना चाहिए।
5. व्याख्यान के नियोजन हेतु कक्षा के भौतिक वातावरण तथा छात्रों के सामाजिक एवं मानसिक वातावरण का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।
6. व्याख्यान को रुचिकर बनाने हेतु विभिन्न शिक्षण युक्तियों, जैसे– श्यामपट्ट का प्रयोग, दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग, प्रश्नोत्तर आदि का उपयोग किस प्रकार किया जाए, इस बारे में भी पहले से सोच लेना चाहिए।

7. व्याख्यान विधि का प्रभावी रूप से प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक छात्रों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करे, कक्षा को अरुचिकर व बोझिल वातावरण से बचने हेतु यह आवश्यक है कि छात्र केवल निष्क्रिय श्रोता न बना रहे। विभिन्न शिक्षण युक्तियों का प्रयोग कर छात्रों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

टिप्पणी

8. व्याख्यान विधि में विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण में उसके उचित संगठन और क्रमबद्धता पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।
9. शिक्षक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह कथनों की अनावश्यक पुनरावृत्ति न करे तथा व्यर्थ की बातों में भी समय बर्बाद न करे।
10. व्याख्यान देते समय शिक्षक को बीच–बीच में सुनिश्चित करते रहना चाहिए कि जिन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर व्याख्यान नियोजित किया गया था उनकी पूर्ति हो रही है या नहीं। इसके लिए शिक्षक छात्रों से मौखिक प्रश्न पूछ सकता है तथा साथ ही व्याख्यान समाप्ति के बाद भी छात्रों का मूल्यांकन कर सकता है।
11. व्याख्यान की समाप्ति के बाद यह आवश्यक है कि शिक्षक विषयवस्तु संबंधी मुख्य बिंदुओं को छात्रों की सहायता से दोहराए।

इस प्रकार व्याख्यान विधि का उपयोग करके शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी तरीके से संपन्न किया जा सकता है।

2.4.5 विचार-विमर्श विधि

विचार–विमर्श एक ऐसी चर्चा के संदर्भ में है, जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति अपनी बात को स्वीकार कराने के प्रयास में किसी विषय या प्रश्न पर विरोधी विचार की वकालत करते हैं। ये दो प्रकार की हो सकती है–

1. औपचारिक विचार–विमर्श
2. अनौपचारिक विचार–विमर्श

औपचारिक विचार–विमर्श : औपचारिक विचार–विमर्श के लिए कुछ नियमों के दायरे में रहकर विचार–विमर्श किया जाता है। ताकि विचार–विमर्श मूल विषय से भटके नहीं। इसमें विशिष्ट नियमों को पहले से ही बना लिया जाता है।

अनौपचारिक विचार–विमर्श : अनौपचारिक में पहले से कोई नियम नहीं बनाया जाता है, बल्कि कभी भी कहीं भी किसी भी प्रकरण पर आपस में चर्चा की जा सकती है।

शैक्षिक विचार–विमर्श का स्वरूप

1. शैक्षिक विचार–विमर्श किसी शैक्षिक समस्या तथा पाठ्यक्रम संबंधी समस्या पर आयोजित किया जा सकता है।
2. छात्रों में से ही एक नेता के रूप में कार्य करता है, जो उस कार्यक्रम को संचालित भी करता है।

3. इसमें छात्रों के प्रश्न उत्तरों पर ध्यान दिया जाता है।

यह विधि निम्नलिखित अधिनियमों पर आधारित है–

1. इस विधि में मौलिकता व सक्रियता के विकास पर बल दिया जाता है।
2. इस विधि में प्रत्येक छात्र को प्रश्न पूछने व उत्तर देने का अधिकार है।
3. यह विधि प्रजातांत्रिक नियमों पर आधारित है।
4. इस विधि में मनोवैज्ञानिक अधिनियमों पर बल दिया जाता है।

शैक्षिक विचार–विमर्श विधि की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. यह विधि समस्या समाधान के लिए व्यापक आयामों के प्रयोग का अवसर प्रदान करती है।
2. यह विधि छात्रों को समस्या समाधान करने के योग्य बनाती है।
3. यह विधि छात्रों की अभिवृत्तियों के विकास का अवसर प्रदान करती है।
4. इस विधि की सहायता से छात्रों की सृजनात्मक क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है।
5. इस विधि के माध्यम से छात्रों की निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती है।

निम्न प्रकार से शिक्षण में शैक्षिक विचार–विमर्श विधि का उपयोग किया जा सकता है–

1. इसका उपयोग छात्रों को सामाजिक अधिगम का अवसर प्रदान करता है।
2. यह विधि छात्रों के ज्ञानात्मक एवं भावात्मक शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक है।
3. इससे छात्रों की ज्ञानवृद्धि के साथ–साथ अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के विकास में सहायता मिलती है।
4. इस विधि में छात्रों को परिपाक (Recilation) का अवसर भी प्रदान किया जाता है।

इस विधि की कुछ सीमाएं भी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. छात्र विषयान्तर बातें करने का प्रयास करते हैं।
2. इस विधि की प्रक्रिया में सभी छात्र भाग नहीं लेते हैं। कुछ ही छात्र आगे बढ़कर हिस्सा लेते हैं।
3. इसके प्रयोग में छात्र 2 भागों में बंट जाते हैं, जिससे उनमें ईर्ष्या की भावना पनपने लगती है।
4. छात्रों में दूसरों की आलोचना की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

शैक्षिक विचार–विमर्श विधि का प्रयोग करते समय निम्न सावधानियां रखनी चाहिए–

1. इस विधि की प्रक्रिया में सभी छात्रों को सहभागिता का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इसके लिए अंक भी निर्धारित किए जाने चाहिए।

2. जो आलोचना छात्र कर रहे हैं वो रचनात्मक एवं सार्थक होनी चाहिए।

   व्यावहारिक रूप में कक्षा में अध्यापक व्याख्यान देने के बाद छात्रों को विचार–विमर्श हेतु आमंत्रित कर लेते हैं और इस प्रकार छात्रों को आवश्यक दिशा–निर्देश प्राप्त होता रहता है।

टिप्पणी

2.4.6 कहानी कथन विधि

कहानी कथन एक महत्वपूर्ण शिक्षण विधि है। यह एक कला या विधा है जो शिक्षक को छात्रों के दिलों के करीब लाती है तथा वह उनका ध्यान आकर्षित करने में सफल रहता है।

कहानी कथन की यह विधा इस उद्देश्य पर आधारित है कि वाणी के माध्यम से घटनाओं का स्पष्ट, विविध, रोचक व क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जाए कि छात्रों का मस्तिष्क इन घटनाओं का पुनर्निर्माण कर सके तथा दर्शक के रूप में अर्जित अनुभवों से वे कल्पनाजगत में विचरण कर सकें। कहानी कथन विधि से शिक्षक को पाठ को छात्रों के लिए रोचक बनाने में मदद मिलती है।

महान व्यक्तित्वों, सुधारकों, संतों, लेखकों, खोजकर्ताओं व वैज्ञानिकों आदि की कहानियां छात्रों को सुनाई जानी चाहिए। यह विधि छात्रों में विषय के प्रति रुचि को बढ़ाती है।

कहानी कथन विधि के लाभ

कहानी कथन विधि के लाभ निम्नलिखित हैं–

1. छोटे बच्चे इस विधि के द्वारा तथ्यों को आसानी से समझते हैं।
2. यह विधि छात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास में सहायक है।
3. अरोचक तथ्यों व घटनाओं को भी इस विधि द्वारा रोचक बनाया जा सकता है।
4. यह विधि छात्रों की कल्पनाशक्ति व निर्णय क्षमता के विकास में सहायक है।
5. यह विधि छात्रों में विभिन्न चारित्रिक गुणों का विकास करती है।
6. छात्रों को अपने छुपे हुए विचारों एवं इच्छाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

कहानी कथन विधि की सीमाएं

कहानी कथन विधि की सीमाएं निम्न हैं–

1. यह विधि सामान्यतः छोटी कक्षाओं के लिए अधिक उपयुक्त है। बड़ी कक्षाओं में इसका प्रभावी उपयोग करने के लिए शिक्षक को नियोजन करना चाहिए।
2. कहानी सुनाना एक कला है। प्रत्येक शिक्षक इस कला में निपुण नहीं होता है। अतः यह विधि सभी शिक्षकों के लिए उपयुक्त नहीं है।

कहानी कथन विधि हेतु सुझाव

कहानी कथन विधि को प्रभावी बनाने हेतु शिक्षक को निम्न सुझावों पर ध्यान देना चाहिए–

1. कहानियों का चुनाव छात्रों की आयु के अनुसार होना चाहिए। चार–पांच वर्ष के छात्र के लिए जिस कहानी का चुनाव किया गया है, आवश्यक नहीं कि वह कहानी दस ग्यारह वर्ष के छात्र के लिए उपयुक्त हो।
2. कहानी छोटी होनी चाहिए ताकि छात्रों की उसमें रोचकता बनी रहे।
3. कहानी कथन से पूर्व शिक्षक को अपनी ओर से पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। उसे कहानी अच्छे से स्मरण होनी चाहिए। यदि कहानी कहते समय वह अनावश्यक रूप से रुकता है तो छात्रों का ध्यान कहानी की ओर से हट सकता है।
4. कहानी की भाषा सरल व स्पष्ट होनी चाहिए।
5. शिक्षक को स्वयं कहानी में रुचि हो तथा वह कहानी कथन में रुचि ले।
6. कहानी ढेर सारी क्रियाओं व अपेक्षित अभिव्यक्तियों से पूर्ण हो।
7. कहानी छात्रों के लिए प्रेरणा स्रोत का कार्य करें।
8. कहानी को पढ़कर सुनाना उपयुक्त नहीं है। इससे छात्र यथेष्ट रुचि नहीं लेते।
9. कहानी सुनाने के पश्चात् उससे संबंधित विषय की बोधगम्यता का पता लगाने के लिए छात्रों से प्रश्न पूछने चाहिए। इससे छात्र विषय को शीघ्रता से एवं सरलता पूर्वक ह्दयंगम कर लेते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

5. प्राथमिक स्तर के छोटे बालकों सबसे अधिक आकर्षित करने वाली शिक्षण विधि कौन–सी है?

   (क) व्याख्यान विधि   (ख) कहानी कथन विधि

   (ग) प्रोजेक्ट विधि   (घ) विचार–विमर्श विधि

6. माध्यमिक स्तर पर कौन–सी शिक्षण विधि अधिक लोकप्रिय है?

   (क) पर्यटन/भ्रमण विधि   (ख) सिमुलेशन विधि

   (ग) उपर्युक्त दोनों   (घ) इनमें से कोई नहीं

2.5 सामाजिक अध्ययन अधिगम का मूल्यांकन

सामाजिक अध्ययन अधिगम के मूल्यांकन में किसी वस्तु का मूल्य (Value of qualitative form) निर्धारित किया जाता है। उसमें इस सत्य का निर्माण किया जाता है कि

कौन–सी चीज अच्छी है और कौन–सी चीज बुरी। अतः जब हम गुण–दोषों के सन्दर्भ में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का अवलोकन करते हैं तो वहां 'मूल्यांकन' निहित होता है।

2.5.1 मूल्यांकन : अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य

टिप्पणी

शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन को एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत न केवल छात्रों को विषय विशेष सम्बन्धी योग्यता की ही जानकारी दी जाती है बल्कि यह जानने का प्रयास भी किया जाता है कि उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किस सीमा तक हुआ है। शिक्षण, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों आदि की सफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करने में भी मूल्यांकन का सहारा लिया जाता है। अस्तु मूल्यांकन प्रक्रिया एकांगी (One dimensional) न होकर विभिन्न कार्यों की श्रृंखला (Series of activities) है। उसके अन्तर्गत मात्र एक ही कार्य (act) निहित नहीं होता वरन् अनेक सोपान (steps) सम्मिलित रहते हैं। मूल्यांकन एक निर्णयात्मक एवं व्यापक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विषय–वस्तु की उपयोगिता के विषय में निर्णय लिया जाता है जो कि बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण एवं परिपक्व होता है।

मूल्यांकन की परिभाषाएं

रेमर्स एवं गेज के अनुसार, ''मूल्यांकन के अन्दर व्यक्ति या समाज अथवा दोनों की दृष्टि में जो उत्तम है अथवा वांछनीय है, उसको मानकर चला जाता है।''

डांडेकर के अनुसार, ''मूल्यांकन हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक किन उद्देश्यों को प्राप्त किया है।''

टॉरगेर्सन तथा एडम्स के अनुसार, ''मूल्यांकन का अर्थ है किसी वस्तु या प्रक्रिया का मूल्य निश्चित करना। इस प्रकार, शैक्षिक मूल्यांकन से तात्पर्य है शिक्षण प्रक्रिया तथा सीखने की क्रियाओं से उत्पन्न अनुभवों की उपयोगिता के बारे में निर्णय देना।''

क्विलेन तथा हन्ना के अनुसार, ''विद्यालय द्वारा हुए बालक के व्यवहार परिवर्तन के विषय में साक्षियों के संकलन तथा उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।''

क्लयाजमेयर एवं गुडविन के अनुसार, ''शिक्षा में मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह निर्णय किया जाता है कि किसी चीज की मापित सीमा और परिणाम किसी मापदण्ड में स्वीकार्य अथवा वांछनीय हैं अथवा नहीं।''

कोठारी कमीशन के अनुसार, ''अब यह माना जाने लगा है कि मूल्यांकन एक अनवरत प्रक्रिया है, यह सम्पूर्ण शिक्षा–प्रणाली का एक विभिन्न अंग है और यह शिक्षण लक्ष्यों से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।''

मूल्यांकन प्रक्रिया की प्रमुख मान्यताएं

मूल्यांकन प्रक्रिया की प्रमुख मान्यताएं निम्नवत् हैं–

(1) मूल्यांकन का ध्येय बालक के व्यवहार में अपेक्षित व्यवहारीय परिवर्तन लाना होता है।

(2) मूल्यांकन उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात उपयुक्त मूल्यांकन उपकरण (Tool) का चयन करना चाहिए।

(3) मूल्यांकन प्रक्रिया वह सीमा निर्धारित करती है जहां तक शैक्षिक उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

(4) मूल्यांकन हेतु व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों (Dimensions) का मापन करना अत्यन्त आवश्यक है।

टिप्पणी

(5) मूल्यांकनकर्ता को मूल्यांकन विधा की प्रत्येक प्रविधि एवं विभिन्न उपकरणों का ज्ञान होना चाहिए।

(6) मूल्यांकन अपने आप में एक अन्त (end) नहीं है वरन् दूसरी चीजों की प्राप्ति में एक साधन (means) के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

(7) मूल्यांकन अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। यथासम्भव दोषों (Errors) के जाल से बचना चाहिए।

(8) मापन एवं मूल्यांकन दोनों ही छात्र के सीखने को प्रभावित करते हैं।

(9) मूल्यांकन का दायित्व विद्यालय, व्यक्ति एवं अभिभावक सभी पर होता है।

(10) मूल्यांकन के सिद्धांन्तों एवं नैतिक मूल्यों का यथासम्भव पालन करना चाहिए।

मूल्यांकन के उद्देश्य

मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य निम्न पंक्तियों में उद्धृत हैं–

(1) छात्रों का वर्गीकरण करना।

(2) छात्रों को उचित शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग निर्देशन प्रदान करना।

(3) पाठ्यक्रम में उचित संशोधन करना।

(4) छात्रों में अधिगम (Learning) की मात्रा ज्ञात करना।

(5) शिक्षकों की कुशलता एवं सफलता का मापन।

(6) छात्रों की दुर्बलताओं एवं योग्यताओं की जानकारी प्राप्त करना।

(7) शिक्षण विधियों की उपयुक्तता की जांच।

(8) अनुदेशन (Instruction) की प्रभावशीलता ज्ञात करना एवं उसके अनुरूप अपनी क्रियाओं (Activities) का नियोजन (Planning) करना।

(9) छात्रों को अपनी समस्याएं समझने एवं उनकी प्रगति के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।

(10) इस बात की जानकारी प्रदान करना कि छात्रों की विभिन्न व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की जा सकती है।

2.5.2 आकलन, मापन और मूल्यांकन में अंतर

मापन, आकलन और मूल्यांकन में अंतर को निम्न तालिका की सहायता से समझ सकते हैं–

टिप्पणी

क्र. सं.	मापन	आकलन	मूल्यांकन
1.	यह किसी वस्तु का अंकात्मक रूप है। अतः इसमें नंबर (अंक) आवंटित किये जाते हैं।	अंकों का अर्थ निकालना आकलन कहलाता है।	अंक देना, अंकों का मूल्य निर्धारण करना तथा अंकों का अर्थ निकलना ही मूल्यांकन है।
2.	अंक आवंटन = मापन	अंक आवंटन + अंकों का अर्थ = आकलन	अंक आवंटन + अंकों का अर्थ + अंकों का मूल्य = मूल्यांकन
3.	यह परिमाणात्मक होता है।	यह परिणात्मक होता है।	मूल्यांकन परिणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों होता है।
4.	मापन संख्यात्मक होता है।	आकलन संख्यात्मक तथा परिणात्मक होता है।	मूल्यांकन के द्वारा मूल्यों का निर्धारण किया जाता है।
5.	यह स्थिर होता है।	यह लचीला होता है।	यह कभी लचीला तो कभी स्थिर हो सकता है।
6.	मापन का क्षेत्र ज्यादा विस्तृत नहीं है, अर्थात यह सीमित है।	आकलन प्रायः मापन से अधिक विस्तृत है।	मूल्यांकन इन दोनों से ज्यादा विस्तृत है।
7.	इसके द्वारा छात्रों की उत्तरपुस्तिका को जांच कर अंक प्रदान किये जाते हैं।	आकलन द्वारा छात्रों की कमजोरियां तथा अच्छाइयां ज्ञात होती हैं।	मूल्यांकन द्वारा दोषों का पता लगाकर उनको दूर किया जाता है।
8.	मापन उपलब्धि का स्तर है।	आकलन प्राप्ति का स्तर है।	यह उन्नति का स्तर है।
9.	मापन औपचारिक होता है।	आकलन औपचारिक तथा अनौपचारिक होता है।	यह अनौपचारिक होता है।

2.5.3 मूल्यांकन के प्रकार

मूल्यांकन के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. स्थापन मूल्यांकन (Placement Evaluation),
2. निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation),
3. निदानात्मक मूल्यांकन (Diagnostic Evaluation),
4. संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)

1. स्थापन मूल्यांकन

स्थापन मूल्यांकन की सहायता से यह ज्ञात करने की चेष्टा की जाती है कि विद्यार्थियों में यह अपेक्षित गुण तथा व्यवहार उपस्थित है अथवा नहीं, जो पढ़ाए जाने वाले पाठ अथवा अन्य प्रकार के अधिगम के लिए आवश्यक है। पारस्परिक शिक्षण पद्धति में यह पूर्व ज्ञान के नाम से जाना जाता है। आधुनिक शिक्षण में मापन–मूल्यांकन हेतु विभिन्न

प्रकार की प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। जैसे– तत्परता परीक्षण, अभिवृति परीक्षण, पाठ्यक्रम उद्देश्यों पर आधारित पूर्व–परीक्षण इत्यादि।

2. निर्माणात्मक मूल्यांकन

निर्माणात्मक मूल्यांकन की सहायता से शिक्षण के दौरान छात्रों की अधिगम से संबंधित उन्नति को नियन्त्रित किया जाता है। इसके द्वारा छात्र तथा अध्यापक दोनों को ही पृष्ठ–पोषण के माध्यम से अधिगम से संबंधित सफलताओं तथा असफलताओं का बोध होता रहता है। सफलता की सूचना छात्र को उत्साहित करती है जिससे उसका व्यवहार सही दिशा में और अधिक दृढ़ हो जाता है, असफलता से उसे ज्ञात होता है कि उसने कहां गलती की है अथवा कहां उसे अपने व्यवहार में सुधार करना है। शिक्षक पृष्ठ–पोषण के द्वारा यह ज्ञात कर लेता है कि कहां उसे अपनी शिक्षण पद्धति में सुधार करना है तथा कब छात्रों को उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करना है। इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए प्रायः शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों को ही प्रयोग में लाया जाता है। शिक्षक पढ़ाए गए प्रत्येक छोटे–भाग पर प्रवीणता परीक्षण तैयार करता है तथा इससे यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि छात्रों ने पढ़ाई गई सामग्री को आत्मसात् किया है अथवा नहीं। छात्रों की अधिगम से संबंधित उन्नति तथा अधिगम दोषों को ज्ञात करने हेतु कभी–कभी प्रेक्षण प्रविधि का भी प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

3. निदानात्मक मूल्यांकन

निदानात्मक मूल्यांकन का प्रयोग छात्रों की उन अधिगम से संबंधित कठिनाइयों को ज्ञात करने के लिए किया जाता है, जिनका निदान शिक्षण के दौरान सम्भव नहीं होता है। यदि कोई छात्र किसी एक विषय में बार–बार असफल रहता है तो निदानात्मक मूल्यांकन के द्वारा उसकी असफलता का कारण पता लगाने में सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए विभिन्न विषयों में निदानात्मक परीक्षणों का निर्माण किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार कमजोर छात्रों की इनके द्वारा जांच की जाती है। इस प्रकार प्राप्त परिणाम उपचारात्मक शिक्षण के आधार पर कार्य करते हैं।

4. संकलनात्मक मूल्यांकन

संकलनात्मक मूल्यांकन का प्रयोग यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि किस सीमा तक शिक्षक के उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता प्राप्त हुई है। इसका प्रमुख कार्य छात्रों को श्रेणीबद्ध करना अथवा डिवीजन देने का है परन्तु इसके माध्यम से परोक्ष रूप से यह भी ज्ञात हो जाता है कि पाठ्यक्रम के उद्देश्य किस सीमा तक सही हैं तथा किस सीमा तक शिक्षण–प्रविधि प्रभावशाली सिद्ध हुई है। संकलनात्मक मूल्यांकन के लिए प्रायः शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों की प्रकृति शिक्षण–उद्देश्यों पर निर्भर होती है।

उपलब्धि परीक्षण, निर्धारण–मापनी आदि का प्रयोग मुख्यतः संकलनात्मक मूल्यांकन हेतु किया जाता है।

2.5.4 मूल्यांकन की तकनीकें और उपकरण

मापन एवं मूल्यांकन का क्षेत्र अतिव्यापक है और शिक्षा के क्षेत्र में जिन मापन एवं मूल्यांकन विधियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें कुछ विद्वान उपकरण (Tools) कहते

हैं। कुछ युक्ति (Devices) कहते हैं कुछ विद्वान इन्हें तकनीक (Techniques) और कुछ विधियां (Method) कहते हैं। उपकरण प्रायः हार्डवेयर साधनों को कहते हैं। भौतिक मापों जैसे छात्रों की लम्बाई, भार तथा तापमान (Temperature) को मापने के लिए भौतिक उपकरणों वेट मशीन, मीटर एवं थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है। लेकिन छात्रों की बुद्धि रुचि एवं शैक्षिक उपलब्धियों के मापन के लिए मापन सॉफ्टवेयर अवलोकन एवं परीक्षण आदि का प्रयोग किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि शैक्षिक मापन विधियां कौन–सी हैं? शिक्षा के क्षेत्र में अनेकों मापन विधियों का प्रयोग होता है यहां हम केवल उन्हीं मापन विधियों की चर्चा करेंगे जिनका प्रयोग शिक्षा योजना, शिक्षा नीति, शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण की पाठ्यचर्या, शिक्षकों एवं अभिभावकों की क्रियाओं एवं व्यवहार की उपयोगिता, छात्रों की बुद्धि, व्यक्तित्व, शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक समस्याओं के मापन के लिए किया जाता है ये विधियां निम्न हैं–

1. **अवलोकन** (Observation)– अवलोकन व्यक्ति के व्यवहार को मापने की अति प्राचीन विधि है। अवलोकन विधि द्वारा छात्रों के सामाजिक विकास उनकी आदतों, संवेगात्मक स्थिति, बौद्धिक परिपक्वता अभिवृत्तियों में परिवर्तन सामाजिक समायोजन की सीमा आदि का पता लगाया जा सकता है। अवलोकन, अवलोकनकर्त्ता की दृष्टि से एवं उसकी सूझबूझ पर निर्भर करता है। अवलोकन मापन की व्यक्तिनिष्ठ विधि है। इसके परिणामों पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता है।

2. **साक्षात्कार** (Interview)– साक्षात्कार के अन्तर्गत मापनकर्त्ता उस व्यक्ति अथवा छात्र से सीधा सम्पर्क करता है जिसकी क्रिया एवं प्रभाव का पता लगाना है। यह विधि भी व्यक्तिनिष्ठ होती है। लेकिन शिक्षा नीति, शिक्षा योजना, शिक्षा के उद्देश्यों तथा शिक्षण विधियों की उपयोगिता, शैक्षिक उपलब्धियों एवं समस्याओं का पता लगाने के लिए इस विधि का प्रयोग उपयोगी होता है।

3. **प्रश्नावली** (Questionaire)– प्रश्नावली साक्षात्कार का ही लिखित स्वरूप है साक्षात्कार में मापनकर्त्ता व्यक्ति/छात्र से मौखिक प्रश्न पूछता है जबकि प्रश्नावली में वह लिखित रूप में तत्संबंधी प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता अपने उत्तरों को उसी प्रश्नावली पर लिखते हैं। साक्षात्कार में एक समय में एक ही व्यक्ति का मापन किया जा सकता है। जबकि प्रश्नावली की सहायता से एक समय में अनेक व्यक्तियों अथवा छात्रों की विशेषताओं का मापन किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रश्नावली विधि साक्षात्कार विधि से अधिक अच्छी है।

4. **श्रेणी मापनी** (Rating Scale)– इस विधि को निर्धारण मापनी अथवा क्रम निर्धारण विधि भी कहा जाता है। श्रेणी मापनी कई प्रकार की होती है–

   (अ) चैक लिस्ट (Check List)– चैक लिस्ट में किसी समस्या से संबंधित अनेक कथन दिए हुए होते हैं निर्धारक को अपनी दृष्टि से उपयुक्त पर निशान/चिह्न लगाना होता है। शिक्षा नीति एवं शिक्षा योजना आदि की उपयोगिता एवं छात्रों के गुण–दोषों का पता लगाने के लिए चैक लिस्ट का प्रयोग किया जाता है।

(ब) आंकिक मापनी (Numerical Scale)– आंकिक मापनी में किसी समस्या से संबंधित 3, 5 अथवा 7 कथन दिए होते हैं व्यक्ति अथवा छात्र को प्रत्येक कथन को उसकी सार्थकता के आधार पर अंक देने होते हैं इस विधि का प्रयोग व्यक्तियों के व्यक्तित्व को मापने के लिए किया जाता है।

(स) ग्राफिक मापनी (Graphic Scale)– इसके अन्तर्गत संबंधित समस्या के प्रत्येक कथन को अंक प्रदान न करके एक क्षैतिज रेखा प्रस्तुत की जाती है। इस क्षैतिज रेखा को सातत्य (Continuum) कहते हैं। व्यक्ति/छात्र को कथनों से संबंधित अपनी राय को क्षैतिज रेखा के किसी भी बिन्दु पर प्रकट करना होता है और मापनकर्त्ता क्षैतिज रेखा पर लगाए गए बिन्दुओं की दूरी के आधार पर उनकी सम्मति का मापन करता है। व्यवहार में इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

(द) क्रमिक मापनी (Ordering Scale)– क्रमिक मापनी के अन्तर्गत समस्या (गुण) से संबंधित कथनों के स्थान पर कई समस्याओं (गुणों) को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है और निर्धारक से उन्हें क्रमबद्ध कराया जाता है किसी व्यक्ति के गुणों की सापेक्षिक स्थिति का पता लगाने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

(य) बाध्य चयन मापनी (Forced Choice Scale)– इसमें प्रत्येक प्रश्न के दो या दो से अधिक उत्तर दिए होते हैं व्यक्ति/छात्र को इनमें से किसी एक का चयन करना होता है इसीलिए इसे बाध्य चयन मापनी कहा जाता है।

5. **छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुएं** (Student's Products)– छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं से उनके कौशल एवं रुचियों का ज्ञान होता है। छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं को देखकर केवल उनके कौशल का ही ज्ञान नहीं होता अपितु उनकी रुचियों की भी जानकारी प्राप्त होती है।

6. **प्रक्षेपीय तकनीक** (Projective Technique)– प्रक्षेपण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से होता है जिसे व्यक्ति किसी वस्तु अथवा क्रिया के प्रति अचेतन स्तर पर करता है। इस तकनीक द्वारा व्यक्ति के अचेतन पक्ष का मापन किया जाता है। व्यक्तित्व मापन में विशेष रूप से इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

7. **अभिलेख** (Records)– विद्यार्थियों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी के लिए अभिलेखों का भी सहारा लिया जाता है। विद्यार्थियों द्वारा ये अभिलेख कई रूपों में रखे जाते हैं–

(अ) छात्रों की डायरियां (Pupils Diaries)– बहुत से छात्र डायरी में अपनी दिनचर्या का लेखन करते हैं। वे अपनी डायरी में कविता, गाने उद्धरण आदि लिखते हैं। इन डायरियों की सहायता से उनकी रुचि व अभिरुचियों के बारे में पता चलता है, उनकी व्यक्तिगत व सामाजिक समस्याओं का पता चलता है।

(ब) घटनावृत्त (Anecdotal Records)– घटनावृत्त से तात्पर्य उन अभिलेखों से होता है जो शिक्षक द्वारा छात्र के विषय में तैयार किए जाते हैं।

(स) संचित अभिलेख पत्र (Cumulatie Records)– संचित अभिलेख पत्र में छात्र की विभिन्न क्षेत्रों में की गई प्रगति का क्रमिक ब्यौरा होता है। इसमें छात्रों के परिवार संबंधी सूचनाएं, उनके स्वास्थ्य संबंधी सूचनाएं उनकी शैक्षिक प्रगति, उनके सहपाठ्यचारी क्रियाओं में भाग लेने एवं खेलकूद संबंधी सूचनाओं का ब्यौरा होता है। इससे किसी छात्र की विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली प्रगति अथवा अवनति का उसकी रुचियों का उसके व्यवहार का पूरा–पूरा ज्ञान प्राप्त होता है।

8. **परीक्षण** (Tests)– परीक्षण से तात्पर्य किसी छात्र अथवा छात्रों के समूह की मानसिक क्षमताओं, शैक्षिक उपलब्धियों एवं शैक्षिक कठिनाइयों का पता लगाने वाली मौखिक अथवा लिखित प्रश्नावलियों एवं उपकरणों से है।

   शैक्षिक मापन के परिणामों की व्याख्या के लिए जिन सामान्य एवं सांख्यिकीय मापदण्डों का प्रयोग किया जाता है, वे मुख्य मानदण्ड हैं– केन्द्रीयभाव (Central Tendencies), शतांश मान (Percentiles) विचलन मान (Deviations) सह–संबंध गुणांक (Co-efficient Correlation) आंकडों के रेखाचित्र (Graphs) सामान्य संभावना वक्र (Normal Probability Curve) और मानक प्राप्तांक (Standard Scores) आदि।

2.5.5 शिक्षक निर्मित परीक्षण

वे परीक्षण, जिनका निर्माण विद्यालयों के शिक्षक अपनी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करते हैं, शिक्षक निर्मित परीक्षण कहलाते हैं। इन परीक्षणों की रचना अत्यंत सरल होती है। शिक्षक स्थानीय परिस्थितियों, अपने अनुभवों तथा छात्रों की उपलब्धि स्तर को ध्यान में रखकर इनका निर्माण कर लेते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षण प्रायः प्रश्नों का एक ऐसा समूह होता है, जिसे शिक्षक अपने विवेक से छात्रों की शैक्षिक प्रगति का मापन करने के उद्देश्य से तैयार करते हैं। कभी-कभी शिक्षकों के द्वारा बनाये गये परीक्षणों को दूसरे शिक्षकों से संपादित व संशोधित भी कराया जाता है। यह कार्य परीक्षण की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण में प्रश्नों को बिना किसी मूल्यांकन के परीक्षण में शामिल कर लिया जाता है। इसकी वैधता, विश्वसनीयता तथा मानकों को ज्ञात नहीं किया जाता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण, स्थानीय व तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार किये जाते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षण के उद्देश्य

शिक्षक निर्मित परीक्षण, छात्र तथा शिक्षक दोनों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इन परीक्षणों को निर्मित करने के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1. ये परीक्षायें निबंधात्मक परीक्षाओं का एक सुधरा हुआ रूप हैं। इनका उद्देश्य निबंधात्मक परीक्षाओं के दोषों को दूर कर छात्रों की वास्तविक योग्यता की जांच करना होता है।
2. निदानात्मक दृष्टि से इन परीक्षाओं का बहुत महत्व है। ये परीक्षण जहां एक ओर शिक्षक को यह संदेश देते हैं कि उसे शिक्षण कार्य में कहां तक सफलता प्राप्त

हुई है, वहीं दूसरी ओर ये छात्र को यह आभास कराते हैं कि उसे कौन-सी विषय-वस्तु ठीक से समझ में नहीं आयी है।

3. इन परीक्षणों के माध्यम से इस तथ्य की जानकारी हो जाती है कि शिक्षक को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है।
4. ये परीक्षण एक शिक्षक को अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए अवसर प्रदान करते हैं।
5. इनकी सहायता से शिक्षक सीमित पाठ्य-वस्तु का मूल्यांकन सफलतापूर्वक कर लेते हैं।
6. ये परीक्षण अनवतर मूल्यांकन की दृष्टि से काफी उपयोगी होते हैं।
7. इन परीक्षणों को कम समय में आसानी से तैयार किया जा सकता है तथा इन परीक्षणों को तैयार करने में शिक्षक को किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता भी नहीं होती है।

शिक्षक निर्मित परीक्षण की विशेषताएं

शिक्षक निर्मित परीक्षण की प्रमुख विशेषताएं निम्नानुसार हैं :

1. इन परीक्षाओं के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं।
2. ये परीक्षायें मानकीकृत नहीं होती हैं।
3. ये परीक्षण किसी भी विषय के शिक्षक द्वारा बनाये जा सकते हैं।
4. ये परीक्षण सीमित पाठ्य-वस्तु के संदर्भ में किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु तैयार किये जाते हैं।
5. इनमें प्रश्न संक्षिप्त और अधिक संख्या में शामिल किये जाते हैं।
6. इन परीक्षणों में प्रश्नों के विभिन्न रूपों का आसानी से समावेश किया जा सकता है।
7. ये परीक्षण संपूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं।
8. ये परीक्षण, परीक्षक की मनोवृत्ति के प्रभाव से पूर्णतया रहित होते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षण का निर्माण

शिक्षक निर्मित परीक्षण का निर्माण करते समय विषय का शिक्षक जिस विषय के परीक्षण का निर्माण करना होता है, उसके पाठ्यक्रम का विस्तृत रूप से अवलोकन करता है। इसके बाद वह उप-विषयों का चयन करता है, जिनसे प्रश्नों का निर्माण किया जाना है। इसके बाद वह विभिन्न प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण करता है। ये प्रश्न काफी संक्षिप्त रूप से बनाये जाते हैं तथा इन्हें सरल से कठिन रूप के बढ़ते क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। अध्यापक इस प्रकार के परीक्षण में विभिन्न प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश कर सकता है, जैसे- प्रत्यास्मरण प्रश्न (recall type), मिलान परीक्षा (matching type), पहचान प्रश्न (recognition type), तथा वर्गीकरण रूप या तर्कयुक्त रूप (Classification or Analogy or Logical selection type)

इन परीक्षणों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है, जिससे वे विषय की योग्यता की जांच करने के साथ ही प्रयोगात्मक उपयोग में सहायक हो सके। साथ ही पूछे गये

प्रश्न ऐसे हों, जो संपूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करते हों। इसमें सभी प्रकार के प्रश्नों को समुचित स्थान दिये जाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों का समावेश करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक होता है :

टिप्पणी

1. प्रश्नों की भाषा सरल, स्पष्ट और संक्षिप्त होनी चाहिए।
2. प्रश्नों की भाषा हूबहू पाठ्य-पुस्तक के समान नहीं होनी चाहिए।
3. प्रश्नों की भाषा जानबूझकर उलझाने वाली नहीं होनी चाहिए।
4. प्रश्न के उत्तर, प्रश्न में ही निहित नहीं होने चाहिए।
5. परीक्षण में दोहरे अर्थ वाले प्रश्नों को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

शिक्षक निर्मित परीक्षण का निर्माण करने में साधारणतया निम्न प्रकार के प्रश्नों को शामिल किया जाता है :

1. प्रत्यास्मरण प्रश्न (Recall type question)

इन प्रश्नों के द्वारा छात्र की स्मरण शक्ति की परीक्षा ली जाती है। इसके अंतर्गत दो प्रकार के प्रश्न आते हैं :

(I) साधारण प्रत्यास्मरण प्रश्न (Simple Recall type question) : इन प्रश्नों के अंतर्गत छात्रों से साधारण प्रश्न पूछे जाते हैं तथा उनका उत्तर छात्रों को दिये गये रिक्त स्थान में लिखना होता है, जैसे-

1. भारत का इतिहास कब से प्रारंभ होता है?
2. भूगोल को कितनी शाखाओं में बांटा गया है?
3. भारतीय संविधान का निर्माण कब हुआ?
4. भारतीय अर्थव्यवस्था का अर्थ क्या है? आदि।

(II) रिक्त स्थान की पूर्ति वाले प्रश्न (Fill in the blanks type question) : इस प्रकार की परीक्षाओं में प्रश्नों में एक खाली स्थान छोड़ दिया जाता है तथा छात्रों को सोचकर उस रिक्त स्थान की पूर्ति करनी होती है, जैसे-

1. सिंधु घाटी की सभ्यता में बंदरगाह के प्रमाण......से पाये गये हैं।
2. भारत को.........जलवायु प्रकारों में बांटा गया है।
3. हमारे संविधान को बनने में.....................का समय लगा था।
4. भारत की जनसंख्या...............करोड़ है। आदि।

2. पहचान वाले प्रश्न

इसके अंतर्गत एक प्रश्न में कुछ कथन दिये जाते हैं, जिसमें से सबसे सही कथन को उत्तर के रूप में चुनना होता है। इसके अंतर्गत निम्न प्रकार के प्रश्न आते हैं :

(I) सत्य/असत्य प्रश्न (Tue\False type question) : इसमें प्रश्न लिखे होते हैं तथा उनके बगल में सत्य/असत्य लिखा होता है, जिसमें से सही पर निशान लगाना होता है, जैसे-

1. भारत में कुल 28 राज्य पाये जाते हैं। सत्य/असत्य

2. ऋग्वेद की रचना वैदिक काल में हुयी थी। सत्य/असत्य

3. हिमालय पर्वत भारत के उत्तर में पाया जाता है। सत्य/असत्य

4. भारत में बेरोजगारी को गरीबी का एक बड़ा कारण माना जाता है। सत्य/असत्य

(II) बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple choice question) : इसमें प्रश्न लिखे होते हैं तथा उसके कई विकल्प दिये होते हैं, जिसमें से सही विकल्प को चुनना होता है, जैसे-

प्रश्न : कालीदास किस काल के प्रमुख कवि थे?

(a) गुप्तकाल (b) राजपूत काल

(c) जैनकाल (d) हर्षवर्धन का काल

(III) मिलान वाले प्रश्न (Matching type question) : इसमें प्रश्नों को दो सूचियों में लिखा जाता है। एक सूची के प्रश्नों का दूसरी सूची के उत्तर से मिलान करना होता है, जैसे-

प्रश्न : नीचे दो सूचियां दी गई हैं। दोनों सूचियों का मिलान कर सही उत्तर चुनिये :

सूची-I	सूची-II
A. इतिहास का पिता	1. हेरोडोटस
B. बौद्ध धर्म के संस्थापक	2. महात्मा बुद्ध
C. चंद्रगुप्त मौर्य	3. मौर्य साम्राज्य का संस्थापक
D. अशोक	4. कलिंग का युद्ध

कूट :

	A	B	C	D
(a)	1	2	3	4
(b)	4	3	2	1
(c)	1	4	3	2
(d)	2	1	3	4

शिक्षक निर्मित परीक्षण की सीमायें

शिक्षक निर्मित परीक्षण की कई विशेषताओं के बावजूद इसकी कुछ सीमायें भी हैं, जो इस प्रकार हैं :

- ये परीक्षण किसी विषय के पूर्ण ज्ञान का परीक्षण नहीं कर पाते हैं।
- ये परीक्षण छात्रों की उच्च मानसिक योग्यता का मापन करने में असमर्थ रहते हैं। इनसे मात्र छात्र के सतही ज्ञान की ही परीक्षा हो पाती है।
- इन परीक्षणों का निर्माण करना सरल कार्य नहीं होता है। शिक्षक को इसके लिए कुछ प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
- इन परीक्षणों में छात्र को अनुमान से उत्तर देने का मौका मिल जाता है।
- ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ होते हुए भी प्रमापीकृत न होने के कारण परीक्षक की मनोवृत्ति से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य प्रभावित होते हैं।

- कई बार परीक्षार्थी इन परीक्षाओं की प्रकृति से परिचित नहीं होते हैं, जिसके कारण विषय का अच्छा ज्ञान होने के बाद भी वे परीक्षा में सही उत्तर नहीं दे पाते हैं।
- इन परीक्षणों के माध्यम से छात्रों की कमजोरियों का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है।
- ये परीक्षायें अध्यापक को भारस्वरूप लगती हैं।
- इस प्रकार के परीक्षणों में नकल की संभावना अधिक होती है।

2.5.6 शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण उपक्रम (तैयारी)

उपलब्धि परीक्षण छात्र द्वारा स्कूल से विषय संबंधी अर्जित ज्ञान का परीक्षण है। इस परीक्षण से शिक्षक यह ज्ञात कर सकता है कि विद्यार्थी ने कितनी उन्नति की है, विद्यार्थी ने किस सीमा तक विषय संबंधी ज्ञान प्राप्त किया है।

उपलब्धि परीक्षण की परिभाषा

उपलब्धि परीक्षण के अर्थ और भाव को और अधिक स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषाएं दी गई है, जिनमें से कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं –

गैरीसन तथा अन्य – "उपलब्धि परीक्षा, बालक की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में उसके ज्ञान की सीमा का मापन करती हैं।"

फ्रीमैन – "शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण वह परीक्षण है जो किसी विशेष विषय अथवा पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ और कुशलताओं का मापन करता है।"

इबेल – "उपलब्धि परीक्षण वह है, जो छात्र द्वारा ग्रहण किए हुए ज्ञान का अथवा किसी कौशल में निपुणता का मापन करता है।"

प्रेसी, रॉबिनस और होरोक – "सम्प्राप्ति परीक्षाओं का निर्माण मुख्य रुप से छात्रों के सीखने के स्वरुप और सीमा का मापन करने के लिए किया जाता है।"

थार्नडाइक और हेगन – "जब हम सम्प्राप्ति परीक्षण को प्रयोग करते है, तब हम इस बात का निश्चय करना चाहते हैं कि एक विशिष्ट प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरान्त व्यक्ति ने क्या सीखा है?"

सुपर – "एक ज्ञानार्जन परीक्षण यह जानने के लिए प्रयुक्त किया जाता है कि व्यक्ति ने क्या और कितना सीखा तथा वह कोई कार्य कितनी अच्छी प्रकार से कर सकता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि – "उपलब्धि वे हैं, जिनकी सहायता से स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषयों और सिखाए जाने वाले कौशलों में विद्यार्थियों की सफलता अथवा उपलब्धि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।"

उपलब्धि परीक्षण का महत्व

शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धि परीक्षणों को एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनका प्रयोग अनेक कार्यों के लिए किया जाता है। थार्नडाइक और हेगन ने स्कूल की दृष्टि से उपलब्धि परीक्षण के महत्व का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है–

विद्यार्थियों का वर्गीकरण – उपलब्धि परीक्षणों से विद्यार्थियों को जो अंक प्राप्त होते हैं, उससे उनके मानसिक और बौद्धिक स्तर का ज्ञान हो सकता है। इसलिए उनके मानसिक स्तर के अनुसार, उनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

विद्यार्थियों की कठिनाइयों का निदान – इन परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों की कठिनाइयों का पता चल जाता है। कठिनाई जान लेने पर उसके निवारण के उपाय किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से विद्यार्थियों की प्रगति में योगदान किया जा सकता है।

विद्यार्थियों को प्रेरणा – अनुभव से पता चलता है कि विद्यार्थियों को प्रेरणा देने में भी, इन परीक्षाओं को सफलता मिली है। जब विद्यार्थियों को इस बात का पता चलता है कि उनके अर्जित ज्ञान की जाँच हो रही है, तो उन्हें प्रेरणा मिलती है।

व्यक्तिगत सहायता – उपलब्धि परीक्षणों के द्वारा सरलता से मन्द–बुद्धि, कुशाग्र–बुद्धि, तथा विशेष योग्यता वाले विद्यार्थियों का पता लगाकर, आवश्यकतानुसार उनकी सहायता की जा सकती है।

शिक्षा–निर्देशन – इस परीक्षण के आधार पर विद्यार्थियों ने जो अंक प्राप्त किए हैं तथा उनके पूर्व के और अभी के अंक को देखकर उन्हें समुचित निर्देशन दिया जा सकता है कि उन्हें कौन से विषय लेने चाहिए, आदि।

विद्यार्थियों को परामर्श – उपलब्धि परीक्षाओं से हमें पता चलता है कि विद्यार्थियों की रुचियाँ क्या हैं, उनकी अभियोग्यताएं और कार्य–क्षमताएं क्या हैं, इसके आधार पर उन्हें आगामी अध्ययन के लिए परामर्श दिया जा सकता है।

लिण्डक्विस्ट तथा मन ने उपलब्धि परीक्षणों के निम्नांकित प्रयोगों की चर्चा की है:–

अध्ययन हेतु प्रोत्साहित करना – उपलब्धि परीक्षण विद्यार्थियों को अध्ययन हेतु प्रोत्साहन एवं प्रलोभन प्रदान करता है। एक प्रकार से परीक्षाएँ विद्यार्थियों को प्रेरणा भी प्रदान करती हैं।

शिक्षण विधि में सुधार – शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों ही परीक्षा परिणामों के आधार पर शिक्षण विधि की सफलता की मात्रा जान सकते हैं और आवश्यक हाने पर उसमें सुधार के प्रयत्न कर सकते हैं। परीक्षा की उत्तर–पुस्तिकाओं के आधार पर अध्यापक अपने द्वारा अपनाई गई शिक्षण विधि की सफलताओं का आकलन कर सकता है।

मान्यता प्रदान करने में सहायक – परीक्षा परिणामों के आधार पर कहीं–कहीं विद्यालय को मान्यता प्रदान की जाती है और इन्हीं के आधार पर उनके लिए अनुदान की मात्रा निर्धारित की जाती है।

शिक्षण में सुधार – प्रति वर्ष परीक्षाओं के लिए शिक्षक को परीक्षा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करना पड़ता हैं, परिणामस्वरुप अध्यापक के ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। अपने वर्धित ज्ञान के आधार पर अध्यापक सहज हीं शिक्षण में सुधार कर लेता है।

अध्यापक तथा विभागों का मूल्यन – परीक्षा परिणामों के आधार पर ही शिक्षक विद्यालय तथा विभिन्न विभागों का मूल्यांकन किया जा सकता है। विभिन्न विद्यालयों

तथा विभागों में अध्यापन की स्थिति, प्रभावशीलता तथा कुशलता का ज्ञान हो सकता है। इसके द्वारा इनका तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

टिप्पणी

शैक्षक निर्देशन में सहायक – परीक्षाओं के द्वारा न केवल बालक को शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने में काफी सहायता होती है वरन् परीक्षाएँ विद्यार्थी के संबंध में अनेक उपयोगी सूचनाएं प्रदान करती हैं। परिणामों के आधार पर विद्यार्थी की विषय संबंधी उपलब्धियों, अभियोग्यताओं, अभिरुचियों, योग्यताओं आदि का सहज ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जिनकी शैक्षक निर्देशन के लिए अत्यंत आवश्यकता होती है।

अन्वेषण के लिए आवश्यक – शिक्षा में अनुसंधान तथा शोध कार्य करने के लिए परीक्षाएं आवश्यक सामग्री जुटाती हैं। अनेक परीक्षा परिणाम तथा विद्यार्थियों की निष्पत्तियाँ विभिन्न प्रकार के शोध कार्यों में आधारभूत तथ्यों का काम करती हैं।

अनास्तासी ने परीक्षण के निम्नांकित प्रयोगों का उल्लेख किया हैः–

शैक्षिक एंव व्यावसायिक निर्देशन प्रदन करने के लिए उपयोग करना।

विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों, कृत्यों तथा नियुक्तियों को लिए चयन करने में प्रयोग करना।

विद्यार्थी तथा शिक्षकों की योग्यताओं का मापन करना और निर्धारित निम्नतम योग्यता के साथ उनकी योग्यताओं की तुलना करना।

विद्यार्थियों, शिक्षकों आदि का वर्गीकरण करने के लिए प्रयोग।

परीक्षा परिणामों के आधार पर क्रम निर्धारित करना तथा कक्षोन्नति या पदोन्नति करना।

परीक्षण के द्वारा पाठ्यक्रम का मूल्यांकन तथा उसकी पुरावृत्ति भी की जाती है।

निदात्मक शिक्षण प्रदान करना।

शिक्षण कार्य में सुधार एंव उन्नति के लिए उपयुक्त उपाय करना।

उपलब्धि परीक्षण के प्रकार

उपलब्धि परीक्षण जो निर्देशन एवं परामर्श दक्षता को मापने हेतु बनाए जाते हैं। दो प्रकार के होते हैं।

वे उपलब्धि परीक्षण जो विद्यालय के पाठ्यक्रम में किसी एक विषय के अर्जित ज्ञान को मापने हेतु बनाए जाते हैं। ये परीक्षण विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषय के संबंध में बताते हैं कि एक विषय में विद्यार्थी ने कितना सीखा है।

वे परीक्षण जो किसी व्यवसायगत दक्षता को मापने हेतु बनाए जाते हैं। ऐसे परीक्षणों को 'व्यवसाय परीक्षण' कहते हैं। व्यवसाय परीक्षा के माध्यम से यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति ने व्यवसायगत प्रशिक्षण के फलस्वरुप कितनी दक्षता प्राप्त की हैं, एक व्यवसाय के संबंध में उसका अनुभव कितना है तथा व्यवसाय के लिए वर्तमान में क्या कर सकता हैं।

उपलब्धि परीक्षण का प्रारुप

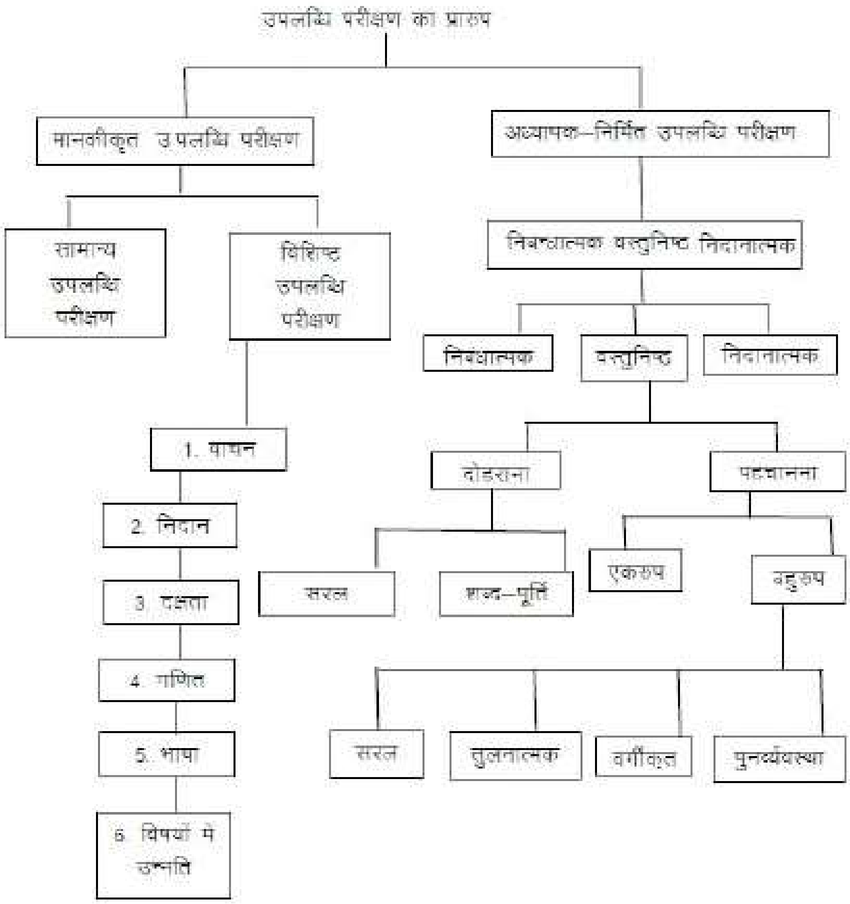

टिप्पणी

उपलब्धि परीक्षण का निर्माण

किसी भी लक्ष्य की पूर्ति हेतु संस्था या व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर योजना बनाता है। सरकार द्वारा निर्मित पंचवर्षीय योजनाएं इसका महत्वपूर्ण उदाहरण हो सकती हैं। उसी प्रकार विद्यार्थियों के मूल्यांकन हेतु परीक्षण का निर्माण किया जाता हैं, जिसके अन्तर्गत विभिन्न पक्षों के मापन हेतु प्रश्नों को समुचित स्थान देने हेतु योजना तैयार की जाती है। शिक्षक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन तथा मूल्यांकन के लिए समय–समय पर अनेक प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करते हैं। परीक्षण निर्माण के आधार पर इन्हें दो भागों मे बांटा जा सकता है।

प्रमाणीकृत परीक्षण	अप्रमाणीकृत परीक्षण
यह औपचारिक है।	यह अनौपचारिक है।
अधिक विश्वसनीय एवं वैध है।	कम विश्वसनीय तथा वैध है।
यह एक समय साध्य कार्य है।	यह कुछ प्रश्नों की रचना करके बनाया जाता है।
प्राप्तांकों की व्याख्या बड़े समूह में की जा सकती है।	प्राप्तांकों की व्याख्या छोटे समूह में की जा सकती है।
अधिक समय तक तथा बड़े समूह की आवश्यकता की पूर्ति करता है।	तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति करता है।
कुछ विशेषज्ञों की समिति द्वारा किया जाता है।	प्रायः कक्षा शिक्षक द्वारा किया जाता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. मूल्यांकन के कितने प्रकार होते हैं?

   (क) 4 (ख) 5

   (ग) 6 (घ) 7

8. शिक्षण–अधिगम के उपरांत आए परिवर्तनों को किस विधि से मापा जा सकता है?

   (क) मापन (ख) आकलन

   (ग) मूल्यांकन (घ) उपर्युक्त सभी

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ग)
3. (क)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ग)
7. (क)
8. (घ)

2.7 सारांश

प्राचीन काल में समाज की संरचना इतनी जटिल नहीं थी। उस समय उसकी समस्याएं भी सरल हुआ करती थीं। परंतु समय परिवर्तन के साथ–साथ समाज की समस्याएं भी जटिल होती गईं। विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने एक ओर जहां सुख–सुविधाएं प्रदान की, वहीं दूसरी ओर कई जटिल समस्याओं को भी जन्म दिया। इन समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने तथा उनके उचित समाधान के लिए सहयोग देने का प्रशिक्षण व्यक्ति को बचपन से ही प्राप्त होना चाहिए। तभी आगे चलकर वह समाज का उपयोगी सदस्य सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान या सामाजिक अध्ययन विषय को स्कूली शिक्षा में सम्मिलित किया गया है।

सामाजिक अध्ययन के संसाधनों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– प्रथम भौगोलिक स्थितियां, जैसे– पर्वत, पठार, पहाड़ियां, सड़कें, फैक्टरी, मिलें, अजायबघर, ऐतिहासिक खण्डहर तथा अन्य स्थान एवं वस्तुएं जिनका निरीक्षण किया जा सके। द्वितीय सामाजिक संस्थाएं– इनमें परिवार, न्यायालय, संघ, टीम, क्लब समुदाय आदि का समावेश होता है। तृतीय संस्कृति से सम्बन्धित विचार– इसमें रीति–रिवाज, परम्पराएं नियम, दृष्टिकोण, विश्वास आदि को सम्मिलित किया गया है।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में सामुदायिक संसाधनों का प्रयोग कर छात्रों के ज्ञान में अधिकाधिक वृद्धि की जा सकती है। इससे शिक्षण भी रोचक, सजीव और प्रभावपूर्ण बनता है।

श्यामपट्ट शिक्षण का एक महत्वपूर्ण और आवश्यक उपकरण ही नहीं है अपितु अध्यापक का एक अच्छा सहयोगी भी है, क्योंकि इसकी सहायता से कुशल अध्यापक चित्र, आदि उपलब्ध न होने पर भी अपने शिक्षण को रुचिकर एवं बोधगम्य बना सकता है। प्राचीन समय से वर्तमान समय में कक्षाओं में लकड़ी, धातु अथवा सीमेंट के पट्टों के स्थान पर शीशे तथा प्लास्टिक के पट्टों का प्रयोग होने लगा है तथा उन पर काले पेण्ट की अपेक्षा भूरे, हरे एवं अन्य हल्के रंग का पेण्ट होने लगा है व लिखने के लिए भी चॉक के अलावा मार्कर आदि का प्रयोग भी किया जाने लगा है।

सामुदायिक संसाधन का अर्थ उन वस्तुओं, स्थानों, संस्थाओं तथा सामाजिक क्रियाकलापों से है जो किसी समुदाय विशेष से सम्बन्धित होते हैं। इनके प्रयोग से छात्र व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रत्येक समुदाय के अपने भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, परम्पराएं, साधन व संस्थाएं होती हैं।

इन सबका सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में समावेश होता है। शिक्षा शब्दकोश में संसाधनों के विषय में लिखा है–''कोई सामुदायिक संस्था, व्यक्ति विशेष, सीमा चिन्ह संगठन आदि को संसाधन के रूप में माना जा सकता है यदि इसे छात्रों के सामाजिक अवबोध की वृद्धि में उपयोग किया जाता है।''

समुदाय भी विद्यालयों की स्थापना करते हैं, उनका संचालन करते हैं और इस प्रकार राज्यों के शैक्षिक कार्यों में सहायता करते हैं। विद्यालय चाहे सरकार द्वारा स्थापित हो या समुदाय द्वारा स्थापित हो वे अपना कार्य तब तक पूरा नहीं कर सकते जब तक उन्हें परिवारों और समुदायों का सहयोग प्राप्त नहीं होता। उन्हें समुदाय से आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है, विशेषज्ञों के सहयोग की आवश्यकता होती है और जब तक विद्यालय और समुदाय में सामंजस्य नहीं होता तब तक बच्चे आचरण की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते।

कम लागत वाली शिक्षण सामग्री वह है, जो देश के स्थानीय कारखानों द्वारा उत्पादित की जाती है। इसके अन्य हिस्से (स्पेयर पार्ट्स) भी आसानी से मिल जाते हैं तथा इसकी कीमत सदैव दूसरे देशों से आयातित उपकरणों की तुलना में कम होती है। कम लागत वाली शिक्षण सामग्री में न्यूनतम लागत शामिल होती है क्योंकि ये घरेलू कचरे एवं अनुपयोगी वस्तुओं से या हमारे तत्काल परिवेश और प्राकृतिक वातावरण में आसानी से उपलब्ध सामग्री से बने होते हैं।

भारत जैसे विकासशील देश के लिए दिए गए स्तर पर सभी छात्रों के लिए उपकरणों में निवेश एक भारी वित्तीय बोझ है। बड़ी संख्या में स्कूलों को देखते हुए सहायक शिक्षण सामग्री का उपयोग काफी वित्तीय भार डालता है। परिसर में विकसित और निर्मित ये सामग्रियां, विद्यालयों को आत्मनिर्भर बनने और शिक्षा की लागत को कम करने में सहायता करती हैं। कम लागत वाली शिक्षण सहायक सामग्री का वृद्धिशील और चयनात्मक उपयोग शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को अधिक विविध, रोचक और प्रभावी बनाता है।

टिप्पणी

व्यवहारवाद मूल रूप से मानव के देखने योग्य और मापने योग्य पहलुओं के व्यवहार से संबंधित है। व्यवहार को परिभाषित करने में, व्यवहारवादी अधिगम सिद्धांत व्यवहार में परिवर्तन पर जोर देते हैं, जो शिक्षार्थी द्वारा बनाए गए उद्दीपन-प्रतिक्रिया संघों का परिणाम है। यह मानते हुए कि मानव व्यवहार को सीखा जाता है, व्यवहारवादियों का यह भी मानना है कि सभी व्यवहारों को सीखा नहीं जा सकता है और नए व्यवहार द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है। सीखने के इस सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व पुरस्कृत प्रतिक्रिया है। वांछित प्रतिक्रिया सीखने के लिए पुरस्कृत किया जाना चाहिए। व्यवहारवादी प्रतिमान में पुरस्कार के लिए लक्ष्य निर्धारित करने वाले शिक्षार्थी के व्यवहार में संशोधन आवश्यक है। व्यवहारवादी सिद्धांत शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक-केंद्रित दृष्टिकोण से सामग्री वितरित करने की धारणा है। उनका एकमात्र उद्देश्य शिक्षार्थी के मूल तथ्यों, उपलब्धियों और संबंधों में निहित है, जो विशिष्ट प्रकार की ज्ञान प्राप्ति में सहायक होता है।

शिक्षा का रचनावादी सिद्धांत समस्या समाधान और आलोचनात्मकता में छात्र की सक्रिय भागीदारी पर आधारित है। यह एक सीखने की गतिविधि के बारे में छात्र में एक सोच उत्पन्न करता है। छात्र विचारों का परीक्षण करके अपने ज्ञान का निर्माण करते हैं और उनके पूर्व ज्ञान और अनुभव के आधार पर दृष्टिकोण विकसित कर उन्हें नई स्थिति में लागू करने और पहले से मौजूद बौद्धिक निर्माणों के साथ प्राप्त नए ज्ञान को एकीकृत करते हैं। शिक्षक एक सहायक माध्यम है, जो सीखने की प्रक्रिया के दौरान छात्र की महत्वपूर्ण सोच, विश्लेषण और संश्लेषण क्षमताओं का मार्गदर्शन करता है। शिक्षक इस प्रक्रिया में सह-शिक्षक भी है।

प्रोजेक्ट विधि में एक प्रोजेक्ट का चयन करके उसे सामाजिक परिस्थितियों में पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है। इस विधि का एक निश्चित उद्देश्य होता है तथा छात्र उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाएं करते हैं। इन क्रियाओं को उचित रूप से पूरा करने के लिए छात्र सूचनाएं एकत्रित करते हैं। इसके बाद वे ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रोजेक्ट विधि के मुख्य सिद्धांत हैं- उद्देश्यपूर्णता, क्रियाशीलता, उपयोगिता, अनुभवशीलता, वास्तविकता एवं स्वतंत्र वातावरण। प्रोजेक्ट विधि के लिए एक निश्चित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। सबसे पहले छात्र को प्रोजेक्ट की जानकारी दी जाती है। इससे वह उस प्रोजेक्ट एवं उससे संबंधित समस्या से परिचित होता है। इसके बाद वह अपना कार्य आरंभ करता है तथा अंत में उसके कार्य का मूल्यांकन किया जाता है।

छात्रों को नियमित शैक्षिक भ्रमण पर ले जाया जाता है, जहाँ पर छात्र खुले वातावरण में शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों से परिभाषित करते हैं। शैक्षिक भ्रमण के माध्यम से छात्रों में एक अनुभूति जागृत होती है, जिससे वे भारत की विभिन्नताओं जैसे- इतिहास, विज्ञान, शिष्टाचार और प्रकृति को व्यक्तिगत रूप से जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त छात्रों में समूह में रहने की प्रवृति, नायक बनने की क्षमता तथा आत्मविश्वास एवं भाई-चारे की भावना प्रबल होती है।

रोलप्ले सिमुलेशन एक अनुभवात्मक अधिगम विधि है जिसमें या तो शौकिया या पेशेवर भूमिका निभाने वाले (जिसे अंतःक्रियात्मक भी कहा जाता है) शिक्षार्थियों के साथ एक परिदृश्य अनुकरण के हिस्से के रूप में सुधार करते हैं। रोलप्ले को मुख्य रूप से एक सुरक्षित और सहायक वातावरण में प्रथम–व्यक्ति अनुभव बनाने के लिए डिज़ाइन किया जाता है। रोलप्ले को व्यापक रूप से प्रशिक्षण और शिक्षा के कई तरीकों में से एक शक्तिशाली तकनीक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अनुभवात्मक अधिगम शिक्षा का एक दर्शन है जो एक शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच होने वाली प्रक्रिया का वर्णन करता है। छात्र सीखने के माहौल और सामग्री के साथ प्रत्यक्ष अनुभव को ग्रहण करता है। शब्द अनुभवात्मक अधिगम के साथ विनिमेय नहीं है; हालांकि अनुभवात्मक अधिगम एक उप–क्षेत्र है और अनुभवात्मक शिक्षा की पद्धतियों के अंतर्गत संचालित होता है। अनुभवात्मक शिक्षण–अधिगम को "एक दर्शन के रूप में माना जाता है जो कई कार्यप्रणालियों को इंगित करता है जिसमें शिक्षक जानबूझकर प्रत्यक्ष अनुभव में शिक्षार्थियों के साथ संलग्न होते हैं और ज्ञान को बढ़ाने, कौशल विकसित करने, मूल्यों को स्पष्ट करने और उनके विकास हेतु केंद्रित प्रतिबिंब होते हैं।

टिप्पणी

रचनात्मकता शिक्षण की एक ऐसी रणनीति है जिसमें विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान, आस्थाओं और कौशल का इस्तेमाल किया जाता है। रचनात्मक रणनीति के माध्यम से विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान और सूचना के आधार पर नई किस्म की समझ विकसित करता है।

इस शैली पर काम करने वाला शिक्षक प्रश्न उठाता है और विद्यार्थियों के जवाब तलाशने की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है, उन्हें निर्देशित करता है तथा सोचने–समझने के नए तरीकों का सूत्रपात करता है। कच्चे आंकड़ों, प्राथमिक स्रोतों और संवादात्मक सामग्री के साथ काम करते हुए रचनात्मक शैली का शिक्षक, छात्रों को कहता है कि वे अपने जुटाए आंकड़ों पर काम करें और खुद की तलाश को निर्देशित करने का काम करें। धीरे–धीरे छात्र यह समझने लगता है कि शिक्षण दरअसल एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इस किस्म की शैली हर उम्र के छात्रों के लिए कारगर है, यह वयस्कों पर भी काम करती है।

यह शिक्षण की सबसे प्राचीन विधि है। सदियों से शिक्षकों द्वारा शिक्षण कार्य को संपन्न करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता रहा है। व्याख्यान विधि के अंतर्गत शिक्षक पाठ्यवस्तु या विषयवस्तु का गहराई से विश्लेषण कर उसे छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। व्याख्यान शिक्षक की मौखिक अभिव्यक्ति होती है। इसमें शिक्षक विषय तथा उसकी विषयवस्तु पर अधिकार रखता हुआ क्रमबद्ध रूप में अपने ज्ञान को छात्रों के सामने प्रस्तुत करता है। इस विधि में शिक्षक कक्षा शिक्षण की लगभग सभी गतिविधि के आयोजन, संचालन तथा नियंत्रण में प्रमुख भूमिका निभाता है। अतः इसे शिक्षक केंद्रित विधि के रूप में भी जाना जाता है।

कहानी कथन एक महत्वपूर्ण शिक्षण विधि है। यह एक कला या विधा है जो शिक्षक को छात्रों के दिलों के करीब लाती है तथा वह उनका ध्यान आकर्षित करने में सफल रहता है।

कहानी कथन की यह विधा इस उद्देश्य पर आधारित है कि वाणी के माध्यम से घटनाओं का स्पष्ट, विविध, रोचक व क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जाए कि छात्रों का मस्तिष्क इन घटनाओं का पुनर्निर्माण कर सके तथा दर्शक के रूप में अर्जित अनुभवों से वे कल्पनाजगत में विचरण कर सकें। कहानी कथन विधि से शिक्षक को पाठ को छात्रों के लिए रोचक बनाने में मदद मिलती है।

टिप्पणी

महान व्यक्तित्वों, सुधारकों, संतों, लेखकों, खोजकर्ताओं व वैज्ञानिकों आदि की कहानियां छात्रों को सुनाई जानी चाहिए। यह विधि छात्रों में विषय के प्रति रुचि को बढ़ाती है।

शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन को एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत न केवल छात्रों को विषय विशेष सम्बन्धी योग्यता की ही जानकारी दी जाती है बल्कि यह जानने का प्रयास भी किया जाता है कि उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किस सीमा तक हुआ है। शिक्षण, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों आदि की सफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करने में भी मूल्यांकन का सहारा लिया जाता है। अस्तु मूल्यांकन प्रक्रिया एकांगी (One dimensional) न होकर विभिन्न कार्यों की शृंखला (Series of activities) है। उसके अन्तर्गत मात्र एक ही कार्य (act) निहित नहीं होता वरन् अनेक सोपान (steps) सम्मिलित रहते हैं। मूल्यांकन एक निर्णयात्मक एवं व्यापक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विषय–वस्तु की उपयोगिता के विषय में निर्णय लिया जाता है जो कि बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण एवं परिपक्व होता है।

मापन एवं मूल्यांकन का क्षेत्र अतिव्यापक है और शिक्षा के क्षेत्र में जिन मापन एवं मूल्यांकन विधियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें कुछ विद्वान उपकरण (Tools) कहते हैं। कुछ युक्ति (Devices) कहते हैं कुछ विद्वान इन्हें तकनीक (Techniques) और कुछ विधियां (Method) कहते हैं। उपकरण प्रायः हार्डवेयर साधनों को कहते हैं। भौतिक मापों जैसे छात्रों की लम्बाई, भार तथा तापमान (Temperature) को मापने के लिए भौतिक उपकरणों वेट मशीन, मीटर एवं थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है। लेकिन छात्रों की बुद्धि रुचि एवं शैक्षिक उपलब्धियों के मापन के लिए मापन सॉफ्टवेयर अवलोकन एवं परीक्षण आदि का प्रयोग किया जाता है।

वे परीक्षण, जिनका निर्माण विद्यालयों के शिक्षक अपनी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करते हैं, शिक्षक निर्मित परीक्षण कहलाते हैं। इन परीक्षणों की रचना अत्यंत सरल होती है। शिक्षक स्थानीय परिस्थितियों, अपने अनुभवों तथा छात्रों की उपलब्धि स्तर को ध्यान में रखकर इनका निर्माण कर लेते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षण प्रायः प्रश्नों का एक ऐसा समूह होता है, जिसे शिक्षक अपने विवेक से छात्रों की शैक्षिक प्रगति का मापन करने के उद्देश्य से तैयार करते हैं। कभी-कभी शिक्षकों के द्वारा बनाये गये परीक्षणों को दूसरे शिक्षकों से संपादित व संशोधित भी कराया जाता है। यह कार्य परीक्षण की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण में प्रश्नों को बिना किसी मूल्यांकन के परीक्षण में शामिल कर लिया जाता है। इसकी वैधता, विश्वसनीयता तथा मानकों को ज्ञात नहीं किया जाता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण, स्थानीय व तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार किये जाते हैं।

किसी भी लक्ष्य की पूर्ति हेतु संस्था या व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर योजना बनाता है। सरकार द्वारा निर्मित पंचवर्षीय योजनाएं इसका महत्वपूर्ण उदाहरण हो सकती हैं। उसी प्रकार विद्यार्थियों के मूल्यांकन हेतु परीक्षण का निर्माण किया जाता हैं, जिसके अन्तर्गत विभिन्न पक्षों के मापन हेतु प्रश्नों को समुचित स्थान देने हेतु योजना तैयार की जाती है। शिक्षक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन तथा मूल्यांकन के लिए समय–समय पर अनेक प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करते हैं।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **सत्यापित** : प्रमाणित किया हुआ।
- **परिकल्पना** : अनुमान करना, चिंतन, मनन।
- **आरेख** : खाका, डायग्राम।
- **विरल** : जो घना ना हो, पतला, अल्प।
- **प्रज्ञा** : बुद्धि, समझ, विदुषी।
- **अंततोगत्वा** : अंततः।
- **समग्र** : सब, पूरा।
- **प्रतिबद्ध** : बंधा हुआ, जिस पर प्रबिंध हो।
- **अवधारणा** : सुविचारित धारणा, विचार।
- **पलायन** : भागना, चले जाना।
- **आरोपित** : दोष लगाया हुआ, स्थापित किया हुआ।
- **अंतर्ज्ञान** : मन का ज्ञान, बोध।
- **बहिर्मुखता** : बाह्यता, आकार, ऊपरीपन।
- **अग्रसर** : आगे की ओर बढ़ता हुआ।
- **सापेक्षिक** : संबंध में, संबंधित।
- **विचलन** : हटाना, झुकाव।
- **सार्थक** : अर्थपूर्ण, भाववाहक, विचारपूर्ण।
- **अभिप्राय** : आशय।
- **वितरण** : बांटना।

टिप्पणी

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. विद्यालय में विभिन्न स्तरों पर किए जाने वाले सामाजिक अध्ययन शिक्षण के बारे में संक्षेप में बताइए।
3. विद्यालय और समुदाय से संबंधित शिक्षण अधिगम संसाधनों के तीन–तीन उदाहरण दीजिए।
4. कम लागत और शून्य लागत वाले शिक्षण–अधिगम संसाधनों के उदाहरण दीजिए।

5. कहानी कथन विधि की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
6. पर्यटन/भ्रमण विधि की लोकप्रियता के दो कारण बताइए।
7. मापन, आकलन एवं मूल्यांकन में दो–दो अंतर बताइए।
8. निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन के बारे में संक्षेप में बताइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक अध्ययन की अवधारणा तथा विद्यालय स्तर पर इसके शिक्षण का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. विद्यालय और समुदाय से संबंधित शिक्षण–अधिगम संसाधनों की विस्तार से विवेचना कीजिए।
3. विभिन्न शिक्षण विधियों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. 'व्यवहारवादी से रचनावादी दृष्टिकोण की ओर परिवर्तन' से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।
5. मूल्यांकन की अवधारणा, प्रकार, तकनीकों और उपकरणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Bhattachraya, S and Darji. 1996. *Teaching Social Studies Indian School*. Baroda: Acharya Book Depot.

Jarolimiek, John. 1977. *Social Studies in Elementary Education*. New York: Macmillan Publishing Co.

NCERT. 2005. *National Curriculum Framework*. New Delhi.

Sharma, R.A. 2001. *Social Science Teaching*. Meerut: Loyal Book Depot.

Wesley, E. B. 2004. *Teaching Social Studies in Elementary Schools*. Boston: D C Health and Company.

विनईग एंड विनईग, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज इन सेकंडरी स्कूल*, न्यूयॉर्क।

ब्लूम बी.एस., *टेक्सोनोमी ऑफ एजुकेशनल ऑब्जेक्टिव्स*, एम.सी.के. न्यूयॉर्क।

कोचर एस.के., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*, नेथून एंड कं. लिमिटेड, लंदन।

ऑल इण्डिया कॉउंसिल, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*।

शर्मा आर.ए., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*, सूर्या प्रकाशन, मेरठ।

इकाई 3 पाठ्यचर्या निर्माण, शिक्षण के लिए उपकरण, विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 पाठ्यचर्या निर्माण
 3.2.1 पाठ्यचर्या निर्माण एवं नवीनीकरण
 3.2.2 पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धांत
 3.2.3 पाठ्यचर्या निर्माण के दृष्टिकोण : पाठ्यचर्या का आवधिक संशोधन
 3.2.4 सामाजिक अध्ययन की वर्तमान पाठ्यचर्या
3.3 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उपकरण
 3.3.1 प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाएं
 3.3.2 प्रश्न : आवश्यकता, महत्व एवं प्रकार
 3.3.3 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु उपयुक्त मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग
 3.3.4 सहकारी व सहयोगात्मक अधिगम
 3.3.5 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण की रचनात्मक विधियां : समस्या समाधान, मस्तिष्क उद्वेलन
3.4 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण
 3.4.1 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों की पहचान, विशेषताएं और प्रकार
 3.4.2 विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएं एवं समस्याएं
 3.4.3 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों के साथ व्यवहार, कक्षा हेतु रणनीतियां, समनुदेशन
 3.4.4 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु सरकारी योजनाएं और कार्यक्रम
 3.4.5 समावेशन की अवधारणा को प्रोत्साहित करना
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यचर्या विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय में प्रदान किए जाने वाले पाठ्यक्रम और उनकी सामग्री को कहते हैं। पाठ्यचर्या आमतौर पर निर्देशात्मक होती है और उसमें विद्यालय के साथ–साथ विद्यालय के बाहर होने वाली गतिविधियां भी समाहित होती हैं। बॉबिट ने पाठ्यचर्या को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह लोगों के चरित्र का निर्माण करने वाले कार्यों एवं अनुभवों की ठोस वास्तविकता के स्थान पर एक आदर्श है। रचनात्मक अनुभव के तौर पर पाठ्यचर्या की चर्चा जॉन डेवी की कृतियों में भी मिलती है। हालांकि पाठ्यचर्या की मूल समझ के स्तर पर वे बॉबिट से असहमति रखते हैं।

टिप्पणी

प्रस्तुत इकाई में पाठ्यचर्या निर्माण के दृष्टिकोण एवं सिद्धांत, सामाजिक अध्ययन, शिक्षण के उपकरण, विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों के शिक्षण हेतु रणनीतियां तथा समावेशन की अवधारणा आदि तथ्यों का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धांत एवं दृष्टिकोणों को समझ पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन की वर्तमान पाठ्यचर्या के बारे में जान पाएंगे;
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उपकरणों को जान पाएंगे;
- विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों की शिक्षण प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- समावेशन शिक्षण की अवधारणा से अवगत हो पाएंगे;
- सहकारी एवं सहयोगात्मक अधिगम के बारे में जान पाएंगे

3.2 पाठ्यचर्या निर्माण

पाठ्यचर्या शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'कूरेरे' से लिया गया है जो एक 'रेस कोर्स' या रनवे का प्रतीक है, जो एक निर्धारित लक्ष्य की तरफ चलता है। इसलिए, उपर्युक्त अर्थ से, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पाठ्यचर्या एक उपदेश और शिक्षण कार्यक्रम है, जिसके माध्यम से छात्र अपने लक्ष्य, सिद्धांतों और जीवन की आकांक्षाओं को प्राप्त कर सकते हैं। यह पाठ्यचर्या है, जिसके माध्यम से स्कूल शिक्षा के सामान्य उद्देश्य, उनकी वास्तविक अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, अन्य सभी संसाधन जो एक शैक्षणिक संस्थान में उपलब्ध हैं, कहते हैं कि इमारतों, पुस्तकों, ऑनलाइन संसाधनों, विभिन्न शैक्षिक उपकरणों जैसे शिक्षण सामग्री, सभी एकल परिणाम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए हैं, अर्थात पाठ्यचर्या।

अरस्तू ने पाठ्यचर्या पर टिप्पणी की थी, 'जैसा कि चीजें हैं... मानव जाति किसी भी तरह से सिखाए जाने के बारे में सहमत नहीं है...। साधनों के बारे में फिर से कोई समझौता नहीं है।'

यह भ्रम और असहमति आज तक बनी रही है। हम अभी भी पाठ्यचर्या में क्या शामिल करें उसके बारे में उलझन में हैं, यह कैसे संगठित, अनुक्रमित और वितरित किया जाना चाहिए। सभी मौजूदा भ्रम के अलावा, हम व्यापक शब्दों में कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या निम्न के लिए है–

- स्कूल के लिए लिखित रूप में अध्ययन और अन्य संबंधित सामग्री का कोर्स।
- विद्यार्थियों को पढ़ाई जाने वाली विषय सामग्री।
- संस्थान में प्रस्तुत किया जाने वाला पाठ्यक्रम।
- नियोजित सीखने की समग्रता का अनुभव है जो एक विद्यालय छात्रों को प्रदान करता है।

लेखक पीटर एफ ओलिवा (1997) के अनुसार, पाठ्यचर्या की कुछ विशेषताएं निम्न प्रकार हैं–

पाठ्यचर्या में शामिल कहलाता है–

- जो स्कूलों में पढ़ाया जाता है
- विषयों का एक समूह
- सामग्री
- अध्ययन का एक कार्यक्रम
- सामग्री का एक समूह
- पाठ्यचर्यों का एक अनुक्रम
- प्रदर्शन के उद्देश्यों का एक समूह
- अध्ययन का एक पाठ्यचर्या
- स्कूल के भीतर जो सब कुछ चलता है, इसमें अतिरिक्त श्रेणी की गतिविधियां, मार्गदर्शन और पारस्परिक संबंध शामिल हैं
- स्कूलकर्मियों द्वारा योजनाबद्ध सभी चीजें
- स्कूल में शिक्षार्थियों द्वारा किए गए अनुभवों की एक श्रृंखला
- स्कूली शिक्षा के परिणामस्वरूप एक व्यक्तिगत शिक्षार्थी क्या अनुभव करता है?

पाठ्यचर्या को एक विशेष स्तर पर किसी विषय के लिए शामिल विषयों की एक सूची बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, और वह ऐसा कुछ हो सकता है जिसमें "बच्चों को दिया जाने वाला स्कूल और बाहर का कुल अनुभव" शामिल हो सकते हैं। (दिगन्तर, केरल में गतिविधि–आधारित शिक्षण और इसकी उपलब्धियां– डीपीईपी, 2002 में शैक्षणिक व्यवधान का एक अध्ययन) इस विचार को उत्तरी अमेरिकी शिक्षाविद्, प्रोफेसर और लेखक जॉन बॉबिट द्वारा भी समर्थन दिया गया है। जॉन फ्रैंकलिन बॉबिट ने कहा कि पाठ्यचर्या, एक विचार के रूप में, लैटिन शब्द में रेस–कोर्स के लिए इसकी जड़ें थीं। उन्होंने पाठ्यचर्या को कर्मों और अनुभवों की पाठ्यचर्या के रूप में समझाया जिसके माध्यम से बच्चे वयस्क बन जाते हैं ताकि वे वयस्क समाज में सफल हो सकें। इसके अलावा, पाठ्यचर्या में विद्यालय में और बाहर होने वाले प्रारम्भिक कार्य और अनुभव के पूरे दायरे को शामिल किया गया है, न केवल स्कूल में होने वाले ऐसे अनुभव जो अनियोजित और अप्रत्यक्ष हैं, और जानबूझकर समाज के वयस्क सदस्यों के उद्देश्यपूर्ण गठन के लिए निर्देश दिए गए हैं। बॉबिट ने सामाजिक इंजीनियरिंग का हिस्सा होने के पाठ्यचर्या के बारे में बात की।

पाठ्यचर्या में सामाजिक इंजीनियरिंग

पाठ्यचर्या निर्देशनकारी है, और एक अधिक सामान्य पाठ्यचर्या पर आधारित है जो केवल निर्दिष्ट करता है कि कौन से विषयों को समझना चाहिए और किस स्तर पर एक विशेष ग्रेड या मानक प्राप्त करना है।

प्रोफेसर और लेखक क्रिस्टोफर विंच लिखते हैं, 'दुर्भाग्य से, क्या पढ़ाया जाना चाहिए उसकी चर्चा कभी–कभी या तो बहुत व्यापक या बहुत संकीर्ण परिभाषा है जो पाठ्यचर्या का गठन करती है।' इसलिए, उदाहरण के लिए, 'हमने सुना है कि सरकार

टिप्पणी

द्वारा नियुक्त इंस्पेक्टर ने कहा है कि पाठ्यचर्या सब कुछ है जो स्कूल में चलता है', जिससे स्कूल की दीवारों को पाठ्यचर्या की पसंद का प्रश्न चित्रित करके रंगीन किया जाएगा और पाठ्यचर्या सामग्री के एक भाग को खराब किया जाएगा।' इसके विपरीत, एक परिभाषा जैसे कि 'नियोजित, निरंतर और नियमित शिक्षा, जिसे गंभीरता से लिया जाता है, जिसमें एक विशिष्ट और संरचित सामग्री होती है और जो सीखने के कुछ चरणों के माध्यम से आय उपलब्ध होती है' (विल्सन 1977)। कुछ गतिविधियां जो बच्चों को स्कूल में संलग्न करती हैं लेकिन जिन्हें, यकीनन, गंभीरता से नहीं लिया जाता है, उदाहरण के लिए लकड़ी का काम, पाठ्यचर्या का हिस्सा नहीं है। पाठ्यचर्या के विकल्प के प्रश्न को व्याख्या करने का मतलब पाठ्यचर्या और शिक्षा के उद्देश्यों के बीच संबंधों की परिकल्पना करना है। पाठ्यचर्या शैक्षिक उद्देश्यों के कार्यान्वयन की योजना है।

शिक्षा के उद्देश्य से पाठ्यचर्या का संबंध

1975 में भारत में पाठ्यचर्या समिति ने स्कूल से बच्चे को प्रदान किए गए शैक्षिक अनुभवों के जानबूझकर नियोजित समूह की कुल राशि के रूप में पाठ्यचर्या को परिभाषित करने की कोशिश की। ऐसे में, इससे संबंधित है–

- एक विशिष्ट स्तर या कक्षा में शिक्षा के सामान्य उद्देश्य
- विषय–आधारित शिक्षण वस्तुओं और विषय
- अध्ययन और समय आवंटन के पाठ्यचर्या
- शिक्षण–सीखने के अनुभव
- अनुदेशात्मक साधन और सामग्री
- विद्यार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों को सीखने के परिणाम और प्रतिक्रिया का मूल्यांकन।

जब हम दावा करते हैं कि पाठ्यचर्या प्रदान किए गए अनुभवों की कुल राशि है, यह कई महत्वपूर्ण पहलुओं को सूचित करता है। समिति एक और एक ही के रूप में पाठ्यचर्या और पाठ्यचर्या की पहचान करती लगती है। यदि किसी को अधिक गहराई में पाठ्यचर्या की परिभाषा का अध्ययन करना है, तो यह सिर्फ अध्ययन का एक कोर्स नहीं है; यह कोर्स के मुकाबले अध्ययन के पाठ्यचर्या के लिए एक कोर्स से अधिक है। एक सही पाठ्यचर्या में विकल्प अनुमति होनी चाहिए और इन पसंदों का वास्तविक अर्थों में विकल्प होना चाहिए। तो पाठ्यचर्या की बेहतर परिभाषा निम्नलिखित होगी–

'पाठ्यचर्या, शायद, सबसे अच्छा विचार है कि एक विशेष शैक्षिक उद्देश्य को लागू करने के लिए तैयार किए गए योजनाबद्ध गतिविधियों के समूह के रूप में– ऐसे उद्देश्यों का समूह– जो सिखाया जाना चाहिए और ज्ञान, कौशल और व्यवहार की सामग्री के संदर्भ में है जिसे जानबूझकर बढ़ावा दिया जाता है।' (विंच)

व्यापक रूप में परिभाषित, एक पाठ्यचर्या सीखने की सुविधा के लिए एक योजना है। इस योजना को आदर्श रूप से जहां से बच्चा है, से शुरू करना चाहिए, सीखने के विभिन्न आयामों को सूचीबद्ध करना चाहिए जो महत्वपूर्ण है और जो शैक्षिक उद्देश्य को संतुष्ट करता है। चरण विशिष्ट उद्देश्यों को परिभाषित किया जाना चाहिए, निर्दिष्ट सामग्री और शिक्षण और मूल्यांकन तरीकों को स्पष्ट किया गया है।

टिप्पणी

पाठ्यचर्या से दो चीजों का मतलब है– (1) पाठ्यचर्यां की श्रेणी जिसमें छात्र चयन करते है कि कौन सा विषय अध्ययन के लिए मायने रखता है, और (2) एक विशिष्ट शिक्षण कार्यक्रम। उत्तरार्द्ध मामले में, पाठ्यचर्या अध्ययन के दिए गए कोर्स के लिए उपलब्ध शिक्षण, शिक्षा और मूल्यांकन सामग्री का सामूहिक रूप से वर्णन करता है।

यदि हम पाठ्यचर्या की परिभाषा की आगे जांच करते हैं, तो निम्नलिखित बिंदु सामने आते हैं–

- सीखने की प्रक्रिया आयोजित और निर्देशित है। इसका मतलब यह है कि छात्र क्या सीखने जा रहा है और हम इसे कैसे प्राप्त करने जा रहे हैं उसका पहले से आयोजन करना।
- परिभाषा स्कूल से संबंधित है। हम स्कूल के अंदर और बाहर क्या देख रहे हैं।

पाठ्यचर्या का अर्थ और प्रकृति

पाठ्यचर्या को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिकल्पित किया जा सकता है। समाज जिसको महत्वपूर्ण शिक्षण और सीखने के रूप में परिकल्पना करता है, वो 'उद्देश्य' पाठ्यचर्या का निर्माण करता है। चूंकि यह आमतौर पर आधिकारिक दस्तावेजों में प्रस्तुत किया जाता है, इसलिए इसे 'लिखित' और/या 'आधिकारिक' पाठ्यचर्या भी कहा जा सकता है। हालांकि, कक्षा स्तर पर, इस इच्छित पाठ्यचर्या को जटिल कक्षाओं की एक श्रृंखला के माध्यम से बदल दिया जा सकता है, और जो वास्तव में दिया गया है वह 'कार्यान्वित' पाठ्यचर्या के रूप में माना जा सकता है। जो शिक्षार्थियों वास्तव में सीखते हैं (यानी, क्या मूल्यांकन किया जा सकता है और सीखने के परिणाम/सीखने की दक्षता के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है) वो 'प्राप्त' या 'सीखा' पाठ्यचर्या का गठन करता है। इसके अलावा, पाठ्यचर्या सिद्धांत एक 'छिपी' पाठ्यचर्या (जैसे कि व्यक्तिगत मूल्यों का अनसुना विकास और शिक्षार्थियों, शिक्षकों और समुदायों के विश्वासों, एक पाठ्यचर्या के अप्रत्याशित प्रभाव, सीखने की प्रक्रिया के अप्रत्याशित पहलुओं) को इंगित करता है। इच्छित पाठ्यचर्या का विकास करने वाले व्यक्ति को पाठ्यचर्या के इन सभी अलग–अलग आयामों को ध्यान में रखना चाहिए। जबकि 'लिखित' पाठ्यचर्या पाठ्यचर्या के अर्थ को समाप्त नहीं करता है, यह महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समाज के दृष्टिकोण को दर्शाता है। इसलिए 'लिखित' पाठ्यचर्या को व्यापक और उपयोगकर्ता के अनुकूल दस्तावेजों में व्यक्त किया जाना चाहिए, जैसे पाठ्यचर्या के ढांचे; विषय पाठ्यचर्या/पाठ्यचर्या, और संबंधित एवं सहायक सीखने की सामग्रियों में, जैसे पाठ्य पुस्तकों; शिक्षक गाइड्स मूल्यांकन गाइड।

कुछ मामलों में, लोग पूरी तरह से उन विषयों के संदर्भ में देखते हैं जो उन्हें सिखाया जाता है, और पाठ्यपुस्तकों के सेट के रूप में निर्धारित किया जाता है, और दक्षताओं और व्यक्तिगत विकास के व्यापक लक्ष्यों को भूल जाता है। यही कारण है कि पाठ्यचर्या का ढांचा महत्वपूर्ण है। यह विषयों को इस व्यापक संदर्भ के भीतर संग्रह करता है, और यह दर्शाता है कि विषयों के भीतर सीखने के अनुभवों को व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान करने की आवश्यकता है।

इन सभी दस्तावेजों और मुद्दों पर वे 'पाठ्यप्रणाली; बनाने का उल्लेख करते हैं। शिक्षा के एजेंट और हितधारकों, स्पष्ट, प्रेरित और प्रेरक पाठ्यचर्या दस्तावेजों और सामग्री के

टिप्पणी

लिए उनके मार्गदर्शक कार्य को देखते हुए शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पाठ्यचर्याओं के स्वामित्व और स्थायित्व को सुनिश्चित करने के लिए लिखित पाठ्यचर्या के विकास में हितधारकों (शामिल और विशेषकर शिक्षक) की भागीदारी का सर्वोपरि महत्व है।

पाठ्यचर्या की प्रकृति में निम्न शामिल हैं–

- पाठ्यचर्या विशेषज्ञों और अधिकारियों द्वारा निर्धारित है।
- कोई सही पाठ्यचर्या नहीं है।
- पाठ्यचर्या वास्तविक दुनिया को प्रतिबिंबित करना चाहिए, उपयोग में व्यावहारिक होना चाहिए।
- कई पाठ्यचर्या हम सीख और तय कर सकते हैं।

3.2.1 पाठ्यचर्या निर्माण एवं नवीनीकरण

पाठ्यचर्या विकसित करने में, हमें गुणवत्ता सुनिश्चित करने, सामान्य मानकों के साथ अनुरूपता के साथ–साथ एक राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के लिए उपयुक्त तंत्र की आवश्यकता है। वास्तव में पाठ्यचर्या निर्माण के लिए एक वैचारिक संरचना है, इस संरचना को निम्नलिखित की आवश्यकता है–

- जिस सामग्री का चयन किया जाता है इसके आधार पर सिद्धांत
- छात्रों के साथ काम करने के विस्तृत तरीके
- कक्षा संगठन
- वास्तविक शिक्षण सीखने की सामग्री
- चरण विशिष्ट उद्देश्यों, जो अवधारणाओं, कौशल, मूल्यों, दृष्टिकोण आदि को दर्शाएगा, जो विकास के किसी विशेष स्तर के लिए ज्ञान के एक भाग में संगठित किया जा सकता है।

निम्न पाठ्यचर्या के विकास या पाठ्यचर्या ढांचे को दर्शाता है।

(**स्रोत**– पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की स्थिति स्रोत राष्ट्रीय फोकस ग्रुप एनसीईआरटी)

पाठ्यचर्या के विवरण कुछ अभ्यासों को चुनने के लिए शिक्षक को तर्क प्रदान करते हैं। ये व्यवहार शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों से संबंधित हो सकते हैं। इससे शिक्षक और सिद्धांत के बीच संबंध देखने में मदद मिलती है। आमतौर पर, जब शिक्षक विद्यार्थियों के साथ काम करना शुरू करते हैं, तो उनके पास कुछ सामग्री होती है, उनके पास कुछ तरीके होते हैं और यह दिखाने के लिए कुछ संकेतक तैयार करते हैं कि शिक्षा मिल रही है। हालांकि, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिकांश शिक्षक पाठ्यपुस्तक को पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के रूप में देखते हैं और महसूस करते हैं कि उन्हें ये सीखना है और ये सिखाया जाने वाला एकमात्र पाठ्यक्रम है। यह तब एक सीमित गतिविधि बन जाती है जो बच्चे के विकास में योगदान नहीं करता है।

यह समझने की जरूरत है कि पाठ्यपुस्तक–परंपरागत तंत्र इकट्ठा करना और छात्रों को सीखने के लिए आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराने वाला उपकरण है। जैसा कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें स्थिति पत्र, राष्ट्रीय फोकस ग्रुप–एनसीईआरटी,

दो महत्वपूर्ण स्थितियों में वर्णित है, जो शिक्षकों को पुस्तकों से परे रखने के लिए सक्षम हैं–

बच्चों को क्या सिखाना अपेक्षित है।

पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के बीच वैचारिक अंतर के बारे में जागरूकता।

टिप्पणी

पाठ्यचर्या निर्धारक

पाठ्यचर्या निर्धारकों में बड़ी संख्या में मान्यताएं (धारणाएं) शामिल हैं। ये आधारभूत मान्यताएं जिन पर एक पाठ्यचर्या ढांचे का निर्माण होना चाहिए, उन सभी हितधारकों के लिए सुसंगत, स्पष्ट रूप से स्पष्ट और स्वीकार्य होनी चाहिए। इन मान्यताओं को निम्नलिखित चार परस्पर व्यापक समूहों में रखा जा सकता है–

मानव और समाज या सामाजिक–राजनीतिक मान्यताओं के विषय में धारणाएं

ज्ञान मीमांसक धारणाएं

सीखने के बारे में धारणाएं

बच्चे और इसके संदर्भ से संबंधित धारणाएं

• मानव और समाज या सामाजिक–राजनीतिक मान्यताओं के विषय में धारणाएं

मान्यताओं का यह समूह सबसे महत्वपूर्ण है और सभी हितधारकों द्वारा इस पर सहमति होनी चाहिए। इस क्षेत्र में एक विशिष्ट आधारभूत बयान हो सकता है–

शिक्षा को न्याय, समानता, आजादी के आधार पर एक बहुलवादी लोकतांत्रिक समाज पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जब एक पाठ्यचर्या मानव जीवन से जुड़ी एक धारणा को बताती है और एक साथ रह रही है, तो इसे राजनीतिक–नैतिक प्रकृति कहा जाता है।

• ज्ञान मीमांसक धारणाएं

सभी शैक्षिक प्रयासों का मुख्य आधार इसकी विस्तृत समझ और ज्ञान है। इसमें सोच, मूल्यों और कौशल के तरीके को समझना शामिल है। 'ज्ञान के चयन के मुद्दों को सिखाने, उनके आदेश, एकीकृत बनाम विषय–आधारित पाठ्यचर्या, ज्ञान बनाम ज्ञान की क्षमता, बहस, आदि, मुद्दों पर भारी रूप से परम्परागत मानदंडों पर भरोसा है।'

• सीखने के बारे में धारणाएं

ये ऐसे देखता है कि बच्चों को 'बच्चे–केंद्रित शिक्षा', 'गतिविधि आधारित शिक्षा' और 'आनन्दपूर्ण सीख' जैसे कक्षाओं में कैसे सर्वश्रेष्ठ अभ्यास कैसे और ऐसे वाक्यांशों को मुहर लगाना है। इसे पाठ्यचर्या के एक भाग के रूप में स्वीकार किया जाता है।

• बच्चे और इसके संदर्भ से संबंधित धारणाएं

इस धारणा का मुख्य महत्व एक मंच पर तत्काल सामाजिक–सांस्कृतिक पहलू और सीखने का मनोविज्ञान लाने में निहित है। यह हमें 'पाठ्यक्रम ढांचा,' पाठ्यचर्या,' पाठ्यक्रम, 'पाठ्यपुस्तक' और 'शिक्षण–शिक्षा लेनदेन' की परिभाषाओं को समझने में मदद करता है।

पाठ्यचर्या नवीनीकरण

पाठ्यचर्या को समय-समय पर अद्यतन बनाया जाना चाहिए या उसे समय-समय पर अपडेट करते रहना चाहिए। समय के साथ-साथ पाठ्य-वस्तु में परिवर्तन होता रहता है। इसलिए आवश्यक है कि इसका समय-समय पर नवीनीकरण किया जाए। वैसे तो हमारे देश की सभी प्रमुख शिक्षण संस्थायें यह कार्य करती रहती हैं लेकिन ऐसा किया जाना आवश्यक भी है। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो पाठ्यचर्या की प्रासंगिकता समाप्त हो जाएगी तथा वह शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर पाएगी।

स्कूली पाठ्यचर्या के नवीनीकरण के प्रयास को ऐसी शिक्षा–व्यवस्था को स्थापित करने के नीतिगत संदर्भ में रखना चाहिए जो भारतीय समाज की संवैधानिक दृष्टि के अनुकूल मूल्यों व परिवर्तनोमुखी उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हो। शिक्षा बहुत समय से लोगों का सामाजिक बहिष्करण करने के साधन के रूप में भी काम करती रही है, इस तरह से इसने विषमता को खत्म करने व बेहतर समाज–निर्माण के संविधान के उद्देश्यों को प्राप्त करने में बाधा का ही काम किया है। पाठ्यचर्या नवीनीकरण की आवश्यकता इसलिए भी है कि आज भी हमारी शिक्षा–व्यवस्था में शिक्षक को 'सूचना प्रदान करने वाला' और विद्यार्थियों को चारदीवारी से घिरे बंद कक्ष में, चुपचाप बिना किसी प्रतिक्रिया के उन सूचनाओं को प्राप्त करने वाले के रूप में ही देखा जा रहा है।

हमारी शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है, इसके द्वारा बच्चों पर लादा गया बोझ। यह बोझ पाठ्यचर्या की असंबद्ध संरचना का परिणाम तो है ही जिसे बच्चों के जीवन और उनकी संस्कृति से कोई मतलब नहीं होता, परंतु साथ ही यह शिक्षक की अपर्याप्त तैयारी का भी परिणाम है। वे बच्चों से ठीक से नहीं जुड़ पाते हैं और न ही बच्चों की जरूरत के अनुसार अपनी तरफ से रचनात्मक एवं जरूरी पहल करते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था में जहां बच्चे को पर्याप्त जगह देने की बात स्वीकार की जा रही है, वहीं शिक्षकों को अभी भी उचित जगह नहीं दी जा रही है। उन्हें ज्ञान उत्पन्न करने और सोचने वाले पेशेवर के रूप में देखा जाना जरूरी है। उनका सबलीकरण इस हद तक तो जरूरी है कि वे बच्चे के द्वारा घर व परिवेश में सीखे गए अनुभवों को पहचान तथा महत्त्व दे सकें और तदनुसार उसे खोजने, सीखने व विकसित होने का अवसर प्रदान कर सकें।

शिक्षा नीतियों के सन्दर्भ में शिक्षा पर पिछली नीतियों का जोर मुख्य रूप से शिक्षा तक पहुंच के मुद्दों पर था। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, जिसे (NPE 1986/92) में संशोधित किया गया था, के अधूरे काम को नयी शिक्षा नीति 2020 के द्वारा पूरा करने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है। 1986/92 की पिछली नीति के बाद से एक बड़ा कदम निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 रहा है जिसने सार्वभौमिक शिक्षा सुलभ कराने हेतु कानूनी आधार उपलब्ध करवाया।

नई नीतियों और उद्देश्यों के अनुरूप पाठ्यचर्या के नवीनीकरण में इसकी रूपरेखा का परिचय, पाश्चवलोकन, मार्गदर्शक सिद्धांत, गुणवत्ता के आयाम, शिक्षा का सामाजिक संदर्भ तथा शिक्षा का लक्ष्य जैसे महत्वपूर्ण विषयों के समावेश के साथ ही गुणवत्ता को लेकर सरोकार, पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक – शिक्षा, परीक्षा सुधार, बाल केंद्रित शिक्षा विचार और व्यवहार में नवाचार तथा नई साझेदारी जैसे विषयों का समावेशन महत्वपूर्ण है।

आज की दुनिया बहुत तेजी से घटित हो रहे विकास और परिवर्तनों को देख रही है और उन पर त्वरित ध्यान देने की मांग करती है। ये सब तत्व पाठ्यचर्या में शामिल होने के लिए दस या बारह वर्ष के सामान्य पाठ्यचर्या विकासचक्र की प्रतीक्षा नहीं करेंगे। प्रत्येक शिक्षार्थी को इस गतिशील सीखने वाले समाज से ज्ञान और विषय के उन विभिन्न क्षेत्रों से परिचित होना होगा जो भूमंडलीय सन्दर्भ में सीखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसलिए शिक्षार्थियों के ज्ञान–आधार को अद्यतन बनाये रखने के लिए हर दो तीन वर्षों में नियमित पाठ्यवस्तुओं में थोड़ा–बहुत नया ज्ञान जोड़ना होगा। उसी के साथ वर्तमान पाठ्यचर्या में जो हिस्सा अनावश्यक हो गया है उसे भी सावधानीपूर्वक हटाना होगा ताकि इस प्रकार के कार्य अतिरिक्त पाठ्यवस्तु के परिणामस्वरूप छात्रों पर बोझ न बनें।

अग्रणी पाठ्यचर्या में कुछ क्षेत्र तुरंत शामिल करने योग्य होंगे, जैसे– संचार प्रणाली में नवीनतम विकास, अंतरिक्ष–प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, अनुवांशिक तंत्र विज्ञान, स्वास्थ्य के नए मुद्दे, ऊर्जा और पर्यावरण, विश्व भूगोल, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, पुरातत्वीय खोज आदि।

प्रारम्भ में तो शिक्षकों को भी छात्रों के साथ सह–शिक्षार्थी बनाना होगा क्योकि यह पाठ्यक्रम उनके लिए भी उतना ही नया होगा जितना छात्रों के लिए होगा। धीरे–धीरे उन्नत पाठ्यचर्या से ज्ञान अर्जित करने के लिए छात्र स्व–शिक्षण, आत्म–निर्देशित शिक्षण आदि की आदत अपने अंदर विकसित करेंगे और नई पाठ्यचर्या का भरपूर लाभ उठा पाएंगे।

3.2.2 पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धांत

पाठ्यचर्या का निर्माण शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार किया जाता है। जैसा उद्देश्य होता है उसे प्राप्त करने के लिए वैसा ही पाठ्यक्रम निर्मित किया जाता है। शिक्षा का उद्देश्य जीवन के उद्देश्य पर आधारित होता है और जीवन का उद्देश्य अपने समय के दर्शन पर आधारित होता है। अतः शिक्षा के उद्देश्य का निर्माण जीवन के उद्देश्य अथवा जीवन के दर्शन के अनुसार किया जाता है।

जीवन के उद्देश्य अपने समय के दर्शन के अनुसार बदलते रहते हैं, इसलिए जब कभी जो कुछ भी जीवन का उद्देश्य होता है वही शिक्षा का भी उद्देश्य बन जाता है और उसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यचर्या की रचना कर दी जाती है। दूसरे शब्दों में जैसे–जैसे जीवन के उद्देश्यों में परिवर्तन होता जाता है, वैसे–वैसे शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं और उन्हीं बदलते हुए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम भी बदलता रहता है। अतः कहा जा सकता है कि पाठ्यचर्या का सृजन जीवन दर्शन के अनुसार होता है।

आधुनिक युग में पाठ्यचर्या पर दर्शन के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक के साथ–साथ सामाजिक प्रवृत्तियों का प्रभाव भी पड़ रहा है। इस प्रकार पाठ्यचर्या निर्माण के प्रमुख आधार हैं– (1) प्रकृतिवादी, (2) आदर्शवादी, (3) प्रयोजनवादी, (4) यथार्थवादी, (5) मनोवैज्ञानिक, (6) वैज्ञानिक और (7) सामाजिक प्रवृत्तियां। इन सभी विचाराधाराओं के अनुसार पाठ्यचर्या के उद्देश्य भी परिवर्तित होते रहते हैं।

पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धांत

पाठ्यचर्या संबंधी विविध आधारों का पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धांतों से घनिष्ठ संबंध होता है। ये सिद्धांत अग्रलिखित हैं–

1. **बाल–केंद्रीयता का सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्या बाल केंद्रित होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों, योग्यताओं तथा बुद्धि एवं आयु आदि का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
2. **जीवन से संबंधित होने का सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय उन्हीं विषयों को स्थान देना चाहिए जिनका बालक के जीवन से सीधा संबंध हो ताकि आगामी जीवन को पाठ्यचर्या के आधार पर जीवन उपयोगी बनाया जा सके।
3. **रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्या में उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए जो बालक की रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्तियों का विकास कर सकें। रेमान्ट का कथन है, "जो पाठ्यचर्या वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है, उसमें निश्चित रूप से रचनात्मक विषयों के प्रति निश्चित सुझाव होना चाहिए।"
4. **खेल और कार्य की क्रियाओं के अंतर का सिद्धांत** : इसके अनुसार पाठ्यचर्या तैयार करते समय ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं को इतना रुचिकर बनाने का प्रयास करना चाहिए कि बालक ज्ञान को खेल समझ कर प्रभावशाली ढंग से ग्रहण कर सके। क्रो और क्रो का कथन है – "जो लोग सीखने की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनाएं कि खेल के दृष्टिकोण को स्थान प्राप्त हो।"
5. **संस्कृति तथा सभ्यता के ज्ञान का सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्या में उन क्रियाओं एवं विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनके द्वारा छात्रों को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान हो जाए एवं छात्र पाठ्यचर्या के माध्यम से अपनी संस्कृति व सभ्यता के विकास में सहायक हो सकें।
6. **अनुभवों की पूर्णता का सिद्धांत** : पाठ्यचर्या के अंतर्गत मानव जाति के अनुभवों की संपूर्णता निहित होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, पाठ्यचर्या के अंतर्गत सैद्धांतिक विषयों के साथ–साथ मानव जाति के उन सभी अनुभवों को उचित स्थान मिलना चाहिए जिन्हें बालक स्कूल में, खेल के मैदान में, कक्षा में,

   पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में तथा शिक्षकों के सम्पर्क में रहकर सीखता रहता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "पाठ्यचर्या का अर्थ केवल सैद्धांतिक विषयों से ही नहीं लिया जाता, वरन् उसमें अनुभवों की संपूर्णता निहित होती है।"

7. **स्वरूप–आचरण के आदर्शों की प्राप्ति सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्या में उन क्रियाओं, वस्तुओं या विषयों को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालक दूसरों के साथ प्रशंसनीय व्यवहार करना सीख सके। क्रो और क्रो के अनुसार, "पाठ्यचर्या का निर्माण इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे वह बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति में सहायता कर सके।"
8. **उपयोगिता का सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्या में उन क्रियाओं या विषयों को स्थान मिलना चाहिए जो बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी हों। अतः जो क्रियाएं तथा विषय बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी नहीं हैं, उन्हें पाठ्यचर्या में सम्मिलित नहीं करना चाहिए।
9. **सुरक्षित भविष्य का सिद्धांत** : पाठ्यचर्या के निर्माण में उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालक को उसके भावी जीवन में आने वाली परिस्थितियों का ज्ञान हो जाए ताकि छात्र उनके अनुसार अपने को उसमें समायोजित कर सकें। दूसरे शब्दों में, सीखा हुआ ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो बालक को अनुकूलन तथा आवश्यकता पड़ने पर परिस्थितियों में परिवर्तन के योग्य भी बना सके।
10. **विविधता तथा लचीलेपन का सिद्धांत** : प्रत्येक बालक की रुचियां, आवश्यकताएं, योग्यताएं तथा मनोवृत्तियां एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इस विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए पाठ्यचर्या में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा आयोग का कहना है, "पाठ्यचर्या की रचना करते समय शिक्षक को विविधता तथा लचीलेपन का ध्यान रखना चाहिए जिससे कि छात्रों की वैयक्तिक विभिन्नताओं, वैयक्तिक आवश्यकताओं एवं रुचियों के साथ अनुकूलन किया जा सके।"
11. **अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत** : वर्तमान युग में शिक्षक के लिए अवकाश काल का सदुपयोग करना एक गम्भीर चुनौती है। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम इतना व्यापक होना चाहिए कि जहां एक ओर शिक्षक बालकों को कार्य करने की प्रेरणा दे वहीं दूसरी ओर वह उनमें ऐसी क्षमताएं भी उत्पन्न करें कि वे अपने खाली समय का सदुपयोग करना सीख जाएं।
12. **जीवन संबंधी समस्त क्रियाओं के समावेश का सिद्धांत** : स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य जीवन को पूर्णता प्रदान करना है। अतः पाठ्यचर्या निर्माण में जीवन से संबंधित उन सभी क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक सभी प्रकार का समुचित विकास किया जा सके।
13. **सामुदायिक जीवन से संबंध का सिद्धांत** : पाठ्यचर्या का निर्माण स्थानीय आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए जिससे उसमें उन सभी सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं तथा समस्याओं को स्थान मिल सके जिनसे बालक सामुदायिक जीवन के मुख्य तथ्यों से परिचित

हो जाए। इस संबंध में माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "पाठ्यचर्या सामुदायिक जीवन से सजीव तथा आंगिक रूप से संबंधित होनी चाहिए।"

14. **जनतंत्रीय भावना के विकास का सिद्धांत** : भारत में शासन की जनतंत्र प्रणाली को स्वीकार किया है। इसके अनुसार पाठ्यचर्या में ऐसी क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालकों में जनतंत्रीय भावनाओं एवं दृष्टिकोण का विकास हो जाए।

15. **सह–संबंध का सिद्धांत** : पाठ्यचर्या को अलग–अलग विषयों में विभाजित करने से उसका महत्व एवं प्रभाव कम हो जाता है। इसलिए पाठ्यचर्या के विषयों में सहसंबंध स्थापित किया जाना चाहिए ताकि बालक ज्ञान के समग्र रूप से परिचित होकर विभिन्न परिस्थितियों में आगे बढ़ना सीख जाए। अतः सभी विषय एक दूसरे से संबंधित होने चाहिए।

3.2.3 पाठ्यचर्या निर्माण के दृष्टिकोण : पाठ्यचर्या का आवधिक संशोधन

शिक्षाविद्ों एवं विद्वानों का मानना है कि सामाजिक अध्ययन को पढ़ने के बाद मानव में सामाजिक कुशलता एवं सहयोग की भावना उत्पन्न होती है। जब स्कूली स्तर पर छात्रों को सामाजिक अध्ययन का ज्ञान दिया जाता है तो उनमें सामाजिक गुणों का विकास होता है तथा उनमें सामाजिक आदर्श की भावना विकसित होती है। चरित्र निर्माण के लिये ऐसा होना आवश्यक है। स्कूल की पाठ्यचर्या में सामाजिक अध्ययन की स्थिति निम्नलिखित दृष्टिकोणों पर आधारित है :

1. शैक्षिक दृष्टिकोण
2. सामाजिक दृष्टिकोण
3. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण।

1. शैक्षिक दृष्टिकोण

मनोविज्ञान विषय के अनुसार, हमारे मस्तिष्क में कल्पना, निर्णय, तर्क, स्मरण, चिंतन आदि शक्तियां पायी जाती हैं। मनोविज्ञान का मानना है कि विभिन्न शक्तियों द्वारा विभिन्न शक्तियों का विकास किया जा सकता है। किसी विशेष शक्ति को विकसित करने के लिये किसी विशेष विषय का अध्ययन किया जाता है।

प्रशिक्षण के माध्यम से मस्तिष्क की शक्ति का विकास होता है, जिसे मानसिक शक्ति के नाम से जाना जाता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा छात्रों में तार्किक तथा निर्णयन क्षमता का विकास होता है।

सामाजिक अध्ययन की पाठ्य-सामग्री अखंड होती है, जो अधिगम की प्रक्रिया के लिये आवश्यक है। अधिगम या सीखने की प्रक्रिया एक संपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके लिये सभी चरणों का होना अनिवार्य है। इसे उचित एवं व्यवस्थित रूप में प्रदान किया जाना चाहिये। वैसे इस प्रक्रिया को सरलता से सीखा जा सकता है। इस सिद्धांत को सामाजिक अध्ययन में उपयोग किया जा सकता है।

इस संबंध में सिरिल बर्ट का मानना है कि ''सामाजिक अध्ययन वह विषय है, जो शिक्षा का उचित तरीके से स्थानांतरण करता है। सामाजिक अध्ययन वह विषय है, जो

छात्रों को तर्क, चिंतन, स्मरण, निर्णयन तथा कल्पना शक्ति के विकास का अवसर प्रदान करता हैं।''

समन्वय के सिद्धांत के आधार पर सामाजिक अध्ययन को पाठ्यचर्या में उचित स्थान प्रदान किया गया है। इसके अंतर्गत सभी सामाजिक तत्वों का समन्वयन किया जाता है। उपरोक्त पक्षों के आधार पर सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या में स्थान दिया जा रहा है।

2. सामाजिक दृष्टिकोण

आज सभी शिक्षाशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षक, मनोवैज्ञानिक तथा विद्वान इस बात पर एकमत हैं कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षा अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा ही द्वंद्व, विद्वेष तथा भेदभावों को समाप्त किया जा सकता है। विश्व में युद्धों की संभावना तथा व्याप्त अंतर्राष्ट्रीय तनाव को तभी दूर किया जा सकता है, जब लोगों के आपसी संबंध अच्छे होंगे तथा उनके बीच सौहार्द का वातावरण व्याप्त होगा। इस संबंध में प्रसिद्ध विद्वान ड्यूवी का कहना है कि ''शिक्षा का विकास सामाजिक चेतना के द्वारा ही किया जा सकता है। इससे यह प्रतीत होता है कि सामाजिक अध्ययन को पाठ्यचर्या में इसी सामाजिकता की भावना से स्थान प्रदान किया गया है।''

सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना है। यह कार्य समाज के भीतर रहकर ही किया जा सकता है। इसलिये व्यक्ति का समाज में रहना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन छात्रों को अपनी जीवन क्रियाओं के जांचने-परखने में भी सहायता प्रदान करता है। जब छात्र अध्ययन करेंगे, तभी उनमें विभिन्न व्यवसायों तथा उनकी योग्यताओं का ज्ञान हो पायेगा तथा इसी से छात्रों की रुचि का निर्धारण होगा।

सामाजिक अध्ययन के माध्यम से छात्रों में विभिन्न प्रकार की रुचियों का निर्धारण किया जा सकता है। ये रुचियां अवकाश के समय अत्यंत उपयोगी होती हैं। इन विभिन्न प्रकार के मूल्यों की वजह से ही सामाजिक अध्ययन को स्कूल के पाठ्यचर्या में स्थान दिया गया है।

3. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि छात्र के व्यक्तित्व निर्माण में वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बुद्धि-लब्धि के सिद्धांत के अनुसार, अनुकूल वातावरण के माध्यम से बुद्धि का विकास किया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन का पठन-पाठन छात्रों को अच्छे एवं बुरे का ज्ञान प्रदान करता है। यह छात्रों को उनकी आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुसार, वातावरण के निर्माण का अवसर भी प्रदान करता है।

इसकी सहायता से छात्र ऐसे वातावरण का चुनाव कर सकता है, जो उसकी रुचि के अनुकूल हो तथा उसके लिये लाभदायक हो। इस संबंध में जॉन ड्यूवी का कहना है कि ''शिक्षा ही जीवन है। जब शिक्षा जीवन है तो छात्र अपने वातावरण की ठोस परिस्थितियों से प्राप्त अनुभव द्वारा बहुत कुछ तथा बहुत आसानी से सीख सकता है।''

छात्र अपने दैनिक जीवन के माध्यम से कई प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता है। सामाजिक अध्ययन दैनिक जीवन की परिस्थितियों की समझ प्रदान करता है। इस समझ के लिये सामाजिक अध्ययन का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है।

टिप्पणी

यही वजह है कि सामाजिक अध्ययन के प्रति जो उपरोक्त दृष्टिकोण है, उसके कारण उसे स्कूली शिक्षा की पाठ्यचर्या में उचित स्थान प्रदान किया गया है।

पाठ्यचर्या का आवधिक संशोधन

पाठ्यचर्या को संशोधित करने की प्रक्रिया में उसकी विशेषताओं एवं कमजोरियों को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिये, जिससे पाठ्यचर्या को संशोधित करने के उपरांत उसे पूर्ण रूप से उपयोगी एवं प्रासंगिक बनाया जा सके। पाठ्यचर्या का संशोधन एक निश्चित समय अंतराल पर होने वाली प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य विद्यालय के शैक्षणिक लक्ष्यों को प्राप्त करना तथा छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना होता है।

पाठ्यचर्या को संशोधित करने के कारण

पाठ्यचर्या को संशोधित करने के निम्न कारण हो सकते हैं :

1. **नये पाठ्यचर्या का विकास :** एक नये पाठ्यचर्या का विकास करने के लिये वर्तमान पाठ्यचर्या में संशोधन की आवश्यकता हो सकती है। इसका कारण शिक्षा मंत्रालय का कोई आदेश या अन्य कुछ हो सकता है।
2. **लागू करने के उपरांत प्राप्त फीडबैक :** कई बार ऐसा होता है कि किसी पाठ्यचर्या को लागू करने के उपरांत यह फीडबैक प्राप्त होता है कि वह वर्तमान उद्देश्यों को पूर्ण नहीं करती है, इस वजह से पाठ्यचर्या में संशोधन की आवश्यकता हो सकती है।
3. **अनावश्यक पाठ्य-सामग्री को हटाना :** कई बार पाठ्यचर्या में अनावश्यक पाठ्य-सामग्री होती है, जिसकी वजह से उसमें संशोधन की आवश्यकता होती है।
4. **ज्यादा प्रभावी बनाना :** कई बार पाठ्यक्रम अच्छा तो होता है लेकिन उतना प्रभावी नहीं होता है। इसके कारण उसमें संशोधन की आवश्यकता होती है।

पाठ्यचर्या को संशोधित करते समय ध्यान रखने योग्य बातें-

पाठ्यचर्या संशोधन एक संतोषजनक अनुभव हो सकता है, बशर्ते हम भागीदारी, संसाधन और हितधारक की अपेक्षाओं को ध्यान में रखें। एक पाठ्यचर्या संशोधन एक अनुभव को पुरस्कृत करना हो सकता है। पाठ्यचर्या का संशोधन या रिवीजन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

1. **संकाय की भागीदारी:** कार्यक्रम की फैकल्टी (संकाय) के पास कार्यक्रम के संबंध में बहुमूल्य जानकारी है। उदाहरण के लिए, वे कार्यक्रम में छात्रों के प्रकार और उनकी सीखने की क्षमताओं को जानते हैं। संकाय भी पाठ्यचर्या सामग्री को जानते हैं और कई मामलों में, पाठ्यचर्या की कमजोरियों से भी परिचित होते हैं। पाठ्यचर्या संशोधन की प्रक्रिया में उनका योगदान बहुत मूल्यवान होता है, लेकिन उनमें से कई परिवर्तन का विरोध भी कर सकते हैं, विशेषरूप से जब उन्हें लगता है कि ऐसा करने से 'उनकी पाठ्यचर्या' को खतरा है। फैकल्टी को पाठ्यचर्या संशोधन प्रक्रिया से बाहर करना प्रस्तावित परिवर्तनों के विरोध को आमंत्रित करता है।

2. **विचार करें कि परिवर्तन क्यों आवश्यक है:** ऐसे कई कारण हैं जिनकी वजह से एक पाठ्यचर्या को संशोधित करने की आवश्यकता हो सकती है। संसाधनों में परिवर्तन, कवर की गई सामग्री में परिवर्तन और संकाय में परिवर्तन पाठ्यचर्या को संशोधित करने की आवश्यकता के कुछ कारण हैं।

   हालांकि, पाठ्यचर्या में बदलाव के अलावा अन्य परिवर्तनों पर भी बराबर ध्यान दिया जाना चाहिए, जो एक कार्यक्रम के भीतर समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए डेटा एकत्र करना महत्वपूर्ण है, जो परिवर्तन की आवश्यकता को निर्धारित करता है। इस डेटा का उपयोग करके पाठ्यचर्या को फिर से तैयार किया जा सकता है तथा ऐसा अन्य पाठ्यक्रमों के बारे में भी हो सकता है।

3. **एक योजना बनाएं:** जब पाठ्यचर्या संशोधन पर विचार करने का निर्णय लिया गया है, तो एक योजना तैयार की जानी चाहिए और संशोधन के लक्ष्यों को बताया जाना चाहिए। पहला कदम यह तय करना है कि संशोधन की देखरेख कौन करेगा। जानकारी एकत्र करने के लिए एक समिति का होना भी आवश्यक है। सर्वेक्षणों को डिजाइन करना, उनका वितरण करना, अन्य पाठ्यचर्या के संबंध में सुझाए गए परिवर्तनों की समीक्षा करना और संशोधन प्रक्रिया शुरू करने के लिए डेटा का उपयोग करना महत्वपूर्ण गतिविधियां हैं। एक बार एक कार्यक्रम को संशोधित करने का निर्णय लेने के बाद, संशोधन के लक्ष्यों के रूप में एक समझौता निर्धारित किया जाना चाहिए। यह निर्णयों से संबंधित हो सकता है, पाठ्यचर्या में घंटों की संख्या को कम करने के लिए, पाठ्यचर्या में अन्य प्रकार की विषय-वस्तु को शामिल करना, अप्रासंगिक पाठ्यचर्या को समाप्त करना और पाठ्यचर्या की सामग्री को अद्यतन करना आदि प्रमुख उपाय हो सकते हैं।

4. **प्रत्यायन एजेंसियों और सरकार की आवश्यकताओं पर विचार करें:** किसी पाठ्यचर्या को संशोधित करते समय, प्रत्यायन एजेंसियों (accrediting agencies) द्वारा प्रदान किए गए दिशा-निर्देशों पर भी अवश्य विचार किया जाना चाहिए। 'प्रत्यायन के सिद्धांत: गुणवत्ता वृद्धि के लिए नींव' जिसे सरकार ने निर्धारित किया है, उसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह कभी-कभी पाठ्यचर्या संशोधन टीम के लिए विषयों के व्यापक शीर्षों को बनाए रखना अनिवार्य बना होता है। उन्हें सामग्री में कम किया जा सकता है या सामग्री में जोड़ा जा सकता है लेकिन निर्दिष्ट सामग्री को शामिल करना अनिवार्य हो सकता है।

5. **हितधारकों पर विचार करें:** हितधारक एक कार्यक्रम की आवश्यकताओं के संबंध में जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। छात्रों, पूर्व छात्रों, शिक्षकों और नियोक्ताओं को कार्यक्रम की जरूरतों में अपनी अंतर्दृष्टि प्रदान करने की अनुमति दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी विशेष कार्यक्रम के सर्वेक्षण परिणामों में पूर्व छात्रों और संकाय से यह प्रतिपुष्टि या फीडबैक प्राप्त होता है कि एक विशेष पाठ्यचर्या में एक पहलू पर बहुत अधिक सामग्री है और दूसरे महत्वपूर्ण पहलू पर पर्याप्त सामग्री नहीं है। इस कमजोरी का परिणाम पाठ्यचर्या का संशोधन न होना था; हालांकि, ऐसा होने पर पूरे पाठ्यचर्या को संशोधित करने की आवश्यकता नहीं होती है।

6. **विचार करें कि अन्य कार्यक्रम क्या कर रहे हैं:** सहकर्मी कार्यक्रमों, प्रतियोगी कार्यक्रमों और इच्छुक कार्यक्रमों का बेंचमार्किंग अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। एकत्र की गई जानकारी को चर्चा के लिए शुरुआती बिंदु के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिलती है कि संशोधन अलग-अलग नहीं किया गया है और राज्य या देश में चल रहे समान कार्यक्रमों के लिए प्रासंगिक है।
7. **उपलब्ध संसाधनों पर विचार करें:** पाठ्यचर्या को संशोधित करते समय, संशोधित कार्यक्रम के लिए संसाधनों की उपलब्धता की समीक्षा करना महत्वपूर्ण है। इन संसाधनों में संकाय, वित्त, प्रौद्योगिकी संसाधन आदि शामिल हो सकते हैं।
8. **सीखने के लक्ष्यों के आश्वासन पर विचार करें:** कार्यक्रम के लिए सीखने के लक्ष्यों को संबोधित करना महत्वपूर्ण है। परिवर्तन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए एक स्पष्ट योजना विकसित करना आवश्यक है। पाठ्यक्रम के सार को विकसित करने, निगरानी करने, मूल्यांकन करने और संशोधित करने के लिए व्यवस्थित प्रक्रियाएं होनी चाहिए। सीखने के परिणामों और उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए। संशोधित पाठ्यचर्यां के भीतर सीखने के लक्ष्यों और मापन का आश्वासन देना भी आवश्यक है।
9. **समझौता करने पर विचार करें:** संकाय के प्रत्येक सदस्य के पास आदर्श कार्यक्रम की अपनी अवधारणा होगी। दुर्भाग्य से, इनमें से प्रत्येक अवधारणा अलग है। पाठ्यचर्या संशोधन को सफल बनाने के लिए, कई समझौते करने होंगे। सभी सदस्यों को समझौता करना होगा और अंततः यह तय करना होगा कि प्रश्न में पाठ्यचर्या के लिए और विशेष रूप से प्रभावित छात्रों के लिए सबसे अच्छा क्या है।
10. **समयानुसार परिवर्तन अपरिहार्य होता है :** परिवर्तन आज किसी भी प्रयास की एकमात्र निरंतर विशेषता बन गया है और हमारे लिए यह याद रखना अच्छा होगा कि संशोधन के बावजूद, परिवर्तन की आवश्यकता अभी भी उत्पन्न हो सकती है और हमें इसकी आवश्यकता है उसके लिए तैयार रहना है।

    इन बातों को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यचर्या का संशोधन किया जाना एक पुरस्कृत और उत्पादक प्रयास हो सकता है। एक नया पाठ्यचर्या एक कार्यक्रम की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है। पाठ्यचर्या में परिवर्तन से संकाय में अतिरिक्त उत्साह आ सकता है और एक नया दृष्टिकोण हितधारकों की जरूरतों को पूरा कर सकता है।

3.2.4 सामाजिक अध्ययन की वर्तमान पाठ्यचर्या

सामाजिक अध्ययन वह विषय है, जिसके अंतर्गत सामाजिक गतिविधियों तथा सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। यह विषय का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तथा इसके अंतर्गत विभिन्न तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से छात्रों को उनके कर्तव्यों एवं अधिकारों के बारे में परिचित कराया जाता है। इसके अतिरिक्त यह विषय छात्रों को यह बताता है कि वे एक सामाजिक प्राणी हैं तथा समाज का अभिन्न अंग है। इसके कारण उनके कई दायित्व भी होते हैं।

सामाजिक अध्ययन स्कूली शिक्षा की पाठ्यचर्या में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भारत के सभी स्कूलों में सामाजिक अध्ययन को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में छात्रों को पढ़ाया जाता है। आज इसे स्कूली शिक्षा की पाठ्यचर्या में एक अनिवार्य विषय के रूप में स्थान दिया जा चुका है। इसका श्रेय माध्यमिक शिक्षा आयोग को दिया जा सकता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने ही स्कूलों में सामाजिक अध्ययन के स्वरूप का निर्धारण किया है। इसके बारे में आयोग का कहना है कि ''भूगोल, अर्थशास्त्र, इतिहास, नागरिक शास्त्र आदि को एक पूर्ण इकाई के रूप में देखा जाना चाहिये। आज हम इसकी महत्ता को नकार नहीं सकते हैं। इस विषय का अध्ययन देश के स्कूली छात्रों के लिये अत्यंत आवश्यक है।''

इस एकीकृत विषय की सामग्री ऐसी होनी चाहिये, जिसके अंतर्गत छात्रों को सामाजिक पर्यावरण के अंतर्गत परिवार, समाज, राज्य तथा राष्ट्र के पर्यावरणों का स्थान प्राप्त हो, जिससे छात्र उन सामाजिक शक्तियों तथा आंदोलनों से परिचित हो सकें, जिसमें वे निवास करते हैं। वर्तमान समय में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों से मानवीय संबंधों में जटिलता आ रही है। इन सभी के ज्ञान एवं हल हेतु सामाजिक अध्ययन विषय का अध्ययन किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

समाज की जटिलता को समझने तथा समाज को व्यवस्थित करके सुचारू रूप से संचालित करने के लिये इस विषय का ज्ञान होना आवश्यक है। आज देश में जहां वैज्ञानिक प्रगति हो रही है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न सामाजिक समस्याओं का भी प्रकोप बना हुआ है। इसमें जातिवाद, भाषावाद, आतंकवाद, सांप्रदायिकता आदि प्रमुख हैं। इन बुराइयों से समाज को सुरक्षित रखने के लिये देश की शिक्षा प्रणाली में ऐसे विषय का समावेश किया जाना आवश्यक है, जो वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ सामाजिक सामंजस्य भी कर सके।

यदि हम पाठ्यचर्या के शाब्दिक अर्थ पर विचार करें तो हमें ज्ञात होता है कि पाठ्यचर्या एक मार्ग है, जिस पर चलकर बालक अपने शिक्षा प्राप्त करने के लक्ष्य को पूर्ण करते हैं। दूसरे शब्दों में, शिक्षा एक गाड़ी के समान है, जो पाठ्यचर्या के मार्ग पर दौड़ती है और इसके द्वारा बच्चे का सर्वांगीण विकास करने का लक्ष्य प्राप्त किया जाता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि ''पाठ्यचर्या दौड़ का एक ऐसा मैदान अथवा साधन है, जिसके द्वारा छात्र के जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।''

इसका ध्येय बालक का सर्वांगीण विकास करना एवं बालक को इस योग्य बनाना होता है कि वह अपने साथ-साथ अपने समाज, समुदाय व देश का भी विकास व उद्धार कर सके।

कुछ विद्वानों ने तो पाठ्यचर्या को शिक्षा एवं विद्यालय का दर्शनशास्त्र भी कहा है। इसके इस महत्व को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि इसका नियोजन वैज्ञानिक रीति से किया जाए। ऐसा होने पर ही विद्यालय का कार्य सुचारु रुप से चल सकता है। पाठ्यचर्या शिक्षण की निपुणता उसके उद्देश्यों और सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उसकी उपयुक्तता निर्धारित करता है।

परिभाषायें

विभिन्न विद्वानों ने पाठ्यचर्या को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :

- कनिंघम : पाठ्यचर्या शिक्षक के हाथ में एक साधन है, जिससे वह अपनी सामग्री को अपने आदर्श के अनुसार अपनी चित्रशाला में ढाल सके।
- फ्रोबेल : पाठ्यचर्या में वे समस्त अनुभव निहित हैं, जिनको विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है।
- मुनरो : पाठ्यचर्या में वे सभी क्रियाएं आती हैं, जो स्कूल में विद्यार्थियों को दी जाती हैं।
- हेनरी : विद्यालय में बालकों के शैक्षिक अनुभव के लिए एक सामाजिक समूह की रूपरेखा पाठ्यचर्या कहलाता है।
- व्यूसैम्प : पाठ्यचर्या को मानव जाति के संपूर्ण ज्ञान तथा अनुभव का सार समझना चाहिए।

पाठ्यचर्या की उपरोक्त सभी परिभाषाओं का विवेचन करने के बाद निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। यह छात्र के जीवन के सभी पहलुओं को स्पष्ट करता है फिर चाहे वह शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, बौद्धिक या नैतिक किसी से भी जुड़े हो। वर्तमान समय में पाठ्यचर्या को विद्यार्थी की क्षमताओं एवं अभिरुचियों को केंद्र में रखकर बनाया जाता है।

पाठ्यचर्या का उद्देश्य

पाठ्यचर्या देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। किसी भी पाठ्यचर्या का निर्माण तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु किया जाता है। सामान्य तौर पर पाठ्यचर्या निर्माण के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1. बालक का नैतिक व चारित्रिक विकास,
2. छात्रों का सर्वांगीण विकास करना
3. सभ्यता व संस्कृति का हस्तांतरण तथा विकास,
4. बालक की मानसिक शक्तियों का विकास,
5. बालक की रचनात्मक व सृजनात्मक शक्तियों का विकास,
6. बालक में गतिशील लचीले मस्तिष्क का निर्माण,
7. बालक में खोज की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना तथा उसे भावी जीवन के लिये तैयार करना,
8. शैक्षिक प्रक्रिया का स्वरूप निर्धारित करना,
10. बालकों में लोकतांत्रिक भावना का विकास करना, एवं
11. बालकों की क्षमता, योग्यता एवं रुचि का विकास करना।

पाठ्यचर्या का क्षेत्र

पाठ्यचर्या का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। विद्यालय में रहते हुए बालक शैक्षिक क्रियाएं करते हैं, जो पाठ्य सहगामी क्रियाएं करते हैं तथा जो अभिरुचि की पूर्ति से संबंधित कार्य करते हैं। उन प्रवृत्तियों के आधार पर ही पाठ्यचर्या का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है। सामान्य रूप से पाठ्यचर्या के क्षेत्र में निम्न बिंदुओं को रखा जा सकता है :

1. **शिक्षा के लक्ष्यों व उद्देश्यों का निर्धारण :** जिस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार यह बालकों के लिए कुछ निश्चित उद्देश्यों का निर्धारण भी करती है तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बालकों को प्रेरित करती है।
2. **बालकों के संज्ञानात्मक विकास का पोषण :** पाठ्यचर्या का उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास तथा ज्ञानवर्धन करना भी होता है। वह बालकों को विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्रदान करके उनका संज्ञानात्मक विकास करती है।
3. **नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य :** पाठ्यचर्या एक व्यापक अवधारणा का रूप लेती जा रही है, अत: वर्तमान समय में प्रचलन में आने वाली अनेक नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य भी इसके क्षेत्र में आता है।
4. **शैक्षणिक स्रोतों का उपयोग :** पाठ्यचर्या बालकों के लिये अधिगम सुनिश्चित करने के साथ ही विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्रदान करने हेतु विभिन्न शैक्षणिक स्रोतों का भी उपयोग करता है।
5. **बालकों के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का संवर्धन :** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज में रहते हुए उसे कुछ अधिकारों का उपभोग एवं कर्तव्य का निर्वहन करना होता है। इसके अलावा एक बालक पूर्ण रूप से स्वस्थ तभी माना जा सकता है, जब वह मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ हो। पाठ्यचर्या के माध्यम से बालकों का सामाजिक विकास एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का संवर्धन किया जाता है।
6. **छात्रों का व्यक्तिगत बोध एवं उसके अनुरूप शिक्षण व्यवस्था :** पाठ्यचर्या द्वारा बालकों का व्यक्तित्व विकास एवं ज्ञानवर्धन किया जाता है। प्रत्येक बालक की अभिरुचि क्षमताएं भिन्न-भिन्न होती हैं तथा यह प्रत्येक बालक के व्यक्तिगत बोध के अनुरूप ही शिक्षण व्यवस्था प्रदान करता है।
7. **अधिगम की उचित व्यवस्था :** अधिगम एक जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। जिस प्रकार ठहरे हुए पानी में अनेक गंदगियां एवं बीमारियां पनपने लगती हैं, उसी प्रकार अधिगम के अभाव में व्यक्ति में कई प्रकार की बुराइयों का समावेश हो सकता है। इस प्रकार पाठ्यचर्या समय-समय पर बालकों के नवीन एवं विभिन्न प्रकार के अधिगम हेतु सुविधा प्रदान करती है।
8. **मूल्यांकन :** पाठ्यचर्या विषय-वस्तुओं का समावेश मात्र न होकर विभिन्न क्रियाओं एवं कार्यकलापों का भी समन्वय है। यह बालकों को ज्ञान प्रदान करने के साथ ही साथ उनके कार्यों एवं अन्य सभी कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी करती है।

पाठ्यचर्या का महत्व

पाठ्यचर्या के द्वारा ही विद्यालय का कार्य संगठित व संतुलित रूप से चल सकता है। पाठ्यचर्या का महत्व उसके द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्यों के रूप में समझा जा सकता है। संक्षेप में पाठ्यचर्या का महत्व इस प्रकार है :

1. यह शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होती है।
2. यह शिक्षण विधियों के निर्धारण में सहायक होती है।
3. यह शिक्षण सामग्री के निर्धारण में सहायक होती है।
4. यह चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है।
5. इससे अनुसंधान एवं अविष्कार में सहायता मिलती है।
6. पाठ्यचर्या दर्शन एवं शिक्षा की प्रवृत्तियों को दर्शाने में सहायक होती है।
7. इससे विषय सामग्री को विभाजित करने में सहायता मिलती है।
8. यह तत्कालीन घटनाओं के ज्ञान में सहायक होती है।

पाठ्यचर्या के लाभ

1. पाठ्यचर्या शिक्षा का एक अभिन्न अंग है, जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होती है।
2. अध्यापक पाठ्यचर्या के माध्यम से छात्रों के मानसिक, शारीरिक, नैतिक, सांस्कृतिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के लिए प्रयास करता है।
3. शिक्षा के संपूर्ण क्षेत्र में इसका एक विशेष स्थान है, जो उद्देश्यों एवं आदर्शों के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक ऐसा साधन है जो छात्र एवं अध्यापक को जोड़ता है।
4. पाठ्यचर्या द्वारा छात्रों को प्रशिक्षण एवं अध्यापकों को दिशा-निर्देश के अवसर प्राप्त होते हैं। यह एक प्रकार से अध्यापक के पश्चात छात्रों के लिए दूसरा पथ प्रदर्शक है।
5. इससे शिक्षा की प्रक्रिया का व्यवस्थित रहती है तथा शिक्षा का स्तर समान बना रहता है।
6. इससे समय और शक्ति का सदुपयोग होता है तथा सभी उद्देश्यों की प्राप्ति संभव बन पाती है।
7. यह छात्रों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।
8. पाठ्यचर्या में विषयों के साथ-साथ स्कूल के सारे कार्यक्रम आते हैं। यह शिक्षालय में होने वाले समस्त कार्यक्रम का आधार है। यदि पाठ्यचर्या को शिक्षा का प्राण कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. किस सिद्धांत के अनुसार, पाठ्यचर्या को अलग–अलग विषयों में विभाजित करने से उसका महत्व और प्रभाव कम हो जाता है?
   (क) सुरक्षित भविष्य का सिद्धांत (ख) सह–संबंध का सिद्धांत
   (ग) उपयोगिता का सिद्धांत (घ) बाल–केंद्रीयता का सिद्धांत
2. स्कूल के पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन की स्थिति किस दृष्टिकोण पर आधारित है?
   (क) शैक्षिक (ख) सामाजिक
   (ग) मनोवैज्ञानिक (घ) ये सभी

3.3 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उपकरण

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के उपकरणों के रूप में निर्देशात्मक रणनीतियां वे तकनीकें हैं जिनका उपयोग शिक्षक छात्रों की मदद के लिए करते हैं जिससे वे स्वतंत्र, रणनीतिक शिक्षार्थी बनें। ये रणनीतियां सीखने की रणनीतियां बन जाती हैं जब छात्र स्वतंत्र रूप से उपयुक्त रणनीति का चयन करते हैं और कार्यों को पूरा करने या लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उनका प्रभावी ढंग से उपयोग करते हैं।

उपयुक्त निर्देशात्मक रणनीतियाँ निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद कर सकती हैं–

- छात्रों को प्रेरित करने और ध्यान केंद्रित करने में उनकी मदद करने में।
- जानकारी को समझने और याद रखने के लिए व्यवस्थित करने में।
- सीखने की निगरानी और आकलन करने में।

सफल रणनीतिक शिक्षार्थी बनने के लिए छात्रों को चाहिए–

- चरण–दर–चरण रणनीति निर्देश।
- विभिन्न प्रकार के निर्देशात्मक दृष्टिकोण और शिक्षण सामग्री।
- उपयुक्त समर्थन जिसमें मॉडलिंग, निर्देशित अभ्यास और स्वतंत्र अभ्यास के अवसर उपलब्ध हों।
- कौशल और विचारों को एक स्थिति से दूसरी स्थिति में स्थानांतरित करने के अवसर।
- कौशल, विचारों और वास्तविक जीवन स्थितियों के बीच सार्थक संबंध।
- स्वतंत्र होने के अवसर और यह दिखाने के लिए कि वे क्या जानते हैं।
- स्व–निगरानी और आत्म–सुधार के लिए प्रोत्साहन।
- स्वयं के सीखने को प्रतिबिंबित करने और उसका आकलन करने के लिए उपकरण।

निर्देशात्मक और सीखने की प्रभावी रणनीतियों का प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर एवं उच्चतर स्तर पर भी उपयोग किया जा सकता है और छात्र मतभेद को एक सीमा तक समायोजित कर सकते हैं।

टिप्पणी

निर्देशात्मक रणनीतियाँ जो सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम में विशेष रूप से प्रभावी हैं, में निम्न शामिल हैं–

- प्राथमिक और माध्यमिक सूचना
- प्रश्न : आवश्यकता, महत्त्व और प्रकार
- विशिष्ट छात्रों के मूल्यांकन हेतु उपयुक्त तकनीकों का प्रयोग
- बुद्धि उद्वेलन
- सहयोगपूर्ण और सहयोगात्मक अधिगम
- समस्या समाधान
- सहकारी शिक्षा
- सामूहिक चर्चा
- स्वच्छंद अध्ययन
- भूमिका निभाना
- संज्ञानात्मक आयोजन
- साहित्यक प्रतिक्रिया
- सेवा अधिगम
- मुद्दे की जांच–पड़ताल ।

इनमें से कुछ का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

3.3.1 प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाएं

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में मौलिक सामग्री तथा मौलिक स्रोत का उपयोग किया जाता है। मौलिक सामग्री तथा मौलिक स्रोत का उपयोग शिक्षण स्रोत विधि में किया जाता है। स्रोत विधि से विषय-वस्तु के संबंध में प्रत्यक्ष जानकारी तथा अनुभव प्राप्त होते हैं। सामाजिक अध्ययन शिक्षण की यह एक क्रियात्मक विधि है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में प्राथमिक तथा द्वितीयक दो प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इस विधि में छात्रों से उम्मीद की जाती है कि वे इन स्रोतों का उपयोग कर अपना ज्ञान बढ़ायेंगे तथा इतिहास की रचना करेंगे। स्रोत विधि छात्रों में चिंतन शक्ति का विकास करती है।

प्राथमिक सूचना

प्राथमिक सूचना वह सूचना होती है, जो उन व्यक्तियों द्वारा प्रदान की जाती है, जो घटना से सीधे जुड़े होते हैं या प्रत्यक्षदर्शी होते हैं। ओलंपिक खेलों का सीधा प्रसारण या किसी क्रिकेट टूर्नामेंट का सीधा प्रसारण आदि सभी प्राथमिक स्रोत के उदाहरण हैं।

प्राथमिक सूचना को पहली बार प्राप्त किया गया होता है तथा उसे अनुसंधान कर्ता स्वयं खोजता है या फिर स्वयं प्राप्त करता है।

प्राथमिक सूचना प्रदान करने वाले स्रोत ऐतिहासिक तथा विधिक दस्तावेज प्रत्यक्षदर्शी प्रयोगों के परिणाम सांख्यिकी प्रदत्त आदि होते हैं। प्राथमिक तथा सामाजिक विज्ञानों में प्राथमिक सूचना प्रायोगिक अध्ययनों तथा उन प्रयोगों, जिनमें प्रत्यक्ष अवलोकन होता है, उनसे प्राप्त होते हैं। प्रायोगिक अध्ययनों के परिमाण संगोष्ठी में पढ़े जाने वाले लेखों तथा शोधपत्रों आदि से प्राप्त होते हैं।

प्राथमिक सूचना के स्रोत

प्राथमिक सूचना के निम्न स्रोत होते हैं-

- **पुस्तकें** (Books) : पुस्तकें प्राथमिक सूचना का स्रोत होती हैं। उदाहरण के लिये, महात्मा गांधी द्वारा लिखे गये पत्र, भाषण तथा आत्मकथा प्राथमिक सूचना के स्रोत होंगे।
- **क्रमिक प्रकाशन** (Serials) : शोध पुस्तिका, पत्रिका तथा समाचार-पत्र आदि को क्रमिक प्रकाशन माना जाता है। सामाजिक विज्ञान तथा विज्ञान पुस्तिका में कई लेख प्राथमिक सूचना प्रदान करने वाले होते हैं। इन लेखों में लेखक स्वयं द्वारा किये गये अनुसंधान या आविष्कार के बारे में बताता है। लेकिन सभी क्रमिक प्रकाशन प्राथमिक सूचनायें प्रदान नहीं करते हैं।
- **दृश्य तथा श्रव्य सामग्री** (Visual and Audio materials) : दृश्य सामग्री जैसे-चित्र, मानचित्र तथा मूलकलाकृति उस जगत के बारे में जानकारी देते हैं, जिसमें उनका अस्तित्व होता है। इसी प्रकार, वीडियो, टीवी के कार्यक्रम तथा आंकिक रिकार्डिंग प्राथमिक सूचना के स्रोत हो सकते हैं। चलचित्र, वृत्तचित्र तथा टीवी के समाचार अपने समय की कल्पना, राजनीतिक अभिवृत्ति तथा पक्षपात आदि के संबंध में जानकारी देते हैं।

  मौखिक इतिहास, रेडियो द्वारा प्रसारित रिकार्डिंग तथा किसी काल का रिकार्ड किया गया संगीत भी प्राथमिक सूचना के स्रोत हो सकते हैं।
- **इंटरनेट** : ईमेल, ब्लॉग, समाचार समूह में संचार आदि प्राथमिक सूचना स्रोत होते हैं।
- **जनमत संग्रह** : जनमत संग्रह प्राथमिक सूचना स्रोत का कार्य करता है।
- **पुरातात्विक सामग्री** : हस्तलेख तथा पुरातात्विक सामग्री, जिनमें पत्राचार, डायरी, शोध पुस्तिका, विधिक तथा वित्तीय दस्तावेज, मानचित्र, पुरातात्विक चित्रकला, मौखिक, इतिहास, कम्प्यूटर टेप, वीडियो तथा ऑडियो कैसेट आदि सम्मिलित हैं, प्राथमिक सूचना के स्रोत हो सकते हैं। कुछ पुरातात्विक सामग्री मुद्रित तथा ऑनलाइन रूप में भी उपलब्ध होती हैं।
- **शासकीय दस्तावेज** : शासकीय दस्तावेजों में कार्यक्रमों, गतिविधियों तथा शासकीय नीतियों के प्रमाण होते हैं। ये सभी स्रोत प्राथमिक सूचना प्रदान करते हैं। इन दस्तावेजों में विधिक निकायों की सुनवाई, वाद-विवाद, नियमन, कर संबंधी कानून, संधि शासन के वित्त तथा खर्चे तथा सांख्यिकीय, आर्थिक, वैज्ञानिक तथा जनांकीय प्रदत्त आदि हो सकते हैं।

टिप्पणी

- **अनुसंधान सामग्री :** अनुसंधान सामग्री तथा जनगणना से प्राथमिक सूचना प्राप्त होती हैं।
- **मूल दस्तावेज :** मूल दस्तावेज में जन्म प्रमाण पत्र, संपत्ति अनुबंध आदि प्राथमिक आते हैं।
- **साक्षात्कार एवं क्षेत्र कार्य :** साक्षात्कार एवं क्षेत्र कार्य, सर्वेक्षण प्राथमिक सूचना स्रोत होते हैं।

प्राथमिक सूचना स्रोत के उपयोग के लाभ

प्राथमिक सूचना स्रोत के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं-

- शोधार्थी अध्ययन की जाने वाली समस्या से संबंधित प्रदत्त ही एकत्रित करता है।
- अध्ययन काल में अतिरिक्त प्रदत्त एकत्रित करना भी संभव होता है।
- एकत्रित जानकारी की गुणवत्ता के संबंध में कोई दुविधा या भ्रम नहीं होता।
- परीक्षणकर्ता सूचना की गुणवत्ता के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता।
- प्राथमिक सूचना स्रोत का उपयोग कम खर्चीला होता है।

प्राथमिक सूचना स्रोत के उपयोग से हानियां

प्राथमिक सूचना स्रोत से निम्न हानियां होती हैं-

- किसी के संदर्भ में अतिरिक्त सूचना तथा स्पष्टीकरण एकत्र करना संभव नहीं होता है।
- परीक्षणकर्ता यह निर्णय नहीं कर सकता कि क्या एकत्रित किया गया है।

द्वितीयक सूचना

द्वितीयक सूचना स्रोत वे स्रोत होते हैं, जो उन व्यक्तियों द्वारा तैयार किये जाते हैं जो वास्तविक घटना या दृश्य से दूर होते हैं। ऐसे लोग द्वितीयक, सूचना स्रोत को तैयार करने में इन घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शियों की सलाह या सहायता लेते हैं। उदाहरण के लिए विभिन्न कालों के ऐतिहासिक कार्य, जिनसे मूल ऐतिहासिक कालों की सूचना प्राप्त होती है।

द्वितीयक स्रोत में मौलिक सूचना का सामान्यीकरण, संश्लेषण, विश्लेषण, व्याख्या तथा मूल्यांकन सम्मिलित होते हैं। द्वितीयक सूचना स्रोत की एक कमी यह है कि यह पक्षपातयुक्त भी हो सकता है। पक्षपातयुक्त सूचना में लोगों को प्रभावित करने के लिए सूचना तथा किसी एक विशिष्ट मत पर केन्द्रित सूचना हो सकती है।

द्वितीयक सूचना के स्रोत

द्वितीयक सूचना के स्रोत निम्न हैं–

1. **विश्वकोष :** किसी पुस्तकालय में या ऑनलाइन उपलब्ध विश्वकोष द्वितीयक सूचना स्रोत होते हैं। विश्वकोष के अतिरिक्त संदर्भ ग्रन्थ तथा ग्रन्थ सूची भी द्वितीयक सूचना के स्रोत हो सकते हैं।
2. **पुस्तकें :** अधिकांश पुस्तकें द्वितीयक सूचना स्रोत होती हैं क्योंकि इनमें प्राथमिक सूचना स्रोत में लेखक अपने मत तथा विश्लेषण भी सम्मिलित करता है।

3. **क्रमिक प्रकाशन :** क्रमिक प्रकाशन में पुस्तक पुनरावलोकन संपादकीय तथा पुनरावलोकित लेख होते हैं। पुनरावलोकन लेख किसी विषय पर हुए शोध को संक्षिप्त तो करता है लेकिन कोई नहीं खोज प्रस्तुत नहीं करता है, इसलिए इन्हें द्वितीय सूचना स्रोत माना जाता है।
4. **लेख :** किसी घटना के बाद पत्रिका, समाचार पत्र आदि में प्रकाशित लेख द्वितीयक सूचना स्रोत होते हैं।
5. **टिप्पणी तथा विवेचनात्मक लेख :** टिप्पणी तथा विवेचनात्मक लेख से किसी घटना या वृतांत के संबंध में सूचनायें प्राप्त होती हैं।

द्वितीयक सूचना स्रोत के लाभ

द्वितीयक सूचना स्रोत से निम्न लाभ होते हैं–

- द्वितीयक सूचना का उपयोग सरल होता है।
- किसी-किसी स्थिति में प्राथमिक सूचनायें एकत्रित करना संभव नहीं होता है, उस स्थिति में सूचना के द्वितीयक स्रोत काम आते हैं।
- इससे समय तथा धन की बचत होती है।
- विश्वसनीय द्वितीयक सूचना कई खोजों के लिए सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं।

द्वितीयक सूचना स्रोत की हानियां

द्वितीयक सूचना स्रोत की हानियां इस प्रकार हैं–

- ये स्रोत सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपलब्ध नहीं होते हैं।
- द्वितीयक सूचना के उपयोग में अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता होती है।
- द्वितीयक सूचनाओं को प्राप्त करना कठिन होता है।

प्राथमिक तथा द्वितीयक सूचना में अंतर

- प्राथमिक सूचना, द्वितीयक सूचना से अधिक विश्वसनीय होती है।
- द्वितीयक सूचनाओं का स्रोत वे लोग या घटनायें होती हैं, जो घटना के प्रत्यक्षदर्शी नहीं होते हैं इसलिए द्वितीयक सूचना की यथार्थता प्राथमिक सूचना से कम मानी जाती है।

3.3.2 प्रश्न : आवश्यकता, महत्व एवं प्रकार

शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक अनेक विधियों या प्रविधियों के साथ प्रश्न प्रविधि का भी उपयोग किया जाता है। शिक्षक छात्रें के समक्ष प्रश्न रखता है तथा छात्र अपनी स्मृति तथा अनुभव के आधार पर उनका उत्तर देते हैं। प्रश्नों के माध्यम से छात्र के अधिगम के स्तर की जांच की जाती है। प्रश्न, छात्रों के लिए अभिप्रेरण का कार्य करते हैं। प्रारंभ में छात्रों से उनके पूर्व अनुभवों के आधार पर प्रश्न पूछे जाते हैं, जो उनके वर्तमान पाठ से संबंधित होते है। प्रश्नों को छात्रों के समक्ष इस प्रकार रखा जाता है, जिससे प्रकरण की उत्पत्ति हो सके। पाठ के प्रस्तुतीकरण में शिक्षक द्वारा विकासात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं। इसी प्रकार पाठ के अंत में पुनरावृत्ति में छात्रों द्वारा ग्रहण किये गये ज्ञान का पता लगाने के लिए भी शिक्षक द्वारा प्रश्न पूछे जाते हैं।

टिप्पणी

यहां हम विभिन्न प्रश्नों के प्रकार एवं उनकी आवश्यकता एवं महत्व के बारे में अध्ययन करेंगे।

प्रश्न-प्रविधि

शिक्षण की प्रक्रिया में प्रश्न प्रविधि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा सीखने की क्रिया को प्रभावोत्पादक बनाया जाता है। छात्र, शिक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए अपने पूर्व ज्ञान को तथा स्मृति को पुन: संगठित कर नया ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

प्रश्न की आवश्यकता

परंपरागत रूप में प्रश्न प्रविधि का उपयोग बालक के ज्ञान को जांचने के लिए किया जाता था परन्तु वर्तमान के आधुनिक समय में शैक्षिक प्रक्रिया में प्रश्नों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रश्न प्रविधि द्वारा अनेक प्रयोजनों तथा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। शिक्षण में प्रश्नों की आवश्यकता निम्न कारणों से है :

- वैयक्तिक शिक्षा प्रदान करने के लिए।
- छात्रों में कार्य के प्रति कौतूहल एवं रुचि जाग्रत करने के लिए।
- मौखिक रूप से अभिव्यंजना शक्ति के विकास के लिए।
- छात्रों की कमियों तथा कठिनाइयों का पता लगाने के लिए।
- छात्रों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों तथा तात्कालिक समस्याओं के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए।
- अन्वेषण तथा अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए।
- छात्रों के अर्जित ज्ञान तथा उत्पत्ति का मापन करने के लिये।
- विचार प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए।
- छात्रों के ज्ञान को प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करने के लिए।
- छात्रों को अभिप्रेरण प्रदान करने के लिए।

प्रश्नों का महत्व

प्रश्नों के महत्व को निम्न बिंदुओं के द्वारा समझा जा सकता है-

- प्रश्नों से छात्र में पाठ के लिए अंतर्दृष्टि का विकास होता है।
- इससे छात्रों में प्रस्तुत की गयी विषय वस्तु के बारे में समझ का विकास होता है।
- प्रश्न छात्रों में कार्य के प्रति रुचि एवं कौतूहल जाग्रत करते हैं।
- प्रश्नों द्वारा सीखने की प्रक्रिया में मार्गदर्शन प्राप्त होता है।
- प्रश्न प्रविधि में कक्षा में छात्रों की आपस में अंतर्क्रिया होती है तथा उनके एव ं शिक्षक के बीच अंतर्क्रिया होती है।
- प्रश्न पूछने से छात्रों में सक्रिय सहभागिता का विकास होता है।
- प्रश्न प्रविधि सामाजिक जीवन की जटिलताओं को समझने के लिए छात्रों के मस्तिष्क को तत्पर बनाती है।

- प्रश्न के साथ यदि विभिन्न सहायक सामग्री, जैसे-चार्ट, फिल्म आदि का उपयोग किया जाए तो इसके द्वारा छात्रों में रुचि का विकास होता है।
- प्रश्नों द्वारा तथ्यों के ज्ञान तथा अनुभवों को व्यवस्थित करने में सहायता मिलती है।

प्रश्नों के प्रकार

प्रश्नों का वर्गीकरण निम्न दो आधारों पर किया जा सकता है :

(अ) मानसिक प्रक्रिया के आधार पर

इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देते समय मानसिक प्रक्रियाएं उत्तेजित एवं प्रखर होती हैं। मानसिक प्रक्रिया के आधार पर प्रश्न निम्न प्रकार के होते हैं :

- **स्मृति आधारित प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर छात्र अपनी स्मृति तथा पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर देते हैं।
- **सूचनात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न कुछ नवीन सूचना प्रदान करने वाले होते हैं।
- **तर्कयुक्त प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर छात्र अपनी तर्कशक्ति के आधार पर देते हैं।
- **तुलनात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर छात्र दो तथ्यों अथवा बिन्दुओं की तुलना करके देते हैं।
- **विचारात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न छात्र के मस्तिष्क को विचार करने के लिए क्रियाशील कर देते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर छात्र अपनी विचार शक्ति के आधार पर देते हैं।
- **परीक्षात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न छात्र की मानसिक योग्यता का परीक्षण करते हैं।
- **निर्णयात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न छात्र की निर्णय शक्ति की योग्यता का परीक्षण करते हैं।
- **व्याख्यात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न छात्र को किसी तथ्य या बिन्दु की व्याख्या करने की योग्यता से संबंधित होते हैं।
- **विश्लेषणात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न प्रस्तुत वस्तु की जांच करते हैं। उनके घटकों को अलग-अलग करके उनकी जांच की जाती है। इसमें आगमन, निगमन कारकों का उपयोग किया जाता है।

(ब) शिक्षण प्रक्रिया के आधार पर

शिक्षण प्रक्रिया के आधार पर प्रश्नों को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है :

- **प्रस्तावना प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्न छात्र के पूर्व ज्ञान से नवीन ज्ञान को संबंधित करते हैं। इन प्रश्नों का मुख्य उद्देश्य छात्रों के पूर्व ज्ञान की परीक्षा लेना होता है।

भारत में जनसंख्या की दशा नामक प्रकरण में प्रस्तावना प्रश्न निम्न हो सकते हैं:

1. भारत की अधिक जनसंख्या के कौन-से कारण हैं?

टिप्पणी

2. भारत की जनसंख्या को कैसे कम किया जा सकता है?
3. भारत की जनगणना में किन चीजों को शामिल किया जाता है?
4. क्या भारत में अधिक बेरोजगारी का कारण इसकी जनसंख्या है?

- **विचारात्मक प्रश्न :** इन प्रश्नों के द्वारा मस्तिष्क को विचार करने के लिए क्रियाशील बनाया जाता है। उदाहरणार्थ–'भारत की संस्कृति' नामक प्रकरण में निम्न विचारात्मक प्रश्न हो सकते हैं–

1. भारत की संस्कृति में विविधता के क्या कारण हैं?
2. भारत के विभिन्न धर्मों के बारे में बताइये।

- **विकासात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा पाठ का विकास किया जाता है। 'मूल अधिकार' नामक प्रकरण में निम्न प्रश्नों द्वारा पाठ का विकास किया जा सकता है–

1. मूल अधिकारों का उल्लेख संविधान के किस भाग में किया गया है?
2. भारत के लोगों को कुल कितने प्रकार के मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं?
3. मूल अधिकारों का रक्षक किसे माना जाता है?
4. सूचना का अधिकार किस मूल अधिकार की श्रेणी में आता है?

- **पुनरावृत्ति प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा पाठ की मुख्य बातें समझने एवं आत्मसात करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इन प्रश्नों का उपयोग छात्र द्वारा ग्रहण किये गये ज्ञान का पता लगाने में भी किया जाता है।

  उदाहरणार्थ–'भारत की जलवायु' प्रकरण की विवेचना के बाद निम्नलिखित प्रश्न पूछे जा सकते हैं :

1. भारत में किस प्रकार की जलवायु पायी जाती है?
2. भारत की जलवायु में विविधता के क्या कारण हैं?
3. हिमालय भारत की जलवायु को किस प्रकार प्रभावित करता है?

- **समस्यात्मक प्रश्न :** इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा छात्रों के समक्ष एक समस्या उत्पन्न कर दी जाती है जिससे छात्रों का मस्तिष्क उस समस्या के समाधान के लिए उत्तेजित हो जाता है।

उदाहरणार्थ–

1. भारत ने अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में कितनी प्रगति कर ली है?
2. स्वतंत्रता के पश्चात अंतरिक्ष में किस प्रकार के उपग्रहों को छोड़ा गया है?

- **बोधात्मक या परीक्षात्मक प्रश्न :** इन प्रश्नों के द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि छात्र ने पठित वस्तु को किस सीमा तक आत्मसात् किया है? दूसरे शब्दों में बोधात्मक प्रश्नों द्वारा छात्रों के अर्जित ज्ञान की परीक्षा ली जाती है।

उदाहरणार्थ–'संचरणीय रोग' तथा उसके कारण नामक प्रकरण में संचरणीय रोग तथा उसके कारणों की विवेचना के पश्चात् शिक्षक निम्न प्रश्न पूछ सकते हैं :

1. संचरणीय रोग क्या होते हैं?

2. संचरणीय रोग किस प्रकार फैलते हैं?

3. संचरणीय रोगों को फैलने से किस प्रकार रोका जा सकता है?

3.3.3 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु उपयुक्त मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग

'विशेष आवश्यकताएं' ऐसा शब्द समूह है जिसमें किन्हीं विकृतियों की उपस्थिति को परखा जा सकता है। विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों में सौम्य सीख–अक्षमताएं अथवा गहन संज्ञानात्मक व्यवधान हो सकते हैं; खाद्य–प्रत्यूर्जताएं (फूड–एलर्जीज़) अथवा मरणात्मक रुग्णत्व हो सकता है; परिवर्द्धनात्मक विलम्बन हो सकते हैं जो या तो सरलता से पहचाने जा सकते हैं अथवा गहनता से जड़े जमाये हुए हो सकते हैं; आकस्मिक संत्रासात्मक आक्रमण हो सकते हैं अथवा गम्भीर मनोचिकित्सात्मक समस्याएं हो सकती हैं। आवश्यक सेवाओं को पाने में, यथेष्ट लक्ष्यों को निर्धारित करने में एवं बच्चे व तनावग्रस्त परिवार के लिये समझ विकसित करने में यह उपयोगी है।

शिक्षा का अधिकार (आर टी ई : 2009) व समावेशी शिक्षा के क्रियान्वयन के कारण यह अवश्यंभावी हो जाता है कि अध्यापक को विशेष आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों के साथ कक्षा में कार्य करने का अवसर/सुख मिले। आज के अध्यापकों के लिये यह आवश्यक है कि ये अध्यापक दूसरों के लिये परिवेश व अपनी शैली में कुछ रूपान्तर लायें। विशेष आवश्यकता वाले शिक्षार्थियों को शिक्षा सुलभ कराना निश्चय ही हमारे लिये एक प्रवीण शिक्षाविद् के रूप में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है।

समावेशी शिक्षा की ओर प्रथम चरण के रूप में विशेष बच्चे की विशेष आवश्यकताओं को पहचानना होता है एवं मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आधारों पर उन्हें समझना होता है जिनके लिये कई मानकीकृत मूल्यांकन–साधन होते हैं।

वैसे भी विभिन्न क्षमताओं वाले बच्चों की पहचान करने के अतिरिक्त भी कई कारण हैं जिनसे कि विभिन्न मूल्यांकन–माध्यम प्रयोग किये जाते हैं। मूल्यांकन एवं परीक्षण ऐसे शिक्षार्थियों के लिये भी महत्वपूर्ण हैं जो पहले से विशेष शिक्षा कार्यक्रम में हैं। इन मूल्यांकन–साधनों से विशेष शिक्षार्थियों के विद्वत्–निष्पादन/शैक्षणिक निष्पादन की निगरानी व प्रोन्नति में तो सहायता तो होती ही है वरन् शिक्षार्थियों के शैक्षणिक उद्देश्यों को रूपान्तरित करने में भी ये अध्यापकों हेतु सहायक सिद्ध होते हैं। परिणामस्वरूप अधिक प्रभावी, अधिक अनुक्रियाशील एवं अधिक गतिशील व्यक्तिगत शिक्षा–योजनाओं का निर्माण किया जाना सम्भव हो सकता है। स्कूल प्रशासन एवं सामुदायिक सहभागिता के दृष्टिकोणों से विभिन्न मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन–परीक्षणों के प्रयोग से ऐसे हर व्यक्ति की जवाबदेही बढ़ सकती है जो विशेष शिक्षार्थी की शिक्षा में भागीदार है।

विभिन्न क्षमताओं वाले बच्चों के सीखने के परिणामों के आकलन हेतु विशिष्ट रणनीतियां एवं उपकरण

विभिन्न क्षमताओं वाले बच्चों के मूल्यांकन में सरल अवलोकनों से लेकर जटिल व बहुचरणीय कार्यविधियों तक कुछ भी सम्मिलित किया जाना सम्भव है; सरल अवलोकन, जैसे कि किसी अधिन्यास (एसाइन्मेण्ट) पर शिक्षार्थी द्वारा कार्य करते समय तथा जटिल व बहुचरणीय कार्यविधियां, जैसे कि शिक्षार्थी–कार्य के बड़े कार्यविवरण को जुटाते अध्यापकों का समूह। तदुपरान्त उन मूल्यांकनों का क्रम आता है जो स्कूलों, जिला

अथवा राज्यविशेष द्वारा इस दिशा में आवश्यक हों जिनसे शिक्षाविदों को यह निर्धारित करने में सहायता हो कि शिक्षार्थी विशेष शिक्षा का पात्र है अथवा नहीं तथा यदि है तो सेवाओं के उन प्रकारों व आवृत्ति को निर्धारित करने में सहायता हो जिनसे शिक्षार्थी की सफलता की ओर सर्वाधिक सहयोग होने में सहायता पहुंचे।

विशेष शिक्षा के क्षेत्र में जिन मूल्यांकन–उपकरणों का प्रयोग किया जाता है उनमें से कुछ को यहां सूचीबद्ध किया जा रहा है–

अभाषाई बुद्धि परीक्षण– अभाषाई बुद्धि परीक्षण, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पूर्णतः भाषा के बन्धन से मुक्त होता है। अभाषाई बुद्धि परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग न तो एकांश में और न ही निर्देश में होता है। प्रायः इस तरह के परीक्षण में निर्देश हाव–भाव, निर्देशन तथा चित्राभिनय द्वारा दिया जाता है। साथ–ही–साथ इस तरह के परीक्षण में परीक्षार्थी की वस्तुओं को वास्तविक जोड़–तोड़ भी नहीं करना होता है। इस तरह से अभाषाई बुद्धि परीक्षण के निम्नांकित गुण है–

1. ऐसे परीक्षणों में निर्देश हाव–भाव, चित्राभिनय तथा निर्देशन द्वारा दिया जाता है न कि किसी प्रकार की भाषा द्वारा।
2. इन परीक्षणों के एकांश में भाषा का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं होता है।
3. इन परीक्षणों में परीक्षार्थी को कुछ वस्तुएं जैसा कि क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण में दिया जाता है, नहीं दिया जाता है। फलतः इस तरह के परीक्षणों में परीक्षार्थी को वास्तविक जोड़–तोड़ नहीं करना पड़ता है।

ऊपर के गुणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसके तीन गुण में प्रथम दो गुण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के समान हैं।

गुडएनफ ड्रॉ–ए–मैन परीक्षण तथा कैटेल संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण इसके प्रमुख उदाहरण है। चूंकि अभाषाई बुद्धि परीक्षण बहुत हद तक क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण से मिलता–जुलता है, अतः इसका गुण तथा दोष दोनों ही क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के समान है।

इस तरह से स्पष्ट है कि बुद्धि परीक्षण के कई प्रकार हैं जिनमें चार प्रमुख हैं–शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा अभाषाई बुद्धि परीक्षण। इन चारों परीक्षणों में कुछ समानताएं तथा कुछ विभिन्नताएं हैं। साथ ही कुछ अन्य परीक्षण भी हैं जो बुद्धि के मापन के प्रयोग में लाए जाते हैं।

कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग जिसका बुद्धि मापन में अधिकतर उपयोग किया गया है, निम्नांकित हैं–

1. बिने परीक्षण
2. वेक्सलर बुद्धि मापनी
3. रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज
4. गुडएनफ ड्रॉ–ए–मैन परीक्षण
5. पीवॉडी शब्दावली परीक्षण
6. कैटेल संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण
7. बच्चों के लिए निर्मित कॉफमैन मूल्यांकन परीक्षण माला।

1. बिने परीक्षण

बुद्धि परीक्षण के इतिहास की अहमियत मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से काफी अधिक बतलायी गयी है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि बिने परीक्षण ऐसा माननीकृत बुद्धि परीक्षण है जिसकी ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान गया तथा इस परीक्षण को समय–समय पर संशोधन कर उसे और भी अधिक उत्तम बनाने का प्रयास जारी रखा गया।

इस परीक्षण का निर्माण फ्रेंच मनोवैज्ञानिक अलफ्रेड बिने द्वारा थियोडोर साइमन जो एक मेडिकल डॉक्टर थे, की सहायता से किया गया। सरकार ने मानसिक रूप से दुर्बल बच्चों की पहचान करने के लिए एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण का भार बिने पर सौंपा था। बिने ने साइमन की मदद से एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण 1905 में किया जिसे तब बिने साइमन मापनी के नाम से पुकारा गया। इस परीक्षण में कुल 30 एकांश थे जिनके द्वारा मूलतः बच्चों में भाषा का प्रयोग, चिंतन एवं बोध आदि का मापन होता था। ये सभी एकांश बढ़ते हुए क्रम में सुसज्जित थे। यह एक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण है जिसका प्रथम संशोधन 1908 में किया गया। इस संशोधन की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें कुछ नये एकांशों को जोड़े गए थे तथा कुछ असंतोषजनक पुराने एकांशों को हटा दिया गया। 1908 के संशोधन के बाद इस परीक्षण में एकांशों की संख्या बढ़कर 58 हो गयी। इस परीक्षण का अंग्रेजी रूपान्तर गोडार्ड में अमेरिका में किया गया और विभिन्न मानसिक अस्पतालों एवं उपचार–गृहों में इसका प्रयोग मानसिक रूप से कमजोर बच्चों की पहचान में धड़ल्ले से किया जाने लगा। अमेरिका में इसके कई संशोधन फिर बाद में हुए। जैसे–कुह्वमान ने इसका संशोधन 1912, 1922 तथा 1939 में किया। यर्क ने इसका संशोधन 1915 एवं 1923 में किया तथा हेरिंग ने इसका संशोधन 1922 में किया।

परन्तु इस परीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण संशोधन एल. एम. टरमैन द्वारा 1916 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया गया। इस संशोधन ने परीक्षण में चार चांद लगा दिये। इसकी लोकप्रियता दिन–दुनी तथा रात–चौगुनी ढंग से बढ़ी। इस संशोधन को स्टैनफोर्ड–बिने के नाम से पुकारा गया। इस संशोधन की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें बुद्धिलब्धि के संप्रत्यय का सबसे पहली बार समावेश किया गया। इस परीक्षण के दो तुल्य फार्म थे–एल फार्म तथा एम फार्म। 1937 में इस परीक्षण का पुनः संशोधन किया गया और यह संशोधन टरमैन तथा मेरिल द्वारा किया गया और इसे 'नया संशोधन स्टैनफोर्ड–बिने परीक्षण' या संक्षेप में दी 1937 बिने कहा गया। इस संशोधन की खास विशेषता यह थी कि 1916 की तुलना में इसके माननीकरण को अधिक उन्नत बना दिया गया तथा इसकी वैधता को अधिक उत्तम किया गया। इसे अलावा परीक्षण के ऊपरी तथा निचली उम्र–सीमाओं का विस्तार किया गया।

स्टैनफोर्ड–बिने मापनी का तीसरा संशोधन 1960 में टरमैन तथा मेरिल द्वारा ही किया गया और इसके द्वारा 2 साल के बच्चों से लेकर 22 वर्ष 11 महीना तक के वयस्कों की बुद्धि मापने का दावा किया। इस संशोधन में परीक्षण के तुल्य फार्म के स्वरूप को बनाये रखा गया। इस संशोधन में 1937 के संशोधन के उत्तम एकांशों को रखा गया तथा पुराने एवं अनुपयुक्त एकांशों को हटा दिया गया। अधिकतर चिकित्सकों का मत है कि 4 साल से 12 साल के बच्चों के लिए यह परीक्षण काफी प्रेरणात्मक है। इस परीक्षण का चौथा संशोधन 1986 में किया गया। इस संशोधन में स्टैनफोर्ड बिने मापनी को और भी अधिक सर्वोत्कृष्ट बना दिया।

टिप्पणी

स्टैनफोर्ड–बिने–मापनी का संशोधन वर्ष

प्रथम	संशोधन
1916	
द्वितीय	संशोधन
1937	
तृतीय	संशोधन
1960	
चतुर्थ	संशोधन
1986	
पंचम	संशोधन
2003	

चतुर्थ संशोधन की कई प्रमुख विशेषताएं हैं जो निम्नांकित हैं–

1. इस परीक्षण में 15 अनुच्छेद है जिनमें से 11 अनुच्छेद में शाब्दिक परीक्षणों को रखा गया है जिसके माध्यम से परिमाणात्मक चिंतन, लघुकालीन स्मृति आदि का मापन होता है। शाब्दिक एकांशों पर उतना अधिक बल पहले के संशोधनों में नहीं दिया गया था।
2. पहली बार इस संशोधन में परीक्षण के विभिन्न अनुच्छेदों को बुद्धि के महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित किया गया। इस संशोधित परीक्षण के सैद्धांतिक मॉडल के तीन स्तर बनाये हुए हैं। पहले स्तर पर स्पीयरमैन के जी कारक को रखा गया है जिसे स्तर पर लाकर बहुत कुछ कैटेल के सिद्धांत के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है–ठोस क्षमता, तरल या विश्लेषणात्मक क्षमता तथा लघुकालीन स्मृति। फिर तीसरे स्तर पर ठोस क्षमता को दो भागों में बांटा गया है–शाब्दिक–चिंतन तथा परिमाणात्मक चिंतन। अन्त में प्रत्येक ऐसे क्षमता को मापने के लिए परीक्षण के एकांशों को एक खास ढंग से संबंधित किया गया है।
3. इस संशोधित परीक्षण में मानसिक आयु के संप्रत्यय को हटा दिया गया है और बुद्धि–लब्धि के संप्रत्यय को एक नया संप्रत्यय यानी 'मानक आयु प्राप्तांक द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। एसएएस का निर्धारक प्रत्येक उप–परीक्षण पर व्यक्ति के निष्पादन की तुलना में उसी आयु समूह के व्यक्तियों के निष्पादन से करके की जाती है। जैसे यदि एक आठ साल का बालक अन्य आठ साल के बालकों की तुलना में उप–परीक्षणों पर उत्तम निष्पादन प्राप्त करता है तो उसका एसएएस ऊंचा होगा परन्तु यदि अन्य आठ साल के बालकों की तुलना में उसका निष्पादन खराब होता है, तो उसका एसएएस कम हो जाएगा। इससे स्पष्ट है कि एसएएस का अर्थ करीब–करीब वही है जो आईक्यू का था।

4. इस संशोधित परीक्षण का प्रत्येक उप–परीक्षण में खुले प्रश्न या कार्य होते हैं जो सिलसिलेवार ढंग से कठिन होते जाते हैं। इस परीक्षण के तीन उप–परीक्षण अर्थात शब्दावली परीक्षण, बोध परीक्षण तथा नकल परीक्षण से दिये गए उदाहरणों से परीक्षण की इस विशेषता का स्पष्टीकरण होता है।

स्टैनफोर्ड–बिने–मापनी द्वारा 2 साल के बच्चों से लेकर 33 साल के वयस्कों तक की बुद्धि का मापन होता है। कम उम्र के बच्चों के 2 साल से 6 साल तक लिए चार–चार महीने का अंतराल देकर मानक तैयार किये गए है, 6 साल से 12 साल के बच्चों के लिए 6–6 महीना के अंतराल देकर मानक तैयार किये गए हैं 12 से 18 साल के व्यक्तियों के लिए एक–एक साल के अन्तराल देकर मानक तैयार किये गए हैं।

18 साल से 23 साल के वयस्कों के लिए 5–5 साल का अन्तराल देकर तथा 23 से 33 साल के वयस्कों के लिए 10 साल का अन्तराल देकर मानक तैयार किया गया है। छोटे बच्चों के लिए कम ही समय का अन्तराल देकर मानक इसलिए तैयार किये गये हैं क्योंकि इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। स्पष्टतः अब स्टैनफोर्ड–बिने मापनी एक आयु मापनी है क्योंकि इसे आयु स्तर के अनुकूल एकांशों का समूहन किया गया है।

स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण का पंचम संस्करण 2003 में प्रकाशित हुआ। इसे संक्षेप में एसबी–5 कहा जाता है। इसके द्वारा बुद्धि के पांच संज्ञानात्मक कारकों का मापन होता है। ये पांच कारक है–तरल तर्कणा, ज्ञान, परिमाणात्मक तर्कणा, चाक्षुष–स्थानिक संसाधन तथा चलन स्मृति। इन पांच कारकों का मापन शाब्दिक तथा अशाब्दिक क्षेत्रों द्वारा होता है। इस संस्करण में कुल दस उप–परीक्षण हैं तथा परीक्षण तीन तरह की बुद्धि–लब्धि प्राप्तांक मापन के बाद उपलब्ध कराता है–सम्पूर्ण मापनी बुद्धि–लब्धि, शाब्दिक बुद्धि–लब्धि तथा अशाब्दिक बुद्धि–लब्धि। इस बुद्धि परीक्षण द्वारा दो साल के बच्चे से लेकर 85 या उससे भी अधिक आयु के व्यक्तियों की बुद्धि मापी जाती है।

स्टैनफोर्ड–बिने का मूल्यांकन

स्टैनफोर्ड–बिने परीक्षण के कुछ गुण तथा परिसीमाएं हैं जिन पर मनोवैज्ञानिकों ने बल डाला है। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं–

1. स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण का सबसे आमूल गुण जो अन्य बुद्धि परीक्षणों में प्रायः देखने को नहीं मिलता है, वह यह है कि परीक्षण का वर्तमान प्रारूप द्वारा मौलिक परीक्षण में प्रस्तावित बुद्धि के मूल अर्थ को परिवर्तित नहीं किया गया है। मौलिक परीक्षण के दोनों गुणों अर्थात बुद्धि को चिंतन, बोध तथा निर्णय के रूप में परिभाषित करना एवं बुद्धि के आयु–संदर्भीय मापन को स्टैनफोर्ड–बिने परीक्षण (1986) द्वारा कायम रखा गया। अन्य बुद्धि परीक्षणों के संशोधन में देखा गया है कि परीक्षण के मूल अर्थ एवं संरचना को पूर्णतः परिवर्तित कर दिये जाते हैं। ऐसी बात स्टैनफोर्ड–बिने मापनी के साथ नहीं है।
2. अनेक अध्ययनों से यह स्थापित हो चुका है कि स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण एक विश्वसनीय तथा वैध परीक्षण है। थॉर्नडाइक, हेगन एवं स्टाटलर के अनुसार स्टैनफोर्ड बिने के 15 उप–परीक्षणों की औसत विश्वसनीयता 88 तथा सभी आयु स्तरों पर संयुक्त एसएएस की विश्वसनीयता 95 से अधिक है। इस परीक्षण की वैधता 40 से 75 तक की है।

3. इस परीक्षण द्वारा बच्चों एवं वयस्कों दोनों की बुद्धि की माप होती है।

उपर्युक्त गुणों के कारण मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस परीक्षण का उपयोग काफी अधिक किया जा रहा है। स्टैनफोर्ड–बिने की कुछ परिसीमाएं भी हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं–

1. 2/1/2 वर्ष से 5/1/2 वर्ष के बच्चों की बुद्धि मापन के लिए इस परीक्षण को कुछ लोगों ने अधिक विश्वसनीय नहीं पाया है।
2. उसी तरह से कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि वैसे बच्चे जिनकी बुद्धि–लब्धि 140 या इससे भी अधिक है, उसके लिए भी यह परीक्षण अधिक विश्वसनीय नहीं है।
3. इस परीक्षण में बुद्धि के शाब्दिक पहलुओं पर सर्वाधिक बल डाला गया है तथा क्रियात्मक पहलू की उपेक्षा की गयी है।

इन हल्के–पुल्के परिसीमाओं के बावजूद स्टैनफोर्ड बिनो मापनी की लोकप्रियता काफी अधिक है तथा मनोवैज्ञानिकों के बीच इस परीक्षण की लोक प्रसिद्धि अधिक है। बिने–साइमन मापनी (1960) का भारतीय अनुकूलन भी एस. के. कुलश्रेष्ठ द्वारा किया गया है।

2. वेक्सलर बुद्धि मापनी

डेविड वेक्सलर जो अमेरिका के न्यूयार्क सिटी के वेलेभ्यू अस्पताल में एक मनोचिकित्सक थे, स्टैनफोर्ड बिने मापनी से बहुत संतुष्ट नहीं थे। यह बात 1935–38 की है जब स्टैनफोर्ड–बिने परीक्षण अपने दूसरे संशोधित रूप से प्रकाशित हो गया था।

उस समय के इस स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण का एक प्रमुख दोष यह था कि उसके द्वारा वयस्कों की बुद्धि की माप नहीं होती थी। फलस्वरूप, वेक्सलर ने वयस्कों की बुद्धि की माप करने के लिए 1939 में अलग से एक वैयक्तिक परीक्षण का निर्माण किया जिसका नाम वेक्सलर वेलेभ्यु बुद्धि मापनी रखा गया। इस मापनी द्वारा वयस्क की बुद्धि की माप आसानी से की जाती थी। इस मापनी के दो भाग थे–शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी 1955 ई. में इस परीक्षण का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया गया जिसका नाम वेक्सलर वयस्क बुद्धि मापनी रखा गया।

इस परीक्षण को 1981 में पुनः संशोधित किया गया जिसे 'वेस आर' कहा गया। फिर वेस आर का पुनः संशोधन 1977 में किया गया जिसे वेस–AAA कहा गया। 'वेस–AAA के भी दो भाग थे–शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी शाब्दिक मापनी में 7 उप–परीक्षण थे तथा क्रियात्मक मापनी में 7 उप–परीक्षण थे। इस तरह से कुल मिलाकर उसमें 14 थे।

'वेस–आर' के शाब्दिक मापनी के 7 उप–परीक्षणों एवं उनका वर्णन निम्नांकित है–

1. **सूचना परीक्षण**–इसके द्वारा कुछ ऐसी सामान्य सूचनाओं के बारे में ज्ञान का मापन होता है जिसे एक सामान्य वयस्क से उम्मीद की जाती है।
2. **बोध परीक्षण**–इसके द्वारा व्यक्ति से यह पूछा जाता है कि क्यों किसी चीज को किया जाना चाहिए या उसे अमुक परिस्थिति में क्या करना चाहिए? इससे व्यक्ति में समझ या सूझ की स्तर का मापन होता है।

3. **अंक विस्तार परीक्षण**—इसमें तीनों अंकों से लेकर नौ अंकों तक के क्रम को परीक्षक पढ़ता है जिसे सुनकर उसी क्रम में तथा विलोम क्रम में उन अंकों को परीक्षार्थी या व्यक्ति बोलता रहता है। इस परीक्षण द्वारा लघुकालीन स्मृति का मापन होता है।
4. **शब्दावली परीक्षण**—इसमें कुछ शब्द होते हैं जिन्हें पढ़कर तथा लिखकर परीक्षक व्यक्ति को देता है। व्यक्ति को उन शब्दों को परिभाषित करना होता है या उसका अर्थ बतलाना होता है।
5. **अंकगणितीय परीक्षण**—इसमें कुछ साधारण गणितीय समस्याएं होती हैं जिन्हें बिना कागज एवं पेंसिल की मदद से व्यक्ति को समाधान करना होता है। इससे व्यक्ति के परिमाणात्मक चिंतन का मापन होता है।
6. **समानता परीक्षण**—इसमें 15 युग्मित एकांश होते हैं और रोगी को प्रत्येक प्रश्न में दिए गए वस्तुओं के बीच समानता बतलाना होता है।
7. **अक्षर—संख्या अनुक्रमिकता**—यह एक पूरक परीक्षण है जिसका उपयोग व्यक्ति के बौद्धिक स्तर के बारे में अतिरिक्त सूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति का चलन स्मृति तथा अवधान का मापन होता है।

वेस—AAA के क्रियात्मक परीक्षण के सात उप—परीक्षण निम्नांकित हैं—

1. **चित्र—पूर्ति परीक्षण**—इसमें 20 चित्र होते हैं और प्रत्येक चित्र से कुछ महत्वपूर्ण अंश गायब होता है। व्यक्ति को यह बतलाना होता है कि कौन—सा अंश गायब है। इसके द्वारा एकग्रता तथा असंगतता के समझ की माप होती है।
2. **चित्र व्यवस्था परीक्षण**—इस परीक्षण में 10 समस्याएं होती हैं। प्रत्येक समस्या में 3 से 6 कार्ड होते हैं जिन्हें खास क्रम में सज्जित करने से एक कहानी बन जाती है। प्रत्येक समस्या के कार्डों को उल्टे—पुल्टे क्रम में दिया जाता है तथा व्यक्ति को उसे समय सीमा के भीतर अर्थपूर्ण ढंग से सज्जित करना होता है। इससे निर्णय करने की क्षमता, पूर्वाभास करने की क्षमता तथा योजना बनाने की क्षमता का मापन होता है।
3. **ब्लॉक डिजाइन परीक्षण**—इस परीक्षण में 9 कार्ड पर 9 आकार के चित्र बने होते हैं। दिये गए ब्लॉक जिसके विभिन्न भाग लाल, उजला तथा उजला और लाल दोनों ही रंग से रंगे होते हैं, की मदद से व्यक्ति को विशिष्ट आकार चित्र के समान बनाना होता है। इस परीक्षण द्वारा अशाब्दिक बुद्धि जैसे दृष्टि गति समन्वय तथा विश्लेषण संश्लेषण क्षमता का मापन होता है।
4. **वस्तु—सज्जीकरण परीक्षण**—इसमें चार ऐसी समस्याएं होती हैं जिनके अंश सभी कटे होते हैं। व्यक्ति को प्रत्येक समस्या के सभी कटे हुए अंशों को जोड़ते हुए सुव्यवस्थित कर दिये गए समस्या की वस्तु को बनाना होता है। यह अत्यन्त ही सरल कार्य होता है और इसके द्वारा व्यक्ति के बोध क्षमता का मापन होने के साथ ही साथ दृष्टि पेशीय समन्वय का भी मापन होता है।
5. **अंक प्रतीक कुटसंकेतन परीक्षण**—इस परीक्षण में व्यक्ति को संकेत—प्रतिस्थापन कार्य करना पड़ता है जिसमें संख्याओं की एक लम्बी कतार होती है जिसके

नीचे के खाली स्थानों को व्यक्ति को भरना पड़ता है। इस कार्य के लिए संकेत दिये रहते हैं जिसमें 1 से 9 तक अंक होते हैं और प्रत्येक अंक के साथ एक चिह्न होता है। अंकों के नीचे की खाली जगह में उपयुक्त चिह्न को लिखना होता है। व्यक्ति 90 सेकेण्ड के भीतर जितने संकेतों को भर सकता था, भरता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि वेस–AAA में 7 शाब्दिक परीक्षण तथा 7 क्रियात्मक परीक्षण होते हैं। 7 शाब्दिक परीक्षणों पर व्यक्ति द्वारा प्राप्त मानक अंकों को तथा 7 क्रियात्मक परीक्षणों पर प्राप्त मानक अंकों को जोड़कर इन दोनों मापनियों पर अलग–अलग प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी पर आये प्राप्ताकों को जोड़कर सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है।

इन प्राप्तांकों की विचलन बुद्धि–लब्धि में बदल दिया जाता है जहां माध्य 100 तथा मानक विचलन 15 होता है। इस मापनी पर तीन तरह के बुद्धि–लब्धि ज्ञात किया जाता है–शाब्दिक बुद्धि–लब्धि क्रियात्मक बुद्धि–लब्धि तथा सम्पूर्ण मापनी–बुद्धि–लब्धि कई अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि वेस–AAA की विश्वसनीयता तथा वैधता का स्तर काफी संतोषजनक है।

वेक्सलर ने बच्चों की बुद्धि मापने के लिए भी दो अलग–अलग मापनी का निर्माण किया है जो निम्नांकित हैं–

डब्ल्यूआईएससी का निर्माण 1949 में 5 साल के बच्चों की बुद्धि मापने के लिए किया गया। 1974 में डब्ल्यूआईएससी को संशोधित कर और अधिक उन्नत बनाया गया तथा उसे डब्ल्यूआईएससी–आर कहा गया है 1991 में इसे पुनः संशोधित किया गया और इसे डब्ल्यूआईएससी–AAA कहा गया। इसे द्वारा 6 साल से 17 साल के आयु की व्यक्तियों की बुद्धि मापी जाती है।

स्पष्ट हुआ कि डब्ल्यूआईएससी–AAA के उप–परीक्षण बहुत हद तक डब्ल्यूआईएससी–AAA के उप–परीक्षण के समान हैं और इसमें वैसे प्रश्न तथा कार्य होते हैं जो बच्चा के लिए उपयुक्त होता है। इस परीक्षण में भी शाब्दिक परीक्षण पर के प्राप्तांक तथा क्रियात्मक परीक्षण पर प्राप्तांक को जोड़कर सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है तथा उन्हें फिर विचलन बुद्धि–लब्धि में बदल दिया जाता है। डब्ल्यूआईएससी–AAA की विशेषता यह है कि इसमें शाब्दिक बुद्धि–लब्धि प्राप्तांक, क्रियात्मक बुद्धि–लब्धि प्राप्तांक तथा सम्पूर्ण मापनी बुद्धि–लब्धि प्राप्तांक के अलावा इस परीक्षण के प्राप्तांकों को चार अन्य कारकों के रूप में भी व्याख्या की जा सकती है–शाब्दिक बोध, प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक संगठन, ध्यानभंगता से मुक्ति तथा संसाधन गति।

डब्ल्यूपीपीएसआई का निर्माण 1967 में वेक्सलर द्वारा 4 साल से लेकर 6/1/2 साल के बच्चों की बुद्धि को मापने के लिए किया गया। इसका संशोधित संस्करण 1989 में प्रकाशित किया गया जिसे डब्ल्यूपीपीएसआई–आर कहा गया। इसके द्वारा 3 साल से लेकर 7 साल 3 महीने के बच्चे की बुद्धि मापी जाती है। इस परीक्षण के करीब–करीब आधे एकांश डब्ल्यूपीपीएसआई–AAA से लिए गए हैं तथा इस परीक्षण में भी शाब्दिक परीक्षण तथा क्रियात्मक मापनी है। इस परीक्षण के शाब्दिक परीक्षण में 6 उप–परीक्षण है तथा क्रियात्मक मापनी में 5 उप–परीक्षण हैं। इस तरह से कुल मिलाकर 11 उप–परीक्षण हैं। शाब्दिक मापनी के 6 उप–परीक्षण इस प्रकार हैं–

1. सूचना परीक्षण
2. शब्दावली परीक्षण
3. अंकगणितीय परीक्षण
4. समानता परीक्षण
5. बोध परीक्षण
6. वाक्य परीक्षण

क्रियात्मक मापनी के पांच उप–परीक्षण निम्नांकित हैं–

1. पशु घर परीक्षण
2. चित्र–पूर्ति परीक्षण
3. भूल–भुलैया परीक्षण
4. ज्यामितीय डिजाइन परीक्षण
5. ब्लॉक डिजाइन परीक्षण।

डब्ल्यूपीपीएसआई में तीन परीक्षणों को छोड़कर बाकी सभी परीक्षण वही हैं जो डब्ल्यूआईएससी के थे। वे तीन नये परीक्षण हैं–पशु घर परीक्षण, वाक्य परीक्षण तथा ज्यामितीय डिजाइन परीक्षण। वाक्य परीक्षण में बच्चों को परीक्षक द्वारा बोले गए वाक्य को बोलकर ही दोहराना होता है। पशु घर परीक्षण में रंगीन सिलिंडर को पशुओं के चित्र से बच्चा को संबंधित करना पड़ता है। पशु घर परीक्षण एक तरह का वैकल्पिक परीक्षण है जिसका उपयोग किसी भी क्रियात्मक परीक्षण के बदले किया जा सकता है। ज्यामितीय डिजाइन परीक्षण में बच्चे को कई तरह के ज्यामितीय डिजाइन एवं आकारों को दिये गए कागज पर पेंसिल के सहारे बनाना होता है।

प्रत्येक उप–परीक्षण पर आये प्राप्तांक को एक मानक प्राप्तांक में जिसका माध्य = 10 तथा मानक विचलन = 3 होता है, में बदल दिया जाता है। फिर उसके आधार पर शाब्दिक क्रियात्मक एवं सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है और उसे विचलन बुद्धि–लब्धि में जिसका माध्य = 100 एवं मानक विचलन = 15 होता है, बदल दिया जाता है। डब्ल्यूएआईएस–AAA तथा डब्ल्यूआईएससी–AAA के समान डब्ल्यूपीपीएसआई–आर भी एक काफी विश्वसनीय एवं वैध बुद्धि मापनी है। शाब्दिक एवं क्रियात्मक परीक्षण की औसत विश्वसनीयता 90 पाया गया है तथा वैधता गुणांक 75 से 80 तक पाया गया है।

वेक्सलर द्वारा प्रतिपादित तीनों मापनियां (डब्ल्यूएआईएस–AAA, डब्ल्यूआईएससी–AAA तथा डब्ल्यूपीपीएसआई–आर) एक तरह की बिन्दु मापनी हैं जिसमें प्रत्येक विषय क्षेत्र के लिए अलग प्राप्तांक दिये जाते हैं।

वेक्सलर मापनी का मूल्यांकन

वेक्सलर द्वारा (डब्ल्यूएआईएस–AAA, डब्ल्यूआईएससी–AAA तथा डब्ल्यूपीपीएसआई–आर का संयुक्त मूल्यांकन एनासटेसी द्वारा काफी सन्तोषजनक ढंग से किया गया। इस मूल्यांकन में इन परीक्षणों के कुछ ऐसे गुण एवं दोषों पर प्रकाश डाला गया है जो काफी महत्वपूर्ण हैं। इन परीक्षणों के गुणों को इस प्रकार बतलाया गया है–

टिप्पणी

1. डब्ल्यूएआईएस–AAA, डब्ल्यूआईएससी–AAA तथा डब्ल्यूपीपीएसआई–आर की तुलना अन्य वैयक्तिक रूप से क्रियान्वित बुद्धि परीक्षणों से करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस परीक्षणों में मापनीकरण प्रतिदर्श का आकार बड़ा था तथा उनमें जीवसंख्या के प्रतिनिधित्व का गुण है। एनासटेसी का मत है कि इस तरह के प्रतिदर्श के आधार पर जो मानक तैयार किये गए है, उनके आधार पर प्राप्तांकों की होने वाली व्याख्या अधिक वैज्ञानिक एवं निर्भर योग्य होती है।
2. वेक्सलर के इन तीनों परीक्षणों की नैदानिक उपयोगिता बच्चों एव वयस्कों के बौद्धिक स्तर का पता लगाने में इतनी अधिक बतलायी गयी है कि अधिकतर चिकित्सकों द्वारा इसे नैदानिक मूल्यांकन का एक अपरिहार्य साधन माना गया है।

वेक्सलर मापनी के कुछ अवगुण भी बतलाये गए हैं जो निम्नांकित हैं–

1. यदि हम वेक्सलर की इन तीनों मापनियों की तुलना स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण से करें तो पाएंगे कि इन तीनों मापनियों के क्रियान्वयन करने में तुलनात्मक रूप से समय एवं श्रम दोनों ही अधिक लगते हैं। कुछेक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि नैदानिक मूल्यांकन करने में कभी–कभी वेक्सलर मापनी के इस परिसीमा के कारण उन्हें कोई दूसरा बुद्धि परीक्षण के क्रियान्वयन के लिए मजबूर होना पड़ता है।
2. एनासटेसी तथा अरविना का कहना है कि इन तीनों मापनियों का सबसे अधिक कमजोर बिन्दु यह है कि इसकी वैधता से संबंधित आनुभाविक आंकड़ों की कमी है। एनासटेसी तथा अरविना के ही शब्दों में, "सभी वेक्सलर मापनियों का सबसे कमजोर गुण उनके सैद्धांतिक आधार की कमी है जिसके कारण उनकी व्याख्या के लिए एक सुसंगत आधार मिलना कठिन साबित होता है।" ऐसी परिस्थिति में इन मापनियों पर आधारित नैदानिक मूल्यांकन की वैधता एवं निर्भरता पर स्वभावतः शंका होने लगती है।
3. इन परीक्षणों में आत्मनिष्ठता अधिक है क्योंकि कुछ एकांश के उत्तर की उपयुक्तता के बारे में अलग–अलग परीक्षक अलग–अलग निर्णय लेने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

इन परिसीमाओं के बावजूद वेक्सलर मापनी जैसा दूसरा कोई मापनी अभी उपलब्ध नहीं है जिसके सहारे व्यक्ति की बुद्धि की माप की जा सके।

इसकी लोकप्रियता का सबूत इससे भी मिल जाता है कि अमेरिका के बाहर भी इस परीक्षण का उपयोग काफी हो रहा है। भारत में वेक्सलर मापनी का खासकर डब्ल्यूएआईएस का भारतीय अनुकूलन पी. रामलिंगास्वामी द्वारा करके इसे भारतीय परिस्थिति में भी काफी उपयोगी बनाया है।

3. रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज

इस परीक्षण का निर्माण जे. सी. रैवेन द्वारा 1930 के शताब्दी के लगभग मध्य में अर्थात 1936 में किया गया। इस परीक्षण द्वारा स्पीयरमैन के बुद्धि सिद्धांत के जी–कारक का मापन होता है। यह एक तरह का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है तथा इसका स्वरूप भाषारहित होने के कारण इसका उपयोग विभिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों के बुद्धि मापन में सफलतापूर्वक किया गया है। अतः यह एक तरह का संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण है।

रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज में बहुविकल्पी एकांश होते हैं। प्रत्येक एकांश में मैट्रिक्स के रूप में प्रत्यक्षज्ञानात्मक अनुरूपता का कार्य सम्पन्न होता है। सामान्यतः प्रत्येक मैट्रिक्स में तीन कॉलम एवं दो रो होते हैं। मैट्रिक्स के चित्र कुछ ऐसे होते हैं कि वे प्रत्येक कॉलम एवं प्रत्येक रो के चित्रों से अर्थपूर्ण ढंग से संबंधित होते हैं। प्रत्येक मैट्रिक्स का एक अंश जो नीचे दाएं हाथ के कोने में होता है, लुप्त होता है। व्यक्ति को कई वैकल्पिक चित्रों में से चुनकर यह बतलाना होता है कि कौन–सा चित्र मैट्रिक्स के लुप्त स्थान पर अर्थपूर्ण ढंग से बैठेगा। इस परीक्षण का मूल उद्देश्य विभिन्न अशाब्दिक सामग्रियों जैसे ज्यामितिक चित्रों में छिपे तार्किक संबंधों को ढूंढ़ने की क्षमता का मापन करना है। रैवेन प्रोग्रेसिव के निम्नांकित तीन प्रारूप हैं–

1. स्टैण्डर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज,
2. रंगीन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज,
3. उच्चतर प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज।

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित हैं–

स्टैण्डर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज में कुल 60 मैट्रीसेज हैं जिन्हें 5 सेटों में बांटा गया है। प्रत्येक सेट में 12–12 मैट्रीसेज हैं जिनके समाधान के लिए करीब–करीब एक ही तरह के नियम की जरूरत पड़ती है। इन मैट्रीसेज की कठिनाई स्तर अलग–अलग होती है। मैट्रीसेज के इन पांच सेटों के समाधान में प्रत्यक्षज्ञानात्मक विभेद, परिभ्रमण तथा पैटनर्स का क्रम परिवर्तन आदि से संबंधित क्षमताओं की जरूरत पड़ती है। एसपीएम द्वारा 5 साल से ऊपर के बच्चों तथा वयस्कों की बुद्धि का मापन होता है।

सीएमपी में 12–12 मैट्रीसेज के तीन सेट होते हैं। ये सभी मैट्रीसेज रंगीन होते हैं और एसपीएम के मैट्रीसेज की तुलना में काफी आसान होते हैं। इसके द्वारा 4 साल से 10 साल के बच्चों की बुद्धि की माप होती है तथा 10 साल के ऊपर के वैसे बच्चों की बुद्धि की भी माप होती है जो मानसिक रूप से दुर्बल होते हैं।

एपीएम का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो बौद्धिक रूप से थोड़ा श्रेष्ठ होते हैं और जिनके लिए एसपीएम के मैट्रीसेज काफी आसान मालूम पड़ते हैं। एपीएम में भी 12–12 मैट्रीसेज के तीन सेट होते हैं और इन मैट्रीसेज का कठिनता स्तर अधिक होता है जिसके समाधान के लिए सूक्ष्म प्रत्यक्षज्ञानात्मक विभेदीकरण की क्षमता की जरूरत पड़ती है।

रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज का उपयोग नैदानिक परिस्थिति में उतना नहीं हुआ है जितना कि स्टैनफोर्ड बिने तथा वेक्सलर मापनियों का हुआ है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज खासकर के एसपीएम तथा सीपीएम का प्रयोग उन बच्चों की बुद्धि मापने में उपयोगी सिद्ध हाता है जो मानसिक रूप से दुर्बल होते हैं तथा जिनमें तार्किक चिंतन की कमी होती है।

4. गुडएनफ ड्रॉ–ए–मैन परीक्षण

मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस परीक्षण का प्रयोग बुद्धि मापने में तब किया जाता है जब उन्हें कम समय में रोगी के बुद्धि के बारे में एक स्थूल सूचना की जरूरत पड़ती है। इसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बिने साइमन परीक्षण के संपूरक के रूप में भी प्रयोग किया है। इस परीक्षण का निर्माण गुडएनफ जो एक महिला मनोवैज्ञानिक थीं, द्वारा 1926 में किया गया

टिप्पणी

था। व्यक्ति को जिसकी बुद्धि की माप होनी है, इसमें एक पुरुष का चित्र बनाने को कहा जाता है। इस परीक्षण द्वारा बच्चों की बुद्धि की माप की जाती है। चूंकि 'पुरुष' का चित्र एक ऐसा चित्र है, जिससे सभी बच्चे परिचित होते हैं, अतः गुडएनफ ने इसे उपयुक्त समझकर अपने परीक्षण में समावेश किया था। पुरुष का चित्र बनाने में कलात्मक कौशलों को महत्व नहीं दिया जाता है परन्तु बच्चों के संप्रत्यात्मक चिंतन तथा प्रेक्षण की क्षमता पर निश्चित रूप से बल दिया जाता है और इसके लिए उसे विशेष अंक भी मिलते हैं। इसे अलावा चित्र में शरीर के अंगों का दर्शन, अंगों का अनुपात, वस्त्र आदि गुणों के लिए भी उसे साख प्रदान किया जाता है।

1963 में हैरिस ने इस परीक्षण का संशोधन किया, जिसके कारण इसका नाम बदलकर गुडएनफ हैरिस ड्रॉइंग परीक्षण रखा गया। इस नये परीक्षण की विशेषता यह थी कि इसमें बच्चा जिसकी बुद्धि की माप होती थी, को तीन चित्र बनाना होता था–एक पुरुष का, एक स्त्री का, और एक स्वयं अपना। इस परीक्षण के द्वारा केजी से लेकर 9 वर्ग के बच्चों की बुद्धि मापी जाती थी। इस तरह से गुडएनफ हैरिस ड्रॉइंग परीक्षण के तीन उप–मापनी थे–पुरुष मापनी, महिला मापनी तथा आत्म मापनी। आत्म मापनी सचमुच में व्यक्तित्व का एक प्रक्षेषण माप के रूप में विकसित किया गया था हालांकि इसके समर्थन में जो आंकड़े उपस्थित किये गए थे, वे अधिक दुरुस्त नहीं थे।

इस परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता से संबंधित अध्ययनों से स्पष्ट हुआ कि ये दोनों ही गुण काफी संतोषजनक मात्रा में उपलब्ध हैं। हैरिस के अनुसार विश्वसनीयता गुणांक 68 से 90 तक पाया गया है तथा वैधता गुणांक 50 तक पाया गया है।

गुडएनफ परीक्षण चूंकि एक संस्कृति मुक्त परीक्षण है अतः इसका प्रयोग सभी संस्कृतियों में हुआ है। नैदानिक परिस्थितियों में भी विशेषकर उपचार गृह में इस परीक्षण का उपयोग स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण तथा अन्य शाब्दिक बुद्धि मापनी के संपूरक के रूप में काफी किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि एनासटेसी ने भी इन शब्दों में की है, "मौलिक ड्रॉ ए मैन परीक्षण स्टैनफोर्ड बिने तथा अन्य शाब्दिक मापनियों के संपूरक के रूप में उपचार गृहों में काफी क्रियान्वित किया गया है।"

5. पीवॉडी चित्र शब्दावली परीक्षण

इस परीक्षण का निर्माण डन द्वारा ढाई साल के बच्चों से लेकर 18 साल के वयस्कों तक की बुद्धि मापने के लिए किया गया है। इस परीक्षण में चार–चार चित्र के 150 सेट होते हैं। व्यक्ति को यह बतलाना होता है कि परीक्षक द्वारा बोले गए शब्द का चार चित्रों में से किससे सही–सही ढंग से वर्णन होता है। स्पष्टतः यह एक शाब्दिक परीक्षण है और उपचार गृहों में इसका प्रयोग मात्रा एक स्क्रीनिंग उद्देश्यों से ही किया जाता है।

स्पष्ट हुआ कि मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई तरह के बुद्धि परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। इन बुद्धि परीक्षणों में स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण तथा वेक्सलर बुद्धि मापनी का प्रयोग अन्य बुद्धि परीक्षणों की तुलना में अधिक किया गया है।

6. कैटेल संस्कृति–मुक्त बुद्धि परीक्षण

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस तरह के बुद्धि परीक्षण का उद्देश्य सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव को नियंत्रित कर बुद्धि मापना है। इस परीक्षण के एकांश कुछ ऐसे होते हैं कि उनका उत्तर देने के लिए किसी तरह के विशिष्ट सांस्कृतिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है और व्यक्ति चाहे किसी भी तरह की संस्कृति में जन्मा हो या उसका पालन–पोषण किया गया हो, उनका उत्तर देने में वह सफल हो पाता है।

इस परीक्षण में व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं के बीच संबंधों एवं अमूर्त्त चित्रों में संबंधित समस्याओं का उत्तर ढूंढ़ने की कोशिश करता है। ये सभी समस्याएं कुछ ऐसी होती हैं जो सांस्कृतिक कारकों सामाजिक श्रेष्ठता एवं पर्यावरणी प्रभावों से मुक्त होता है। इस परीक्षण द्वारा सामान्य मानसिक क्षमता कारक जिसे स्पीयरमैन ने 'जी' कारक कहा है, का मापन होता है।

निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिकों ने कैटेल को इस बात के लिए श्रेय दिया है कि वे सबसे पहले मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण विकसित किया परन्तु उन लोगों ने कैटेल द्वारा उपयुक्त इस पद के लिए उनकी आलोचना की है। इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सचमुच में कोई भी ऐसा परीक्षण नहीं हो सकता है जो संस्कृति के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो। कोई भी सीखा गया व्यवहार पर संस्कृति का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। अतः किसी परीक्षण को पूर्णतः संस्कृति–मुक्त कहना उचित नहीं है। बाद में कैटेल ने उक्त पद में कुछ संशोधन किया और इसका नाम संस्कृति स्वच्छ बुद्धि परीक्षण दिया। परन्तु उसमें भी लगभग वहीं दोष पाये गए। आलोचकों ने कहा कि विभिन्न संस्कृति या उपसंस्कृति के सदस्यों के लिए किसी विशिष्ट एकांश में कितनी स्वच्छता हो सकती है, इस बारे में उनमें अर्थात सदस्यों में कोई सहमति नहीं है। इतना ही नहीं, परीक्षण निर्माणकर्त्ता इस बात का ठीक निर्याणक नहीं भी हो सकते हैं कि वास्तव में कौन एकांश स्वच्छ है या होगा। अतः आजकल मनोवैज्ञानिकों ने संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण के जगह पर संस्कृति ह्रास बुद्धि परीक्षण का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। जैनसन के अनुसार इस तरह के परीक्षण की कुछ मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. ऐसे बुद्धि परीक्षण का स्वरूप क्रियात्मक होता है।
2. इनके एकांशों में चित्र आकृति आदि का प्रयोग किया जाता है।
3. ऐसे बुद्धि परीक्षण में व्यक्ति को मौखिक अनुक्रिया भी कहना पड़ता है।
4. ऐसे बुद्धि परीक्षण शक्ति या क्षमता परीक्षण होते हैं।
5. ऐसे बुद्धि परीक्षण के एकांश में अशाब्दिक एकांश होते हैं।
6. ऐसे बुद्धि परीक्षण में व्यक्ति नयी–नयी समस्याओं का समाधान करते हैं।

7. बच्चों के लिए निर्मित कॉफमैन मूल्यांकन परीक्षण माला

इस परीक्षण का निर्माण कॉफमैन तथा कॉफमैन द्वारा किया गया है और यह मानसिक क्षमता का एक वैयक्तिक माप है। यह एक काफी लोकप्रिय परीक्षण सिद्ध हुआ है। इसकी लोकप्रियता का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि 1987 तक इसका उपयोग करके करीब दस लाख बच्चों की बुद्धि मापी जा चुकी थी। मनोवैज्ञानिकों ने इसकी लोकप्रियता के निम्नांकित तीन मुख्य कारण बतलाये हैं–

टिप्पणी

1. केएबीसी, स्टैनफोर्ड–बिने परीक्षण के चौथे संस्करण के समान बुद्धि के एक वैज्ञानिक एवं उत्तम सिद्धांत अर्थात कैटेल द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत पर आधृत है।
2. केएबीसी में सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों को काफी नियंत्रित कर रखा है। फलतः इसके सहारे विभिन्न संस्कृति के बच्चों की बुद्धि की माप आसानी से किया जाता है।
3. केएबीसी, में ठोस बुद्धि तथा तरल बुद्धि को एक–दूसरे से अलग करने की कोशिश की गयी है और साथ–ही–साथ कुछ इस तरह की नैदानिक सूचना भी प्रदान करने की कोशिश की गयी है जो यह निश्चित कर पाता है कि क्यों बच्चे कुछ कार्य पर उत्तम निष्पादन दिखाते हैं तथा कुछ कार्य पर खराब निष्पादन दिखाते हैं।

केएबीसी का उपयोग ढाई साल से साढ़े बारह साल के बच्चों की बुद्धि मापने के लिए किया जाता है। परीक्षण के एकांशों में अशाब्दिक चीजों जैसे चित्र एवं आकृतियों का अधिकतर उपयोग किया जाता है जिसके माध्यम से बच्चों को विभिन्न तरह का सूचना संसाधन कार्य करना पड़ता है। इस परीक्षण के मुख्य दो भाग हैं–मानसिक संसाधन खंड तथा उपलब्धि खंड। मानसिक संसाधन खंड द्वारा तरल बुद्धि का मापन होता है जबकि उपलब्धि खंड द्वारा ठोस बुद्धि या अर्जित बुद्धि का मापन होता है।

मानसिक संसाधन मापनी को दो भागों में बांटा गया है–क्रमिक संसाधन तथा समकालिक संसाधन। क्रमिक संसाधन में समस्याओं को एक–एक करके बच्चे समाधान करते हैं जैसा कि हम दिन–प्रतिदिन की जिन्दगी में गणितीय समस्याओं का समाधान करते हैं।

समकालिक संसाधन में बच्चों को दी गई भिन्न–भिन्न सूचनाओं को एक साथ संगठित करना पड़ता है और तब वह समस्या का समाधान करता है जैसा कि हम एक अनुच्छेद के अर्थ को समझने में करते हैं। उपलब्धि मापनी द्वारा शब्दावली, सामान्यज्ञान, अंकगणित का ज्ञान आदि का मापन होता है।

कई प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि केएबीसी एक विश्वसनीय तथा वैध परीक्षण है। कॉफमैन तथा कैमफॉस ने केएबीसी का कारक विश्लेषण किया जिससे यह पता चलता है कि मानसिक प्रक्रिया परीक्षणों अर्थात क्रमिक संसाधन तथा समकालिक संसाधन का मौलिक संगठन आनुभाविक रूप से बिल्कुल ही सही है। इससे परीक्षण में रचनात्मक वैधता होने का सबूत मिलता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केएबीसी का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इसके द्वारा तरल बुद्धि तथा ठोस बुद्धि का मापन अलग–अलग होता है तथा तरल बुद्धि को परीक्षण में दो भागों में अर्थात क्रमिक तथा समकालिक प्रक्रियाओं में बांटा गया है। मर्ज ने परीक्षण के इस दावे पर आशंका व्यक्त की है और कहा है कि यह स्पष्ट नहीं है कि मानसिक संसाधन द्वारा वास्तव में तरल बुद्धि का ही मापन होता है।

गिलफोर्ड ने तो यहां तक कह दिया है कि क्या तरल बुद्धि नाम की कोई चीज सचमुच में होती है? फिर भी केएबीसी को आधुनिक समय में बुद्धि परीक्षण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया है।

वर्ग विशेष मूल्यांकन तकनीक

विशेष आवश्यकता वाले शिक्षार्थियों को उनकी अक्षमता के प्रकार के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। विशेष आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों का मूल्यांकन उनकी अक्षमता के प्रकार पर निर्भर है–

नेत्रहीन विकलांग बच्चों का मूल्यांकन

दृष्टि–समस्याओं से ग्रसित बच्चों के परीक्षण/मूल्यांकन हेतु प्रचलित व प्रयुक्त विधियां अग्रांकित हैं–

- दृश्यात्मक विकारग्रस्त बच्चों को ब्रेल/बड़े मुद्रण अथवा प्रतिलिपिक में प्रश्नपत्र प्रदान किये जायें;
- बच्चे को यह अनुमति रहे कि यह ब्रेल/बड़े मुद्रण/अभिकलित्र (कम्प्यूटर) में अथवा प्रतिलिपिक की सहायता से उत्तर प्रस्तुत कर सके;
- परीक्षण समान ही हो, अन्तर मात्र इतना रहे कि लेखन को ब्रेल अथवा बड़े मुद्रण में कराया जाये। बच्चे का मूल्यांकन माता–पिता, बच्चे व अन्यों से विचार–विमर्श करते हुए मौखिक निष्पादन के आधार पर किया जा सकता है;
- प्रश्न टेप रिकॉर्डर पर प्रदान किये जा सकते हैं तथा बच्चे के उत्तरों/अनुक्रियाओं को भी टेप रिकॉर्डर पर अभिलिखित/दर्ज किया जा सकता है– यदि आवश्यक हो तो ही। बच्चा यदि लिख सकता हो तो यह अवसर उसे प्रदान किया जाये;
- बच्चे को अपने उत्तर लिखने के लिये अभिकलित्र का प्रयोग करने की अनुमति प्रदान की जा सकती है;
- जहां भी सम्भव हो टॉक सॉफ्टवेयर वाले अभिकलित्र का प्रयोग भी परीक्षण/मूल्यांकन–साधन के रूप में किया जा सकता है;
- बच्चा यदि ब्रेल में लिख सके तो अधिक समय उपलब्ध कराया जाना चाहिए– यदि आवश्यकता पड़े तो। माता–पिता से विचार–विमर्श करते हुए अध्यापकों द्वारा अतिरिक्त समय के बारे में निर्णय किया जा सकता है। वैकल्पिक तथा ऐसे दृष्टि–बाधित बच्चे को अल्प संख्या में प्रश्न सौंपे जा सकते हैं जो ब्रेल का प्रयोग कर रहा हो;
- बच्चे को यदि अधिक समय तक ब्रेल में लिखना हो जो उसे विश्राम–अवधि सुलभ करायी जाये क्योंकि अधिक समय तक ब्रेल लिखने से विश्रान्ति (थकान) हो जाती है;
- ब्रेल बिन्दु–त्रुटियों के अंक न काटे जायें (ब्रेल पठन/लेखन जांच की जा रही हो तो अपवाद)। यदि आवश्यक हो तो बच्चे से पूछ लें कि क्या वह उत्तर मौखिकतया बोलने को तैयार है ताकि ज्ञात किया जा सके कि उसे उत्तर ज्ञात हैं अथवा नहीं;
- बड़े मुद्रण के प्रश्नपत्र प्रदान करने के लिये अध्यापक को बालविशेष के लिये उपयुक्त मुद्रण–आकार का आकलन करना होगा जिसे वह देख सके। बच्चे को यह अनुमति प्रदान की जाये कि यह नोक वाले पैन का प्रयोग करते हुए लिखे एवं सादे कागज पर लिखे (यदि आवश्यक हो तो);

- बैठने के लिये पृथक् व्यवस्था की जा सकती है यदि बच्चा टेप रिकॉर्डर के माध्यम से उत्तर प्रस्तुत कर रहा हो अथवा प्रतिलिपिक में बोलकर लिखवा रहा हो– ताकि आसपास के ध्वनिप्रदूषण को अल्पतम किया जा सके;
- चित्र/रेखाचित्र–निर्माणात्मक (चित्रात्मक) प्रश्नों के लिये वैकल्पिक प्रश्न प्रदान किये जा सकते हैं किन्तु उन्हीं प्रकरणों में जहां कि आवश्यकता हो;
- वस्तुनिष्ठ प्रकारीय प्रश्नों के लिये स्पष्ट दिशा–निर्देश प्रदान किये जायें;
- निबंध प्रकारीय प्रश्नों के लिये बच्चा यदि ब्रैल में लिख रहा हो तो अंक तो मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए प्रदान किये जायें, न कि उत्तरों के विस्तार पर। अध्यापक व माता–पिता को इस कार्यविधि में भागीदार बनाया जाये;
- बच्चे को उसके स्वयं के द्वारा आवश्यक समस्त सहायक उपकरणों का प्रयोग करने दिया जाये।

श्रव्य–बाधित समस्याओं वाले बच्चों का मूल्यांकन

- भाषा–अर्जन समस्याओं वाले बच्चों के लिये प्रश्नपत्र सरल हों, प्रमुखतया वस्तुनिष्ठ प्रश्नों से तैयार;
- यथासम्भव उच्चारण, वर्तनी व व्याकरणिक त्रुटियों के लिये अंक न काटे जायें। माता–पिता से विचार–विमर्श करते हुए अध्यापकों द्वारा इस दिशा में निर्णय किया जा सकता है;
- गणितीय शब्द–समस्याएं लघु व सरल हो;
- अतिरिक्त समय वहां प्रदान किया जा सकता है जहां यह अत्यधिक आवश्यक हो (प्रतिघण्टा 15 मिनट्स का विस्तार अथवा अध्यापक द्वारा जैसा भी निर्णय किया जाये);
- लिखित अनुक्रियाओं द्वारा मौखिक मूल्यांकन को प्रतिस्थापित किया जाये– यदि आवश्यक हो तो;
- बच्चे को त्रिभाषा–सूत्र से मुक्त रखा जाये एवं उसके अपने सांस्कृतिक परिदृश्य के अनुसार उसे भाषा/भाषाएं पढ़ायी जायें; सांकेतिक भाषा का भी प्रयोग किया जा सकता है;
- परीक्षा के दौरान दिये गये समस्त मौखिक दिशा–निर्देशों को पट्ट पर लिखा भी जाये।

स्थूलता विकृतिग्रस्त बच्चों का मूल्यांकन

- उस कक्ष तक बच्चे की शारीरिक पहुंच सुनिश्चित करें जहां मूल्यांकन/परीक्षा को सम्पन्न किया जाना है;
- बच्चे को यदि हाथ में बाधा के कारण लेखन में समस्या हो तो अधिक समय प्रदान किया जाये– बच्चे की आवश्यकताओं के अनुसार अथवा वैकल्पिकतया अल्प संख्या में प्रश्न प्रदान किये जा सकते हैं अथवा प्रतिलिपिक उपलब्ध कराया जा सकता है।

मस्तिष्क पक्षाघात से ग्रसित बच्चों का मूल्यांकन

- जांच–क्षेत्र तक बच्चे की दैहिक पहुंच सुनिश्चित करना;
- पृथक् कक्षा प्रदान करना होगा;
- यथावश्यकता लेखक सुलभ कराया जाये;
- अभिकलित्र (कम्प्यूटर) व वॉयस–सिंथेसाइज़र इत्यादि के रूप में प्रौद्योगिकी का प्रयोग;
- प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करने के लिये कम्यूनिकेशन–बोड्र्स का प्रयोग;
- प्रश्न प्रकारों में इस प्रकार रूपान्तरण कि मोटर कठिनाइयों से निपटा जा सके, जैसे कि चित्रकला व ज्यामिति से सम्बन्धित प्रश्नों को न परखना। निर्णय अध्यापक व माता–पिता द्वारा किया जा सकता है;
- यदि दृश्य, श्रवण व बौद्धिक विकृति जैसी स्थितियां परस्पर सम्बद्ध रूप में विद्यमान् हों तो उपरोक्त बाधाओं/व्यवधानों में से प्रत्येक के लिये प्रस्तुत विशिष्ट मूल्यांकन–युक्तियों का प्रयोग किया जाये;
- अनुकूलित कुर्सी–मेज की व्यवस्था कराते हुए उपयुक्त आसनगत व बैठने की सुविधा प्रदान की जाये;
- प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करने का समय यथावश्यकता विस्तारित किया जाये। विश्रान्ति (थकान) का सामना करने के लिये विराम/अन्तराल प्रदान किये जा सकते हैं;
- अनुकूलित उपकरणों व यंत्रों का प्रयोग, जैसे कि पेन्सिल ग्रिप्स, इत्यादि;
- पत्रक/उत्तरपुस्तिका पर्याप्त मोटी होनी चाहिए क्योंकि सेरेब्रल पाल्सी से ग्रसित बच्चे लिखते समय कई बार बहुत दबाव लगाते हैं।

मानसिक मंदता से ग्रसित बच्चों का मूल्यांकन

- प्रश्नपत्र में प्रयुक्त भाषा सरल हो;
- मानसिक अवमंदनग्रस्त बच्चे के मूल्यांकन के लिये तैयार प्रश्नों का कठिनता–स्तर उस बच्चे की समझ के स्तर पर हो;
- उत्तर प्रस्तुत करने का समय बढ़ा दिया जाये। विश्रान्ति से जूझने के लिये अन्तराल उपलब्ध कराये जायें;
- जहां भी आवश्यक हो इन बच्चों के मूल्यांकन के प्रयोजन से उपयुक्त अध्यापन एवं अधिगम सामग्री के प्रयोग में लचीलापन रखा जाये। उदाहरणार्थ कॉन्क्रीट सामग्री, फ़्लेश काड्र्स, दृश्यात्मक सहायक–सामग्रियों, चित्रात्मक दृष्टान्तों इत्यादि का प्रयोग;
- मानसिक अवमंदनग्रस्त बच्चों को उच्चारण/वर्तनी/वैयाकरणिक त्रुटियों के लिये दण्डित न किया जाये किन्तु उन्हें उनकी त्रुटियों से अवगत कराया जाये;
- प्रश्नों की संख्या सीमित रखी जाये– यदि ऐसी आवश्यकता हो तो;
- प्रश्न प्रमुखतया वस्तुनिष्ठ/बहुविकल्पी/चित्रात्मक हों: यदि ऐसा आवश्यक हो तो।

टिप्पणी

बहु–अक्षमताओं से ग्रसित बच्चों का मूल्यांकन

- अतिरिक्त समय सुलभ कराया जाये;
- ऐसे बच्चों को विशेष उपस्कर प्रदान किये जायें;
- यथेष्ट स्थान के लिये व्यवस्थाएं की जायें;
- दैहिक सहजता सुनिश्चित करने के लिये बच्चे की सहायता की जाए;
- शौचालयों तक सरल पहुंच को सुनिश्चित किया जाए;
- लेखक अथवा प्रतिलिपिक की व्यवस्था करना– यदि बच्चे को आवश्यक हो;
- बच्चे की आवश्यकताओं के अनुसार प्रश्नपत्र में उपयुक्त रूपान्तरण किये जायें;
- बहु–अक्षमताओं से ग्रसित कुछ बच्चों को अतिरिक्त संकेतों अथवा व्यवस्थाओं की आवश्यकता पड़ सकती है– जिन्हें कि परीक्षाओं के दौरान सुलभ कराया जाये।

3.3.4 सहकारी व सहयोगात्मक अधिगम

कक्षा में छात्रों को शिक्षण कराते समय अध्यापक कई विधियों एवं युक्तियों का उपयोग करते हैं। कई विधियों एवं युक्तियों के प्रयोग का उद्देश्य शिक्षण को प्रभावी बनाना होता है। शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए छात्र सहभागिता की अत्यंत आवश्यक होती है। कभी-कभी किसी प्रकरण को स्पष्ट करने के लिए अध्यापक अन्य अध्यापकों तथा विषय विशेषज्ञों की सहायता लेते हैं।

सहकारी अधिगम

सहकारी अधिगम में बालक एक-दूसरे की आवश्यकताओं के अनुसार आपस में अधिगम करते हैं। अपनी समस्याओं को स्वयं ही सुलझाते हैं तथा दिए गए कार्यों को पूरा करते है। यह एक प्रकार से कक्षा के अंदर कक्षा का दृश्य बन जाता है। जब सामान्य कक्षा के शिक्षण का कार्य समाप्त हो जाता है तो सहकारी शिक्षण का कार्य आरंभ हो जाता है। सहकारी अधिगम द्वारा होनहार बालकों के सहयोग से, शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने की चेष्टा की जाती हैं। इस विधि द्वारा प्रत्येक बालक की शैक्षिक योग्यताएं, जैसे-प्रश्न पूछना, उत्तर देना, सुझाव देना, सकारात्मक सोचना व बोलना, सहयोग तथा बड़ों के प्रति आदर आदि का विकास होता है। दूसरे बालकों के सहयोग से कार्य करके सीखने की योग्यता, उनको दूसरों के साथ स्थायी संबंध बनाने में सहायक होता हैं। सहकारी अधिगम द्वारा बालक के ज्ञान व कौशलों के विकास में सहायता प्राप्त होती है।

सहकारी अधिगम में अध्यापक एक योजनाकार सहायक तथा निरीक्षक के रूप में कार्य करता है। इस विधि में बालकों को उनकी शैक्षिक आवश्यकता के आधाार पर समूहों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक समूह के सभी सदस्य एक-दूसरे को अधिगम करना सिखाते हैं। छात्रों के समूह बनाते समय अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए-

- छात्रों की योग्यता के आधार पर समूह का निर्माण करना चाहिए।
- अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक बालक अपनी अधिगम संबंधी आवश्यकता को पूरा करें।

- अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक बालक समूह के अपने अन्य साथियों की सहायता करें।
- अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक बालक सामाजिक कौशलों का विकास कर समूह में बैठकर समस्याओं का समाधान करना सीखें।

सहकारी अधिगम के उद्देश्य

सहकारी अधिगम के निम्न उद्देश्य होते हैं-

- प्रत्येक बालक को सहकारी अधिगम द्वारा शैक्षिक कौशलों को उभारने के अवसर प्रदान करना।
- प्रत्येक बालक को इस योग्य बनाना कि वह अपने अधिगम का उत्तरदायित्व ले सके।
- सामाजिक कौशलों को प्राप्त करने के लिए छात्र को उचित वातावरण प्रदान करना।
- समस्याओं के समाधान हेतु छात्रों में कौशलों, आपसी सूझबूझ, सहयोग तथा सहायता आदि का प्रयोग कर सकें अर्थात् इस योग्य हो जाएं कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं निकाल सकें।
- छात्रों में आपसी सहयोग, सहायता, सहानुभूति दूसरों के प्रति सम्मान की भावना, बड़ों के प्रति आदर आदि गुणों का विकास हो।
- छात्रों में सामाजिक अंत:क्रिया का विकास करना।

सहकारी अधिगम की कार्ययोजना

सहकारी अधिगम की कार्ययोजना को निम्न बिंदुओं के द्वारा समझा जा सकता है-

- छात्रों को उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं के आधार पर समूहों में बांट देना चाहिए।
- समूह में छात्रों की संख्या, अधिगम के विषय छात्रों की योग्यता अनुसार होना चाहिए।
- अध्यापक को छात्रों के समक्ष पाठ विशेष के अनुदेशानात्मक उद्देश्यों को स्पष्ट कर देना चाहिए।
- समूह में छात्रों के बैठने की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि छात्र आमने-सामने बैठें, जिससे अधिगम की प्रक्रिया उचित प्रकार से संपन्न हो सके।
- कार्य योजना इस प्रकार नियोजित करनी चाहिए कि प्रत्येक छात्र को हर प्रकार का कार्य करने का अवसर प्राप्त हो ताकि वह प्रत्येक कार्य करने के योग्य हो सके।
- अध्यापक को छात्रों की योग्यतानुसार प्रत्येक सदस्य को कार्य बांट देना चाहिए जैसे किसी छात्र को समूह का नायक, किसी को निर्णायक, किसी छात्र को जांचकर्ता आदि।
- सहकारी अधिगम निम्न कक्षाओं से ही आरंभ कर देना चाहिए, जिससे छात्र सामूहिक कौशलों को सीख सकें तथा उच्च कक्षाओं में उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

- अध्यापक को प्रत्येक समूह को पाठ्य-वस्तु तथा सहायक सामग्री बांट देना चाहिए।
- अध्यापक को प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत उन्नति तथा समूह की जांच करनी चाहिए अर्थात् अध्यापक को प्रगति की जांच सतत् करते रहना चाहिए।
- अध्यापक को प्रत्येक समूह के अंदर तथा दूसरे समूहों के मध्य सामाजिक अंत:क्रिया को निश्चित् करना चाहिए। सामाजिक अंत:क्रिया के बिना सहकारी अधिगम व्यर्थ होता है।

सहकारी अधिगम के लाभ

सहकारी अधिगम के लाभ निम्न हैं-

- सहकारी अधिगम द्वारा छात्रों के सामाजिक तथा शैक्षिक कौशलों को विकसित करने में सहायता मिलती है।
- सहकारी अधिगम द्वारा प्रत्येक बालक को अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं के विकास का अवसर मिलता है।
- सहकारी अधिगम द्वारा छात्रों में सहयोग की भावना का विकास होता है।
- सहकारी अधिगम द्वारा छात्रों में सामाजिक गुणों तथा अन्य गुणों जैसे-नेतृत्व की भावना, सहयोग, सहानुभूति तथा आपसी समझ और गुणों का विकास होता है।

सहकारी अधिगम के दोष

सहकारी अधिगम के निम्न दोष हैं-

- सहकारी अधिगम की क्रिया समय की दृष्टि से काफी खर्चीली होती है, क्योंकि सहकारी अधिागम की योजना बनाने, समूह बनाने, समूहों को कार्य आवंटन तथा तैयारी करवाने में बहुत समय लगता है।
- यदि अध्यापक द्वारा प्रत्येक समूह को उचित निर्देशन तथा सहायक सामग्री उपलब्ध नहीं करायी जाती तो सहकारी अधिगम का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।
- सहकारी अधिगम के दौरान् छात्रों में सहयोग के स्थान पर बदले की भावना विकसित होने का भी डर होता है।
- प्राय: अध्यापक सहकारी अधिगम में रुचि नहीं लेते।

सहयोगात्मक अधिगम

सहयोगात्मक अधिगम वह विधि है, जिसमें दो या दो से अधिक छात्र एक साथ कुछ सीखने का प्रयास करते हैं। व्यक्तिगत अधिगम के विपरीत सहयोगात्मक अधिगम से अधिगमकर्ता एक-दूसरे के स्रोतों तथा कौशलों का उपयोग करते हैं। इस विधि में अधिगमकर्ता एक-दूसरे से सूचना की प्राप्ति एक-दूसरे के विचारों का मूल्यांकन तथा एक-दूसरे के कार्यो को देखते है। सहयोगात्मक अधिगम इस प्रतिमान पर आधारित होता है कि ज्ञान किसी जनसंख्या में सृजित हो सकता है, जहां जनसंख्या के सदस्य सक्रिय रूप से विचारों तथा अनुभवों का साझा करते हैं।

सहयोगात्मक अधिगम वह पर्यावरण या विधि होती है, जिसमें अधिगमकर्ता सामूहिक कार्य में संलग्न होते हैं। इस सामूहिक कार्य में प्रत्येक व्यक्ति की जवाबदारी

टिप्पणी

होती है। इस विधि में आमने-सामने बातचीत तथा कम्प्यूटर से बातचीत भी सम्मिलित होती है।

अतः सहयोगात्मक अधिगम वह विधि, है जिसमें छात्रों का समूह किसी समस्या का समाधान करने, अर्थ समझने या किसी अधिगम परिणाम प्राप्त करने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करता है। सहयोगात्मक विधि में सहयोगात्मक लेखन, समूह परियोजना, सामूहिक समस्या समाधान, वाद-विवाद तथा अन्य क्रियाएं होती हैं तथा यह विधि बहुत कुछ सहयोगी अधिगम के समान होती है।

सहयोगात्मक अधिगम का सैद्धांतिक आधार

सहयोगात्मक अधिगम का आधार वाइगोत्स्की का अधिगम सिद्धांत है। व्योगोट्स्की ने बताया था कि कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिसे अधिगमकर्ता स्वयं कर सकता है और कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिसे अधिगमकर्ता स्वयं नहीं कर सकता। इन दोनों अवस्थाओं के अंतर को अधिकतम विकास का क्षेत्र कहा जाता है। इस अधिकतम विकास के क्षेत्र में वह कार्य आते हैं, जिसे अधिगमकर्ता दूसरे व्यक्तियों के निर्देशन में कर सकता है।

वाइगोत्स्की ने अपने अधिकतम विकास के क्षेत्र में अन्य व्यक्तियों के साथ अंतर्क्रिया तथा संचार को महत्वपूर्ण बताया। इस प्रकार समूह अधिागम से सहयोगात्मक अधिगम की उत्पत्ति हुई।

सहयोगात्मक अधिगम एक संज्ञानात्मक क्रिया है, जिसमें व्यस्क व्यक्ति प्रेरक तथा बालक ग्राहक के रूप में होते हैं। सहयोगात्मक अधिगम उस स्थिति में भी होता है, जब बालक तथा व्यस्क एक साथ कोई कार्य करते हैं अथवा खेलते हैं अथवा किसी गतिविधि को संपन्न करते हैं।

सहयोगात्मक अधिगम की पूर्व अपेक्षाएं

योजना बनाना, समस्या समाधान, मूल्यांकन आदि किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहयोगात्मक अधिगम हो सकता है। सहयोग के लिए 'फ्रेण्ड एवं बुक' के अनुसार, निम्नलिखित पूर्व अपेक्षाएं होनी चाहिए-

- समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सभी को स्वेच्छा तथा सहयोग से आगे आना चाहिए।
- उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सभी सदस्यों को आपसी सहमति के आधार पर एवं दल के रूप में कार्य करना चाहिए।
- सहयोगात्मक में सभी प्रतिभागी एक समान होने चाहिए अर्थात् उनमे कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।
- सहयोगात्मक शिक्षण में दल के सभी सदस्यों के कर्तव्य तथा दायित्व समान होते हैं।
- सामूहिक रूप से लिए गए निर्णयों की सफलता या असफलता का उत्तरदायित्व सभी का होता है। किसी सदस्य विशेष को इसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।
- सहयोगात्मक अधिगम में निर्णय सभी सदस्यों की आपसी सहमति से लिए जाते हैं।

सहयोगात्मक अधिगम तथा तकनीकी

सहयोगात्मक अधिगम में तकनीकी एक महत्वपूर्ण कारक होता है। इंटरनेट तथा आधुनिक तकनीकी ने दूर बैठे लोगों को भी एक समूह में ला दिया है।

सहयोगात्मक नेटवर्क अधिगम में अधिगमकर्ताओं तथा विशेषज्ञों के मध्य इलेक्ट्रॉनिक वार्ता द्वारा अधिगम हो सकता है।

कम्प्यूटर सहायक सहयोगात्मक अधिगम में नई अवधारणा है, जिसमें तकनीकी का प्रयोग सहयोगात्मक अधिगम में अंतर्क्रिया नियमों का नियमन तथा नियंत्रण आदि में होता है। तकनीकी का प्रयोग सहयोगात्मक अधिगम में अंतर्क्रिया, नियमों का नियमन तथा नियंत्रण आदि में होता है।

सहयोगात्मक तथा सहकारी अधिगम में अंतर

यद्यपि सहयोगात्मक अधिगम तथा सहकारी अधिगम दोनों में श्रम विभाजन होता है। लेकिन फिर भी इन दोनों में कुछ अंतर भी पाया जाता है। सहयोगात्मक अधिगम में सभी प्रतिभागियों की पारंपरिक सहमति तथा समन्वित प्रयासों द्वारा किसी समस्या का समाधान खोजा जाता है, वही सहकारी अधिगम में किसी एक प्रतिभागी पर व्यक्तिगत रूप से किसी कार्य का उत्तरदायित्व दिया जाता है तथा इसके बाद वह अपने समूह के अन्य सदस्यों से समन्वय करता है।

सामान्यत: सहकारी अधिगम का प्रयोग बालकों के लिए किया जाता है, वहीं सहयोगात्मक अधिगम का उपयोग महाविद्यालयीन तथा विश्वविद्यालयीन छात्रों के लिए किया जाता है। इन दोनों में एक अंतर यह भी माना जाता है कि सहकारी अधिगम अंतर्क्रिया का दर्शन है, जबकि सहयोगात्मक अधिगम अंतर्क्रिया की संरचना है।

सहयोगात्मक अधिगम के लाभ

सहयोगात्मक अधिगम के निम्न लाभ हैं–

- सहयोगात्मक अधिगम में कम साधनों के प्रयोग से उत्तम परिणाम प्राप्त होते हैं।
- सहयोगात्मक शिक्षण से सामाजिकता का विकास होता है।
- इस विधि में नए-नए विचारों का जन्म होता है, जो अधिगमकर्ताओं के लिए लाभकारी होता है।
- इस विधि से समस्याओं को सुलझाने मूल्यांकन आदि से सहायता प्राप्त होती है।
- इससे सहयोग की भावना का विकास होता है तथा आपस में शिक्षण से संबंधित आलोचना नहीं होती है।
- इससे अध्यापक को सहायता प्राप्त होती है, जिससे वह अपने शिक्षण को प्रभावी बना सकता है।

3.3.5 'सामाजिक अध्ययन' शिक्षण की रचनात्मक विधियां : समस्या समाधान, मस्तिष्क उद्वेलन

रचनात्मकता शिक्षण की एक ऐसी रणनीति है जिसमें विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान, आस्थाओं और कौशल का इस्तेमाल किया जाता है। रचनात्मक रणनीति के माध्यम से विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान और सूचना के आधार पर नई किस्म की समझ विकसित करता है।

इस शैली पर काम करने वाला शिक्षक प्रश्न उठाता है और विद्यार्थियों के जवाब तलाशने की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है, उन्हें निर्देशित करता है तथा सोचने–समझने के नए तरीकों का सूत्रपात करता है। कच्चे आंकड़ों, प्राथमिक स्रोतों और संवादात्मक सामग्री के साथ काम करते हुए रचनात्मक शैली का शिक्षक, छात्रों को कहता है कि वे अपने जुटाए आंकड़ों पर काम करें और खुद की तलाश को निर्देशित करने का काम करें। धीरे–धीरे छात्र यह समझने लगता है कि शिक्षण दरअसल एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इस किस्म की शैली हर उम्र के छात्रों के लिए कारगर है, यह वयस्कों पर भी काम करती है।

रचनात्मक शिक्षण दृष्टिकोण के अंतर्गत कक्षाओं में शिक्षक निम्न गतिविधियों को प्रोत्साहित करता है–

- प्रयोग : छात्र व्यक्तिगत रूप से एक प्रयोग करते हैं और फिर परिणामों पर चर्चा करने के लिए एक वर्ग के रूप में एक साथ आते हैं।
- अनुसंधान परियोजनाएं : छात्र किसी विषय पर शोध करते हैं और अपने निष्कर्षों को कक्षा में प्रस्तुत कर सकते हैं।
- क्षेत्र यात्राएं : यह छात्रों को कक्षा में चर्चा की गई अवधारणाओं और विचारों को वास्तविक दुनिया के संदर्भ में रखने का अवसर देता है। क्षेत्र चर्चाओं के बाद अक्सर फील्ड यात्राएं की जाती हैं।
- फिल्में : ये दृश्य संदर्भ प्रदान करते हैं और इस प्रकार सीखने के अनुभव में एक और बोध लाते हैं।
- कक्षा चर्चा : इस तकनीक का उपयोग ऊपर वर्णित सभी विधियों में किया जाता है। यह रचनावादी शिक्षण विधियों के सबसे महत्वपूर्ण भेदों में से एक है।
- कैम्पस विकि : ये सहायक शिक्षण संसाधनों को क्यूरेट करने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं।

रचनावादी दृष्टिकोण का उपयोग ऑनलाइन सीखने में भी किया जा सकता है। चर्चा मंच, विकि और ब्लॉग जैसे उपकरण शिक्षार्थियों को सक्रिय रूप से ज्ञान का निर्माण करने में सक्षम कर सकते हैं। क्योंकि मौजूदा ज्ञान स्कीमाटा को स्पष्ट रूप से नए ज्ञान को सीखने के लिए एक प्रारंभिक बिंदु के रूप में स्वीकार किया जाता है, रचनावादी दृष्टिकोण व्यक्तिगत और सांस्कृतिक अंतर और विविधता को स्वीकार करते हैं।

समस्या समाधान

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत अनेक रचनात्मक विधियां आती हैं जिनमें, समस्या समाधान विधि प्रभावी शिक्षण की एक महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि में भौतिक गतिविधियों के स्थान पर मानसिक गतिविधियों पर अधिक बल दिया जाता है। समस्या समाधान विधि के साथ मानसिक तथा सृजनात्मक चिंतन जुड़ा होता है। इस विधि में पहले एक समस्या छात्रों को प्रदान की जाती है फिर छात्रों को उसकी पहचान करके उसका हल ढूंढ़ना होता है।

आसुबेल के अनुसार, ''समस्या समाधान में संप्रत्यय निर्माण तथा खोज विधि एक भाग के रूप में सम्मिलित होती है।''

थॉमस रिस्क के अनुसार, ''समस्या समाधान का अर्थ किसी कठिनाई तथा जटिलता पर एक नियोजित प्रयास है, जिससे उस समस्या का हल प्राप्त हो सके। इसमें विवेचनात्मक चिंतन सम्मिलित होता है। इसमें मात्र उपलब्ध कराये गये लक्ष्य तथा विचार नहीं है।''

समस्या समाधान विधि की विशेषताएं

इस विधि की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

- यह विधि छात्रों के समक्ष एक चुनौती प्रस्तुत करती है।
- इस विधि में गंभीर तथा मुख्य समस्या को आपस से जुड़ी छोटी इकाइयों में बांटा जाता है, जिसे प्रत्येक छात्र अपनी योग्यता तथा प्रयासों द्वारा हल करने का प्रयास करता है। सभी छात्रों के सामूहिक प्रयासों से समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है।
- इस विधि में छात्रों की आवश्यकता, रुचियों तथा योग्यता को ध्यान में रखकर शिक्षक के निर्देशन में समस्या का चुनाव किया जाता है।
- इस विधि में छात्र समस्या के समाधान के लिए अपने स्वयं प्रयास करता है।
- छात्रों को दी गयी समस्या का शैक्षणिक महत्व होना चाहिए।
- समस्या छात्र के भौतिक तथा सामाजिक वातावरण तथा अन्य विद्यालयीन विषयों से सह-संबंधित होती है।

समस्या समाधान के सामान्य सिद्धांत तथा कार्यविधि

समस्या समाधान विधि के सामान्य सिद्धांतों एवं क्रियाविधि को निम्न बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है-

- समस्या सुपरिभाषित होनी चाहिए।
- समस्या रुचिकर तथा महत्वपूर्ण होनी चाहिए, जिससे समस्या के समाधान में छात्रों की जिज्ञासा बढ़े।
- समस्या का समाधान निश्चित तथा स्पष्ट होना चाहिए।
- समस्या समाधान में प्रयुक्त सामग्री का चयन न्यायसंगत होना चाहिए।

समस्या समाधान की कार्यविधि

समस्या समाधान में प्रयुक्त किये जाने वाले चरण इस प्रकार होते हैं :

1. **समस्या की पहचान तथा उसे परिभाषित करना :** छात्र किसी समस्या तथा प्रश्न देखते हैं, जिसका उत्तर उन्हें ज्ञात नहीं होता है। इस प्रकार की समस्या अथवा प्रश्न जीवन में प्रतिदिन आते हैं। यह स्पष्ट है कि एक अच्छी समस्या विषय के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान से प्राप्त होती है। इस प्रकार की समस्या की पहचान कर उसे परिभाषित किया जाना आवश्यक होता है।
2. **परिकल्पनाओं का निर्माण :** समस्या को केन्द्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि उससे संबंधित उद्देश्य निर्धारित किये जायें। छात्रों के ज्ञान का अध्ययन संदर्भ साहित्य पढ़कर करना चाहिए तथा कार्य की रूपरेखा बनाने के लिए परिकल्पनाएं निर्मित करनी चाहिए।

टिप्पणी

3. **परिकल्पना का परीक्षण तथा समस्या पर प्रमाण प्राप्त करना :** इस चरण में समस्या से संबंधित जानकारियां या तथ्य एकत्रित कर उनका परीक्षण किया जाता है।
4. **परिणामों की व्याख्या करना :** तथ्यों की प्राप्ति के बाद उनकी व्याख्या उपयुक्त तकनीक द्वारा करना आवश्यक है। परिणाम को चार्ट, ग्राफ अथवा अन्य किसी विधि के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।
5. **निष्कर्ष निकालना :** आंकड़ों की व्याख्या कर सही निष्कर्ष निकाले जाते हैं। ये निष्कर्ष वैद्य तथा उपयोगी होते हैं।

समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

आसुबेल के अनुसार, समस्या-समाधान को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं :

- पूर्व ज्ञान तथा समस्या में सहसंबंध होता है।
- वे समस्या समाधान में स्वयं आश्वस्त होते हैं।
- सकारात्मक अभिवृद्धि से बालक दृढ़ चिंतन करते हैं।
- समस्या समाधान में छात्रों पर भावनात्मक तथा व्यक्तिगत सोच विचार का प्रभाव नहीं होता है।

समस्या समाधान विधि के लाभ

- समस्या समाधान विधि से छात्रों में समस्या के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति का विकास होता है, जो उनके भावी जीवन में घटित होगी। छात्र भविष्य में भी इस समस्याओं के समाधान के प्रयास करेंगे।
- इस विधि से छात्रों में विवेचनात्मक चिंतन का विकास होता है।
- इस विधि द्वारा छात्रों में विभिन्न कौशलों का विकास होता है।
- समस्या समाधान विधि से मानसिक अभिवृत्ति का विकास होता है, जिससे अधिगम तर्कसंगत बनता है।
- यह विधि मनोविज्ञान पर आधारित होती है, क्योंकि इस विधि में छात्रों की रुचियों, योग्यताओं आदि को ध्यान में रखकर समस्या का चुनाव किया जाता है।
- इस विधि द्वारा शिक्षक तथा छात्रों के मध्य प्रगाढ़ता विकसित होती है।
- इस विधि द्वारा शिक्षण उपयोगी तथा प्रायोगिक होता है। इस विधि में छात्रों के मध्य व्यक्तिगत सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए सहयोग की भावना का विकास होता है।

समस्या समाधान विधि के दोष

- इस विधि से निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा नहीं होता।
- इस विधि का आधार धैर्य तथा चिंतन है इसलिए अनेक छात्र इसे नहीं अपनाते।
- समस्या समाधान विधि में केवल बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है।

  इससे अन्य गतिविधियों की उपेक्षा होती है, जिससे छात्र का संतुलित विकास प्रभावित होता है।

- उपयुक्त सामग्री के अभाव में इस विधि का उचित उपयोग नहीं हो पाता।
- सभी शिक्षक इस विधि के उपयोग में प्रशिक्षित नहीं होते हैं।

समस्या समाधान विधि को उपयोगी बनाने हेतु सुझाव

- समस्या समाधान के लिए आवश्यक सामग्री सरलता से उपलब्ध होना चाहिए।
- समस्या छात्र के जीवन तथा वास्तविकता से संबंधित होनी चाहिए।
- शिक्षक को सभी छात्रों को गतिविधि में भाग लेने के समान अवसर प्रदान करने चाहिए, जिससे सभी छात्र सक्रिय हो सकें।
- समस्या छात्र के मानसिक स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।
- इस विधि का उपयोग करते समय छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नता पर शिक्षकों को ध्यान देना चाहिए।

मस्तिष्क उद्वेलन

सामाजिक अध्ययन में अपने छात्रों को प्रभावी बनाने के लिए, शिक्षक कई विधियों का प्रयोग छात्रों पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से करता है। मस्तिष्क उद्वेलन एक समूह तकनीक है, जिसके द्वारा नये तथा उपयोगी विचार प्राप्त होते हैं एवं यह प्रविधि सृजनात्मक चिंतन को भी प्रोत्साहित करती है।

मस्तिष्क उद्वेलन अपेक्षाकृत सरल तथा सस्ती विधि है, जिससे नए-नए विचारों का जन्म होता है। इस विधि द्वारा समस्या का सृजनात्मक समाधान होता है। यद्यपि इस विधि का प्रयोग व्यक्तिगत् रूप से भी किया जा सकता है लेकिन साधारणतः इस इसका प्रयोग उस समूह के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है, जो किसी समस्या या स्थिति के लिए नए-नए विचारों तथा समाधान की खोज में होते हैं। इस विधि का प्रयोग लगभग उन सभी स्थितियों में किया जा सकता है, जहां किसी समस्या का समाधान किया जाना है फिर नए विचारों की आवश्यकता होती है। इस प्रविधि का उपयोग छोटे या बड़े किसी भी प्रकार के समूह में किया जा सकता है।

प्रभावी मस्तिष्क उद्वेलन सत्र वे होते हैं, जहां कुछ नियम तथा अवरोधक होते हैं। सामान्यतः इस विधि में एक दल नायक की नियुक्ति की जाती है, जो मस्तिष्क उद्वेलन सत्रों को नियंत्रित करते हैं तथा उनके लिए उत्तरदायी होते हैं। दल नायक दीवाल, फ्लिप चार्ट या श्यामपट्ट पर लिखे नए विचारों को लिपिबद्ध करने के लिए भी उत्तरदायी होता है। मस्तिष्क उद्वेलन सत्र 30-40 मिनट से अधिक समय के नहीं होने चाहिए। एक बार जैसे ही सत्र पूर्ण होता है विचारों को आगे चयन तथा मूल्यांकन के लिए प्रेषित कर दिया जाता है। विचारों के चयन में वित्त, समय, उपलब्ध व्यक्ति तथा अन्य प्राथमिकताओं का ध्यान रखा जाता है।

मस्तिष्क उद्वेलन का उद्देश्य नए विचारों तथा सूचनाओं को प्राप्त करके समस्या का समाधान करना है, जिससे समस्या की पहचान, समस्या का परिभाषीकरण, समस्या समाधान में संभावित रुकावटों या अवरोधों की पहचान की जा सके।

मस्तिष्क उद्वेलन के प्रतिभागी तथा नियंत्रक प्रतिभागी

मस्तिष्क उद्वेलन प्रविधि से तीन प्रकार के प्रतिभागियों की आवश्यकता होती है :

- नायक
- लेखक
- दल के सदस्य।

अब इन तीनों प्रतिभागियों के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करते हैं-

नायक

नायक को अच्छा श्रोता होना चाहिए। सत्र आरंभ करने के पूर्व की जाने वाली गतिविधियों को तैयार करने का दायित्व नायक पर होता है। सत्र आरंभ के पूर्व नायक को मस्तिष्क उद्वेलन को आयोजित करने के कारण तथा उससे संबंधित कथन समूह के सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। सत्रों के आयोजन के दौरान नायक को नियमों का पालन करना होता है।

लेखक

लेखक को प्रत्येक विचार इस प्रकार स्पष्ट रूप से लिखना होता है कि समूह में से प्रत्येक प्रतिभागी को वह दिख सके। लेखक के पास पर्याप्त सामग्री का होना आवश्यक है, जिससे वह विचारों को इस प्रकार लिख सकें कि समूह के प्रत्येक सदस्य को वह दिख सकें। लेखक को भी नायक के समान तथा अच्छा श्रोता होना चाहिए।

दल के सदस्य

मस्तिष्क उद्वेलन के लिए गठित समूह में प्रतिभागियों की संख्या पांच से कम तथा दस से अधिक नहीं होनी चाहिए। समूह में सदस्यों की आदर्श संख्या छह या सात मानी जाती है। कभी-कभी मस्तिष्क उद्वेलन समूह में किसी ऐसे सदस्य को सम्मिलित करना लाभदायक होता है, जिसने विषय पर पूर्व में कार्य किया हो।

दल के सदस्यों के लिए मस्तिष्क उद्वेलन में इन बिन्दुओं का पालन करना आवश्यक होता है-

1. दल के सदस्य बारी-बारी से सहयोग करेंगे।
2. कोई सदस्य किसी सत्र विशेष में सहयोग का अस्वीकार कर सकता है, लेकिन उसे प्रत्येक चक्र में सहयोग के लिए कहा जाएगा।
3. एक बार में एक विचार का सहयोग किया जाएगा।
4. प्रतिभागी मस्तिष्क उद्वेलन के दौरान विचारों का स्पष्टीकरण नहीं देंगे, क्योंकि इसमें प्रक्रिया धीमी हो जाती है तथा विचारों का अपरिपक्व मूल्यांकन होता है।

मस्तिष्क उद्वेलन के नियम

1. सभी विचार स्वागतयोग्य होते हैं। मस्तिष्क उद्वेलन में कोई भी विचार या उत्तर गलत नहीं होता है तथा इन विचारों का कोई निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए।
2. कम समय में उच्च गुणवत्ता के विचार देने का प्रयास किया जाना चाहिए।
3. सहयोग के लिए सक्रिय रहना आवश्यक है। किसी भी नए तथा मौलिक विचार का स्वागत होना चाहिए।

मस्तिष्क उद्वेलन की पूर्व तैयारी

1. मस्तिष्क उद्वेलन आरंभ होने के पूर्व समूह को मस्तिष्क उद्वेलन के बारे में पता होना चाहिए, इससे उन्हें सत्रों के बारे में चिंतन का अवसर मिलेगा।
2. सृजनात्मकता के लिए उचित मानसिक एवं भौतिक पर्यावरण उपलब्ध कराना चाहिए। पत्रिका, क्ले, किताबें, रंग, बोर्ड आदि पहले से ही उपलब्ध होना चाहिए।
2. विचारों के अभिलेखन के लिए पर्याप्त स्थान तथा सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। सुविधाओं में फ्लिप चार्ट, चॉक, श्यामपट्ट, बड़े मॉनीटर वाले कम्प्यूटर आदि सम्मिलित हैं।

मस्तिष्क उद्वेलन का आयोजन

मस्तिष्क उद्वेलन में निम्नलिखित पद होते हैं :

1. **सत्र का परिचय :** मस्तिष्क उद्वेलन सत्र के कारणों का पुनरीक्षण, मूलभूत नियम तथा दल के सदस्यों को उपयोग की जाने वाली विधि के संबंध में पूरी जानकारी दी जानी चाहिये।
2. **पूर्व तैयारी :** मस्तिष्क उद्वेलन, सत्र आरंभ करने के पूर्व 5-10 मिनट की गतिविधि कराना चाहिए जो मस्तिष्क उद्वेलन में सहायता करें। गतिविधि किसी ऐसे विषय पर आधारित होना चाहिए, जिससे प्रतिभागियों को सृजनात्मकता प्रदर्शित करने का अवसर मिलें। यदि ये गतिविधि मस्तिष्क उद्वेलन में कोई बाधा उत्पन्न करें तो दल नायक चर्चा कर उसे रोक सकता है।
3. **मस्तिष्क उद्वेलन :** मस्तिष्क उद्वेलन का यह भाग क्रियात्मक तथा सृजनात्मक होता है, इसके लिए 20-25 मिनट की समय-सीमा निर्धारित हैं। कभी-कभी 5 मिनट अधिक भी दे दिए जाते हैं। जब पूर्ण उत्तेजना हो तब समाप्त कर दिया जाए तथा समूह पर कार्य करने के लिए दबाव नहीं डालना चाहिए। समूह को अधिकतम विचार देने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिये। लेखक द्वारा सभी सुझावों को अभिलेखित करना चाहिए। लेखक को वक्ता सदस्य द्वारा कहे गए शब्दों को अक्षरश: लिखना होता है। यदि वक्ता के विचार बहुत अधिक लम्बे हो तो लेखक को वक्ता के विचारों को संक्षिप्त कर उनका सत्यापन मूल वक्ता द्वारा कराया जाना चाहिए।
4. **विधि एवं विचार :** विचार का स्पष्टीकरण करने के लिए पुनरावलोकन करना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक बात समझ में आ जाए। समान विचारों को मिलाकर समूह बना लेना चाहिए। इस स्थिति में नायक कृत्रिम विचारों को हटा सकता है। अब इसके बाद समूह को मानदण्ड के मूल्यांकन के लिए स्वीकृति देनी होती है। इन मानदण्डों में समय का आवंटन, प्रतिभा तथा समूह की प्रतिभा आदि सम्मिलित होते हैं।
5. **उपयुक्त होने पर एकमत होना :** समूह पहले दस विचारों को विचार करने के लिए लेता है फिर समूह पांच विचारों का अपना मत देता है तथा समूह की भावना जानने के लिए परिणामों को चिह्नांकित करता है। विचारों के पुन:शोधन के बाद प्रत्येक दल-सदस्य को 100 अंक दिये जाते हैं। दल के सदस्य अपने अंकों का

उपयोग इच्छानुसार विचारों के लिए कर सकते हैं। दल के सदस्यों को इच्छानुसार पांच मतों को चुनने के लिए कहा जाता है। सबसे अधिक चुने जाने वाले विचारों को प्राथमिकता दी जाती है।

मस्तिष्क उद्वेलन से उत्तम परिणाम प्राप्त करना

मस्तिष्क उद्वेलन सत्रों से अधिकतम परिणाम प्राप्त करने के तरीके निम्न हैं :

1. **समूह की रचना :** समूह में सदस्यों की अधिकतम संख्या 12 हो सकती है। इससे अधिक तथा छह से कम सदस्य संख्या वाले समूह उपयुक्त नहीं होते हैं। समूह में कुछ सदस्य बाहरी होने चाहिए, जिससे कुछ अलग विचार प्राप्त हो सकें। सदस्यों की ज्ञान की गंभीरता, अनुभव एवं आयु में विभिन्नता वांछनीय होती है।
2. **समस्या देना :** समस्या को समूह के समक्ष अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए, जिससे समस्या सदस्यों के अवचेतन में रहे।
3. **कार्यप्रणाली का विवरण :** यदि समूह या समूह के सदस्यों में से कुछ ने किसी मस्तिष्क उद्वेलन सत्र में भाग न लिया हो या उन्हें सही कार्य प्रणाली का ज्ञान न हो तो विधि का विवरण देना लाभदायक होता है। महत्वपूर्ण निर्देशों का प्रदर्शन सत्र के दौरान भी किया जाना चाहिए।
4. **विशिष्ट व्यक्ति या विचार नहीं :** विशिष्ट व्यक्ति या विचार को महत्व नहीं देना चाहिए और न ही किसी व्यक्ति विशेष का पक्ष लेना चाहिए। यदि किसी सदस्य ने समूह में कोई योगदान नहीं किया है तो उसका भी चुनाव नहीं किया जाना चाहिए। यदि समूह का कोई सदस्य सत्र का दमन कर रहा हो तो यह आशा करना चाहिए कि वह स्वयं ही थककर चुप हो जाएगा लेकिन आवश्यकता पड़ने पर विनम्रतापूर्वक कहा जा सकता है कि अन्य सदस्य को भी प्रयत्न करने दो।
5. **स्थिति :** व्यवधान तथा टेलीफोन रहित शांत कक्ष मस्तिष्क उद्वेलन सत्र के लिए उपयुक्त होता है। सत्र के दौरान कक्ष के अंदर तथा बाहर लोगों का आना-जाना नहीं होना चाहिए। सत्र के लिए कक्ष में मेज की कोई आवश्यकता नहीं होती है। 'यू' आकार में कुर्सियों की बैठक व्यवस्था मस्तिष्क उद्वेलन सत्र के लिए उपयुक्त होती है। 'यू' के अंतिम स्थानों या दोनों छोरों पर नायक तथा लेखक की बैठक व्यवस्था होनी चाहिए।

मस्तिष्क उद्वेलन के लाभ

1. इस विधि द्वारा प्रजातांत्रिक प्रकार से विचारों की उत्पत्ति होती है।
2. यह कम खर्चीली विधि है।
3. यह सरलता से समझी जा सकने वाली सरल विधि है।
4. यह विधि सृजनात्मक चिंतन को बढ़ावा देती है।
5. यदि उचित रूप से नियंत्रित किया जाए तो समूह में तुरन्त विचार उत्पन्न होते हैं।
6. इस विधि से विचारों तथा समाधानों की उत्पत्ति होती है, जिनका उपयोग कहीं भी किया जा सकता है।
7. यह विधि विस्तृत सहभागिता तथा संलग्नता के अवसर प्रदान करती है।

मस्तिष्क उद्वेलन के दोष

1. इस विधि में एक अनुभवी तथा संवेदनशील प्रेरक की आवश्यकता होती है, जो छोटे समूहों के सामाजिक मनोविज्ञान को समझता हो।
2. यदि समूह को नियंत्रित न किया जाए तो इस विधि में बहुत अधिक समय लग सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सामाजिक अध्ययन शिक्षण में स्रोत विधि के अंतर्गत कितने प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाता है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

4. किन प्रश्नों का उत्तर छात्र दो तथ्यों अथवा बिंदुओं की तुलना करके देते हैं?

   (क) सूचनात्मक प्रश्न (ख) तर्कयुक्त प्रश्न

   (ग) तुलनात्मक प्रश्न (घ) परीक्षात्मक प्रश्न

5. किस अधिगम में बालक एक–दूसरे की आवश्यकता के अनुसार आपस में अधिगम करते हैं?

   (क) सहयोगात्मक अधिगम (ख) सहकारी अधिगम

   (ग) क व ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

3.4 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का शिक्षण

विभिन्न क्षमताओं वाले बालकों की शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि आखिर 'विशिष्ट शिक्षा' की अवधारणा है क्या?

शिक्षा शब्द अत्यंत व्यापक है परंतु इस शब्द का उपयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। शिक्षा और जीवन का निकट का संबंध है। 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है जैसे शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया (Education as a process of Development), शिक्षा एक अध्यापक–प्रशिक्षण (Education as a Teacher Training) शिक्षा एक पाठ्य वस्तु (Education as content or subject) शिक्षा एक विनियोग Education as an investment, शिक्षा एक सामाजिक परिवर्तन एवं नियंत्रण का यंत्र Education is an instrument of social change and social control, शिक्षा सामाजीकरण की एक प्रक्रिया (Education as a creature and creator of society) आदि।

आधुनिक शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो समाज की व्यवस्था को दृढ़ बनाकर बालकों को उनके विकास के लिए समुचित अवसर देकर समाज के मूल्यों की सुरक्षा करे। इसलिए शिक्षा की पुनर्रचना का प्रयत्न इसी उद्देश्य को लेकर चल रहा है।

मनोविज्ञान बालक के समन्वित विकास पर बल देता है जबकि समाजशास्त्र के अनुसार यह विकास समाज की उपयोगिता की दृष्टि से होना चाहिए।

शब्द 'विशिष्ट शिक्षा' उन सभी पक्षों को सम्मिलित करता है जो विशिष्ट बालकों पर लागू होती है। यह शिक्षा शारीरिक, मानसिक और प्रतिभाशाली अथवा विशिष्ट गुण संपन्न के रूप में बालकों पर अपनायी जाती है। लेकिन यह विधि सामान्य बालकों के शिक्षण में नहीं अपनायी जाती है। विशिष्ट शिक्षा का इतिहास काफी लंबा है। जाति व्यवस्था का प्राचीन काल में स्वीकृत आधार शिक्षा के प्रत्यय से संबंधित है। प्राचीन काल में ब्राह्मण शिक्षा के क्षेत्र में और क्षत्रिय युद्ध क्षेत्र में निपुण माने जाते थे। इसी प्रकार वैश्यों एवं शूद्रों के कार्य क्षेत्र अलग–अलग थे। इस प्रकार का वर्गीकरण मूल रूप से विभिन्न प्रतिभाओं के मनुष्यों को भिन्न–भिन्न श्रेणियों में रखने के दृष्टिकोण से किया गया था।

आधुनिक शिक्षण प्रविधियां भी विशिष्ट बालकों की शिक्षा के क्षेत्र में इसी प्रकार की प्रक्रियाओं का अनुसरण किया जाता है। शिक्षाविद सामान्य तथा शारीरिक रूप से बाधित बालकों पर विशेष ध्यान देने के कारण विशिष्ट बालकों की आवश्यकता पर कम ध्यान दे पाते हैं। विशिष्ट शिक्षा के बारे में विभिन्न विचार विवादास्पद हैं। ये विचार बालकों की शिक्षा की मुख्यधारा से भिन्न हैं जिसके कारण विशिष्ट बालकों को विशेष तथा अधिक अवसर प्रदान कराने के पक्ष में हैं।

विशिष्ट शिक्षा का अर्थ

विशिष्ट शिक्षा के स्वरूप को 'कौन', 'क्या', 'कहां', आदि जैसे शब्दों में देखा जा सकता है। विशिष्ट शिक्षा के अर्थ को विलक्षण बालकों की विशिष्ट आवश्यकता, योग्यता तथा अनेक व्यक्तिगत शिक्षा–प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। विभिन्न कार्य क्षेत्रों के विशेषज्ञ, शिक्षाविद, शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, वाणी प्रशिक्षक, जन्तु वनस्पति विज्ञानी, चिकित्सक आदि प्रतिभाशाली बालकों की आवश्यकताओं के अनुरूप सहायता करने का उत्तरदायित्व रखते हैं।

हमारे संविधान में समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा (Dignity of person) को प्राप्त मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है। आज इस संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जाने के बजाय एक बच्चे के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है।

शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार है। अतः, सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ना आवश्यक है। विद्यालय में ऐसा वातावरण सृजित करना है ताकि बच्चों को समान रूप से सीखने का अवसर प्राप्त हो सके। जरूरत इस बात की है कि सामान्य विद्यालयों में सभी बच्चों को एक उपयोगी शैक्षिक वातावरण प्रदान किया जा सके।

टिप्पणी

हमारे देश में न केवल शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशिष्ट बच्चे हैं बल्कि सामाजिक रूप से अपवंचित वर्ग के बच्चे और लड़कियां विद्यालय की मुख्य धारा से बाहर हैं। अतः इन सभी को मुख्यधारा के विद्यालयों से जोड़ने की चुनौती समावेशी शिक्षा के साथ आती है। इस चुनौती का सामना करने हेतु शिक्षकों को सक्षम बनाना जरूरी है ताकि वे इन बच्चों के प्रति समझ विकसित कर सके। साथ ही शिक्षक में यह क्षमता होना भी आवश्यक है कि वह अभिभावक, परिवार एवं समुदाय को संवेदीकृत एवं अभिप्रेरित करके विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन हेतु वातावरण सृजित कर सकें। इस मॉडयूल के माध्यम से शिक्षकों को इन बच्चों के प्रति संवेदित करने का प्रयास किया गया है जिससे वे इन बच्चों की आवश्यकताओं को समझते हुए उन्हें सही मार्गदर्शन एवं परामर्श दे सकें।

पूर्व में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की परिधि में शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशिष्ट बच्चों को रखा जाता था। नवीन परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, आर्थिक एवं लैंगिक दृष्टिकोण से भिन्न बच्चों को भी इसके अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। हमारे समाज में व्याप्त जो असमानताएं हैं वे कक्षा–कक्ष में प्रक्रियाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलती हैं। बच्चों के साथ उनकी जाति, वर्ग या लिंग के आधार पर हो रहे भेदभाव के कारण कुछ बच्चे इतना असहज महसूस करते हैं कि वे विद्यालय छोड़कर भी चले जाते हैं। ऐसा जरूरी नहीं है कि यदि कोई बच्चा आर्थिक, सामाजिक या लैंगिक रूप से कमजोर/भिन्न है तो उसकी क्षमताएं भी कम होंगी। हां, यह जरूरी है कि ऐसे बच्चों की आवश्यकताएं एवं समस्याएं अन्य बच्चों से अलग हो सकती हैं। इन सब बातों, की समझ एक शिक्षक को कक्षा–कक्ष में समावेशी वातावरण सृजित करने में सहयोग कर सकती हैं।

3.4.1 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों की पहचान, विशेषताएं और प्रकार

सामान्य शिक्षा और विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य समान हैं, लेकिन विशिष्ट शिक्षा के कुछ अतिरिक्त उद्देश्य भी हैं। शारीरिक दोषयुक्त बालकों की विशेष आवश्यकताओं व समस्याओं की पहचान और उनकी रोकथाम के उपाय करना। उनकी सीखने की सीमाओं को ध्यान में रखकर नवीन विधियों द्वारा बालकों को शिक्षा देना। शारीरिक रूप से बाधित बालकों को शिक्षित करके उन्हें पुनर्वासित करना। श्रवण बाधित बालक ऐसे बालक हैं जिनकी सुनने की क्षमता नष्ट हो जाती है तथा वे बोलने और भाषा में परेशानी का सामना करते हैं। ऐसे बालकों को किसी अन्य व्यक्ति की भाषा सुनने तथा समझने में परेशानी होती है क्योंकि ये सुनने की क्षमता खो चुके होते हैं। सभी बालकों के श्रवण बाधिता की क्षमता समान नहीं होती है। जो बालक सुनने की क्षमता को पूर्ण रूप से खो देते हैं वे अन्य बालकों की अपेक्षा गंभीर रूप से कठिनाइयों का सामना करते हैं। इस प्रकार श्रवण बाधित बालक या तो बहुत कम सुन पाते हैं या पूर्णतया नहीं सुन पाते हैं वे बहरे होते हैं। कम सुनने वाले बालक वे हैं जो श्रवण क्षमता को कुछ सीमा तक खो देते हैं। ऐसे बालक जोर से की गई ध्वनि अथवा बोली गई आवाज को सुन सकते

है। इस प्रकार की आवाज को सुनने के लिए उनहें श्रवण यंत्र की आवश्यकता नहीं होती है। श्रवण यंत्र यदि इन्हें उपलब्ध करा दिया जाए तो इससे ये आवाज को और भली प्रकार से सुन सकेंगे। ऐसे बालकों को सामान्य स्कूलों में तथा सामान्य बालकों के साथ शिक्षा देने में कठिनाई नहीं आती। ऐसे अधिकांश बालक सामान्य शिक्षा कक्ष में शिक्षा प्राप्त कर पाते है। गंभीर श्रवण बाधित वे बालक हैं जो जोर से बोली गई आवाज को भी सुनने में असमर्थ हैं। ऐसे बालकों को विशिष्ट प्रविधियों द्वारा प्रारंभिक निपुणता की आवश्यकता होती है तथा इसके पश्चात बालकों का सामान्य स्कूल में शिक्षा के लिए प्रवेश कराया जा सकता है।

विशेष शिक्षा, समेकित शिक्षा एवं समावेशित शिक्षा

1. **विशेष शिक्षा** : विशेष शिक्षा की अवधारणा शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशेष बच्चों को सामान्य विद्यालयों में शिक्षा देने से संबंधित है।
2. **समेकित शिक्षा :** समेकित शिक्षा व्यवस्था में विद्यालय ऐसे बच्चे की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन नहीं करता है अपितु विशेष बच्चों को विद्यालय के अनुरूप ढलना पड़ता है।
3. **समावेशित शिक्षा** : सभी बच्चे चाहे वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशिष्ट हों, आर्थिक, सामाजिक या लैंगिक रूप से अपवंचित हों या प्रतिभावान, धीमी गति से सीखने वाले हों, अधिगम अक्षम बच्चे हों या सामान्य हो, सभी को उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा प्रदान करते हुए शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ना ही समावेशित शिक्षा है। समावेशित शिक्षा इस अवधारणा पर आधारित है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में कमियां हैं इसलिए उसे बच्चे की आवश्यकता के अनुरूप ढलना चाहिए।

विशेष शिक्षा, समेकित शिक्षा तथा समावेशित शिक्षा में अंतर

विशेष शिक्षा	समेकित शिक्षा	समावेशित शिक्षा
1. विशेष बच्चों पर ही केंद्रित	विशेष बच्चे (शारीरिक एवं मानसिक) तथा सामान्य बच्चे दोनों को साथ–साथ लेकर चलती है।	सभी बच्चों पर केंद्रित (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक आदि)
2. विशेष शिक्षक	सामान्य एवं संदर्भ शिक्षक	विशेष रूप से प्रशिक्षित सामान्य कक्षा शिक्षक
3. विशेष पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधि	पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधि विषयवस्तु पर केंद्रित	पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधि बाल केंद्रित (संपूर्ण विकास)
4. प्रतिभागिता हेतु सीमित अवसर	प्रतिभागिता हेतु आंशिक अवसर	प्रतिभागिता हेतु पूर्ण अवसर
5. कक्षा शिक्षण विशेष समूह के बच्चों पर केंद्रित	कक्षा शिक्षण सामान्य बच्चों पर केंद्रित	कक्षा शिक्षण सभी बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप
6. अधिक लागत	अपेक्षाकृत कम लागत	न्यून लागत
7. विशेष विद्यालय	कुछ ही विद्यालय	सभी सामान्य विद्यालय
8. समाज की मुख्यधारा से पृथक	समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के सीमित अवसर	समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित होने के पूर्ण अवसर

वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सभी बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए समाज की मुख्यधारा से जोड़ना है।

विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Special Education)

विशिष्ट शिक्षा तथा सामान्य शिक्षा के उद्देश्य समान होते हैं– जैसे बालकों को उपयुक्त शिक्षा के माध्यम से मानवीय संसाधनों का उत्थान, देश का विकास, समाज का पुनर्गठन, नागरिक विकास, व्यावसायिक कार्य कुशलता आदि प्रदान करना।

टिप्पणी

इन उद्देश्यों के अतिरिक्त विशिष्ट शिक्षा के कुछ निम्नलिखित विशेष उद्देश्य भी हैं–

1. शारीरिक दोषयुक्त बालकों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्व पहचान तथा निर्धारण करना।
2. शारीरिक दोष की दशा में इससे पहले कि वे गम्भीर स्थिति को प्राप्त हों, उनकी रोकथाम के लिए पहले से ही उपाय करना। बालकों के सीखने की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कार्य करने की नवीन विधियों द्वारा बालकों को शिक्षा देना।
3. शारीरिक बाधित बालकों के माता पिताओं को निपुणता तथा कार्यकुशलताओं के बारे में समझाना तथा बालकों की उत्पन्न समस्याओं एवं कमियों के बारे में सुरक्षा तथा रोकथाम के उपाय करना।
4. शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षण समस्याओं की जानकारी देना तथा सुधार हेतु सामूहिक संगठन तैयार करना।
5. शारीरिक रूप से बाधित बालकों का पुनर्वासन करना।

विशिष्ट शिक्षा के सिद्धांत

विशिष्ट शिक्षा निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है–

1. **व्यक्तिगत भिन्नता** : व्यक्तिगत भिन्नता दो प्रकार की होती है–

   (अ) दो व्यक्तियों में अंतर (ब) मनुष्य का स्वयं से भेद होना।

   दूसरे शब्दों में, कुछ छात्र अन्य छात्रों से अधिकांश गुणों में सर्वथा भिन्न होते हैं, जो शिक्षा की ओर विशेष झुकाव रखते हैं। ऐसे छात्रों की विशेष शिक्षण आवश्यकताएं विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से पूरी करनी चाहिए।
2. **कोई भी निरस्त नहीं** – शारीरिक रूप से बाधित सभी बालकों को निःशुल्क उपयुक्त शिक्षा मिलनी चाहिए। सामान्य शिक्षा संस्थाओं में किसी बालक को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का विकल्प किसी विद्यालय की व्यवस्था में नहीं है।
3. **अविभेदी शिक्षा** – ऐसे विद्यार्थियों की पहिचान करनी चाहिए जो विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हैं जिससे उन्हें दी जाने वाली शिक्षा का उपयुक्त स्वरूप सुनिश्चित किया जा सके। प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत रूप से परीक्षा होनी चाहिए। इसके पश्चात सभी छात्रों को विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्रम

से रखा जाना चाहिए। समय–समय पर ऐसे बालकों की कठिनाइयों, समस्याओं तथा उनकी प्रगति का परीक्षण भी किया जाना चाहिए।

4. **वैयक्तिक शिक्षा कार्यक्रम** – जिन विद्यार्थियों को विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है उन्हें व्यक्तिगत शिक्षा कार्यक्रम या तो विशिष्ट कक्षाओं से दिया जाए या उनसे संबंधित संसाधन युक्त कक्षों में इस प्रकार की शिक्षा उन बालकों की वर्तमान कार्यप्रणाली और विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। अभिक्रमित अनुदेश को भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

5. **नियंत्रित वातावरण** – जहां तक संभव हो शारीरिक रूप से बाधित बालकों तथा सामान्य बालकों की शिक्षा एक ही कक्ष में साथ–साथ होनी चाहिए। यह कक्षा सामान्य हो सकती है। सामान्य कक्ष बाधित छात्रों को न्यूनतम विघ्न डालने वाला वातावरण प्रदान करता है।

6. **विशिष्ट प्रक्रिया** – यह प्रक्रिया प्रदर्शित करती है कि शारीरिक रूप से बाधित बालकों के माता–पिताओं को विद्यालय की व्यवस्था का निर्धारण तथा विश्लेषण करने का पूर्ण अधिकार है जहां पर बालकों को उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा दी जा सके। यदि माता–पिता शिक्षण संस्था की कार्यप्रणाली से असंतुष्ट हैं तो वह बालकों को उस संस्था से निकालकर किसी अन्य उपयुक्त शिक्षा संस्था में प्रवेश दिला सकते हैं, जहां पहली संस्था की अपेक्षा शिक्षा के कार्यक्रम उपयुक्त तथा बालकों की आवश्यकता के अनुरूप हों।

7. **माता–पिता का सहयोग** – यदि शारीरिक रूप से बाधित बालकों के माता–पिता भी शिक्षण कार्यक्रमों में रुचि लेते हैं तो विशिष्ट शिक्षण कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकताएं (Needs of Special Education)

यह सत्य है कि पिछड़े हुए एवं प्रतिभाशाली बालकों के उत्थान हेतु विशेष सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता है। इसलिए विशिष्ट शिक्षा के महत्व को समझा जा सकता है।

1. विशिष्ट कक्षाएं बाधित बालकों के लिए आवश्यक हैं क्योंकि उनकी शिक्षा के लिए विशिष्ट विधियां तथा प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

2. प्रतिभाशाली बालकों का बुद्धि स्तर सामान्य बालकों की अपेक्षा ऊंचा होता है। इसलिए प्रतिभाशाली बालकों को सामान्य बालकों के साथ समायोजित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सामान्यतः ऐसा पाया जाता है कि शिक्षक अपनी गति से शिक्षा देता है जो सामान्य बालकों के लिए उपयुक्त है। लेकिन प्रतिभाशाली बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा शीघ्र ही अपना कार्य समाप्त कर लेता है। ऐसी परिस्थिति में यह समस्या आती है कि प्रतिभाशाली बालक अपना समय कैसे व्यतीत करे जबकि शिक्षक सामान्य बालकों के साथ उसी कार्य को पूरा करने में व्यस्त रहता है। सामान्यतः प्रतिभाशाली बालक ऐसी परिस्थिति में

टिप्पणी

अनुशासनहीनता तथा उद्दंडता करने लगते हैं। सामान्य बालकों का पाठ्यचर्या इतना साधारण होता है कि प्रतिभाशाली बालक नीरस हो जाता है तथा कार्य में रुचि खो देता है। प्रतिभाशाली बालक कार्य के प्रति प्रेरित नहीं हो पाते हैं।

3. प्रतिभाशाली बालकों को सामाजिक तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं को ग्रहण करने के लिए अतिरिक्त सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता होती है। इसलिए ऐसी सुविधाएं प्रतिभाशाली बालकों को उनकी कार्य करने की क्षमता से अवगत कराती हैं, तथा शारीरिक रूप से बाधित बालकों में उनके दोषों को कम करने का प्रयास करती हैं। ऐसी परिस्थिति में उत्कृष्ट बालक अपनी प्रतिभा के अनुरूप कार्य करने का अवसर पाते हैं।

   सामान्य कक्षाओं में बुद्धिमान बालक अपने आपको कार्य करने में बाधित पाता है। वह थोड़ी सी इच्छाशक्ति से प्रतिभाशाली बालकों की श्रेणी में स्थान बना सकता है एवं अपने स्तर को ऊंचा कर सकता है। यह बात अपने स्थान पर उचित है कि अधिक तीव्र प्रगति कुछ सीमा तक कमी तथा कमजोरी होती है।

4. प्रयोगात्मक आंकड़े प्रकट करते हैं कि सामान्य शिक्षण संस्थाओं में प्रतिभाशाली बालकों के साथ सामाजिक कुप्रबंध उग्र रूप में पाया जाता है। प्रतिभाशाली बालक कार्य कम होने या कभी–कभी न होने से खाली बैठे रहते हैं, क्योंकि या तो उन पर कार्य का बोझ नहीं होता अथवा वे कार्य को शीघ्र ही समाप्त कर लेते हैं। ऐसी परिस्थितियों में उनका व्यक्तिगत व्यवहार स्वीकार करने योग्य नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं को उद्दंडता के कार्यों में शामिल कर लेते हैं।

5. विशिष्ट कक्षाओं में बुद्धिमान छात्रों को अग्रसर होने का अवसर मिलता है लेकिन शिक्षक को ऐसे बालकों को सामान्य कक्षा में कार्य के प्रति प्रेरित करने में समस्या तथा बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सामान्यतः विलक्षण बालक अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा संवेदनशील होते हैं। उनकी सोचने की क्षमता अधिक तीव्र होती है। वे कार्य के प्रति सावधान होते हैं, इसलिए उनके शिक्षण में विशेष विधियों व प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

6. प्रतिभाशाली बालकों की कक्षाओं में प्रत्येक बालक यह जानता है कि केवल कक्षा में वह ही एक बुद्धिमान विद्यार्थी नहीं है परंतु और भी कई विद्यार्थी हैं। यह विचार बालकों में आत्मविश्वास की भावना का विकास करता है। विशिष्ट कक्षाएं बालकों में अधिक सीमा तक शिक्षण विशेष धाराओं में मार्ग दर्शक के रूप में अग्रसर होने का अवसर भी प्रदान करती है। उसी समूह में कुछ बालक, कविता, नाटक, खेल–कूद तथा सामान्य ज्ञान जैसी शाखाओं में रुचि लेते हैं। आगे आने वाले समय में बालकों के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण तथा विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्रमों में सहायक सिद्ध हो सकता है।

7. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा चयनित स्थानापन्न किया जाता है। विभिन्न शाखाओं के विशेषज्ञों द्वारा बालकों का पूर्ण रूप से सामाजिक वातावरण में विभिन्न श्रेणियों में विश्लेषण, मूल्यांकन तथा निर्धारण किया जाता है। भौतिक परीक्षण तथा मूल्य निर्धारण भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों जैसे मानसिक, मनोविज्ञानी, चिकित्सक, श्रण, नेत्र, मस्तिष्क, अस्थि तथा शिक्षाविदों आदि द्वारा प्रतिभाशाली बालकों के चयनित स्थापन के लिए अतिआवश्यक है।

टिप्पणी

8. विशिष्ट शिक्षा को अन्य सेवाओं की भी आवश्यकता होती है। जैसे अस्थि–अपंग बालकों का शारीरिक, व्यावसायिक तथा नियमित रूप से शारीरिक परीक्षण। कुछ प्रतिभाशाली बालकों को चिकित्सा देख–रेख की निश्चित तथा नियमित रूप से भी आवश्कता होती है। अंधे बालकों और श्रवण–अपंग बालकों को समय–समय पर परीक्षण की आवश्यकता हो सकती है। कुछ विशिष्ट बालकों को व्यावसायिक और शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक आदि सेवाएं अतिआवश्यक हैं।

   कुछ विशेष उपकरण तथा अतिरिक्त प्रशिक्षण शिक्षाविदों के लिए आवश्यक है और कई बार यह काफी महंगा भी होता है। लेकिन वास्तव में शारीरिक रूप से अपंग तथा विशिष्ट बालकों की देखभाल में कमी करना उपयुक्त प्रशिक्षण की अपेक्षा अधिक महंगा पड़ता है।

9. विशिष्ट बालकों का महत्व सामान्य कक्षा में आने वाली परेशानियों से समझा जा सकता है जिसका शिक्षाविदों को सामना करना पड़ता है। सामान्य कक्षा में अपंग तथा सामान्य व अन्य विभिन्न श्रेणी के बालक होते हैं। वे शारीरिक रूप से बाधित और साधारण या प्रतिभाशाली और सामान्य होते हैं। शिक्षाविद को ऐसी विधियां उन्हें शिक्षित करने के समय अपनानी पड़ती हैं, जो उपरोक्त विभिन्न श्रेणियों के बालकों के लिए उपयुक्त हो। लेकिन बालकों को शिक्षा देते समय कक्षा में शिक्षाविद को कुछ परेशानियों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि विद्यार्थियों को उन्हें दिया जाने वाला अनुदेशन समझने में समस्या आती है। कुछ विद्यार्थी अनुदेशन की सार्थकता के माप को कम समझते हैं। ऐसी अवस्था में विशिष्ट कक्षाओं की आवश्यकता को गंभीर रूप से समझा जाता है। एक प्रकार से विशिष्ट शिक्षा का अर्थ प्रतिभाशाली बालकों की सहायता ही नहीं परंतु सामान्य कक्षा अध्यापकों के लिए किसी परिणाम पर भी पहुंचना है।

10. ऐसा कहा जाता है कि शिक्षा उस स्थान से शुरू होती है जहां पर औषधियों का अंत होता है। श्रवण बाधित बालक को श्रवण यंत्र उपलब्ध कराना चिकित्सा विज्ञान का कार्य है। परंतु बालकों की देखने व सुनने की सामर्थ्य का उपयोग करना निस्सन्देह शिक्षा का कार्य क्षेत्र है। यदि श्रवण बाधाओं को ठीक किया जाता है तो ये चिकित्सा का कार्य क्षेत्र है, और यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो यह शिक्षा की चिंता का विषय है। इसके विषय में शिक्षाविदों का सोचना है, कि क्या किया जा सकता है? जैसे पूर्णतया अंधे बालकों के लिए 'ब्रेल' (Braile) या इससे संबंधित संसाधन उपलब्ध कराना, यात्रा के माध्यम से प्रशिक्षण तथा विचार विमर्श द्वारा समझाना आदि, विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से शिक्षा विशेषज्ञों की सेवाओं द्वारा प्रदान की जाती है।

    दुर्भाग्यवश लगभग 5 प्रतिशत शारीरिक रूप से बाधित बालक (अंधे, बहरे) विशिष्ट शिक्षा केंद्रों में शिक्षा ग्रहण करते हैं। उनकी शिक्षा के लिए शिक्षाविद विशिष्ट ध्यान रखते हैं तथा उन्हें विभिन्न कार्य क्षेत्रों में शिक्षा दी जाती है। लेकिन अधिकांश ऐसी शिक्षण संस्थाएं महानगरों या नगरों में स्थित हैं। ऐसी शिक्षण संस्थाओं में ग्रामीण क्षेत्र के बालक शिक्षा ग्रहण करने के लिए नहीं जा

पाते। इनसे यह समझा जा सकता है कि इन बालकों की शिक्षा के लिए विशिष्ट शिक्षा केंद्रों की अति आवश्यकता है।

विशिष्ट शिक्षा को सर्वप्रथम विलक्षण बालकों की पहचान करने की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षाविदों द्वारा निश्चित कुछ बिंदुओं को समझाना होता है। विशिष्ट शिक्षा सामान्य कक्षाओं में दी जा सकती है। चाहे वह विशिष्ट रूप में अलग–अलग अथवा साथ–साथ हों। पहले तो यह मूल रूप से विशिष्ट कक्षाओं में ही था, लेकिन अब विशिष्ट बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षा कार्यक्रमों का उत्थान सामान्य शिक्षा का अंग बन गया है।

3.4.2 विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएं एवं समस्याएं

एक शारीरिक, मानसिक या संवेगात्मक अक्षम बालक एक सामान्य बालक से भिन्न होता है। अक्षमताओं के कारण इनकी आवश्यकताएं अधिक होती हैं। तथापि उचित प्रयासों से उन्हें शिक्षित किया जा सकता हैं। बालकों की आवश्यकताएं उनकी अक्षमता तथा कमी के आधार पर भिन्न–भिन्न होती है। जो निम्न प्रकार हैं–

- पहचान की आवश्यकता
- पृथक्करण की आवश्यकता
- शिक्षा योजना : व्यक्तिगत ध्यान, विशेष स्कूल और अस्पताल, विशेष कक्षा, माता–पिता को शिक्षित करना, विशेष पाठ्यचर्या, विशेष शिक्षण विधियां।
- उपचार सुविधा
- विशेष अध्यापक
- प्रशासनिक परिवर्तन
- अभिवृत्ति परिवर्तन– अक्षम बालकों को प्रायः हेय दृष्टि से देखा जाता है। आज का अक्षम बालक दया, के स्थान पर समानता की आकांक्षा करता है, जो समय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। अपने लिए सम्मान की भावना उन्हें सुख तथा आत्म–संतुष्टि की भावना से भर देते हैं तथा इस परिवर्तित व्यवहार से अक्षम बालकों की मानसिकता में सुखद परिवर्तन आयेगा।
- विद्यालय की सहगामी क्रियाएं रोचक व उल्लासपूर्ण बनाने की आवश्यकता।
- अक्षम बालकों के लिए कम्प्यूटर सहायक शिक्षण विधियों का प्रयोग जो इन बालकों की क्रियाशीलता को प्रभावित करेगा।
- अक्षम बालकों की सुविधाओं, वैधानिक प्रावधान तथा उनकी उपलब्धियों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए जनसंचार माध्यमों की आवश्यकता तथा प्रचार–सामग्री का उच्च स्तर पर प्रसार करना ताकि एक अक्षम बालक की उपलब्धि हजारों अक्षम बालकों के लिए तथा उनके माता पिता के लिए आशा की किरण तथा सम्भावनाओं को प्रसारित करें।
- व्यक्ति विशेष, माता–पिता/अभिभावक, परिवार, सगे सम्बन्धियों, मित्रों, अध्यापक, समुदाय, प्रशासन तथा राष्ट्र को एकजुट तथा सम्मिलित प्रयासों द्वारा अक्षम बालकों का कल्याण करने की भावना का विकास करना।

विशिष्ट बालकों की समस्याएं

विकलांगता चाहे कम हो या अधिक, शारीरिक हो, मानसिक हो या संवेगात्मक रहे, किन्तु इससे ग्रसित बालक को अपने समायोजन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसे बालकों की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शारीरिक दोषों के परिणामस्वरूप बालकों को प्रत्येक क्षेत्र में समायोजन सम्बन्धी अनेक प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ता है तथा विकलांग बालक साधारणतः इच्छित क्रियाओं में भाग लेने के योग्य नहीं होता। ऐसे अक्षम बालकों में संवेगात्मक परिपक्वता (Emotional Maturity) नहीं आती। उनकी अयोग्यता उनकी संवेगात्मक समस्याओं के रूप में विकसित होती है जैसे क्रोध और हतोत्साहन। इन बालकों में हीन भावनायें उत्पन्न हो जाती है और ये बालक अधिकतम क्रियाओं में भाग नहीं लेते हैं। उन्हें अपनी इच्छाओं को दबाना पड़ता है। विकलांग के अंदर यह भावना भी जाग्रत हो जाती है कि दूसरे उसके बारे में शारीरिक दोष के कारण बहुत ही हीन विचार रखते हैं। इसी प्रकार के विचार निरन्तर उसके मस्तिष्क में उठते रहते हैं। परिणामस्वरूप उनके अंदर आत्मदैन्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। कभी–कभी हीनता का कारण अवांछित घर और वातावरण की दशाएं या उनको देर से दी गयी औषधि भी हो सकती है। इन्हीं कारणों से इनका संवेगात्मक संतुलन स्थिर नहीं रहता लेकिन अनेक बार ऐसे बालक मानसिक रूप से तीव्र होते हैं। मानसिक रूप से तीव्र होने के कारण ये स्वयं को अन्य बालकों के साथ समायोजित नहीं कर पाते। अतः यदि इन अक्षम बालकों की वातावरण सम्बन्धी दशाओं में सुधार किया जाए तथा शिक्षकों के सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव से इनकी समायोजन सम्बन्धी समस्याएं हल हो सकती हैं।

कक्षा में शारीरिक रूप से अक्षम बालक को बैठने की समस्या का सामना करना पड़ता है। ऐसे बालकों की शारीरिक अक्षमता को ध्यान में रखते हुए उन्हें कक्षा में बिठाने के लिए विशेष प्रकार की कुर्सी मेज की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि कक्षा में कार्य करते समय उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो। इसी प्रकार कक्षा में दृष्टि बाधित बालकों को भी बैठने की समस्या का सामना करना पड़ता है। उन्हें श्यामपट्ट से उतनी दूर बिठाया जाता है कि उन्हें शब्द स्पष्ट नहीं दिखाई देते। कम सुनने वाले बालकों को सामान्य बच्चों के साथ ही बिठाये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वे अन्य बालकों के होंठों की हलचल (Lip Movements) का अनुसरण करके कुछ सीख सकें। ऐसे बालक प्रायः उत्तेजक (Aggresive) प्रकृति के होते हैं। अतः ऐसे बालकों के साथ विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता होती है। दोषपूर्ण वाणी वाले बच्चों में गलत उच्चारण के कारण उन्हें हीन भावना की समस्या का सामना करना पड़ता है। अतः ऐसे बालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

इसी प्रकार मानसिक रूप से अपंग बालकों को समायोजन सम्बन्धी मुख्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे परिवार में समायोजन सम्बन्धी समस्या, विद्यालय में समायोजन की समस्या व समाज में समायोजन की समस्या। ये बालक स्वयं को कुसमायोजित महसूस करने लगते हैं। उन्हें अपनी असफलताओं से निराशा होने लगती है और वह कुंठित रहने लगते हैं। विद्यालय में अन्य गतिविधियों में ही वह रुचि नहीं लेता और सामाजिक विकास में वह पिछड़ जाता है तो अक्षम बालकों को अनेक क्षेत्रों में समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे–

- **स्कूल सम्बन्धी समस्यायें** (Probleme Related to School)–ये बालक अधिगम में मन्द होते हैं। परिणामस्वरूप सामान्य बच्चों के साथ कार्य करने में असुविधा होती है। शैक्षिक दृष्टि से भी उनकी जो उपलब्धि हो सकती है उनमें वे असफल रहते हैं। अपनी आयु के बच्चों से वे पिछड़ जाते हैं तथा अनेक बार अपने से कम आयु के विद्यार्थियों के साथ भी कार्य नहीं कर पाते। इस कारण स्कूलों में प्रवाह–हीनता (Stagnation) आती है। इस प्रकार के वातावरण में अक्षम बालक स्वयं को समायोजित नहीं कर पाते।
- **संवेगात्मक समस्यायें** (Emotional Problem)–अक्षम बालकों में हीन–ग्रन्थियों के कारण उनमें मन में हीन भावना घर कर जाती है। शैक्षिक और सामाजिक वातावरण में असफलताओं का मुंह देखने के कारण उनका जीवन निराशा का शिकार हो जाता है। उन्हें कई बार अपमान सहना पड़ता है। संवेगात्मक अस्थिरता आनी आरम्भ हो जाती है। और यह स्थिति जारी रहती है तो उनका संवेगात्मक संतुलन बिगड़ जाता है। उनका मन किसी कार्य में नहीं लगता। ऐसे वातावरण में बालक सभी की दृष्टि से गिर जाता है और उसे उचित स्नेह व प्यार नहीं मिलता। जिससे उसमें असुरक्षा की भावना जाग्रत हो जाती है।
- **सामाजिक समस्यायें** (Social Problem)–अक्षम बालकों में हीन ग्रन्थियों (Interiority Complex) के कारण उनकी सामाजिक समायोजन की समस्यायें बढ़ जाती हैं। वे समाज में स्वयं को ढाल नहीं पाते हैं। समाज से परे रहते हैं। उनके मित्र या दोस्त कम होते हैं। कई बार तो ये समाज विरोधी तत्वों से मिलकर समाज विरोधी व्यवहार करने लगते हैं। सामाजिक कुसमायोजित बालकों को सुधारने का दायित्व एक अध्यापक के लिए एक चुनौती हो सकती है। ताकि ये बालक समस्या समाधान के पश्चात् समाज में उचित प्रकार से स्थापित होकर समाज के लिए लाभकारी सिद्ध हों।

3.4.3 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों के साथ व्यवहार, कक्षा हेतु रणनीतियां, समनुदेशन

विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों के शिक्षण में निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है-

1. **कक्षा-कक्ष में समानता**- शिक्षक के मन में भिन्न योग्यता वाले छात्रों के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए। कक्षा के लिए जो भी नियम निर्धारित हों सभी विद्यार्थियों के साथ भिन्न योग्यता वाले विद्यार्थियों को भी उनका पालन करना चाहिए। साथ ही इन छात्रों को कक्षा में समान अधिकार मिलना चाहिए। शारीरिक अक्षमता के कारण इन बालकों को सामान्य बालकों से अलग नहीं समझना चाहिए। अक्षमता के कारण इन विद्यार्थियों की कभी आलोचना नहीं करनी चाहिए। यहां तक कि यदि भिन्न योग्यता वाले विद्यार्थी, सामान्य विद्यार्थियों के द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले उपकरणों का उपयोग नहीं कर पा रहे हों, तब भी उन्हें यह नहीं कहना चाहिये कि वे अक्षम हैं।
2. **छात्र की विशिष्ट अक्षमता के संबंध में जानकारी**- शिक्षक को छात्र की विशिष्ट अक्षमता के जानकारी होना आवश्यक है। इसके लिये शिक्षक ऐसे बच्चों के

टिप्पणी

माता-पिता से सहायता एवं परामर्श ले सकता है। जब शिक्षक को छात्र की अक्षमता तथा उससे निपटने के तरीकों का ज्ञान होगा तो वह छात्र की आवश्यकतानुसार शैक्षिक उपकरणों का उपयोग कर सकता है।

3. **भिन्न योग्यता वाले छात्रों के अभिभावकों से निरंतर संपर्क**- भिन्न योग्यता वाले छात्रों के अभिभावकों के साथ शिक्षक को निरंतर संपर्क बनाये रखना चाहिये क्योंकि कई अभिभावक यह समझते हैं कि उनके बालकों की असमर्थता के कारण कोई उन्हें महत्व नहीं देता है। कई अभिभावक भिन्न योग्यता वाले बालकों के माता-पिता या पालक होने के कारण स्वयं को असहज तथा शर्मिन्दा महसूस करते हैं। ऐसी दशा में शिक्षक के रूप में आपका यह दायित्व होता है कि आप उनके अभिभावकों को यह समझाएं कि बालक की जो स्थिति है, उसमें बालक या उसके माता-पिता का कोई दोष नहीं है। अभिभावक के रूप में उन्हें बालक की सहायता करनी चाहिए।
4. **छात्रों की गतिविधियों में संलग्नता तथा स्वतंत्र गतिविधियों का पर्यवेक्षण**- शिक्षक को छात्रों को कक्षा में व्यक्तिगत गतिविधियां करने देना चाहिये तथा सभी छात्रों की गतिविधियों का पर्यवेक्षण करना चाहिये, जिससे इन विशिष्ट बालकों को कक्षा के अन्य सामान्य बालकों के साथ समानता का आभास हो। एक शिक्षक के रूप में आपको सदैव इन छात्रों की सहायता के लिए तैयार रहना चाहिए। शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिये कि सामान्य बच्चे ऐसे पिछड़े बच्चों की न तो आलोचना करें न ही उनका मजाक उड़ायें। जब ये छात्र अपनी गतिविधियों को स्वतंत्र रूप से संपन्न करते हैं तो उनमें आत्मविश्वास का विकास होता है।
5. **छात्र की शक्तियों तथा कमजोरियों का ज्ञान** - शिक्षक को कक्षा में उपस्थित भिन्न योग्यता वाले छात्रों की कमजोरियों तथा शक्तियों के बारे में शिक्षक को ज्ञान होना चाहिए। शिक्षक को इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि किन क्षेत्रों में ये छात्र उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हैं तथा किन क्षेत्रों में ये पिछड़े हैं। शिक्षक को इन छात्रों को अपनी शक्तियों को अपने विकास के लिए प्रयोग करने को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा अपनी कमजोरियों को भी शक्तियों में परिवर्तित करने में सहायता करना चाहिए।
6. **शिक्षक से संपर्क को प्रोत्साहन** - भिन्न आवश्यकता वाले छात्रों को नैतिक सहायता की आवश्यकता होती है। कई बार उन्हें अपनी आवश्यकताओं तथा समस्याओं के संबंध में दूसरों से अपने विचार साझा करने की आवश्यकता महसूस होती है। छात्रों को अपनी समस्याओं के बारे में बिना किसी झिझक के शिक्षक के साथ संपर्क करने को प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. **छात्रों की सहभागिता** - साधारणतः विशिष्ट बालक कक्षा की गतिविधियों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। इसके पीछे कारण ये होता है कि वे अपने को सामान्य छात्रें से हीन समझते हैं, इसलिए शिक्षक के रूप में आपको अपनी क्रियाओं तथा पाठ योजना को इस प्रकार नियोजित करना चाहिए कि छात्रों की अधिक से अधिक सहभागिता हो। वे स्वयं को हीन या दुर्बल महसूस न करें तथा कक्षा एवं विद्यालय की सभी गतिविधियों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लें।

8. **साधारण तथा स्पष्ट निर्देश** –कक्षा में शिक्षकों को ऐसे छात्रों को सरल, साधारण तथा सरलता से समझ में आने वाली भाषा में ही निर्देश देना चाहिए। शिक्षकों को अपने द्वारा दिए गए निर्देशों में जटिल भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

भिन्न योग्यता वाले छात्रों के कक्षा-कक्ष की रणनीति

टिप्पणी

समेकित शिक्षा में शिक्षक तथा छात्रों को मिलकर अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपनी योग्यता का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए। उचित कक्षा प्रबंधन तथा रणनीति द्वारा विद्यार्थियों में अधिगम की समुचित परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकती हैं।

भिन्न योग्यता वाले छात्रों के शिक्षण में निम्न बिन्दुओं को सम्मिलित करना चाहिए-

बैठने की व्यवस्था

विद्यालय में सामान्य बालकों के साथ भिन्न योग्यता वाले बालक भी शिक्षा प्राप्त करने आते हैं, इसकी वजह से शिक्षक की जिम्मेदारी बढ़ जाती है, क्योंकि शिक्षक को सामान्य बालकों के साथ-साथ विशिष्ट बालकों की शैक्षिक आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान करनी पड़ती है।

कक्षा में कई प्रकार के तथा कई स्तर के छात्र होते हैं। शिक्षक को एक होशियार छात्र के साथ एक कमजोर छात्र को बैठाना चाहिए। इसके साथ ही स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले बालक के साथ ऐसे विशिष्ट गुणों वाले छात्रों को भी बैठाना चाहिये। शिक्षक को कक्षा में विशिष्ट बालकों के बैठने का स्थान निश्चित् कर देना चाहिए तथा इस निध ारित स्थान के आधार पर बैठक व्यवस्था के लिए एक चार्ट बना लेना चाहिए ताकि कोई संशय तथा परेशानी न हो।

बैठक व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक को निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. भिन्न योग्यता वाले छात्रों को सामान्य छात्रों से अलग कर असमर्थता के आधार पर समूह बनाकर छात्रों के बैठने का स्थान निश्चित कर देना चाहिए।
2. शिक्षक को कक्षा में अपनी मेज तथा कुर्सी इस प्रकार रखना चाहिए कि कक्षा में उचित अनुशासन एवं नियंत्रण बना रहे।
3. दृष्टिदोष युक्त बालक को कक्षा में आगे बैठाना चाहिए।
4. कक्षा में डेस्क इस प्रकार बनवाने चाहिए, जिससे छात्र सहायक सामग्री तथा अतिरिक्त सामान उस पर आसानी से रख सकें।
5. शारीरिक रूप से विकलांग छात्र को कक्षा में पहली पंक्ति में बैठाना चाहिए, जिससे छात्र को किसी प्रकार की परेशानी न हो। यदि छात्र व्हील चेयर से आता हो तो कक्षा में आने के लिए दरवाजे के बाहर ढलान का प्रबंध करना चाहिए।

संपूर्ण कक्षा शिक्षण

समेकित शिक्षा में कक्षा में सामान्य छात्रों के साथ भिन्न योग्यता वाले छात्र भी होते हैं इसलिए शिक्षक का यह दायित्व हो जाता है कि कक्षा में उपस्थित प्रत्येक छात्र को उसकी क्षमता तथा योग्यता के आधार पर शिक्षा प्रदान करें। संपूर्ण कक्षा-शिक्षण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कुछ विधियां इस प्रकार हैं :

1. पारंपरिक प्रणाली

प्राय: सामान्य कक्षा शिक्षण में भिन्न योग्यता वाले छात्रों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। समेकित शिक्षा के अनुसार प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, अत: शिक्षक को बालकों की योग्यता, क्षमताओं तथा अभिरुचियों के आधार पर उनका समूह बनाना चाहिए तथा इन समूहों में भिन्न योग्यता वाले छात्रों को भी सम्मिलित करना चाहिए। धीमी गति से सीखने वाले बालकों का एक अलग समूह बनाना चाहिए। शिक्षक को छात्रों से जिज्ञासा उत्पन्न करने वाले प्रश्न पूछे जाने चाहिए तथा बालकों की अभिरुचियों को बढ़ावा देना चाहिए। नया प्रकरण आरंभ करते समय शिक्षक को छात्रों में जिज्ञासा पैदा करना चाहिए तथा कक्षा में मस्तिष्क उद्वेलन आदि विधियों का उपयोग करना चाहिए।

2. सामूहिक अधिगम

सामूहिक अधिगम संपूर्ण कक्षा-शिक्षण के उद्देश्य को प्राप्त करने की दूसरी विधि है। सामूहिक अधिगम के माध्यम से छात्रों में आपस में सहयोग, आदर, सम्मान, निर्भरता, वार्ता कौशल कार्य करने की प्रवृत्ति तथा भागीदारी एवं जिम्मेदारी जैसे गुणों का विकास होता है। सी. मार्विन ने 4 समूह बनाने पर बल दिया है।

(क) **साथ बैठने वाला समूह :** इसमें बच्चे अलग-अलग कार्यों में लगे होते है और उनके परिणाम अलग-अलग तथा भिन्न होते हैं।

(ख) **कामकाजी समूह :** इसमें बालक एक जैसा कार्य करते हैं तथा इनके परिणाम मिलते-जुलते होते हैं लेकिन वह कार्य करने के लिये स्वतंत्र होते हैं।

(ग) **सहकारी समूह :** इसमें छात्र अलग-अलग मगर आपस में संबंधित कार्य करते है, जिसका परिणाम एक ही होता है।

(घ) **सहयोगी समूह :** इसमें छात्र एक विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं।

3. दल शिक्षण

साधारण कक्षा में सामान्य छात्रों के साथ भिन्न योग्यता वाले छात्र भी उपस्थित होते हैं तथा शिक्षक कक्षा में उपस्थित सभी छात्रों को समान रूप से शिक्षित करते हैं। शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले छात्रों की ओर ध्यान नहीं दे पाता तथा उसे एक सहायक की आवश्यकता होती है। इस प्रकार विशेष आवश्यकताओं वाले बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए एक दल की आवश्यकता होती है। दल शिक्षण में शिक्षक के अलावा अभिभावक, स्वयंसेवी संस्थाओं के अनुभवी व्यक्ति, सामाजिक कार्यकर्ता, मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा जगत से जुड़े व्यक्ति शामिल होते हैं। दल शिक्षण संपूर्ण कक्षा शिक्षण का एक भाग होता है।

4. सहपाठी अधिगम

सहपाठी शिक्षण का उद्देश्य बालकों का शैक्षिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक विकास तो करना ही है साथ ही यह बालकों में सामाजिक समरसता को बढ़ावा देता है।

समेकित शिक्षा में कक्षा के किसी बुद्धिमान छात्र को कक्षानायक बना दिया जाता है तथा शिक्षक के स्थान पर वह छात्रों को उनके प्रश्नों के उत्तर देता है। इस विधि द्वारा धीमी गति से सीखने वाले बालकों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है।

टिप्पणी

सहपाठी अधिगम की दूसरी विधि में कक्षा के छात्रों को उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं के आधार पर समूहों में बांट दिया जाता है एवं प्रत्येक समूह का एक कक्षानायक बनाकर सहपाठी अधिगम को बढ़ावा दिया जाता है।

इस प्रकार सहपाठी शिक्षण से शिक्षक तथा छात्र दोनों को लाभ होता है तथा यह एक अत्यंत प्रभावशाली शिक्षण प्रणाली है, जिसमें छात्र शिक्षण कार्य के लिए कक्षा-कक्ष शिक्षक या शिक्षा सामग्री पर निर्भर नहीं करता बल्कि शिक्षण में छात्र एक दूसरे की सहायता करते हैं।

सहपाठी-शिक्षण विद्यार्थियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, लेकिन यह सामान्य कला शिक्षण का स्थान नहीं ले सकती, क्योंकि छात्र शिक्षक एक शिक्षक का स्थान नहीं ले सकते।

सहपाठी शिक्षण के लाभ

सहपाठी शिक्षण के निम्न लाभ होते हैं :

1. छात्र शिक्षक द्वारा शिक्षण करने पर शिक्षक तथा छात्र दोनों में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा होता है।
2. सहपाठी शिक्षण द्वारा असमर्थी तथा दूसरे पिछड़े विद्यार्थियों को सहयोग मिलने लगता है और वह शिक्षा में पूरी रुचि लेने लगता है। उनमें समाज घर व परिवार के लोगों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होने लगता है।
3. सहपाठी शिक्षण द्वारा भिन्न योग्यता वाले छात्र तथा अन्य छात्रों में अपने प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होने लगता है तथा उनके अंदर का भय समाप्त होने लगता है।

सहपाठी शिक्षण की सीमायें

सहपाठी शिक्षण की निम्न सीमायें हैं :

1. छात्र शिक्षक केवल कुछ ही विद्यार्थियों को सहपाठी शिक्षण द्वारा शिक्षा प्रदान कर सकता है।
2. कई शिक्षाविदों के अनुसार यह विधि उपयुक्त नहीं होती है, क्योंकि जब विद्यार्थियों का शिक्षण निपुण शिक्षकों द्वारा किया जा रहा होता है।
3. छात्र शिक्षक बिना किसी प्रशिक्षण व कौशलों के नहीं पढ़ा सकता है।
4. छात्र शिक्षक, कभी भी शिक्षक का विकल्प नहीं हो सकता है।

5. सहकारी अधिगम

कक्षा में सामान्य विद्यार्थियों के साथ विशिष्ट विद्यार्थी भी होते हैं, जिनको सहकारी अधिगम द्वारा शिक्षित किया जा सकता है। सहकारी शिक्षण के दौरान् छात्र एक-दूसरे की आवश्यकताओं के अनुसार आपस में अधिगम करते हैं। सहकारी अधिगम में छात्र अपनी समस्याओं को स्वयं ही सुलझाते हैं तथा दिए गए कार्यो को पूरा करते हैं। जब सामान्य कक्षा के शिक्षण का कार्य समाप्त हो जाता है तो सहकारी शिक्षण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। सहकारी अधिगम के द्वारा बुद्धिमान विद्यार्थियों के सहयोग से, शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। सहकारी अधिगम दूसरे के सहयोग से कार्य करके सीखने की योग्यता बढ़ाता है

इसके अलावा यह विधि दूसरों के साथ स्थायी संबंधों के निर्माण में भी सहायक होती है। इस विधि में शिक्षक एक योजनाकार, सहायक तथा निरीक्षक के रूप में कार्य करता है। छात्रों को उनकी शैक्षिक आवश्यकता के आधार पर समूहों में विभाजित कर दिया जाता है तथा प्रत्येक समूह के सभी सदस्य एक-दूसरे को कुछ सिखाते हैं। समय-समय पर व आवश्यकतानुसार प्रत्येक बालक को हर प्रकार का कार्य करने का अवसर दिया जाता है, जिससे कि वह प्रत्येक कार्य करने के योग्य बन सके।

इस प्रकार, सहकारी अधिगम में सामान्य तथा विशिष्ट बालक अपने-अपने समूह में एक दूसरे से सीखते हैं। सहकारी अधिगम में असमर्थ बालक को यह प्रतीत होता है कि कई बातों में वह दूसरे सामान्य समर्थ बालकों के समान है इससे असमर्थ बालकों में जीवन के प्रति सकारात्मक सोच का विकास होता है।

6. **सहयोगात्मक शिक्षण**

इस शिक्षण में शिक्षक आपसी सहयोग से एक निश्चित् उद्देश्य को निर्धारित करके उसे प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं। किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सहयोगियों के साथ सहयोगात्मक योजना बनाना, समस्या समाधान, शिक्षण तथा मूल्यांकन आदि किसी भी क्रिया में हो सकता है। सहयोगात्मक शिक्षण में सामूहिक रूप से लिए गए निर्णयों की सफलता या असफलता की जिम्मेदारी सभी की होती है तथा किसी विशेष सदस्य को इसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

सहयोगात्मक शिक्षण द्वारा नए-नए विचारों का जन्म होता है जो कि छात्रों के लिए लाभदायक होता है तथा शिक्षक को दूसरी कक्षाओं में हो रहे शिक्षण की जानकारी प्राप्त होती है, जिससे शिक्षक के ज्ञान में वृद्धि होती है तथा वह अपने शिक्षण को प्रभावी बनाता है।

7. **क्रिया आधारित अधिगम**

बालकों में नयी-नयी बातों को जानने तथा सीखने की जिज्ञासा होती है। बालक स्वभाव से चंचल प्रकृति के होते हैं तथा खाली समय में वे शांत नहीं रह सकते। सामान्य बालकों के समान ही भिन्न योग्यता वाले बालक भी नयी-नयी बातों को जानने तथा सीखने के इच्छुक होते हैं इसलिए इन बालकों को शिक्षा क्रियात्मक रूप से दी जानी चाहिए। क्रियात्मक शिक्षा प्रदान करने से केवल शरीर ही क्रियाशील नहीं होता बल्कि मानसिक क्रियाशीलता भी बढ़ती है।

इसके लिये प्राथमिक स्तर पर किंडर गार्डन तथा मांटेसरी शिक्षा पद्धति एवं माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर डाल्टन विधि, वाद-विवाद, नाटक तथा हयूरिस्टिक विधि आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

3.4.4 विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों हेतु सरकारी योजनाएं और कार्यक्रम

शिक्षा के क्षेत्र में मानसिक रूप से मंद बुद्धि तथा शारीरिक रूप से अक्षम (गूंगे, बहरे, अंधे तथा लूले) बालकों को विकलांग माना जाता है। इस विकलांग तथा मंदबुद्धि बालकों को सामान्य बालकों की तरह शिक्षा नहीं दी जा सकती है क्योंकि ये सामान्य बालकों से अलग होते है अतः इनकी शिक्षा व्यवस्था भी अलग ही होती है। इस क्षेत्र में सरकार ने सबसे पहले कार्य करने के लिए 1952 में "भारतीय बाल कल्याण बोर्ड" की स्थापना

की। इस बोर्ड का कार्य विकलांग व मन्दबुद्धि बालकों के लिए शैक्षिक एवं व्यावसायिक समस्या का अध्ययन कर समाधान प्रस्तुत करना था। इसके बाद 1953 में सरकार ने "समाज कल्याण बोर्ड" की स्थापना की। इस बोर्ड के दिए गए सुझावों के आधार पर सरकार ने विकलांग बालकों के कल्याण के लिए योजनाएं शुरू कीं तथा इस कार्य में योगदान देने लिए स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी कार्य करना शुरू कर दिया परंतु इन कार्यों की गति बहुत धीमी थी। "भारतीय शिक्षा आयोग" (1964–66) ने शैक्षिक अवसरों की समानता में विकलांग बालकों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने पर बल दिया। इस आयोग के सुझावों के फलस्वरूप 1965 से 1975 के बीच विकलांग बालकों के लिए लगभग 60 विशेष विद्यालय स्थापित किए गए।

"केंद्रीय समाज कल्याण मंत्रालय" ने 1981 में विकलांगों के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं के लिए तीन योजनाओं की घोषणा की–

1. शारीरिक पुनर्वास एवं सहायक उपकरणों के लिए आर्थिक सहायता दी जाए।
2. विकलांगता को रोकने तथा उनके शिक्षण व प्रशिक्षण के लिए अनुदान की व्यवस्था की जाए।
3. कक्षा 9 से परास्नातक तक की शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 तथा 1986 की घोषणाएं

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 और उसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में विकलांग बालकों की शिक्षा के सन्दर्भ में निम्न घोषणाएं की गई–

1. विकलांग एवं मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।
2. विकलांग एवं मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा की व्यवस्था हेतु व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित किया जायेगा।
3. शारीरिक रूप से कम अक्षम बच्चे सामान्य बालकों के साथ ही पढ़ेंगे।
4. शारीरिक रूप से ज्यादा अधिक अक्षम बालकों के लिए अलग से और अधिक स्कूल खोले जाएंगे।
5. विकलांग बालकों को लघु उद्योग धंधों की शिक्षा देकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जायेगा।
6. इन बालकों की शिक्षा के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी।

मंद बुद्धि एवं विकलांग बालकों की शिक्षा हेतु प्रयास

उपरोक्त घोषणाओं के आधार पर विकलांगों की शिक्षा के लिए निम्न प्रयास किए जा रहे हैं–

1. शारीरिक रूप से कम अक्षम बालकों को सामान्य विद्यालयों में ही शिक्षा दी जा रही है।
2. इन बालकों की विद्यालयों में प्रवेश की आयु 6 वर्ष के स्थान पर 9 वर्ष कर दी गई है।

3. विकलांग बालकों के लिए अवासीय विद्यालयों की व्यवस्था की जा रही है।
4. विकलांग बालकों की शिक्षा की व्यवस्था करने वाली व्यक्तिगत संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है।
5. इन विद्यालयों में शिक्षण करने वाले शिक्षकों के लिए विशेष शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय खोले जा रहे हैं।
6. केंद्रीय विकलांग संस्थानों में विकलांग बालकों की शिक्षा के क्षेत्र में शोधकार्य की उचित व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में पिछड़े वर्ग के बालकों की शिक्षा हेतु घोषणाएं

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में पिछड़े वर्ग में आने वाले बालकों की शिक्षा के लिए अनेक घोषणाएं की गई जो इस प्रकार हैं–

1. पिछड़े वर्ग के बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
2. पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के प्रवेश लेने के लिए शैक्षिक सत्र के प्रारम्भ में एक अभियान चलाया जाए।
3. पिछड़े वर्ग के बालकों को छात्रवृत्तियां, ड्रेस, पुस्तकें, लेखन सामग्री व दोपहर का भोजन निःशुल्क प्रदान किया जाए।
4. पिछड़े क्षेत्रों में इन्ही क्षेत्रों के शिक्षित युवकों को प्रशिक्षित कर शिक्षक नियुक्त करने का प्रयास किया जाए।
5. पिछड़े वर्ग के बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

पिछड़े वर्ग के बालकों की शिक्षा–व्यवस्था हेतु किए गए प्रयास

इन घोषणाओं के अनुसार पिछड़े वर्ग के बालकों की शिक्षा व्यवस्था हेतु निम्नलिखित प्रयास किए जा रहे हैं–

1. पिछड़े क्षेत्रों में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्कूल खोलने को वरीयता दी जा रही है।
2. माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर इस वर्ग के बालकों को आरक्षण दिया जा रहा है।
3. पिछड़े वर्ण के बालकों को आर्थिक सहायता दी जा रही है।
4. पिछड़े वर्ग के बालकों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई है।
5. पिछड़े वर्ग के बालकों को नौकरियों में छूट दी जा रही है।

अल्पसंख्यक बालकों की शिक्षा

भारत में विभिन्न सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। धर्म और भाषा के आधार पर कुछ वर्गों को अल्पसंख्यक वर्ग घोषित कर दिया गया है। इनमें जैन, मुस्लिम, ईसाई व बौद्ध आदि आते हैं। इनमें से शिक्षा की दृष्टि से जैन, ईसाई व बौद्ध पिछड़े हुए नहीं हैं परंतु अल्पसंख्यक वर्गों को जो सुविधाएं प्रदान की गई हैं, वे सभी अल्पसंख्यकों को समान रूप से दी गई है।

टिप्पणी

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों की शिक्षा के संबंध में निम्न प्रावधान दिए गए हैं–

धारा 29(2) "राज्य द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में धर्म, प्रगति, जाति, भाषा के आधार पर या इनमें से किसी एक आधार पर किसी नागरिक को प्रवेश देने से इन्कार नहीं किया जायेगा"

धारा 30(1) "सभी अल्पसंख्यकों को चाहे उनका आधार धर्म हो या भाषा, अपनी पसन्द की शिक्षा संस्था स्थापित करने तथा उसके प्रशासन का अधिकार होगा।"

धारा 30(2) "राज्य, शिक्षा संस्थाओं को सहायता देते समय, इस आधार पर भेदभाव नहीं रखेगा कि वह किसी अल्पसंख्यक की संस्था है। चाहे उसका आधार धर्म हो या भाषा।"

अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए बनाई गई समिति ने साम्प्रदायिक आधार पर अलग–अलग निर्वाचन क्षेत्रों के प्रावधान को समाप्त कर मुस्लिमों, भारतीय ईसाईयों तथा अनुसूचित जातियों के लिए 10 वर्ष तक केंद्र व प्रांतीय व्यवस्थापित सभाओं में सीटों के आरक्षण की अनुशंसा की थी। संविधान निर्माण सभा ने अल्पसंख्यक समिति के इस सुझाव को मान्यता देकर इसे जारी रखने का सुझाव दिया। भारतीय शिक्षा आयोग शैक्षिक अवसरों की समानता में अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों की शिक्षा व्यवस्था करने पर बल दिया।

3.4.5 समावेशन की अवधारणा को प्रोत्साहित करना

समावेशी शिक्षा भले ही आधुनिक काल की संकल्पना है, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में इसने उल्लेखनीय परिवर्तन किया है और वंचित बालकों की शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए माहौल तैयार किया है। शिक्षा में समावेशन किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था के वश की बात नहीं है, बल्कि यह संयुक्त प्रयासों से पाया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के हितधारक और उनके दायित्व को समझ लेने के बाद शिक्षा में समावेश के लिए समर्थन और नेतृत्व की भूमिका को समझना आसान हो जाता है। समावेश के लिए पारिवारिक समर्थन और भागीदारी के साथ सामुदायिक भागीदारी भी महत्वपूर्ण होती है।

समावेशी शिक्षा के हितधारक और उनके दायित्व

परंपरागत आधार पर समावेशी शिक्षा के अंतर्गत 'हितधारक' शब्द से अभिप्राय प्रत्येक उस व्यक्ति और संगठन से होता है जो शिक्षा में निवेश तथा छात्रों के कल्याण और सफलता के लिए विद्यालय का विकास चाहता है। इसके अंतर्गत प्रशासक, शिक्षक, छात्र, स्टाफ सदस्य, सामुदायिक सदस्य, अभिभावक, स्थानीय व्यापारी नेता तथा विद्यालय सदस्यों द्वारा चयनित सभी विद्यालय बोर्ड के सदस्य, पार्षद, राज्य के प्रतिनिधि सभी आ जाते हैं। हालांकि समावेशी शिक्षा का प्रमुख हितधारक सरकार को माना जाता है, षेष अभिकरण और संगठन इस सरकार के सहयोगी के तौर पर कार्य करते हैं। वर्तमान में कहा जाता है कि वे सभी व्यक्ति जो समावेशी शिक्षा में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर सहभागी बनते हैं, इसके 'हितधारक' कहलाते हैं। इसमें केवल दिव्यांग बालकों के अभिभावकों को ही शामिल नहीं किया जाता है, बल्कि उनके साथ जोड़े में अध्ययन करने वाले बालक के अभिभावक को भी शामिल किया जाता है।

समावेशी शिक्षा के तहत केन्द्र सरकार केन्द्रीय स्तर पर और स्थानीय स्तर पर समावेशी शिक्षा के विकास का दायित्व वहन करती है। समावेशी शिक्षा के अंतर्गत केन्द्रीय स्तर पर केन्द्र सरकार के शिक्षा विभाग के साथ स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण विभाग के साथ ही तकनीकी विभाग के साथ पुनर्वास के लिए प्रतिबद्ध सामाजिक मामलों के मंत्रालय मिलकर काम करते हैं। हालांकि समावेशी शिक्षा के विकास का प्रमुख दायित्व शिक्षा विभाग पर ही है। स्थानीय स्तर पर इसका दायित्व स्थानीय सरकारों और नगरपालिकाओं पर होता है।

समावेशी शिक्षा के हितधारकों के संबंध में अक्सर भ्रम बना रहता है कि इसके हितधारक कौन–कौन हैं। इस संबंध में विभिन्न प्रकार के हितधारकों में निम्नलिखित प्रकार से अंतर किया जा सकता है–

समावेशी शिक्षा के हितधारक

हितधारकों के प्रकार	दिव्यांगता समावेशी उदाहरण
हितधारक	दिव्यांग व्यक्ति और उनके परिवार स्व–सहायता समूह(समुदाय आधारित संगठन) दिव्यांग व्यक्तियों का संगठन अक्षमता सेवा प्रदाता
लाभार्थी लक्षित समूह	दिव्यांग व्यक्ति और उनके परिवार स्व–सहायता समूह(समुदाय आधारित संगठन) दिव्यांग व्यक्तियों का संगठन अक्षमता सेवा प्रदाता
अंतिम लाभार्थी	दिव्यांग व्यक्ति और उनके परिवार स्व–सहायता समूह(समुदाय आधारित संगठन) दिव्यांग व्यक्तियों का संगठन राष्ट्रीय सरकारी निकाय जो दिव्यांगता में संलग्न हैं
परियोजना भागीदारी	दिव्यांग व्यक्तियों का संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्रीय सरकारी निकाय जो दिव्यांगता में संलग्न हैं दिव्यांगता सेवा प्रदाता और दिव्यांगता गैर–सरकारी संगठन

समावेशी शिक्षा के प्रमुख हितधारक सरकार, विद्यालय, शिक्षक, समुदाय, अभिभावक तथा परिवार हैं। दिव्यांग बालकों के संदर्भ में इनको सही तौर पर अपने दायित्वों का पालन करने के लिए निम्नलिखित उपायों को अमल में लाना चाहिए –

(क) सरकार का दायित्व – दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए सरकार ने कई प्रकार के उपाय किये हैं। पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्तर के बाद वर्ष 2009–10 में केन्द्र सरकार ने 'माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग बालकों के लिए समावेशी शिक्षा' नामक योजना की शुरुआत की है। इस योजना में नौवीं से बारहवीं तक के दिव्यांग बालकों को समावेशी माहौल में आगे अध्ययन के लिए वित्तीय सहयोग प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। यह योजना शत–प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा वित्तपोषित योजना है। वित्तीय वर्ष 2012–13 के दौरान इस योजना के लिए 70 करोड़ रुपये का अनुदान दिया गया।

समावेशी शिक्षा के हितधारक के संदर्भ में सरकार के दायित्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

- सरकार परिवार की भूमिका को समझते हुए दिव्यांग बालकों के संदर्भ में परिवार की आर्थिक समस्याओं की पहचान करे तथा उसका निदान करे।
- सरकार समावेशी शिक्षा के लिए समावेशी विद्यालय के आदर्श मानकों को तय करे।
- सरकार को भी ऐसे दिव्यांग बालकों की शिक्षा के व्यय के साथ ही हो सके तो घर से आने–जाने की व्यवस्था भी मुफ्त में करनी चाहिए। इस प्रकार आर्थिक सहयोग के साथ ही सेवाएं भी प्रदान करे।
- सरकार दिव्यांग बालकों के लिए उद्घोषित योजनाओं और नियमों को केवल सिद्धांत में नहीं व्यवहार में प्रयोग करे।
- सरकार को दिव्यांग बालकों की शिक्षा और विकास में संलग्न गैर–सरकारी संगठनों के निकट सहयोग में काम करना चाहिए तथा नियमित सामुदायिक विद्यालयों को भी इसमें शामिल करना चाहिए।
- सरकार को दिव्यांग व्यक्तियों के संगठनों और अभिभावकों से शिक्षा व्यवस्था विशेषकर विद्यालय शिक्षा में परिवर्तन और विकास के बारे में परामर्श और सलाह लेना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन बालकों को उनके नियमित सामुदायिक विद्यालयों में विशेष आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है।

(ख) विद्यालय का दायित्व – दिव्यांग बालकों के संदर्भ में विद्यालय के दायित्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है –

- विद्यालय को परिवार के संदर्भ में सकारात्मक वातावरण बनाना चाहिए तथा नियमित अंतराल पर परिवारों के सही विचारों पर अमल भी करना चाहिए।
- विद्यालय परिवार को ऐसे बालकों के संदर्भ में प्रशिक्षण देना चाहिए ताकि वे अपने बालक की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग कर सकें।
- विद्यालय को दिव्यांग बालकों के संदर्भ में व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों मामलों में परिवार से प्रत्यक्ष सहयोग करना चाहिए।
- विद्यालय अपने परिसर का निर्माण इस प्रकार करे कि दिव्यांग बालक भी बाधारहित आवागमन कर सकें।
- विद्यालय में विशेष शिक्षण सहायता उपकरणों की उपलब्धता सुनिश्चित करना विद्यालय प्रबंधकों का दायित्व है।

(ग) समुदाय का दायित्व – दिव्यांग बालकों के संदर्भ में समुदाय शिक्षण का सकारात्मक एवं प्रोत्साहित वातावररण का निर्माण कर सकता है। विद्यालय के बाहर भी छात्र के जीवन और क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इन बालकों के संदर्भ में समुदाय के दायित्व को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है –

- नगरों के गरीब समुदायों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब दिव्यांग बालकों के परिवार को शिक्षा के लिए समुदाय द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

- स्वास्थ्यकर्मियों को ग्रामीण क्षेत्रों में दिव्यांग बालकों के परिवारों को बालकों को शिक्षित करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- इसमें किसी भी प्रकार की अक्षमता, न्यूनता अथवा बीमारी का समाधान विशेषज्ञ द्वारा किया जाना चाहिए,
- इसमें शिक्षा का समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए,
- दिव्यांग व्यक्ति को अपने में से ही एक व्यक्ति के तौर पर स्वीकार किया जाना चाहिए,
- दिव्यांग व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए कार्यरत संस्थाओं और अभिकरणों का सहयोग करना चाहिए,
- छात्रों में किसी व्यावसायिक कोर्स को करने की योग्यता विकसित की जानी चाहिए, तथा
- संसाधनों को उपलब्ध करवा कर दिव्यांग लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए।

(घ) शिक्षक का दायित्व – दिव्यांग बालकों के संदर्भ में शिक्षक के दायित्व को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है –

- शिक्षक को ऐसे बालकों की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षक को कक्षा में सहयोग की भावना को बढ़ाकर छात्रों के जीवन में सौहार्द और सहयोग जैसे सामाजिक और नैतिक मूल्यों का समावेश करने के लिए उतरदायी बनाना चाहिए।
- शिक्षक को ही छात्रों को मानवीय मूल्यों और जीवन कौशल के मूल्यों से सैद्धांतिक और व्यवहारिक तौर पर परिचित कराने का दायित्व दिया जाना चाहिए।
- शिक्षक को छात्रों में सहयोग, दया, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, ईमानदारी, जैसे गुणों का विकास करवाना चाहिए।

(च) माता–पिता और परिवार का दायित्व – दिव्यांग बालकों के संदर्भ में माता–पिता और परिवार के दायित्व को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है–

- माता–पिता को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत सामुदायिक विद्यालयों में अपने दिव्यांग बालकों के समावेशन के लिए समर्थन करना चाहिए।
- परिवार को विद्यालय और शिक्षकों के साथ सकारात्मक संबंध स्थापित करके गृह कार्यों को करवाने के साथ ही विद्यालय के कार्यक्रमों को अनुसरण करना चाहिए।
- बालक के विशेष आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण सामग्री तैयार करने में परिवार विद्यालय को विभिन्न प्रकार से सहयोग कर सकता है।
- परिवार को शिक्षक के सहयोगी के तौर पर बालक के साथ हमेशा खड़ा रहना चाहिए तथा अभिभावक–शिक्षक सम्मेलनों में हमेशा भाग लेकर परिवार को बच्चे के अनुसार अपना विचार देना चाहिए।

टिप्पणी

(छ) गैर सरकारी संगठनों का दायित्व– दिव्यांग बालकों के संदर्भ में गैर सरकारी संगठनों के दायित्व को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है–

- गैर सरकारी संगठनों को दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए गैर–सरकारी परियोजनाओं में सहभागिता तथा जागरूकता को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा विभाग के साथ संपर्क स्थापित करना चाहिए।
- इन संगठनों को बाध्यता (स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा अथवा जीने की सेवाएं, पुनर्वास, समर्थन, आदि द्वारा) के प्रभावों को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

(ज) विद्यालय प्रबंधन और नेतृत्व का दायित्व – दिव्यांग बालकों के संदर्भ में विद्यालय प्रबंधन और नेतृत्व के दायित्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है –

- विद्यालय प्रबंधन और नेतृत्व को विद्यालय में शिक्षण के परंपरागत उपागम में परिवर्तन लाकर समय और मांग के अनुकूल सामान्य बालकों के साथ ही दिव्यांग बालकों की आवश्यकताओं के संदर्भ में नवीन उपागम का समर्थन करने और व्यवहार रूप में उपयोग के लिए संसाधन संग्रहण, ज्ञान, योजना निर्माण, आदि करना चाहिए।
- विद्यालय प्रबंधन और नेतृत्व को शिक्षकों की अभिवृत्ति में विकास के लिए रणनीतियों का निर्माण करना चाहिए।
- विद्यालय प्रबंधन और नेतृत्व को विद्यालय में अनुकूल माहौल और समर्थन के लिए कई प्रकार के उपायों को प्रयोग में लाना चाहिए, जैसे– (1) विद्यालय में समावेशन के अनुकूल माहौल बनाने के लिए प्रभावी तरीके से कर्मचारियों पर सकारात्मक प्रभाव डालकर प्रबंधन करना, (2) विद्यालय की आवश्यकता के अनुसार संस्कृति केन्द्रित अभिगम का विकास करना, (3) विद्यालय के कर्मचारियों के व्यक्तिगत स्तर पर विकास को भी विद्यालय के विकास से जोड़कर देखना, (4) अभिगम और विकास को साझा किया जाना चाहिए, जिससे शिक्षकों में भी सीखने और नये प्रयोग करने की भावना का विकास हो। इससे संसाधन कक्षों में समावेशन का अवसर बढ़ता है।
- समावेशी संस्कृति के निर्माण में विद्यालय प्रबंधन और नेतृत्व सर्वाधिक सशक्त भूमिका निभा सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा से संबद्ध सभी व्यक्ति इसके हितधारक हैं और सभी का दायित्व है कि वे इसके विकास में सहयोग करें। केवल सरकार अथवा अभिकरणों के भरोसे समावेशी शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है। जब तक समावेशी शिक्षा में शामिल लोग जैसे बालक (दिव्यांग बालक और सामान्य बालक दोनों) उनके अभिभावक, शिक्षक, समुदाय के सदस्य इसमें अपना सक्रिय योगदान नहीं देंगे समावेशी शिक्षा की सफलता पर सवाल उठाया जाता रहेगा। इसमें कोई संशय नहीं कि समावेशी शिक्षा के हितधारक अपने दायित्वों का सही से पालन करेंगे तो यह पूरी तरह से सफल हो सकेगी।

शिक्षा में समावेशन के लिए समर्थन और नेतृत्व

शिक्षा में समावेशन के लिए समर्थन और नेतृत्व की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। समर्थन द्वारा समावेशन के लिए वैचारिक और व्यावहारिक आधार प्रदान किया जाता है, वहीं

नेतृत्व द्वारा उसे कार्यरूप में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में सहयोग दिया जाता है। यहां नेतृत्व का विशेष अर्थों में प्रयोग राष्ट्रीय और राज्यों में सक्रिय राजनेताओं से नहीं होकर विद्यालय संगठन में कार्यशील नेतृत्व से है। शिक्षा में समावेशन बिना समर्थन और नेतृत्व के करना बेकार है, क्योंकि यही दोनों समावेशन को संभव बनाते हैं।

शिक्षा में समावेशन के आयाम

शिक्षा समावेश के लिए आर्टाइल्स एवं अन्य ने 2006 में शिक्षा के परिवेश में समावेशन के लिए चार आयामों की पहचान की है, जो शिक्षा में समावेश के लिए महत्वपूर्ण हैं। इनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है–

(1) **पहुंच**– जहां कोई निःशक्त बालक चिकित्सा अवस्था, निर्धनता (विद्यालय के लिए ड्रेस अथवा शुल्क वहन करने में सक्षम न हो, परिवार के लिए पैसे कमाकर देने की जरूरत हो, पढ़ने के लिए घर में जगह नहीं हो), स्थिति (विद्यालय तक जाने का रास्ता बहुत कठिन हो अथवा बालक की उम्र के अनुसार बहुत खतरनाक हो), देखभाल करने के दायित्व अथवा सांस्कृतिक कारकों के कारण शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दिये जाने से उपस्थिति में रुकावटें आती हैं, इसमें शामिल है।

(2) **स्वीकृति**– वह 'स्थिति' जो छात्रों को विद्यालय पहुंचने पर दी जाती है और जो शिक्षक के व्यवहार से प्रभावित हो सकती है। शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सभी प्रकार के पृष्ठभूमि से आने वाले बालकों को मनुष्य समझें और उन्हें दिल से स्वीकार करते हुए सफल होने में सहयोग करें।

(3) **प्रतिभागिता**– सीखना एक सामाजिक क्रियाविधि है। ज्ञान की उत्पति तब होती है जब हम अन्य व्यक्तियों के साथ भाग लेते हैं एवं दूसरे के साथ संयुक्त रूप में आते हैं। इस प्रकार बालकों को अन्य दूसरे बालकों और व्यक्तियों के साथ ही शिक्षकों के साथ भी अंतःक्रिया में भाग लेने का अवसर दिया जाना चाहिए।

(4) **उपलब्धि**– समावेशन में 'उपलब्धि' का अर्थ है कि सभी छात्रों को कई अलग–अलग संदर्भों में न कि केवल निश्चित और औपचारिक राष्ट्रीय परीक्षाओं में अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है। शिक्षकों को अपने छात्रों को विभिन्न प्रकार के कौशल, क्षमता एवं ज्ञान को प्रदर्शन करने की अनुमति प्रदान करनी चाहिए।

शिक्षा में समावेशन के लिए समर्थन

शिक्षा में समावेशन के लिए समर्थन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। दिव्यांग बालकों के अभिभावकों का संगठन का समर्थन शिक्षा व्यवस्था को बदलने में महती भूमिका निभा सकता है। ऐसे संगठन विद्यालय में दिव्यांग बालकों के समावेशन को अधिक सक्षम और प्रभावी बना सकते हैं तथा यह सुनिश्चित करवा सकते हैं कि विद्यालय ऐसे दिव्यांग बालकों की आवश्यकताओं को पूरा करें। ऐतिहासिक प्रकरणों से ज्ञात होता है कि अनेक देशों में प्रारंभ में इन दिव्यांग बालकों की शिक्षा में अभिभावकों के समर्थन ने अति

टिप्पणी

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनेक देशों में दिव्यांग बालकों के अभिभावकों ने पारस्परिक सहभागिता के आधार पर गैर–सरकारी संगठन बनाकर विशेष विद्यालयों की स्थापना की और अपने दिव्यांग बालकों की शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा किया। कई अन्य देशों में इस प्रकार के संगठनों ने सरकार को दिव्यांग बालकों के प्रारंभिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा के लिए विद्यालय निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार से समर्थन के द्वारा दिव्यांग बालकों के लिए समावेशी शिक्षा का रास्ता आसान हुआ है।

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत समर्थन कई प्रकार से हो सकता है। यह समर्थन वैचारिक स्तर पर हो सकता है, धन और संसाधनों के संग्रह में सहयोग के तौर पर हो सकता है, समावेशी शिक्षा के अंतर्गत उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं पर निगरानी के रूप में हो सकता है। समावेशी शिक्षा के अंतर्गत प्रमुख व्यक्ति और संस्थान जिनका समर्थन आवश्यक है, उनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है –

(1) **सरकार और शासन का समर्थन**– समावेशी शिक्षा के लिए उचित नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन की जवाबदेही से लेकर इसके लिए वितीय सहायता और निगरानी की व्यवस्था करके सरकार और शासन इसका समर्थन कर सकती है। इसके लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के जागरूकता अभियान कार्यक्रमों का संचालन भी किया जाता है।

(2) **विद्यालय तथा शिक्षक का समर्थन**– विद्यालय और शिक्षक की सकारात्मक अभिवृत्ति और समर्थन समावेशी शिक्षा के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है। विद्यालय में शिक्षक द्वारा सही विधि से दिव्यांग बालकों को प्रशिक्षित और शिक्षित करके ही अर्थों में समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को पाया जा सकता है। इसमें विद्यालय की अवसंरचना से लेकर विद्यालय का वातावरण महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(3) **समुदाय का समर्थन**– दिव्यांग बालक जिस समुदाय से आता है, उस समुदाय का दायित्व है कि वह अपने सदस्यों की कमियों को पूर्ण और उनके विकास के लिए शिक्षा की व्यवस्था करे। यदि समुदाय सही माहौल तैयार करे तो दिव्यांग बालकों के लिए सामुदायिक विद्यालयों की स्थापना करके उनकी विशेष आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार समुदाय का समर्थन समावेशी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण होता है। समुदाय दिव्यांग बालकों के परिवारों को भी दिव्यांग बालकों के समर्थन में प्रभावी बनाने के लिए प्रशिक्षित कर सकता है।

(4) **परिवार तथा माता–पिता का समर्थन**– बालक का जन्म से लेकर प्रारंभिक पालन–पोषण का दायित्व परिवार और माता–पिता पर होता है। दिव्यांग बालकों के संदर्भ में तो परिवार की यह जवाबदेही और भी बढ़ जाती है। यदि परिवार सही अर्थों में अपने दिव्यांग बालक को सक्षम बनाना चाहती है तो उसे इस समावेशी शिक्षा का समर्थन करना होता है। समावेशी विद्यालयों में दिव्यांग बालकों को किस प्रकार की शिक्षा और माहौल विद्यालय में शिक्षकों द्वारा प्रदान की जा रही है इसकी जवाबदेही परिवार की होती है। यदि परिवार सक्रिय हो तो इन विद्यालयों में दिव्यांग बालकों को सही शिक्षा मिल सकती है।

(5) **अन्य गैर–सरकारी संगठनों का समर्थन**– लोगों की सेवा में संलग्न गैर–सरकारी संगठनों का भी दायित्व बनता है कि वे असमर्थ बालकों के सहयोग के लिए आगे आएं और समावेशी शिक्षा में समर्थन और सहयोग करें। समावेशी शिक्षा के लिए जागरूकता और संसाधन संग्रह के लिए गैर–सरकारी संगठनों को सक्रिय तौर पर कार्य करना चाहिए। ये गैर–सरकारी संगठन दिव्यांग बालकों के परिवारों, समुदायों, शिक्षकों को बालक को समर्थन प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं और इसके लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन कर सकते हैं।

शिक्षा में समावेशन के लिए नेतृत्व

शिक्षा में समावेशन के लिए नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय के नेतृत्वकर्ता विद्यालय में सामान्य बालकों के साथ ही दिव्यांग बालकों के जोड़े में अध्ययन को नैतिक, कानूनी और दार्शनिक आधार पर संभव बनाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि इससे दिव्यांग बाालकों की विशेष आवश्यकताएं भी पूरी हो जाती हैं और सामान्य बालकों को भी कुछ अलग सीखने का अवसर मिलता है। सभी बालकों को अर्थपूर्ण तरीके से सिखाने और सहभागी बनाने के लिए नेतृत्व कभी–कभार संसाधन कक्ष में सभी बालकों को ले जाते हैं। नेतृत्व बालकों में अंतर्राष्ट्रीय समझ और सामाजिक सद्भाव के उन्नयन के लिए विभिन्न धर्मों के बालकों के मध्य सामूहिकता की भावना को भी प्रोत्साहित करता है। इसके लिए विद्यालय नेतृत्व को छात्रों को भ्रमण करवाने के लिए बजट का भी आवंटन किया जाता है।

नेतृत्व का एकतरफ बालकों के अभिभावकों और समुदायों से संपर्क रहता है तो दूसरी तरफ नीति–निर्माताओं से रहता है। ऐसे में नेतृत्व बालकों की आवश्यकताओं को जानकर नीति–निर्माताओं को कार्यक्रम बनाने में सहयोग करता है और बालकों की समस्याओं का समाधान होता है, तो दूसरी तरफ बालक के अभिभावक और समुदाय में समावेशन के अनुकूल माहौल बनाने के लिए विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है। शिक्षा में समावेशन के लिए नेतृत्व की भूमिका को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

(क) विद्यालय में समावेशी माहौल के निर्माण में भूमिका– नेतृत्व विद्यालय में शिक्षण के परंपरागत उपागम में परिवर्तन लाकर समय और मांग के अनुकूल सामान्य बालकों के साथ ही दिव्यांग बालकों की आवश्यकताओं के संदर्भ में नवीन उपागम का समर्थन करने और व्यवहार रूप में उपयोग करने की क्षमता रखता है। विद्यालय के नेतृत्वकर्ता समावेशन के महत्व को समझते हुए उसके अनुकूल उपकरणों और माहौल का निर्माण कर सकते हैं। वे विद्यालय के शिक्षकों से लेकर कर्मचारियों तक की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाकर समावेशन के अनुकूल वातावरण बनाने की क्षमता रखते हैं। सकारात्मक अभिवृत्ति परिवर्तन की प्रथम सीढ़ी है और विद्यालय में परिवर्तन बिना नेतृत्व के सकारात्मक अभिवृत्ति के संभव नहीं है। इस प्रकार के परिवर्तन को लाने के लिए संसाधन, ज्ञान, योजना निर्माण, आदि सभी आवश्यक है।

(ख) शिक्षकों में अभिवृत्ति के विकास में नेतृत्व की भूमिका– नेतृत्व शिक्षकों के अभिवृत्ति में विकास के लिए छः रणनीतियों को प्रयुक्त करते हैं–

- कार्यक्रमों के पुनर्निर्माण के लिए समर्थन और प्रोत्साहन देना
- संस्थागत नीति निर्माण की सूचना के लिए कार्य अनुसंधान को लागू करना
- सभी कर्मचारियों के विकास के लिए वयस्क अभिगम, विकास के सिद्धांत को प्रयुक्त करना

- शिक्षण और अभिगम के अध्ययन पर बल देना
- शिक्षकों के मध्य सहयोगी वातावरण का निर्माण करना
- शिक्षकों के मध्य समन्वयात्मक संबंधों को विकास करना।

(ग) विद्यालय में अनुकूल माहौल और समर्थन के लिए नेतृत्व की भूमिका– विद्यालय में अनुकूल माहौल और समर्थन के लिए नेतृत्व कई प्रकार के उपायों को प्रयोग में ला सकता है, जैसे–

- विद्यालय में समावेशन के अनुकूल माहौल बनाने के लिए प्रभावी तरीके से कर्मचारियों पर सकारात्मक प्रभाव डालकर प्रबंधन किया जा सकता है।
- विद्यालय की आवश्यकता के अनुसार संस्कृति केन्द्रित अभिगम का विकास किया जा सकता है।
- विद्यालय के कर्मचारियों के व्यक्तिगत स्तर पर विकास को भी विद्यालय के विकास से जोड़कर देखा जा सकता है।
- अभिगम और विकास को साझा किया जाना चाहिए, जिससे शिक्षकों में भी सीखने और नये प्रयोग करने की भावना का विकास हो। इससे संसाधन कक्षों में समावेशन का अवसर बढ़ता है।

(घ) समावेशी संस्कृति के निर्माण में नेतृत्व की भूमिका– संसाधन कक्षों में ले जाकर छात्रों में विविधता का ज्ञान भरते हुए उन्हें समावेशी संस्कृति के अनुकूल माहौल दिया जा सकता है। इस प्रकार नेतृत्व विद्यालय में समावेशी संस्कृति के निर्माण में समर्थ होता है।

इस तरह से कहा जा सकता है कि शिक्षा में समावेशन के लिए समर्थन और नेतृत्व का महत्वपूर्ण स्थान होता है। एक समावेशन के लिए आधार तैयार करता है तो दूसरा उसे व्यवहार रूप में लाने के लिए प्रयत्न करता है। इन दोनों के मध्य उचित समन्वय के बिना शिक्षा में सही तरीके से समावेशन संभव नहीं है। नेतृत्व समर्थन के लिए उचित माहौल बनाता है तो समर्थन के माध्यम से नेतृत्व को बल मिलता है। इस प्रकार शिक्षा में समावेशन के लिए ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

समावेश के लिए पारिवारिक समर्थन और भागीदारी

'समावेश' अथवा 'समावेशन' शब्द का अपने–आप में कोई विशेष अर्थ नहीं होता है। समावेश के चारों तरफ जो वैचारिक, दार्शनिक, शैक्षणिक ढांचा होता है, वही समावेश को परिभाषित करता है। इस प्रक्रिया में बालक को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, अपितु उसे यह सीखने और विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाये रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना तथा अंतःक्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

यह सर्वविदित है कि सभी बालकों का समाजीकरण एक समान प्रक्रियाओं से होकर नहीं गुजरता है। इस तरह से समावेशन की प्रक्रिया भी एक समान नहीं हो सकती है। इस दृष्टि से बालकों के नजरिये भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। यह नजरिया दृष्टिकोण का रूप लेते हुए आगे चलकर मूल्यों में परिवर्तित हो जाता है। कालांतर में मूल्य संस्कृति में तथा संस्कृति विचाराधारा में बदल जाता है। विचारधारा सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के होती है। बालकों में नकारात्मक विचाराधारा को रोकने के लिए उनको अच्छे अनुभवों से गुजारना होता है। इस प्रकार के अच्छे अनुभवों को देने में परिवार, विद्यालय तथा समाज का महत्वपूर्ण हाथ हो सकता है। इस प्रकार के समावेशी अनुभव के माध्यम से ही बालकों में समावेशी संस्कृति का विकास हो सकता है।

भले ही बालकों के समावेशन में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, आदि अनेक आयाम हों, लेकिन परिवार का इसमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। विशेष आवश्यकता वाले यानी दिव्यांग बालकों के संदर्भ में परिवार की यह भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। परिवार दिव्यांग बालकों को दो विशेष अर्थों में प्रभावित करता है–

(क) अतिसंरक्षण– दिव्यांग बालकों के प्रति यह दृष्टिकोण बालक के स्वनिर्भरता की प्रक्रिया में अवरोधक बनकर उभरता है। बालक को उसकी क्षमता के अनुसार समाज में समावेश की प्रक्रिया को प्रारंभ करना परिवार की जिम्मेवारी है।

(ख) अस्वीकरण– इस दृष्टिकोण में परिवार का बालक की क्षमता में विश्वास नहीं होता है, जिसका प्रभाव होता है कि उपेक्षित बालक में मूल्यों का सही तौर पर विकास नहीं हो पाता है और उनमें समावेशन की बाधाएं आती हैं।

इस प्रकार विशेष आवश्यकता वाले बालकों के संदर्भ में परिवार की भूमिका दो अर्थों में समझी जा सकती है– (1) दिव्यांग बालकों के समावेशन के लिए समाजीकरण के विभिन्न उपादानों को उपलब्ध कराना और इसके लिए समुचित वातावरण उपलब्ध कराना, तथा (2) इसमें बालक को ऐसा अनुभव, विश्वास, संस्कृति उपलब्ध कराना जिससे समावेशन के बारे में बालक में सकारात्मक मूल्य विकसित हो सके। वास्तव में दिव्यांग बालकों के संदर्भ में परिवार की यह दूसरी भूमिका परिवार की प्रथम भूमिका से ही निकली है।

विभिन्न अवस्थाओं में पारिवारिक समर्थन और भागीदारी

(Family Support and Involvement in Different Stages)

समावेशन के लिए पारिवारिक समर्थन और भागीदारी अत्यावश्यक है, क्योंकि परिवार ही वह स्थान होता है जहां से बालक के अस्तित्व का निर्माण होता है और उसके आगे के जीवन में पालन–पोषण से लेकर शिक्षा तथा व्यवसाय तक के निर्धारण में परिवार की सामाजिक, आर्थिक, वैचारिक स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान होता है। समावेशन में पारिवारिक सहभागिता और भागीदारी उस समय और महत्वपूर्ण हो जाती है, जब बालक में किसी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक कमी या विकार हो। समावेश के लिए पारिवारिक समर्थन और भागीदारी को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है–

टिप्पणी

बालक के जन्म से पूर्व परिवार की भागीदारी और समर्थन– बालक के जीवन की शुरुआत से पूर्व ही परिवार की स्थिति और संस्कृति उसके आने वाले जीवन को निर्धारित कर देती है। बालक के जन्म से पूर्व ही परिवार के सदस्यों द्वारा होने वाले बालक के लिए शिक्षा और रहन–सहन के बारे में आजकल सोचा जाने लगा है। दूसरी तरफ देखें तो वैज्ञानिक और चिकित्सा की दृष्टि से गर्भावस्था में ही जीन यानी गुणसूत्र के माध्यम से बालक में अपने वंशजों के गुण आने लगते हैं। यह गुण अच्छा या बुरा दोनों प्रकार का हो सकता है, जैसे– एक प्रतिभाशाली माता–पिता के बालक के प्रतिभाशाली और मानसिक मंदता वाले माता–पिता के बालक के मंद होने की संभावना बनी रहती है। उसी प्रकार एक स्वस्थ माता–पिता के बालक स्वस्थ तथा मधुमेह, उच्च रक्तचाप, जैसी बीमारियों से ग्रसित माता–पिता के बालक में इन बीमारियों के होने की संभावना अधिक रहती है। हालांकि उचित खान–पान और चिकित्सकीय सलाह से होने वाले बालक में इन बीमारियों की संभावना को कम किया जा सकता है।

शैशव काल में पारिवारिक भागीदारी और समर्थन– जन्म के बाद शैशव काल में बालक के आहार यानी दूध से लेकर उसके व्यायाम, मालिश, नींद, स्वच्छता, स्वास्थ्य, आदि सभी आवश्यकताएं परिवार में ही पूरी की जाती हैं। बालक के समुचित विकास के लिए परिवार के लोग जी–जान से लगे रहते हैं। यदि बालक में किसी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक कमी हो तो उसकी देखभाल के लिए परिवार के सदस्यों को और अधिक ध्यान देना पड़ता है।

बाल्यकाल में पारिवारिक भागीदारी और समर्थन– बाल्यकाल में भाषा, व्यवहार, आदतें, शिक्षा, आदि का प्रारंभिक ज्ञान बालक को परिवार में ही प्राप्त होता है। बालक को परिवार के सदस्य ही चलना–फिरना, बोलना, दूसरों के साथ व्यवहार करने से लेकर चित्रों, माहौल और अक्षरों से परिचित कराते हैं। अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार परिवार ही यह निर्धारित करता है कि बालक किस विद्यालय में पढ़ेगा और आगे क्या करेगा? यदि बालक किसी प्रकार का दिव्यांग हो तो परिवार के सदस्यों को बालक के संपूर्ण विकास के लिए विशेष तौर पर चिकित्सकों के परामर्श के अनुसार कार्य करना पड़ता है।

अध्ययन काल में पारिवारिक भागीदारी और समर्थन– अध्ययन काल के दौरान भी परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। विद्यालय के प्रतिस्पर्द्धी माहौल में आजकल अंकों के दौर में परिवार के सदस्य बालक का समर्थन करके और उसे आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करके सही दिशा दे सकते हैं। यदि परिवार के सदस्य सहयोग नहीं करेंगे तो शायद ही कोई बालक विद्यालय जा पायेगा। इसका उदाहरण ग्रामीण क्षेत्र के मजदूर परिवारों में देख सकते हैं, जहां परिवार के समर्थन नहीं मिलने के कारण अभी भी कुछ बालक विद्यालय नहीं जाकर परिवार के लिए मजदूरी करते हैं। इस प्रकार परिवार ही निर्धारित करता है कि बालक क्या करेगा? इतना ही नहीं बालक किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करेगा, यह भी उसकी आर्थिक स्थिति के अनुसार ही निर्धारित होता है। आजकल के व्यवसायिक पाठ्यक्रमों की फीस शायद ही कोई निर्धन परिवार उठा पायेगा। दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए परिवार के सदस्य ही विशेष प्रकार की शिक्षा के लिए प्रयास करते हैं।

नौकरी अथवा पेशे के चयन में पारिवारिक समर्थन और भागीदारी– सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति किस प्रकार के व्यवसाय अथवा नौकरी को करेगा, यह परिवार द्वारा निर्धारित होता है। किसी व्यवसायी का बालक अधिकांशतः व्यवसायी ही बनता है और किसी नौकरी पेशे वाले का बेटा नौकरी को ही प्राथमिकता देता है। परिवार के सदस्य व्यक्ति के पेशे के चयन में सहयोग और समर्थन करते हैं। व्यक्ति पारिवारिक सहयोग और समर्थन प्राप्त करके बेहतर तरीके से आत्मविश्वास के साथ अपने कार्य में जुट जाता है। यदि व्यक्ति दिव्यांग हो तो परिवार के अन्य सदस्यों का समर्थन और सहयोग और महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि अधिकांशतः दिव्यांगों में आत्मविश्वास की कमी देखी जाती है।

समावेशन में परिवार की भूमिका का मूल्यांकन

सर्वस्वीकार्य है कि बालकों के समाजीकरण की प्रथम पाठशाला परिवार है। परिवार बालकों के समाजीकरण की उचित प्रक्रिया यानी समावेशन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। विशेष आवश्यकता वाले बालकों के संदर्भ में परिवार की यह भूमिका और महत्वपूर्ण हो जाती है। विशेष आवश्यकता वाले यानी दिव्यांग बालकों के समावेशन का दरवाजा परिवार में उनके समुचित समावेशन से होकर गुजरता है। यदि परिवार में लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थान मिलता है, आपस में सहभागिता होती है, सभी सदस्यों को अपने निर्णयों के बारे में स्वीकृति अथवा अस्वीकृति अभिव्यक्त करने का अधिकार होता है, तो बालक में समावेशन के प्रति सकारात्मक सोच होती है, जबकि इसके विपरीत परिस्थिति में बालक का सोच नकारात्मक होता है।

परिवार समावेशन के लिए कितना उपयुक्त है, इसका मूल्यांकन निम्नलिखित मानकों के आधार पर किया जा सकता है–

- परिवार में खान–पान, व्यवसाय, संपत्ति, आदि के निर्णय एवं सहभागिता में लैंगिक आधार पर विभेद किया जाता है अथवा नहीं।
- परिवार में लोकतांत्रिक मूल्यों (समानता, विचार तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, न्याय और व्यक्ति की गरिमा, आदि) मूल्यों के लिए पोषक और सकारात्मक वातावरण है अथवा नहीं।
- परिवार में अथवा परिवार के आस–पास मौजूद शारीरिक एवं मानसिक दिव्यांग बालकों और व्यक्तियों के प्रति परिवार का नजरिया अच्छा है अथवा नहीं।
- समाज के आर्थिक और सामाजिक तौर पर वंचित वर्ग के बालकों के प्रति परिवार का नजरिया अच्छा है अथवा नहीं।

समावेशन में पारिवारिक समर्थन और भागीदारी की चुनौतियां

समावेशन में पारिवारिक समर्थन और भागीदारी की प्रमुख चुनौतियों को दो अर्थों में समझा जा सकता है–

(क) परिवार की शिक्षा अथवा जागरूकता अथवा बाहरी समर्थन का अभाव– परिवार बालक की विद्यालयी शिक्षा के लिए जिम्मेवार होते हैं। दिव्यांग बालकों के संदर्भ में कुछ परिवार बच्चे को विद्यालय भेजने में डरते हैं तो वहीं कुछ परिवार ऐसे बालकों

टिप्पणी

को मुख्यधारा में जोड़ने के लिए विद्यालय भेजने पर बल देते हैं। विद्यालय यदि ऐसे बालकों की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यवस्था कर भी दे तो भी दैनिक समस्याओं से निपटने के लिए परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। घर से विद्यालय जाने तक की प्रतिदिन होने वाली समस्याओं से निपटने में परिवार ही बालकों का सहयोग कर सकता है। हालांकि सभी अभिभावक औपचारिक तौर पर शिक्षित नहीं होते हैं अथवा अपने बच्चे की दिव्यांगता और विशेष समस्याओं को पूरी तरह से समझ नहीं पाते हैं, जिस कारण उसका समाधान करने में भी वे असफल रहते हैं। परिवार और शिक्षक मिलकर ऐसे दिव्यांग बालकों की समस्याओं का समाधान खोज सकते हैं।

(ख) परिवार की आर्थिक स्थिति– अध्ययनों से पता चलता है कि आर्थिक तौर पर कमजोर परिवार के दिव्यांग बालकों की शिक्षा आवश्यकताओं को बहुत कम पूरा किया जाता है। गरीबी और दिव्यांगता का गहरा रिश्ता देखने को मिलता है। गरीब परिवार समय रहते अपने बालकों के स्वास्थ्य की जांच नहीं करवा पाता है, जिस कारण बीमारी की पूर्व पहचान तथा उपचार नहीं हो पाता है। कई प्रकार की दिव्यांगताएं स्वास्थ्य जांच और पोषाहार की कमी से होती हैं, जिसका प्रत्यक्ष संबंध गरीबी से है। ऐसे परिवार अपने दिव्यांग बालकों की शिक्षा व्यवस्था पर होने वाले खर्च और परेशानी को नहीं उठा पाते हैं, जिससे दिव्यांग बालक की शिक्षा पूरी नहीं होती है। इस प्रकार दिव्यांग बालकों के संदर्भ में विशेष शिक्षा के सम्मुख निम्नलिखित बाधाएं आती हैं–

- परिवार अपने बालक की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने में विशेषज्ञ नहीं होता है।
- परिवार अपने दिव्यांग बालकों के विद्यालय जाने के अधिकार की अवहेलना कर देते हैं।
- दिव्यांग बालक के परिवार को दूसरे परिवारों से समर्थन और संचार के साधनों का अभाव होता है।
- परिवार अधिकांशतः इस बात को नहीं जानता है कि उसके बच्चे की सहायता कौन कर सकता है।
- शिक्षक ऐसे बालकों के बारे में उनके परिवारों से सहयोग की मांग कर सकते हैं, जिसमें परिवार अभिरुचि नहीं दिखलाता है।
- परिवार और शिक्षक का संबंध हमेशा सकारात्मक और निर्माणकारी नहीं होता है, जिस कारण विशेषज्ञता और संसाधन का सही तरीके से इस्तेमाल नहीं हो पाता है।
- परिवार की वित्तीय स्थिति ऐसे बालकों को विद्यालय भेजने में बाधक बन जाती है। संरक्षक द्वारा किसी की निगरानी में बालक को विद्यालय भेजने में होने वाले व्यय को परिवार वहन करने में असमर्थ होता है, इसलिए बालक विद्यालय नहीं जा पाते हैं।

समावेशन में पारिवारिक समर्थन और भागीदारी बढ़ाने के उपाय

समावेशन में पारिवारिक समर्थन और भागीदारी बढ़ाने के कई उपायों को अपनाया जा सकता है, जैसे–

- परिवार को विद्यालय और शिक्षकों के साथ सकारात्मक संबंध स्थापित करके गृह कार्यों को करवाने के साथ ही विद्यालय के कार्यक्रमों का अनुसरण करना चाहिए।
- बालक की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण सामग्री तैयार करने में परिवार विद्यालय को विभिन्न प्रकार से सहयोग कर सकता है।

टिप्पणी

- परिवार को शिक्षक के सहयोगी के तौर पर बालक के साथ हमेशा खड़ा रहना चाहिए तथा अभिभावक–शिक्षक बैठकों (मीटिंग) में हमेशा भाग लेकर परिवार को बच्चे के अनुसार अपने विचार देने चाहिए।
- विद्यालय को परिवार के संदर्भ में सकारात्मक वातावरण बनाना चाहिए तथा नियमित अंतराल पर परिवारों के सही विचारों पर अमल भी करना चाहिए।
- परिवार को ऐसे बालकों के संदर्भ में प्रशिक्षण देना चाहिए ताकि वे अपने बालक की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग कर सकें।
- सरकार को भी ऐसे दिव्यांग बालकों की शिक्षा के व्यय के साथ ही हो सके तो घर से आने–जाने की व्यवस्था भी मुफ्त में करनी चाहिए।

समावेशन के लिए सामुदायिक भागीदारी

समावेशी शिक्षा अथवा शिक्षा में समावेश किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था के माध्यम से संभव नहीं हो सकती है, बल्कि इसके लिए सामुदायिक भागीदारी आवश्यक है। समावेशी विद्यालयों में विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों की शिक्षा की आधारशिला प्रतिभागिता पर टिकी होती है। समावेशी शिक्षा के लिए आवश्यक है कि विद्यालयों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाए, क्योंकि इससे बालकों में सामुदायिक जीवन की भावना को बल मिलेगा और निश्चित समय के बाद बालक को उसी समुदाय का एक सक्रिय सदस्य बनना होता है।

समावेशी शिक्षा में समुदाय की भागीदारी जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में समुदाय क्या है? समाजशास्त्रीय दृष्टि से मैकाइवर तथा पेज का कहना है कि ''समुदाय उस छोटे अथवा बड़े समूह को कहते हैं जिसके सभी सदस्य किसी क्षेत्र की सीमा में इस प्रकार समग्र जीवन बिताते हैं कि वे किसी विशेष हित की पूर्ति मात्र ही नहीं, अपितु सामान्य जीवन की सभी शर्तों की पूर्ति में पारस्परिक सहयोग करते हैं।'' इस परिभाषा से तीन तथ्य उभरते हैं– (क) समुदाय का अपना एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र होता है, क्योंकि इस परिभाषा में कहा गया है कि समुदाय सामान्य जीवन जीने का एक क्षेत्र है। (ख) समुदाय वह क्षेत्र है, जहां जीवन के समग्र हितों की पूर्ति होती है। (ग) इस क्षेत्र में रहने वाले सभी लोग एक–दूसरे की सामान्य मनोवृत्तियों तथा समान सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण सामुदायिक एकता की भावना से संबद्ध रहते हैं।

बालक के शैक्षिक जीवन पर समुदाय का प्रभाव

बालक का प्रारंभिक जीवन अपने समुदाय से शुरू होता है और शिक्षा के दौरान एवं उसके बाद भी उसे उस समुदाय विशेष का सदस्य रहना होता है, इसलिए समुदाय

टिप्पणी

विशेष का प्रभाव बालक पर औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार का होता है। बालक पर समुदाय के शैक्षिक प्रभाव को हम निम्नलिखित प्रकार समझ सकते हैं—

(क) **मानसिक विकास पर प्रभाव**— बालक के मानसिक विकास पर समुदाय का प्रभाव होता है। समुदाय विभिन्न स्थानों पर पुस्तकालयों की व्यवस्था करता है जिससे बालक के ज्ञान में वृद्धि होती है। विभिन्न समयों पर समुदाय वाद—विवाद प्रतियोगिता, कवि सम्मेलन, मुशायरा, विभिन्न प्रकार की गोष्ठियों का आयोजन करता है। इन सबसे बालक का मनोरंजन तो होता ही है, उनका मानसिक विकास भी होता है।

(ख) **शारीरिक विकास पर प्रभाव**— बालक के शारीरिक विकास पर भी समुदाय का प्रभाव पड़ता है। समुदाय स्थानीय संस्थाओं का निर्माण करता है, जो गांवों तथा नगरों के मोहल्ले और गलियों में सफाई एवं पार्कों और बगीचों की व्यवस्था करती हैं। ऐसे साफ और स्वच्छ वातावरण में रहकर बालक में भी सफाई की आदत पड़ती है। साफ पार्कों में खेलने से बालकों को स्वच्छ वातावरण में खेल—कूद और घूमने का मौका मिलता है, जिससे बालक का स्वास्थ्य ठीक रहता है और उनका बेहतर शारीरिक विकास होता है। संगठित समुदाय स्वास्थ्य केन्द्रों और चिकित्सालयों की व्यवस्था भी करता है, जहां बालकों को स्वास्थ्य और शारीरिक विकास का ज्ञान प्राप्त होता है।

(ग) **चारित्रिक और नैतिक विकास पर प्रभाव**— बालक के नैतिक और चारित्रिक विकास पर भी समुदाय का बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि समुदाय का वातावरण अनुशासित, सरल एवं शुद्ध हो तो बालक में उच्च चारित्रिक एवं नैतिक गुण विकसित होते हैं, इसके विपरीत यदि समुदाय का वातावरण अशुद्ध, अनुशासनहीन और जटिल हो तो बालक अनैतिक कार्यों में संलग्न रहने वाले निम्न चारित्रिक व्यक्ति बनते हैं। इस प्रकार बालक के ऊपर समुदाय का अच्छा और बुरा दोनों तरह का प्रभाव पड़ता है।

(घ) **सामाजिक विकास पर प्रभाव**— विभिन्न समयों पर समुदाय में सामाजिक सम्मेलन, धार्मिक कार्य, उत्सव, मेले, आदि का आयोजन होता है। बालक इनमें भाग लेने के क्रम में समुदाय के व्यक्तियों के संपर्क में आता है, जिससे बालक में सामाजिकता की भावना विकसित होती है। बालकों में इस सामाजिकता के विकसित होने से सामाजिक परंपराओं, रीति—रिवाजों, मान्यताओं, आदर्शों, आदि का ज्ञान होता है, जिस कारण बालकों में सहयोग, सहानुभूति, सहनशीलता, सेवा एवं सामाजिक गुण विकसित होते हैं। यहां पर बालक को कर्तव्यों और अधिकारों के साथ ही स्वतंत्रता और अनुशासन का ज्ञान भी हो जाता है। बालक के आगे के जीवन में स्वतंत्रता और अनुशासन जैसे गुण अति—आवश्यक हैं, इसलिए कह सकते हैं कि बालक के सामाजिक विकास पर समुदाय का प्रभाव होता है।

(च) **सांस्कृतिक विकास पर प्रभाव**— सभी समुदायों की अपनी विशेष संस्कृति होती है, जिसका प्रभाव समुदाय के प्रत्येक सदस्य पर पड़ता है। बालक जब समुदाय के सांस्कृतिक एवं धार्मिक उत्सवों में भाग लेता है और समुदाय के बुजुर्गों को अपनी संस्कृति का आदर और संरक्षण करते देखता है तो अनायास

ही बालक में भी अपनी संस्कृति को अपनाने की शुरुआत हो जाती है। समुदाय विशेष की संस्कृति को हम बालक की बोलचाल, भाषा तथा आचरण में देख सकते हैं। उदाहरणस्वरूप ग्रामीण और शहरी बालकों के व्यवहार और आचरण के द्वारा हम संस्कृति के प्रभाव को देख सकते हैं। इस प्रकार बालक के सांस्कृतिक विकास पर समुदाय के प्रभाव को देखा जा सकता है।

(छ) **व्यावसायिक विकास पर प्रभाव**– समुदाय में रहकर बालक देखता है कि उसके समुदाय के लोग किस प्रकार के व्यवसाय अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते हैं। आगे चलकर बालक में इन व्यवसायों के प्रति रुचि उत्पन्न होने लगती है तथा स्वयं बालक भी उसी व्यवसाय को अपना लेता है। ग्रामीण समाजों में आज भी देखा जाता है कि समुदाय विशेष के लोग जिस व्यवसाय को करते हैं अथवा जिस व्यवसाय को स्वीकृति प्रदान करते हैं, बालक को भी उसी व्यवसाय को अपनाना होता है और यदि किसी ने समुदाय के पेशे की इच्छा के विपरीत व्यवसाय किया तो समुदाय उसे बहिष्कृत भी कर देता है। इस प्रकार पेशे के चयन पर समुदाय का शक्तिशाली प्रभाव देखा जा सकता है। समुदाय व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त अपने सदस्यों को स्वरोजगार के लिए वित्तीय मदद भी करता है।

(ज) **राजनीतिक समझ के विकास पर प्रभाव**– समुदाय में रहते हुए बालक समुदाय के विभिन्न सदस्यों से वाद–विवाद सुनने, नेताओं के भाषण को सुनने, आदि से विभिन्न राजनीतिक विचारों से परिचित हो जाते हैं। ऐसे बालक बिना किसी पुस्तक को पढ़े ही जान लेते हैं कि विश्व में कौन–कौन राजनीतिक विचारधाराएं प्रमुख हैं एवं विश्व के किस देश की राजनीतिक व्यवस्था किस राजनीतिक विचारधारा का पालन करती है। बालक इन्हीं विचारधाराओं में से किसी विचारधारा को बेहतर मानते हुए स्वयं भी उसे अपना लेता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि बालक के राजनीतिक विचारों पर भी समुदाय का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

(झ) **शैक्षिक विकास पर प्रभाव**– समुदाय अपने सदस्यों की शैक्षिक सफलताओं और उपलब्धियों की कहानी बालकों को सुनाकर उन्हें शैक्षिक क्षेत्र में आगे आने को प्रेरित करता है। समुदाय अपने बालकों को जो आर्थिक विपन्नता के कारण आगे पढ़ नहीं पाते हैं, उनकी शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियों और वित्तीय सहयोग की व्यवस्था भी करता है।

(ट) **अन्य प्रभाव**– समुदाय विशेष बालक को शिक्षित करने के लिए नाटक, अभिनय, रेडियो, सिनेमा, पत्र–पत्रिकाओं, वाचनालयों, चित्रकलाओं, आदि अनौपचारिक साधनों की व्यवस्था करते हैं। इनके माध्यम से बालक अपने समुदाय की विशेष समस्याओं को समझते हैं तथा उन समस्याओं को सुलझाने की समझ भी उनमें विकसित होती है। इस प्रकार से बालक का सर्वांगीण विकास संभव हो पाता है।

टिप्पणी

समावेशन के लिए सामुदायिक सहभागिता की आवश्यकता

सभी दिव्यांग लोगों की शिक्षा आवश्यकताओं अथवा समस्याओं का समाधान करने के लिए वर्तमान पुनर्वास केन्द्र तथा विशेष शिक्षा के संस्थान पूरी तरह से प्रभावी और पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि इनमें अधिकांश शहरों तक ही सीमित है। यही कारण है कि समुदाय आधारित शिक्षा तथा पुनर्वास ही एकमात्र विकल्प है जो ग्रामीण क्षेत्रों तक के सभी दिव्यांग लोगों तक अपनी पहुंच बना सकता है। समुदाय आधारित समावेशन की आवश्यकता को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

- यह शिक्षा में समावेशीकरण पर जोर देता है,
- यह अक्षमता से बचाव और देखभाल करता है,
- यह सहयोगी सेवाओं का विस्तार करता है,
- यह आर्थिक तौर पर पुनर्वास करता है, तथा
- यह सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देता है।
- समुदाय आधारित पुनर्वास कम लागत का, व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर आधारित तथा परिणाम–उन्मुख होता है।

समावेशन के लिए सामुदायिक सहभागिता के लाभ

समावेशन के लिए सामुदायिक सहभागिता के लाभों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

- यह अधिक सस्ता और सामाजिक तौर पर वांछनीय होगा,
- सभी दिव्यांग व्यक्ति जिन्हें सहायता की आवश्यकता है, यहां तक पहुंच सकेंगे,
- इसमें आगे जाने और दीर्घावधि सहयोग प्रदान किया जा सकेगा, तथा
- इसमें व्यक्तिगत स्तर पर प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकेगा और इसलिए यह अधिक प्रभावी होगा।

समावेशन के लिए सामुदायिक भागीदारी की चुनौतियां

समावेशन के लिए सामुदायिक भागीदारी के समक्ष अनेक प्रकार की चुनौतियां हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं –

(1) समुदाय के सामान्य बालकों के अभिभावक विशेष आवश्यकता वाले बालकों के परिवारों के अभिभावकों से भेदभाव करते हैं। सामान्य बालकों के अभिभावक विद्यालय पर दबाव डालते हैं कि ऐसे दिव्यांग बालकों का नामांकन नहीं किया जाए, क्योंकि उन्हें डर रहता है कि उनके बालकों के संसाधन और ध्यान देने में कमी आ जाएगी।

(2) दिव्यांग बालकों के परिवार भी सामूहिक सामुदायिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए अपने बालक को प्रोत्साहित नहीं करते हैं, जिस कारण ऐसे बालकों को सीमित अवसर ही उपलब्ध हो पाता है।

(3) सामुदायिक स्तर पर सरकारी सेवाएं शायद ही एकीकृत हैं। ऐसे परिवार अपने समुदाय से आते हुए अपने सीमित संसाधनों के द्वारा ही बालक को सबल बनाने का प्रयास करते हैं।

(4) बहुत–से समुदाय परंपरागत तौर पर दिव्यांग बालकों को विद्यालय से अस्वीकार करते हैं। सामुदायिक स्तर पर जागरूकता लाकर समावेशी शिक्षा को स्वीकार करवाने का प्रयास करना होगा।

समावेशन में सामुदायिक भागीदारी बढ़ाने के उपाय

टिप्पणी

समावेशन में सामुदायिक भागीदारी बढ़ाने के कई उपाय किये जा सकते हैं, जैसे–

(क) समुदाय को बालकों के शिक्षा के अधिकार तथा दिव्यांगता के बारे में शिक्षकों, माता–पिता, सहपाठी सामान्य बालकों एवं समाज के अन्य लोगों को जागृत करना चाहिए।

(ख) समुदाय को ऐसे बालकों के स्वास्थ्य तथा अन्य संबंधित सुविधाओं की देखभाल करना चाहिए।

(ग) आधुनिक जन संचार के माध्यमों द्वारा समुदाय को जागरूकता अभियान चलाना चाहिए।

(घ) गैर–सरकारी संगठनों के साथ मिलकर समुदाय को नौजवान दिव्यांगों के लिए स्थायी व्यवसायिक प्रशिक्षण तथा रोजगार की व्यवस्था करना चाहिए।

(च) दिव्यांगों के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण और कृत्रिम अंगों की व्यवस्था समुदाय को करनी चाहिए।

(छ) समुदाय को सूचना और परामर्श केन्द्रों की स्थापना करना चाहिए जहां दिव्यांग बालक, उनके माता–पिता तथा समुदाय के सदस्यों का मार्गदर्शन किया जा सके।

(ज) समुदाय को खेलों और उत्सवों के आयोजन जैसी गतिविधियों का आयोजन करना चाहिए जहां दिव्यांग बालक भी इन गतिविधियों में शामिल हो सकें।

(झ) समुदाय को दिव्यांग बालकों के लिए समर्थन देना चाहिए तथा स्थानीय स्तर पर उपलब्ध अधिकतम संसाधनों का उपयोग उनके लिए करना चाहिए।

(ट) उप–जिला स्तर पर भी समुदाय को दिव्यांग बालकों का आकलन करना चाहिए और उनकी सहायता के लिए रणनीति बनानी चाहिए।

(ठ) इसमें किसी भी प्रकार की अक्षमता, न्यूनता अथवा बीमारी का समाधान विशेषज्ञ द्वारा किया जाना चाहिए।

(ड) इसमें शिक्षा का समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

(ढ़) दिव्यांग व्यक्ति को अपने में से ही एक व्यक्ति के तौर पर स्वीकार किया जाना चाहिए।

(त) दिव्यांग व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए कार्यरत संस्थाओं और अभिकरणों का सहयोग करना चाहिए।

(थ) छात्रों में किसी व्यवसायिक कोर्स को करने की योग्यता विकसित की जानी चाहिए।

(द) संसाधनों को उपलब्ध करवा कर दिव्यांग लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए।

टिप्पणी

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बालक के विशेषकर दिव्यांग बालक के संदर्भ में सामुदायिक सहभागिता महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। बालक के जीवन का प्रारंभ और अंत उसी समुदाय में होता है और समुदाय की परंरपराओं और आवश्यकताओं के अनुसार बालक के अंतर्मन और जरूरतों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है, इसलिए यदि समुदाय चाहे तो बालक के जीवन में प्रभावी भूमिका निभाने में सक्षम हो सकता है। हालांकि समुदाय में रहने वाले अधिकांश व्यक्ति सामान्य होते हैं, इसलिए दिव्यांग व्यक्तियों की आवश्यकताओं को उनके विशेष संदर्भ में समझने में विशेषज्ञों और प्रशासन को आगे आना होगा और समुदायों में भी इनकी विशेष आवश्यकताओं का प्रचार करना होगा, तभी समुदाय अपनी प्रभावी भूमिका निभाने में समर्थ हो सकेगा।

समावेशी शिक्षा के लिए संसाधन संग्रहण

समावेशी शिक्षा में उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए बेहतर सेवाओं को प्रदान करने के लिए संसाधन संग्रहण करना एक प्रमुख मुद्दा है। बिना संसाधन के किसी भी सेवा अथवा व्यवस्था को सही नहीं किया जा सकता है। इसके लिए दो उपायों को अमल में लाया जाता है– प्रथम कम लागत यानी कम संसाधन में बेहतर सेवाएं प्रदान करना तथा दूसरा संसाधन संग्रहण के लिए नये उपायों की खोज करना। विभिन्न देशों में हुए अनुसंधानों के आधार पर समावेशी शिक्षा के अंतर्गत संसाधन संग्रहण के लिए तीन विधियों या प्रारूपों की खोज की गयी है–

(क) सरकार अनुदानित प्रारूप– सरकार समावेशी शिक्षा के लिए पूरे देश में समान रूप से अनुदानों को जारी करके तथा नियमों का निर्माण करके समावेशी शिक्षा में संसाधन संग्रहण की समस्या को समाप्त कर सकती है। इसके लिए सरकार कई प्रारूपों को व्यवहार में ला सकती है, जैसे–

बालक आधारित प्रारूप– इसके अंतर्गत विशेष शिक्षा के लिए आने वाले छात्रों की संख्या की पहचान करके उसी के अनुसार सेवाओं की मांग की जाती है। इस प्रकार यह मांग और सेवा आधारित प्रारूप है। सरकार द्वारा बालक के दिव्यांग्ता के स्तर और शैक्षिक आवश्यकताओं के आधार पर अनुदान जारी किया जाता है।

संसाधन आधारित प्रारूप– इस प्रारूप में दिव्यांग बालकों की संख्या को जाने बिना विद्यालय में संसाधन सेवाएं उपलब्ध करा दी जाती हैं। इसमें एकीकृत शिक्षा की व्यवस्था रहती है, लेकिन इसके अंतर्गत एक कक्षा में 2–3 दिव्यांग बालक और 18–20 सामान्य बालक रहते हैं, जिससे संसाधन का अनावश्यक व्यय होता है, इसलिए कक्षा में अधिक दिव्यांग बालक उपस्थित हों, इसका ध्यान रखना चाहिए।

निर्गत आधारित प्रारूप– निर्गत आधारित प्रारूप को इंग्लैंड को छोड़कर किसी भी अन्य देश में नहीं अपनाया गया है। इसके अंतर्गत दिव्यांग बालक की उपलब्धि को देखकर ही अनुदान जारी किया जाता है।

(ख) अनुदान लागत न्यूनीकरण प्रारूप– अनुदान लागत न्यूनीकरण के अनेक प्रारूप प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख प्रारूपों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है–

व्यावहारात्मक रणनीति– इसके अंतर्गत समूह के नेतृत्वकर्ता का व्यवहार समूह को प्रभावित करता है, ऐसे नेतृत्वकर्ता और अभिनेताओं के विज्ञापन के माध्यम से विशेष आवश्यकताओं के लिए संसाधन संग्रह किया जा सकता है।

विकेन्द्रीकरण– इसके अंतर्गत केन्द्र सरकार ब्लॉक अथवा प्रादेशिक स्तर पर अनुदानों को विकेन्द्रित कर देता है, जहां से यह अनुदान स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उपलब्ध कराई जाती है। यह लोचशील और थोड़ी परिवर्तनशील प्रक्रिया है।

मूल्यांकन, निगरानी और उतरदायित्व मापन– समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सेवाओं का मूल्यांकन, निगरानी और उतरदायित्व की मांग होने से आज अधिकांश देशों में इस प्रारूप को अपना लिया गया है। इसके लिए निवेश मूल्यांकन, प्रदान सूचकों, संभाव्यता अध्ययनों का सहारा लिया जाता है।

(ग) बचत संसाधन प्रारूप– इसका लक्ष्य दिव्यांग बालकों को उचित शिक्षा प्रदान करके उनको समाज का उपयोगी सदस्य बनाना है। इसके लिए निम्नलिखित कार्यों को प्रयोग में लाया जाता है–

- शिक्षक प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक विकास रणनीति तैयार करना
- शिक्षकों और सेवा प्रदाताओं को सेवापूर्व प्रशिक्षण देना
- समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रम को व्यवहार रूप में सशक्त बनाना
- बालकों को विशेष प्रशिक्षण देना ताकि वे आत्मनिर्भर और समर्थ बन सकें
- अभिभावकों को विशेष प्रोत्साहन प्रशिक्षण देना ताकि वे अपने दिव्यांग बालकों के सही तरीके से विकास में योगदान दे सकें।
- केन्द्रीयकृत संसाधन केन्द्रों का निर्माण करना, जिसमें समाधान कार्यक्रम और सहयोग की पूरी व्यवस्था हो।

भारत में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत नियमित विद्यालय में ही सामान्य बालकों के साथ ही दिव्यांग बालकों की शिक्षा का प्रावधान है। इन दिव्यांग बालकों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताएं होती हैं और इनके लिए संसाधन संग्रहण करने में अनेक प्रकार की बाधाएं आती हैं। विभिन्न प्रकार की दिव्यांगताओं के लिए विभिन्न प्रकार के सहायक शिक्षण उपकरणों और रणनीतियों का निर्माण करना इसकी प्रथम चुनौती है। इसकी दूसरी चुनौती दिव्यांग व्यक्तियों की अधिक संख्या का होना है। भारत में विभिन्न प्रकार के दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या जनगणना, 2011 के अनुसार निम्न सारणी में दी गई है–

टिप्पणी

दिव्यांग जनों की श्रेणी-वार संख्या : जनगणना - 2011 के अनुसार

निःशक्तता के प्रकार	व्यक्ति तथा प्रतिशत	पुरुष एवं प्रतिशत	महिला एवं प्रतिशत
	1	2	3
देखने में	50,33,431	26,39,028	23,94,403
सुनने में	50,72,914	26,78,584	23,94,330
बोलने में	19,98,692	11,22,987	8,75,705
चलने में	54,36,826	33,70,501	20,66,325
मानसिक मंदता	15,05,964	8,70,898	6,35,066
मानसिक रोगी	7,22,880	4,15,758	3,07,122
कोई अन्य	49,27,589	27,28,125	21,99,464
बहु विकलांगता	21,16,698	11,62,712	9,53,986
कुल	2,68,14,994	1,49,88,593 (55.89)	1,18,26,401 (44.1)

समावेशी शिक्षा के लिए संसाधन संग्रह की चुनौतियां

समावेशी शिक्षा के लिए संसाधन संग्रह की चुनौतियों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(1) **धन की कमी**– समावेशी शिक्षा के लिए संसाधन संग्रह में सबसे बड़ी समस्या धन की कमी है। विकसित देशों में बजट के अंतर्गत विशेष निधि की व्यवस्था करके दिव्यांग बालकों की शिक्षा का समाधान किया जाता है। कुछ विकासशील देशों में तो पूर्व–विद्यालय के साथ ही विशेष विद्यालय के लिए भी सरकार अनुदान देती है। लेकिन विकासशील देशों में शिक्षा नीति के क्रियान्यवन के लिए धन का संग्रह करने में अनेक समस्याएं आती हैं। इन देशों में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत धन की व्यवस्था करना कठिन हो जाता है। सरकार के पास इसके लिए पर्याप्त धन नहीं होता है, परिणामस्वरूप गैर–सरकारी संगठनों की ओर दिव्यांग शिक्षा के लिए देखा जाता है।

(2) **सरकार की इच्छाशक्ति में कमी**– सरकार जितना व्यय सामान्य शिक्षा पर करती है उतना समावेशी शिक्षा पर नहीं करती है, क्योंकि सरकार की दिव्यांग बालकों के कल्याण के लिए इच्छाशक्ति में कहीं न कहीं कमी है।

(3) **विद्यालयों और शिक्षकों की उदासीनता**– नियमित विद्यालयों में सामान्य बालकों पर जितना ध्यान दिया जाता है, उतना दिव्यांग बालकों पर नहीं दिया जाता है। सामान्यतः माना यह जाता है कि नियमित विद्यालय केवल सामान्य बालकों के लिए ही बने हैं और शिक्षक भी अधिकांशतः यही मानते हैं कि उनकी नियुक्ति केवल सामान्य बालकों के अध्यापन के लिए हुई है। यह मनोवृत्ति समावेशी शिक्षा के मार्ग में बड़ी समस्या है।

(4) **माता–पिता की अज्ञानता और गरीबी**– दिव्यांग बालक के माता–पिता गरीबी और अज्ञानता के कारण अधिकांशतः यह समझ भी नहीं पाते हैं कि उनके दिव्यांग बालक को शिक्षा प्रदान करना शिक्षक और विद्यालय का कर्तव्य है और उनके बालक दया के नहीं बल्कि समानता के हकदार हैं।

(5) **सामुदायिक सहभागिता की कमी**– समुदाय आमतौर पर अपने सामान्य लोगों के लिए कार्य करने को तैयार रहता है, लेकिन दिव्यांग व्यक्तियों के प्रति उसकी भी प्रतिभागिता कम देखी जाती है।

(6) **मुक्त विद्यालयों में कम नामांकन दर**– दिव्यांग बालक अपनी शारीरिक अक्षमताओं के कारण विशेषकर गति या अस्थि विलांगता की स्थिति में नियमित तौर पर विद्यालय नहीं जा पाता है, लेकिन मुक्त विद्यालयों में भी इनके नामांकन की दर बहुत धीमी गति से बढ़ रही है, जिस कारण समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। मुक्त विद्यालय राष्ट्रीय संस्थान के सांख्यिकी प्रतिवेदन, 2012 के अनुसार दिव्यांग बालकों की नामांकन दर निम्न प्रकार है–

मुक्त विद्यालय राष्ट्रीय संस्थान में दिव्यांग बालकों का नामांकन 2007–08 से 2011–12 तक

क्र.सं.	दिव्यांगता का प्रकार	2011–12	2010–11	2009–10	2008–09	2007–08
1	अस्थि विकलांगता	1852	1303	1337	7695	3136
2	दृष्टि बाध्यता	207	49	196	283	388
3	श्रवण बाध्यता	748	609	842	601	657
4	कुष्ठरोग ग्रसित	205	204	181	133	140
5	मानसिक मंदता	6074	229	566	710	806
6	मानसिक बीमारी	90	150	107	133	196
7	बहु विकलांगता	263	254	338	1260	1146
8	प्रमस्तिष्क घात	4677	4126	2826	1576	1050
9	अभिगम अक्षमता	2083	2406	1199	992	770
कुल		16199	9330	7592	13383	8289

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत दिव्यांग बालकों के लिए शिक्षा व्यवस्था में उचित परिवर्तन किया जाना अपेक्षित है और इसके लिए अतिरिक्त लागत और संसाधन आवश्यक है। विकासशील देशों में दिव्यांग बालकों की शिक्षा व्यवस्था के निम्नलिखित लक्षण देखे जा सकते हैं–

(1) दिव्यांग बालकों की संख्या और उनके मुक्त विद्यालयों में नामांकन के उपर्युक्त आंकड़ों को देखकर कहा जा सकता है कि अधिकांश दिव्यांग बालक विद्यालय नहीं जाते हैं।

टिप्पणी

(2) दिव्यांग बालकों का एक छोटा भाग नियमित सामुदायिक विद्यालय में जाता है, जिसमें समुचित प्रशिक्षित शिक्षक होते भी हैं या नहीं भी। इन विद्यालय में दिव्यांग बालकों के संदर्भ में शिक्षकों का समर्थन तथा सहयोगी उपकरण हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। इन विद्यालयों में जो शिक्षक और उपकरण होते भी हैं वो दिव्यांग बालकों की आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम होते हैं।

(3) दिव्यांग बालकों का छोटा भाग विशेष विद्यालय में जाता है, जो सामान्यतः सरकार के सहयोग से गैर–सरकारी संगठनों द्वारा वित्तपोषित होता है। ऐसे विद्यालय सामान्यतः नगरों में प्राथमिक शिक्षा के लिए होते हैं।

(4) विशेष विद्यालय और केन्द्र मंत्रियों के प्रशासन के अंतर्गत होते हैं, जो सामान्यतः शिक्षा विभाग अथवा सामाजिक कल्याण विभाग के अंर्तगत आते हैं।

संसाधन संग्रह के लिए उपाय

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत संसाधन संग्रह एक बड़ी चुनौती है और इससे निपटने के लिए कई स्तरों पर और कई स्रोतों से प्रयास किया जाना अपेक्षित है। इसे हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं–

(1) सरकार द्वारा प्रयास– समावेशी शिक्षा को संचालित करने का दायित्व सरकार पर होता है। दिव्यांग बालकों की शिक्षा के संदर्भ में सरकार द्वारा निम्नलिखित कदम उठाया जा सकता है–

सभी बालकों के लिए तथा विद्यालय से बाहर रहने वाले बालकों के लिए धन का प्रबंध करने हेतु शिक्षा मंत्री के दायित्व को बढ़ाते हुए प्रशासनिक संरचना की पहचान करना

बालकों के लिए विशेषकर दिव्यांग बालकों के शिक्षण के लिए आवश्यक पाठ्यचर्या, सहयोगी उपकरण, सामग्री और तकनीक की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए एक व्यवस्था की स्थापना करना

उन परिस्थितियों की पहचान करना जिसमें विद्यालय उपकरणों से लैस और उपयोगी सिद्ध हो सके।

नियमित विद्यालय के सामान्य शिक्षकों के साथ विशेषज्ञ सहयोगी शिक्षकों के लिए पूर्व सेवा प्रशिक्षण के साथ सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। इस प्रशिक्षण में प्रशासन और विद्यालय प्रबंधन के लिए उन्मुखीकरण और जागरूकता की आवश्यकता होगी।

समावेशी शिक्षा के लिए एक प्रतिबद्ध बजट का निर्माण करना जिसमें दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए अलग से प्रावधान हो।

(2) विद्यालयों और शिक्षकों द्वारा प्रयास– दिव्यांग बालकों की शिक्षा के लिए विद्यालय और शिक्षक को सकारात्मक भाव रखते हुए दिव्यांग बालकों के परिवार और समुदाय से अंतःक्रिया करना चाहिए ताकि ये बालक विद्यालय तक आ सकें।

(3) गैर–सरकारी संगठनों द्वारा प्रयास– गैर–सरकारी संगठन अपने कर्तव्यों को समझते हुए अपनी–अपनी आय का एक निश्चित भाग इन दिव्यांग बालकों की शिक्षा

और कल्याण में खर्च करें और इस संदर्भ में सरकार से भी अनुदान प्राप्त कर सकें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) माता–पिता और परिवार द्वारा प्रयास– बालक प्राथमिक तौर पर अपने माता–पिता और परिवार के संपर्क में आता है और यह परिवार और माता–पिता का दायित्व है कि वे अपने दिव्यांग बालकों के लिए विशेष शिक्षा का प्रबंध करें, क्योंकि सामान्य बालकों की तुलना में दिव्यांग बालकों को इसकी अधिक आवश्यकता होती है।

(5) समुदाय द्वारा प्रयास– समुदाय को अपने सदस्यों की विशेष कर दिव्यांग सदस्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विशेष शिक्षा और कल्याण का प्रबंध करना चाहिए, जिसमें अमीर और गरीब सभी लोगों के दिव्यांग बालक शिक्षित हो सकें।

वास्तव में विकासशील देशों में दिव्यांग बालकों की शिक्षा का एकमात्र विकल्प नियमित विद्यालयों में समावेशी शिक्षा ही है, जो सभी के लिए शिक्षा को सुनिश्चित करता है। वर्तमान में विशेष विद्यालय अल्प संख्या में दिव्यांग बालकों को शिक्षा प्रदान करता है, क्योंकि इसमें खर्च अधिक आता है और गरीब ग्रामीण अभिभावक इसको वहन नहीं कर पाते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि इन विशेष विद्यालयों को कम लागत वाला तथा उच्च गुणवत्तायुक्त बनाया जाए ताकि ग्रामीण और गरीब अभिभावक भी अपने दिव्यांग बालक को इन विद्यालयों में जाने से नहीं रोक सकें।

अपनी प्रगति जांचिए

6. किस शिक्षा की अवधारणा शारीरिक एवं मानसिक रूप से बच्चों को सामान्य विद्यालयों में शिक्षा देने से संबंधित है?

   (क) समेकित शिक्षा (ख) समावेशित शिक्षा

   (ग) विशेष शिक्षा (घ) इनमें से कोई नहीं

7. केंद्र सरकार ने माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग बालकों के लिए 'समावेशी शिक्षा' नामक योजना कब शुरू की थी?

   (क) 2005–06 (ख) 2009–10

   (ग) 2011–12 (घ) 2013–14

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (ग)
7. (ख)

3.6 सारांश

पाठ्यचर्या को एक विशेष स्तर पर किसी विषय के लिए शामिल विषयों की एक सूची बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, और वह ऐसा कुछ हो सकता है जिसमें 'बच्चों को दिया जाने वाला स्कूल और बाहर का कुल अनुभव' शामिल हो सकते हैं।

टिप्पणी

पाठ्यचर्या को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिकल्पित किया जा सकता है। समाज जिसको महत्वपूर्ण शिक्षण और सीखने के रूप में परिकल्पना करता है, वो 'उद्देश्य' पाठ्यचर्या का निर्माण करता है। चूंकि यह आमतौर पर आधिकारिक दस्तावेजों में प्रस्तुत किया जाता है, इसलिए इसे 'लिखित' और/या 'आधिकारिक' पाठ्यचर्या भी कहा जा सकता है। हालांकि, कक्षा स्तर पर, इस इच्छित पाठ्यक्रम को जटिल कक्षाओं की एक श्रृंखला के माध्यम से बदल दिया जा सकता है, और जो वास्तव में दिया गया है वह 'कार्यान्वित' पाठ्यचर्या के रूप में माना जा सकता है।

पाठ्यचर्या के विवरण कुछ अभ्यासों को चुनने के लिए शिक्षक को तर्क प्रदान करते हैं। ये व्यवहार शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों से संबंधित हो सकते हैं। इससे शिक्षक और सिद्धांत के बीच संबंध देखने में मदद मिलती है। आमतौर पर, जब शिक्षक विद्यार्थियों के साथ काम करना शुरू करते हैं, तो उनके पास कुछ सामग्री होती है, उनके पास कुछ तरीके होते हैं और यह दिखाने के लिए कुछ संकेतक तैयार करते हैं कि शिक्षा मिल रही है। हालांकि, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिकांश शिक्षक पाठ्यपुस्तक को पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के रूप में देखते हैं और महसूस करते हैं कि उन्हें ये सीखना है और ये सिखाया जाने वाला एकमात्र पाठ्यक्रम है। यह तब एक सीमित गतिविधि बन जाती है जो बच्चे के विकास में योगदान नहीं करता है।

पाठ्यचर्या का निर्माण शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार किया जाता है। जैसा उद्देश्य होता है उसे प्राप्त करने के लिए वैसा ही पाठ्यक्रम निर्मित किया जाता है। शिक्षा का उद्देश्य जीवन के उद्देश्य पर आधारित होता है और जीवन का उद्देश्य अपने समय के दर्शन पर आधारित होता है। अतः शिक्षा के उद्देश्य का निर्माण जीवन के उद्देश्य अथवा जीवन के दर्शन के अनुसार किया जाता है।

सामाजिक अध्ययन वह विषय है, जिसके अंतर्गत सामाजिक गतिविधियों तथा सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। यह विषय का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तथा इसके अंतर्गत विभिन्न तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से छात्रों को उनके कर्तव्यों एवं अधिकारों के बारे में परिचित कराया जाता है। इसके अतिरिक्त यह विषय छात्रों को यह बताता है कि वे एक सामाजिक प्राणी हैं तथा समाज का अभिन्न अंग है। इसके कारण उनके कई दायित्व भी होते हैं।

सहकारी अधिगम में अध्यापक एक योजनाकार सहायक तथा निरीक्षक के रूप में कार्य करता है। इस विधि में बालकों को उनकी शैक्षिक आवश्यकता के आधार पर समूहों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक समूह के सभी सदस्य एक-दूसरे को अधिगम करना सिखाते हैं।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत अनेक रचनात्मक विधियां आती हैं जिनमें, समस्या समाधान विधि प्रभावी शिक्षण की एक महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि में भौतिक गतिविधियों के स्थान पर मानसिक गतिविधियों पर अधिक बल दिया जाता है। समस्या समाधान विधि के साथ मानसिक तथा सृजनात्मक चिंतन जुड़ा होता है। इस विधि में पहले

एक समस्या छात्रों को प्रदान की जाती है फिर छात्रों को उसकी पहचान करके उसका हल ढूंढ़ना होता है।

मस्तिष्क उद्वेलन का उद्‌देश्य नए विचारों तथा सूचनाओं को प्राप्त करके समस्या का समाधान करना है, जिससे समस्या की पहचान, समस्या का परिभाषीकरण, समस्या समाधान में संभावित रुकावटों या अवरोधों की पहचान की जा सके।

विकलांगता चाहे कम हो या अधिक, शारीरिक हो, मानसिक हो या संवेगात्मक रहे, किन्तु इससे ग्रसित बालक को अपने समायोजन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसे बालकों की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शारीरिक दोषों के परिणामस्वरूप बालकों को प्रत्येक क्षेत्र में समायोजन सम्बन्धी अनेक प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ता है तथा विकलांग बालक साधारणतः इच्छित क्रियाओं में भाग लेने के योग्य नहीं होता।

शिक्षा के क्षेत्र में मानसिक रूप से मंद बुद्धि तथा शारीरिक रूप से अक्षम (गूंगे, बहरे, अंधे तथा लूले) बालकों को विकलांग माना जाता है। इस विकलांग तथा मंदबुद्धि बालकों को सामान्य बालकों की तरह शिक्षा नहीं दी जा सकती है क्योंकि ये सामान्य बालकों से अलग होते है अतः इनकी शिक्षा व्यवस्था भी अलग ही होती है। इस क्षेत्र में सरकार ने सबसे पहले कार्य करने के लिए 1952 में "भारतीय बाल कल्याण बोर्ड" की स्थापना की। इस बोर्ड का कार्य विकलांग व मन्दबुद्धि बालकों के लिए शैक्षिक एवं व्यावसायिक समस्या का अध्ययन कर समाधान प्रस्तुत करना था।

समावेशी शिक्षा भले ही आधुनिक काल की संकल्पना है, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में इसने उल्लेखनीय परिवर्तन किया है और वंचित बालकों की शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए माहौल तैयार किया है। शिक्षा में समावेशन किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था के वश की बात नहीं है, बल्कि यह संयुक्त प्रयासों से पाया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के हितधारक और उनके दायित्व को समझ लेने के बाद शिक्षा में समावेश के लिए समर्थन और नेतृत्व की भूमिका को समझना आसान हो जाता है। समावेश के लिए पारिवारिक समर्थन और भागीदारी के साथ सामुदायिक भागीदारी भी महत्वपूर्ण होती है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **पाठ्यचर्या** - एक ऐसा शिक्षण कार्यक्रम जिसके माध्यम से स्कूल शिक्षा के सामान्य उद्देश्य, उनकी वास्तविक अभिव्यक्ति प्राप्त होती है।
- **प्राथमिक सूचना** - प्राथमिक सूचना वह होती है जो उन व्यक्तियों द्वारा प्रदान की जाती है, जो घटना से सीधे जुड़े होते हैं।
- **क्रमिक प्रकाशन** - क्रमिक प्रकाशन में पुस्तक पुनरावलोकन, संपादकीय तथा पुनरावलोकित लेख होते हैं।
- **सहयोगात्मक अधिगम** - यह अधिगम की वह विधि है जिसमें दो या दो से अधिक छात्र एक साथ कुछ सीखने का प्रयास करते हैं।
- **मस्तिष्क उद्वेलन** - मस्तिष्क उद्वेलन एक ऐसी विधि है जिसमें नए-नए विचारों का जन्म होता है। इससे समस्या का सृजनात्मक समाधान होता है।

3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. पाठ्यचर्या से क्या तात्पर्य है? परिभाषित कीजिए।
2. पाठ्यचर्या निर्माण में प्रयोग होने वाले प्रमुख सिद्धांत कौन-से हैं? उल्लेख कीजिए।
3. सामाजिक अध्ययन में पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।
4. पाठ्यक्रम को संशोधित करने के कौन-से प्रमुख कारण हैं?
5. सहकारी एवं सहयोगात्मक अधिगम से आप क्या समझते हैं? परिभाषित कीजिए।
6. समावेशन की अवधारणा को समझाइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. पाठ्यचर्या निर्माण में सिद्धांतों एवं दृष्टिकोणों की क्या भूमिका है? विस्तार से समझाइए।
2. सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों का मूल्यांकन कीजिए।
3. पाठ्यचर्या के नवीनीकरण का क्या महत्व है? स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक अध्ययन शिक्षण की समस्या समाधान एवं मस्तिष्क उद्वेलन विधियों का वर्णन कीजिए।
5. सहकारी एवं सहयोगात्मक अधिगम का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
6. विभिन्न क्षमताओं वाले छात्रों के शिक्षण की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Bhattachraya, S and Darji. 1996. *Teaching Social Studies Indian School*. Baroda: Acharya Book Depot.

Jarolimiek, John. 1977. *Social Studies in Elementary Education*. New York: Macmillan Publishing Co.

NCERT. 2005. *National Curriculum Framework*. New Delhi.

Sharma, R.A. 2001. *Social Science Teaching*. Meerut: Loyal Book Depot.

Wesley, E. B. 2004. *Teaching Social Studies in Elementary Schools*. Boston: D C Health and Company.

विनईंग एंड विनईंग, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज इन सेकंडरी स्कूल,* न्यूयॉर्क।

ब्लूम बी.एस., *टेक्सोनोमी ऑफ एजुकेशनल ऑब्जेक्टिव्स,* एम.सी.के. न्यूयॉर्क।

कोचर एस.के., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज,* नेथून एंड कं. लिमिटेड, लंदन।

ऑल इण्डिया कॉउंसिल, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज।*

शर्मा आर.ए., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज,* सूर्या प्रकाशन, मेरठ।

इकाई 4 सामाजिक अध्ययन के शिक्षण से संबंधित मुद्दे

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से मूल्यों का समावेशन
4.2.1 मूल्यों का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकृति
4.2.2 मूल्यों के प्रकार
4.2.3 सामाजिक अध्ययन के माध्यम से बच्चों में मूल्यों के समावेशन के तरीके
4.3 सामाजिक मुद्दे
4.3.1 आतंकवाद, भ्रष्टाचार एवं निरक्षरता: कारण और निवारण
4.3.2 समाज की प्रमुख समस्याएं : बेरोजगारी, महिलाएं एवं बाल शोषण, छेड़छाड़ और उत्पीड़न, लैंगिक असमानता, दहेज, आक्रामक गतिविधियों के विरुद्ध संवैधानिक संरक्षण
4.4 पर्यावरणीय मुद्दे
4.4.1 पर्यावरण को प्रभावित करने वाली मानवीय गतिविधियों के निरीक्षण हेतु विवेचनात्मक क्षमता का विकास
4.4.2 पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना
4.4.3 अपशिष्ट सामग्री का प्रबंधन
4.4.4 जलवायु परिवर्तन
4.4.5 आपदा प्रबंधन विषयक जागरूकता का विकास
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

शिक्षा अविरत भाव से सीखने वाले के जीवन जीने के लिए मूल्यों और आदर्शों से युक्त एक आवश्यक प्रक्रिया है – ऐसा जीवन जो व्यक्ति और समाज के मूल्यों और आदर्शों को संतुष्ट करता है। हमारे देश के दार्शनिकों, आध्यात्मिक गुरुओं और शिक्षकों, सभी ने विभिन्न प्रकार से, 'चरित्र निर्माण' के लिए शिक्षा को महत्त्व दिया है। 'अंतर क्षमताओं और पैदाइशी गुणों को उजागर कर' 'एकीकृत व्यक्तित्व' का निर्माण कर उसके व्यक्तिगत और बड़े पैमाने पर समाज के कल्याण पर जोर दिया है। किसी भी शब्द में कह सकते हैं, विकसित मूल्यों का महत्त्व भारत की सदियों से चली आ रही पुरातन सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत परंपराओं में सन्निहित है। हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत विविधतापूर्ण और समृद्ध है जो हमारे मूल्यों की नींव और मूल स्रोत है जिसके द्वारा हम अपने मूल्यों का पोषण करते हैं। व्यक्तियों और समुदायों का जीवन और संतों ऋषियों और दार्शनिकों का जीवन मूल्यों का जीवंत उदाहरण है जैसे आत्म–अनुशासन, भौतिक संसाधनों के अभाव में जीवन यापन करना, सादगी, बिना हिंसा के विवादों को निपटाना, बेहतर आचरण के लिए क्रांतिकारी विचारों की खोज।

टिप्पणी

सांस्कृतिक विरासत किसी भी देश की अमूल्य धरोहर होती है। यह वह तस्वीर है जिसमें किसी भी देश के स्वरूप को देखा व समझा जा सकता है। सांस्कृतिक विरासत के स्थान, सौंदर्य, वस्तु गुण की विशेषताओं को वैज्ञानिकों, इतिहासकारों द्वारा अतीत व वर्तमान में तथा भविष्य में विभिन्न सामाजिक मूल्यों के साथ वर्णित किया जाता है। सांस्कृतिक विरासत अतीत व वर्तमान की पीढ़ियों के लिए जितनी आवश्यक व उपयोगी है उतनी ही यह भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से मूल्यों का समावेशन, सामाजिक एवं पर्यावरणीय मुद्दों जैसे– आतंकवाद, भ्रष्टाचार, निरक्षरता, समाज की प्रमुख समस्याओं– दहेज, बाल शोषण आदि का अध्ययन किया गया है, साथ ही पर्यावरण को प्रभावित करने वाली गतिविधियों, अपशिष्ट सामग्री का प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन, आपदा प्रबंधन आदि तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक अध्ययन शिक्षण में मूल्यों की भूमिका को समझ पाएंगे;
- सामाजिक मुद्दों–आतंकवाद, भ्रष्टाचार, निरक्षरता आदि के बारे में जान पाएंगे;
- पर्यावरण को प्रभावित करने वाली मानवीय गतिविधियों को जान पाएंगे;
- अपशिष्ट सामग्री के प्रबंधन को समझ पाएंगे;
- जलवायु परिवर्तन एवं आपदा प्रबंधन के बारे में जान पाएंगे।

4.2 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से मूल्यों का समावेशन

किसी भी इन्सान के जीवन में मूल्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, क्योंकि इन्हीं के आधार पर अच्छे–बुरे, सही–गलत की पहचान संभव हो पाती है। परिवार के बाद विद्यालय ही मनुष्य की शिक्षा–स्थली होता है। परिवार, समाज और विद्यालय के अनुरूप ही एक व्यक्ति में सामाजिक गुणों और मानव मूल्यों का विकास होता है। वक्त के साथ शिक्षा प्रणाली से मूल्यों की शिक्षा दूर हुई है, जिसके परिणामस्वरूप हम समाज में बड़े पैमाने पर मूल्यों का विघटन देख पा रहे हैं। आज के भौतिकवादी युग में मूल्य शिक्षा न केवल चरित्र निर्माण के लिए आवश्यक है, बल्कि समाज और राष्ट्र के निर्माण में भी उनकी बहुत बड़ी भूमिका हो सकती है। बदलते समय के साथ मानव समाज ने अपने लिए जिन कुछ प्रगतिशील मूल्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा है, उनमें लोकतंत्र, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं सतत् विकास प्रमुख स्थान रखते हैं।

4.2.1 मूल्यों का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकृति

मूल्यों के अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं प्रकारों को क्रमश: इस प्रकार समझा जा सकता है–

अर्थ : सामान्य रूप से, मूल्य को नैतिक विचारों, सामान्य अवधारणाओं या विश्व के प्रति झुकाव या कभी-कभी मात्र रुचियों, दृष्टिकोणों, वरीयताओं, आवश्यकताओं, भावनाओं और स्वभावों के रूप में माना गया है। लेकिन समाजशास्त्री इस शब्द का अधिक सटीक अर्थ में उपयोग करते हैं। उनके अनुसार, 'सामान्यीकृत अंत, जिसमें सटीकता, अच्छाई या अंतर्निहित वांछनीयता का समावेश होता है, उसे मूल्य के रूप में जाना जाता है।'

टिप्पणी

इसे वांछनीय, एक आंतरिक सृजन या किसी व्यक्ति के मूल्यांकन के मानक की अवधारणा के रूप में परिभाषित किया गया है। इस तरह की अवधारणाएं और मानक अपेक्षाकृत कम हैं और रोजमर्रा की जिंदगी में आने वाली कई वस्तुओं के किसी व्यक्ति के मूल्यांकन का निर्धारण या मार्गदर्शन करते हैं।

परिभाषाएं : कुछ विद्वानों ने मूल्यों को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

प्रसिद्ध समाजशास्त्री आर.के. मुखर्जी के अनुसार, "मूल्य सामाजिक रूप से स्वीकृत इच्छाएं और लक्ष्य हैं, जो कंडीशनिंग, अधिगम (सीखने) या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से आंतरिक हो जाते हैं तथा जो आगे चलकर व्यक्तिपरक प्राथमिकताएं, मानक और आकांक्षाएं बन जाते हैं।"

एम. हरालम्बोस के अनुसार, "मूल्य एक विश्वास है कि कुछ अच्छा और वांछनीय है।"

एक अन्य समाजशास्त्री के अनुसार, 'मूल्य वह साझा विचार है जिसके माध्यम से यह समझा जाता है कि वांछनीयता, मूल्य या अच्छाई के संदर्भ में किसी चीज को कैसे सूचकांक प्रदान किया जाता है।'

मूल्यों के परिचित उदाहरण धन, निष्ठा, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुत्व और मित्रता हैं। ये सामान्यीकृत लक्ष्य हैं, जिनका जानबूझकर पीछा किया जाता है या व्यक्तियों द्वारा स्वयं में सार्थक होने के लिए आयोजित किया जाता है। किसी दिए गए समाज के मौलिक मूल्यों को उनकी विस्तृतता की वजह से स्पष्ट करना आसान नहीं है।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार मूल्य की परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

- ऑगबर्न के अनुसार, "मूल्य वह है, जो मानव इच्छाओं की तुष्टि करें।"

  जॉन जे. केन के अनुसार, "मूल्य वे आदर्श, विश्वास या मानक हैं, जिन्हें समाज या समाज के अधिकांश सदस्य ग्रहण किए हुए होते हैं।"
- डी. एच. पारकर के अनुसार, "मूल्य मस्तिष्क के आन्तरिक संसार से सम्बन्धित हैं, इच्छाओं की पूर्ति ही मूल्य है। मूल्य सदैव एक अनुभव है, कोई वस्तु या उद्देश्य नहीं।"
- ए.के.सी. ओटावे के अनुसार, "मूल्य वे विचार हैं जिनके लिए मनुष्य जीते हैं।"
- जैक आर. फ्रैंकलिन के अनुसार, "मूल्य आचार, सौन्दर्य, कुशलता या महत्त्व के वे मानदण्ड हैं, जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम रखते हैं।''
- आर. बी. पार्सी के अनुसार, "मूल्य को किसी व्यक्ति के लिए रुचि का ऐसा विषय माना है, जिसकी उत्पत्ति विषय और रुचि के बीच विशिष्ट सम्बन्धों से होती है।''

टिप्पणी

प्रकृति

मूल्य सहित जीवन ही अर्थपूर्ण होता है, मूल्यरहित जीवन का कुछ भी महत्त्व नहीं होता है। जो मनुष्य मूल्यों को महत्त्व देता है, वो समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ऐसा व्यक्ति समय को महत्त्व देता है तथा वह प्रत्येक पल का भरपूर आनन्द लेता है एवं उसका भरपूर उपयोग करता है। अतः प्रत्येक वस्तु जिसका महत्त्व होता है, उसे हम मूल्य कहते हैं।

अलग-अलग लोगों के लिए मूल्यों की प्रकृति अलग-अलग हो सकती है।

इन्हें उन विचारों या विश्वासों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिन्हें एक व्यक्ति वांछनीय या अवांछनीय मानता है।

उस कथन में परिवर्तनशीलता है, सबसे पहले, एक व्यक्ति क्या महत्त्व दे सकता है, और दूसरा, वह डिग्री जिसके लिए वे इसे महत्त्व देते हैं। मूल्य विशिष्ट हो सकते हैं, जैसे किसी के माता-पिता का सम्मान करना या घर का मालिक होना या वे अधिक सामान्य हो सकते हैं, जैसे स्वास्थ्य, प्रेम और लोकतंत्र। 'सत्य की जीत होती है', 'अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करो', 'सीखना अच्छा है' आदि ये सभी सामान्य मूल्यों के कुछ उदाहरण हैं।

व्यक्तिगत उपलब्धि, व्यक्तिगत प्रसन्नता एवं भौतिकवाद आधुनिक औद्योगिक समाज के प्रमुख मूल्य हैं।

मूल्यों की प्रकृति को हम उनकी निम्न विशेषताओं से भी समझ सकते हैं:

- हमारे अधिकांश मूल मूल्य जीवन में परिवार, मित्रों, समीप के विद्यालय, मास प्रिंट, विजुअल मीडिया और समाज के अन्य स्रोतों से सीखे जाते हैं।
- ये बेहद व्यावहारिक हैं और इनके मूल्यांकन के लिए न केवल तकनीक बल्कि रणनीतिक संदर्भ की समझ की भी आवश्यकता होती है।
- मूल्य विचारों, वस्तुओं, व्यवहार आदि के बारे में प्रभावी विचारों से भरे होते हैं।
  उनमें एक निर्णयात्मक तत्व होता है, जिसमें वे एक व्यक्ति के विचारों को ले जाते हैं कि क्या सही है, अच्छा है या वांछनीय है।
- ये योग्यता और नैतिकता के मानक प्रदान कर सकते हैं।
- ये विशिष्ट परिस्थितियों या व्यक्तियों से परे जा सकते हैं।
- व्यक्तिगत मूल्य संस्कृति, परंपरा एवं आंतरिक और बाहरी कारकों के संयोजन से प्रभावित हो सकते हैं।
- मूल्य, मनुष्य के बुनियादी आवेगों और इच्छाओं के एकीकरण और पूर्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उनके जीवन के लिए लगातार उपयुक्त होते हैं।
- ये अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं तथा किसी व्यक्ति के मूल में अधिक केंद्रीय होते हैं।
- मूल्य संस्कृति से संस्कृति और यहां तक कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न हो सकते हैं।
- मूल्य व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं दृष्टिकोण दोनों से बनी सामाजिक क्रिया में सामान्य अनुभव हैं।

- मूल्य समाज का निर्माण करते हैं, सामाजिक संबंधों को एकीकृत करते हैं।
- वे व्यक्तित्व के आदर्श आयामों और संस्कृति की गहराई को ढालते हैं तथा वे लोगों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं और दूसरों के कार्यों के मूल्यांकन के लिए मानदंड के रूप में कार्य करते हैं।
- सामाजिक जीवन के संचालन में इनकी बड़ी भूमिका होती है। वे दिन-प्रतिदिन के व्यवहार को निर्देशित करने के लिए मानदंड बनाने में सहायता करते हैं। एक संस्कृति के मूल्य बदल सकते हैं, लेकिन अधिकांश एक व्यक्ति के जीवनकाल में स्थिर रहते हैं।
- सामाजिक रूप से साझा, गहन रूप से महसूस किए गए मूल्य हमारे जीवन का एक मूलभूत हिस्सा हैं। ये मूल्य हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाते हैं। वे उन लोगों द्वारा साझा और प्रबलित होते हैं, जिनके साथ हम वार्तालाप करते हैं।

चूंकि मूल्य अक्सर दृष्टिकोण और व्यवहार दोनों को दृढ़ता से प्रभावित करते हैं, वे विद्यालय में छात्रों के आचरण के लिए एक प्रकार के व्यक्तिगत दिशा-निर्देशक के रूप में कार्य करते हैं। मूल्य यह निर्धारित करने में हमारी सहायता करते हैं कि क्या एक छात्र अध्ययन और अपने व्यवहार के संबंध में सजग है कि नहीं।

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि मूल्य छात्रों के जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

4.2.2 मूल्यों के प्रकार

मूल्यों को दो मुख्य प्रकारों में विभाजित किया गया है-

(१) **व्यक्तिगत मूल्यः** ये वे मूल्य हैं, जो मानव व्यक्तित्व के विकास या मानव व्यक्तित्व की पहचान और सुरक्षा के व्यक्तिगत मानदंडों, जैसे-ईमानदारी, वफादारी, सत्यता और सम्मान से संबंधित होते हैं।

(२) **सामूहिक मूल्यः** समुदाय की एकजुटता या समानता, न्याय, एकजुटता तथा सामाजिकता के सामूहिक मानदंडों से जुड़े मूल्य सामूहिक मूल्यों के रूप में जाने जाते हैं।

मूल्यों को उनकी श्रेणीबद्ध व्यवस्था की दृष्टि से भी वर्गीकृत किया जा सकता है– (1) आन्तरिक मूल्य, (2) बाह्य मूल्य।

जो मूल्य अन्य मूल्यों के लिए साधन मात्र गिने जाते हैं अथवा उनकी प्राप्ति में सहायक होते हैं, वे बाह्य अथवा सहायक मूल्य कहलाते हैं, जैसे भोजन से स्वास्थ्य अच्छा होता है; अतः भोजन बाह्य अथवा सहायक मूल्य और स्वास्थ्य आन्तरिक मूल्य कहा जा सकता है। कभी–कभी एक ही वस्तु सहायक मूल्य एवं आन्तरिक मूल्य रख सकती है; किन्तु स्वतंत्र दृष्टि से देखने में वह स्वयं भी शुभ हो सकती है। उदाहरणार्थ, परम सुख स्वयं ही शुभ माना जा सकता है; परंतु उसके द्वारा दूसरों का भी कल्याण अथवा सुख प्राप्त किया जा सकता है। इस कारण वह आन्तरिक एवं सहायक मूल्य कहा जा सकता है।

कुछ दार्शनिकों का यह मत है कि विश्व में यथार्थ में आन्तरिक मूल्य, उदाहरणार्थ, सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म ही है; सहायक मूल्य या तो हैं ही नहीं या

टिप्पणी

स्वप्नवत हैं। अन्य दार्शनिकों के अनुसार, जगत में केवल सहायक मूल्य ही हैं, जिनके द्वारा मनुष्यों की इच्छाओं की पूर्ति होती है अथवा उनके जीवन के कार्य सिद्ध होते हैं। इनके मतानुसार, आन्तरिक मूल्य विश्व में हैं ही नहीं; वे केवल भटकते हुए दार्शनिकों की परिकल्पनाएं ही हैं अथवा केवल नाममात्र ही हैं। कुछ द्वैतवादी आन्तरिक मूल्यों को नित्य और बाह्य अथवा सहायक मूल्यों को अनित्य एवं क्षणिक मानते हैं। परंतु आधुनिक काल में मूल्य–शास्त्रवेत्ताओं में अधिकांश लोगों का मत दोनों प्रकार के मूल्यों अर्थात आन्तरिक और सहायक मूल्यों का अस्तित्व स्वीकार करता है; किन्तु आन्तरिक मूल्यों को प्राथमिक और सहायक मूल्य को द्वितीयक अथवा गौण मानता है। कुछ ऐसे भी दार्शनिक हैं जिनका कथन है कि सहायक मूल्य ही प्राथमिक हैं, क्योंकि उन्हीं के द्वारा आन्तरिक मूल्य की प्राप्ति होती है; अतः यदि वे न हों तो आन्तरिक मूल्यों की प्राप्ति ही नहीं हो सकती है। किन्तु, यथार्थ में, इन विरोधों का समन्वय भी हो सकता है। दोनों एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं; दोनों पक्षों की क्रिया–प्रतिक्रिया जगत के समस्त क्षेत्र में पाई जाती है।

(क) आन्तरिक मूल्य

आन्तरिक मूल्यों के लक्षणों के विषय में मूल्य–शास्त्र में कई परिकल्पनाएं हैं; और उन्हीं के आधार पर, इन मूल्यों के प्रकार–भेद भी कई हैं। ज्ञान–शास्त्र के आधार पर, कुछ दार्शनिक आन्तरिक मूल्यों को मानसिक मानते हैं। उनका कथन है कि आन्तरिक मूल्य का अस्तित्व मूल्यज्ञाता के ऊपर अवलम्बित है। अध्यात्मवादी तो उन्हें मानसिक बतलाते ही हैं, कुछ भौतिकवादी भी ऐसे हैं, जो इन मूल्यों को मानसिक मानते हैं। उनका कथन है कि मूल्य एक प्रकार का अनुभव है; वह कोई वस्तु अथवा पदार्थ नहीं है। इच्छा ही मूल्यों का आधार है; जब तक इच्छा की पूर्ति का प्रयत्न अथवा उसकी चेष्टा नहीं होती है, तब तक कोई मूल्य भी नहीं होता है। यदि इच्छाएं न होतीं, तो मूल्य–अमूल्य अथवा शुभ–अशुभ का अस्तित्व भी न होता। इसी प्रकार, सुखवादी भी यही मानते हैं कि ''शुभ'' यथार्थ में सुख की प्रतीति का नाम है; और ''अशुभ'' दुख की प्रतीति का नाम है। अतः शुभ, अशुभ आदि के आन्तरिक मूल्य प्रतीत करने वाले पर निर्भर हैं। यदि हम न हों, तो मूल्य भी नहीं होंगे।

(ख) बाह्य मूल्य

यथार्थवादी दार्शनिक मूल्यों को मानसिक नहीं मानते हैं। उनका कथन है कि वस्तु तभी अच्छी लगेगी जब वह मूल्यवान होगी; अतः मूल्य ज्ञान दृष्टा में नहीं होते हैं; वरन वस्तु में होते हैं। कुछ अध्यात्मवादियों का भी यही मत है। उदाहरणार्थ, अफलातून के अनुसार, ''शुभ'' एक सामान्य तथा अन्तिम तत्व अथवा सत्ता है जो प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व के पूर्व से स्थित है और जिससे विश्व की सब शुभ वस्तुएं निकली हैं। यह शुभ अन्ततम एक महान तत्व है और संसार के सभी शुभ इसके प्रतिबिम्ब हैं। इस शुभ का अस्तित्व मनुष्यों के अनुभव पर निर्भर नहीं है; वरन मनुष्यों को जो शुभ का अनुभव होता है वह इसी अन्ततम शुभ के प्रकार के कारण होता है। कुछ मध्यमार्गीय यथार्थवादी ऐसा कहते हैं कि शुभ अथवा मूल्य होता तो वस्तु अथवा पदार्थ में है, परंतु उसमें ऐसी योग्यता होती है जिसके कारण अनुभवकर्त्ता के मन में यह धारणा हो जाती है कि अमुक वस्तु मूल्यवान है अथवा अमूल्यवान है।

टिप्पणी

मध्यमार्गीय दार्शनिक ऐसा मानने लगे हैं कि मूल्यों में दोनों प्रकार की विशेषताएं पाई जाती हैं, अर्थात वह अनुभवकर्त्ता के अनुभव पर अवलम्बित होने के कारण मानसिक भी कहे जा सकते हैं; और जिस वस्तु से ऐसा अनुभव प्राप्त होता है, उस वस्तु में भी निहित माने जा सकते हैं। इस प्रकार मूल्य के लिए यथार्थ वस्तु भी होनी चाहिए और उसमें मनोरंजन लेने वाला मानस भी। सारांश यह है कि दोनों मत, अर्थात (1) ''वस्तुएं इसलिए अच्छी हैं कि हम उन्हें चाहते हैं''; और (2) ''हम वस्तुओं को इस कारण चाहते हैं कि वे स्वतः अच्छी हैं'', यद्यपि किसी प्रसंग में पहला, और किसी प्रसंग में दूसरा सत्य प्रतीत होता है। इन मूल्यों में पारस्परिक संघर्ष सदा चलता रहता है। इसी संघर्ष के कारण ''अशुभ'' की प्रतीति होती है।

एक अन्य ढंग से भी मूल्यों में प्रकार–भेद माना जा सकता है। तत्व शास्त्र की दृष्टि से, दार्शनिकों में कुछ अध्यात्मवादी, कुछ जड़वादी, कुछ निष्पक्ष तत्व मानने वाले और कुछ किसी न किसी प्रकार के मध्यमार्गीय होते हैं। इनके दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार, मूल्यों के रूप के संबंध में भी मतभेद हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, अध्यात्मवादी ऐसा मानते हैं कि सब मूल्य आध्यात्मिक हैं, और इस कारण सब आन्तरिक मूल्य शुभ हैं। ''अशुभ'' केवल शुभ के अभाव का नाम है। परंतु जड़वादी ऐसा नहीं मानते हैं। वे मूल्य को अन्ततम सत्ता नहीं कहते हैं; और न ही वे मूल्यों का अन्तिम अस्तित्व मानते हैं। उनके अनुसार, जगत मूल्यरहित अथवा मूल्य–शून्य है; और 'पुद्रल' निष्पक्ष अथवा मूल्य–शून्य है। कुछ वेदान्ती भी जगत को मूल्य–शून्य मानते हैं। वे कहते हैं कि शुभ और अशुभ की स्थिति माया में है, ब्रह्म में नहीं है; अतः शुभ और अशुभ पारमार्थिक दृष्टि से भ्रम–मात्र है। कुछ निष्पक्ष तत्व मानने वाले एकवादी भी ऐसा ही कहते हैं। परंतु यथार्थ में ये दार्शनिक एक ऐसे मूल्य अथवा तत्व को अन्ततम मानते हैं, जो शुभ–अशुभ के परे हो और इस कारण शुभ–अशुभ से भी बढ़कर हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और मूल्य–भेद

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार भारतीय समाज सांस्कृतिक दृष्टि से बहुलवादी है। शिक्षा द्वारा ऐसे सार्वभौमिक व शाश्वत मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए जो भारतीयों की एकता व उनके समाकलन की ओर अभिमुख हों। मूल्य शिक्षा से धार्मिक उन्माद, हिंसा, अन्धविश्वास, भाग्यवाद व रूढ़िवादिता समाप्त होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के 8.4 अनुच्छेद में शिक्षा को सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास के लिए एक सशक्त साधन बनाने के लिए कहा गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा को राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की अन्तिम गारण्टी माना गया है। उसमें कहा गया है कि 'यह उन संवेदनशीलताओं तथा प्रत्यक्षीकरणों का परिष्कार करती है जो राष्ट्रीय सामंजस्य में वैज्ञानिक स्वभाव एवं मन व आत्मा की स्वतन्त्रता को सम्भव बनाते हैं तथा इस प्रकार संविधान में निहित समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातन्त्र के लक्ष्यों की प्राप्ति सुगम हो जाती है। शिक्षा प्रणाली पाठ्यचर्या के राष्ट्रीय ढांचे पर आधारित होगी व इसका निर्माण इस प्रकार किया जाएगा कि भारत की उभयनिष्ठ धरोहर, प्रजातन्त्र, समतावादिता व धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्यों, विभिन्न लिंगों के लोगों में समानता, पर्यावरण की रक्षा, सामाजिक बाधाओं की समाप्ति, छोटे परिवार के मानक में आस्था तथा वैज्ञानिक स्वभाव के विकास को बढ़ावा मिल सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विज्ञान शिक्षा

के माध्यम से बच्चों में वस्तुनिष्ठता, जिज्ञासा, सौन्दर्यात्मक संवेदनशीलता व वैज्ञानिक स्वभाव को विकसित करने पर बल दिया गया है। नीति की कार्य योजना में धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक तथा नैतिक मूल्यों, समाज–सेवा, श्रम के प्रति आदर, छोटे परिवार के मानक में आस्था, वातावरण संरक्षण, संस्कृति बोध तथा राष्ट्रीय एकता जैसे मूल्यों के विकास पर बल देने की अनुशंसा की गई है।

टिप्पणी

गोलाइटली– इन्होंने आवश्यक व संक्रियात्मक मूल्यों का अन्तर किया है।

लेविस– इन्होंने आन्तरिक, बाह्य, अन्तर्भूत तथा सहायक मूल्यों का वर्गीकरण किया है।

कार्नेल– इन्होंने निश्चयात्मक तथा क्रियात्मक मूल्यों का उल्लेख किया है।

पैरी– इन्होंने सकारात्मक, निषेधात्मक, वास्तविक आदि मूल्य वर्गों की चर्चा की है।

स्प्रेगर– इनका विषय–वस्तु आधारित वर्गीकरण सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। ऑलपोर्ट तथा वर्नन के मूल्य परीक्षण में इसी वर्गीकरण का प्रयोग हुआ है। इसके अनुसार मूल्यों के छः प्रकार होते हैं– सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक। यह वर्गीकरण संस्कृति सापेक्ष होता है।

रेल्फ व्हाइट– इन्होंने 100 सामान्य मूल्यों व 25 राजनीतिक मूल्यों को विभेदित किया है। मूल्य सामाजिक उत्पाद है। समाज की विभिन्न संस्थाएं पीढ़ी–दर–पीढ़ी कुछ मूल्यों को स्थानांतरित करने व संरक्षित रखने हेतु प्रयास करती रही हैं। विभिन्न संस्थाओं के विशिष्टीकृत मूल्यों में भी परस्पर व्यापन होता है। वे एक–दूसरे से पूर्णतः भिन्न नहीं होते।

वी.एन.के. रेड्डी– अपनी पुस्तक 'Man, Education and Values' में निम्न प्रकार के मूल्यों का उल्लेख करते हैं–

1. **भौतिक मूल्य**– ये मूल्य सहायक मूल्य होते हैं। सम्पूर्ण विश्व यथार्थता का विस्तार है। यह यथार्थता भौतिक है। पृथ्वी, वायु, जल, आकाश व अग्नि इस यथार्थता के मुख्य अवयव हैं। प्रत्येक दर्शन में भौतिक वस्तुओं को समस्त उद्भव व विकास का आधार माना गया है।
2. **आर्थिक मूल्य**– मनुष्य को जीवन के लिए भोजन की जरूरत होती है। समस्त समाज तथा उसकी कार्यप्रणाली आर्थिक मूल्यों पर आधारित है। जनंसख्या में वृद्धि के साथ–साथ आर्थिक मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं। मनुष्य भौतिकवादी होता जा रहा है।
3. **मनोवैज्ञानिक मूल्य**– ये चिन्तन, भावना तथा इच्छा में व्यक्ति की सांकल्पिक तथा भौतिक प्रकृति पर आधारित उच्च मूल्य हैं। इन्हें बौद्धिक मूल्य, नैतिक मूल्य तथा सौन्दर्यात्मक मूल्य अर्थात सत्यं, शिवं तथा सुन्दरं में वर्गीकृत किया जा सकता है।

शेवर तथा स्ट्रांग– इन्होंने मूल्यों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है–

1. **सौन्दर्यात्मक मूल्य**– ये वे मानदण्ड हैं जिनसे हम सुन्दरता का निर्माण करते हैं। सुन्दरता, कला, संगीत, प्रकृति, ड्रेस, कक्षा में प्रदर्शन, व्यक्तिगत बनावट आदि क्षेत्रों से संबंधित हो सकती है।

2. **सहायक मूल्य**– ये मानदण्ड–चर्चा, व्याख्यान, प्रतियोगिता, समूह निर्माण, गायन आदि को किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के सर्वाधिक प्रभावी तरीके की दृष्टि से जांच में काम में लाये जाते हैं।
3. **नैतिक मूल्य**– इनमें शान्ति, सहभागिता, वफादारी, सहयोग, धार्मिकता, ईमानदारी तथा समाज के लिए त्याग आदि वैयक्तिक आधारभूत मान्यताएं तथा मानव जीवन की पवित्रता, उचित प्रक्रिया, समान सुरक्षा, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि परिस्थिति विषयक वरीयताएं शामिल हैं।

4.2.3 सामाजिक अध्ययन के माध्यम से बच्चों में मूल्यों के समावेशन के तरीके

मूल्य समाज के प्रमुख तत्त्व हैं तथा इन्हीं मूल्यों के आधार पर हम किसी समाज की प्रगति, उन्नति, अवनति अथवा परिवर्तन की दिशा निर्धारित करते हैं। इन्हीं मूल्यों द्वारा व्यक्तियों की क्रियाएं निर्धारित की जाती हैं तथा इससे समाज का प्रत्येक पक्ष प्रभावित होता है। सामाजिक मूल्यों के बिना न तो समाज की प्रगति की कल्पना की जा सकती है और न ही भविष्य में प्रगतिशील क्रियाओं का निर्धारण ही सम्भव है। मूल्यों के आधार पर ही हमें यह पता चलता है कि समाज में किस चीज को अच्छा अथवा बुरा समझा जाता है। अतः सामाजिक मूल्य मूल्यांकन का भी प्रमुख आधार हैं। विभिन्न समाजों की आवश्यकताएं तथा आदर्श भिन्न-भिन्न होते हैं, अतः सामाजिक मूल्यों के मापदण्ड भी भिन्न-भिन्न होते हैं। किसी भी समाज में सामाजिक मूल्य उन उद्देश्यों, सिद्धान्तों अथवा विचारों को कहते हैं जिनको समाज के अधिकांश सदस्य अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक समझते हैं और जिनकी रक्षा के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान करने को तत्पर रहते हैं। मातृभूमि, राष्ट्रगान, धर्मनिरपेक्षता, प्रजातन्त्र इत्यादि हमारे सामाजिक मूल्यों को ही व्यक्त करते हैं।

मूल्य शिक्षा का अर्थ

मूल्य शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है, जिसमें मूल्यों पर बल दिया जाता है और इसके अन्तर्गत ऐसी प्रणाली का संगठन किया जाता है जो शिक्षा के सभी अंग जैसे- पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां,उद्देश्य एवं शिक्षक आदि सभी मूल्यों का संवर्द्धन करने में तत्पर हो।आज जो सर्वत्र मूल्यों का प्रश्न दिखाई दे रहा है, उसे दूर करने के लिए शिक्षा ही एक उपयुक्त माध्यम हो सकती है। इसलिए शिक्षाशास्त्रियों ने इस विषय पर चिन्तन करके मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए भरपूर प्रयास किए और "मूल्य शिक्षा" की ओर उन्मुख हुए हैं और आज भी प्रयासरत हैं।

मूल्य शिक्षा के उद्देश्य

मूल्य शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. छात्रों में अनैतिकता की परख करने की सामर्थ्य का विकास करना।
2. भौतिकवादी तथा आध्यात्मवादी संस्कृति में समन्वय स्थापित करना।
3. एक सुखद एवं समृद्ध भारतवर्ष का निर्माण करना।
4. मानव के सुखद भविष्य का निर्माण करना।

5. व्यक्ति के आचरण में सुधार लाना।
6. छात्रों को राष्ट्रीय लक्ष्यों (समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता लोकतन्त्र) का सही तरीके से बोध कराना।
7. छात्रों में सहयोग, प्रेम तथा करुणा, शांति एवं अहिंसा, साहस समानता, बन्धुत्व, श्रम-गरिमा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विभेदीकरण की शक्ति आदि मौलिक गुणों का विकास करना।

टिप्पणी

मूल्यों का महत्त्व

1. मनुष्य अपनी अनन्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सतत प्रयत्न करता रहता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति में उसे सामाजिक मूल्यों से पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है।
2. मानव समाज में व्यक्ति इन मूल्यों के आधार पर समाज द्वारा स्वीकृत नियमों का पालन करता है। वह उनके अनुकूल अपने व्यवहार को ढालकर अपना जीवन व्यतीत करता है।
3. समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। सामाजिक मूल्य सम्बन्धों के इस जाल को सन्तुलित करने व समाज के सदस्यों में सामंजस्य बनाए रखने में सहयोग प्रदान करते हैं।
4. सामाजिक मूल्यों के आधार पर सामाजिक तथ्यों और घटनाओं; जैसे विचार, अनुभव तथा क्रियाओं आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। अत: सामाजिक तथ्यों को समझने के लिए सामाजिक मूल्यों का ज्ञान होना जरूरी है।
5. समाज के सदस्यों की प्रवृत्तियां व मनोवृत्तियां सामाजिक मूल्यों के आधार पर निर्धारित की जाती हैं।
6. सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही सामाजिक क्रियाओं एवं कार्यकलापों का ज्ञान होता है।
7. सामाजिक मूल्य व्यक्तियों को अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं व उद्देश्यों को वास्तविकता प्रदान करने का आधार प्रस्तुत करते हैं।
8. सामाजिक मूल्य व्यक्ति के समाजीकरण एवं विकास में सहायक होते हैं।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से बच्चों में मूल्यों का समावेश

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के कई उद्देश्य होते हैं। इनमें से एक प्रमुख उद्देश्य बच्चों में मूल्यों का समावेश करना भी है। जब स्कूल के पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन विषय को शामिल किया गया था तो इस बात का विशेष ध्यान रखा गया था कि इसका एक उद्देश्य बच्चों को सामाजिक मूल्यों से परिचित कराना तथा उनमें इनका विकास करना है। आइए यहां हम सामाजिक अध्ययन शिक्षण के माध्यम से बच्चों में मूल्यों का समोवश के बारे में जानते हैं :

इस विषय के अध्ययन के माध्यम से बच्चों में मूल्यों के विकास एवं उनके व्यक्तित्व में उनके समावेश के लिए निम्न तरीके हो सकते हैं :

1. वर्तमान पाठ्यक्रम के माध्यम से मूल्यों का समावेश,
2. सहगामी क्रियाओं के माध्यम से मूल्यों का समावेश,
3. कथा या कहानी के माध्यम से मूल्यों का समावेश,
4. परिचर्चा या नारों (स्लोगन) के माध्यम से मूल्यों का समावेश, एवं
5. खेलों के माध्यम से मूल्यों का समावेश।

1. वर्तमान पाठ्यक्रम के माध्यम से मूल्यों का समावेश

इसके अंतर्गत निम्न चीजें की जा सकती हैं-

- प्रार्थना का आयोजन।
- भूगोल विषय का अध्ययन।
- विभिन्न प्रकार के साहित्य का अध्ययन।
- कविता एवं नाटक का आयोजन।

2. सहगामी क्रियाओं के माध्यम से मूल्यों का समावेश

- किसी समीप के प्लैनेटोरियम की यात्रा।
- छात्रों को जंगल के भ्रमण पर ले जाकर विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं से परिचित कराना।
- छात्रों को खेतों के भ्रमण पर ले जाकर विभिन्न प्रकार की फसलों से परिचित कराना।
- छात्रों को स्टैंप्स (डाक टिकिट) के संग्रह हेतु प्रोत्साहित करना।
- डायरी लिखना।
- स्कूलों में विशेष प्रकार के आयोजन।
- स्कूलों में विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन करना।
- छात्रों को मेडिटेशन सिखाना।
- स्कूल में विभिन्न प्रकार की प्रतियोगितायें आयोजित करना।

3. कथा या कहानी के माध्यम से मूल्यों का समावेश

- छात्रों को शिक्षकों द्वारा रोचक एवं शिक्षाप्रद कहानियां सुनाना।
- छात्रों को स्वयं किसी कहानी को सुनाने के लिए प्रेरित करना।
- छात्रों के सम्मुख कहानियों के माध्यम से महान लोगों की जीवनी प्रस्तुत करना।
- कहानियों के माध्यम से छात्रों में देशप्रेम की भावना जागृत करना।

4. परिचर्चा या नारों (स्लोगन) के माध्यम से मूल्यों का समावेश

- छात्रों के बीच विभिन्न प्रकार की परिचर्चायें या वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित करना।
- छात्रों को वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करना।
- शिक्षकों द्वारा विभिन्न नारों के माध्यम से छात्रों को जागृत करना।

टिप्पणी

- समय-समय पर नारों के रूप में छात्रों के समक्ष मूल्यवान आदर्श प्रस्तुत करना।

5. खेलों के माध्यम से मूल्यों का समावेश

- स्कूलों में विभिन्न प्रकार की खेल प्रतियोगितायें आयोजित करना।
- छात्रों को खेल प्रतियोगिताओं में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करना।
- स्कूलों की खेल प्रतियोगिताओं में विजेता छात्रों को पुरस्कार देना।
- छात्रों को देश के राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय खेल प्रतिभाओं के बारे में बताना।
- छात्रों को खेलों में महत्त्व के बारे में बताना।

विद्यालय स्तर पर छात्रों को मूल्यों की शिक्षा देने से होने वाले लाभ

1. मूल्य शिक्षा से छात्रों में सहयोग, समानता, साहस, प्रेम एवं करुणा, बन्धुत्व, श्रम-गरिमा वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विभेदीकरण करने की क्षमता आदि गुणों का विकास होता है।
2. मूल्य समाज के अनेक विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त, नैतिक नियम और व्यवहार के मानदण्ड होते हैं, व्यक्ति इनमें से कुछ को अधिक महत्त्व देता है और कुछ को अपेक्षाकृत कम। वह जिन्हें जितना ज्यादा महत्त्व देता है, वह उसके लिए उतने ही अधिक शक्तिशाली मूल्य होते हैं।
3. मूल्य शिक्षा छात्रों को एक उत्तरदायी नागरिक बनने हेतु प्रशिक्षित करती है।
4. ये समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं।
5. मूल्यों को मनुष्य सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हुए, सीखते एवं धारण करते हैं।
6. मूल्य, अलग-अलग समाजों में अलग-अलग होते हैं। अत: मूल्यों से ही उनकी पहचान होती है।
7. मूल्य व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित एवं दिशा-निर्देशित करते हैं।
8. मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है, जिसका संबंध मनुष्य के अन्तर्मन से होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "मूल्य वे आदर्श, विश्वास या मानक हैं, जिन्हें समाज या समाज के अधिकांश सदस्य ग्रहण किए हुए होते हैं।" यह किसकी परिभाषा है?

   (क) आर.बी. पार्सी (ख) आर्गबर्न

   (ग) जॉन जे. केन (घ) जैक आर. फ्रैंकलिन

2. जो मूल्य अन्य मूल्यों के लिए साधन मात्र गिने जाते हैं अथवा उनकी प्राप्ति में सहायक होते हैं वे कहलाते हैं–

   (क) आंतरिक मूल्य (ख) बाह्य मूल्य

   (ग) सामाजिक मूल्य (घ) व्यक्तिगत मूल्य

4.3 सामाजिक मुद्दे

टिप्पणी

भारत एक विशाल देश है जहां विभिन्न धर्मों, जाति व वेश-भूषा धारण करने वाले लोग निवास करते हैं। दूसरे शब्दों में अनेकता में एकता हमारी पहचान और हमारा गौरव है परंतु अनेकता अनेक समस्याओं की जननी भी है।

जाति, भाषा, रहन-सहन व धार्मिक विभिन्नताओं के बीच कभी-कभी सामंजस्य स्थापित रखना दुष्कर हो जाता है। विभिन्न धर्मों व संप्रदायों के लोगों की विचारधाराएं भी विभिन्न होती हैं। देश में व्याप्त प्रांतीयता, भाषावाद, संप्रदायवाद या जातिवाद इन्हीं विभिन्नताओं का दुष्परिणाम है। इसके चलते आज देश के लगभग सभी राज्यों से दंगे-फसाद, मारकाट, लूट-खसोट आदि के समाचार प्रायः सुनने व पढ़ने को मिलते हैं।

नारी के प्रति अत्याचार, दुराचार तथा बलात्कार का प्रयास हमारे समाज की एक शर्मनाक समस्या है। प्राचीनकाल में जहां नारी को देवी तुल्य समझा जाता था आज उसी नारी की भावनाओं को दबाकर रखा जाता है। पुरुष का अहं उसे अपने समकक्ष स्थान देने के लिए विरोध करता है।

समाज में स्त्रियों एवं शूद्रों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां आज भी नारी को कष्टमय व असहाय जीवन जीने के लिए बाध्य करती हैं।

केवल अशिक्षित ही नहीं अपितु हमारे कथित सभ्य-शिक्षित समाज में भी दहेज का जहर व्याप्त है। प्रतिदिन कितनी ही भारतीय नारियां दहेज प्रथा के कारण मनुष्य की बर्बरता का शिकार हो जाती हैं अथवा जिंदा जला दी जाती हैं।

अंधविश्वास व रूढ़िवादिता जैसी सामाजिक बुराई देश की प्रगति को पीछे धकेल देती है। अंधविश्वास व रूढ़िवादिता हमारे नवयुवकों को भाग्यवादिता की ओर ले जाती है फलस्वरूप वे कर्महीन हो जाते हैं। अपनी असफलताओं में अपनी कमियों को ढूंढ़ने के बजाय वे इसे भाग्य की परिणति का रूप दे देते हैं।

भ्रष्टाचार भी हमारे देश में एक जटिल समस्या का रूप ले चुका है। सामान्य कर्मचारी से लेकर ऊंचे-ऊंचे पदों पर आसीन अधिकारी तक सभी भ्रष्टाचार के पर्याय बन गए हैं। जिस देश के नेतागण भ्रष्टाचार में डूबे हुए होंगे तो सामान्य व्यक्ति उससे परे कब तक रह सकता है । यह भ्रष्टाचार का ही परिणाम है कि देश में महंगाई तथा कालाबाजारी के जहर का स्वच्छंद रूप से विस्तार हो रहा है।

जातिवाद की जड़ें समाज में बहुत गहरी हो चुकी हैं। ये समस्याएं आज की नहीं हैं अपितु सदियों, युगों से पनप रही हैं। इनके परिणामस्वरूप सामाजिक विषमता पनपती है जो देश के विकास में बाधक बनती है। इसके अतिरिक्त भाई-भतीजावाद व कुर्सीवाद समाज में असमानता व अन्य समस्याओं को जन्म देता है।

भारत की राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए सामाजिक स्तर पर जद्दोजहद करने की आवश्यकता है।

देश में अशिक्षा और निर्धनता हमारी प्रगति के मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट हैं। ये दोनों ही कारक मनुष्य के संपूर्ण बौद्धिक एवं शारीरिक विकास में अवरोध उत्पन्न करते हैं। जब तक समाज में अशिक्षा और निर्धनता व्याप्त है, कोई भी देश वास्तविक रूप में विकास नहीं कर सकता है।

इन समस्याओं का हल ढूंढ़ना केवल सरकार का ही दायित्व नहीं है अपितु यह पूरे समाज तथा समाज के सभी नागरिकों का उत्तरदायित्व है। इसके लिए जनजागृति आवश्यक है जिससे लोग जागरूक बनें व अपने कर्तव्यों को समझें। देश के युवाओं व भावी पीढ़ी पर यह जिम्मेदारी और भी अधिक बनती है।

आवश्यकता है कि देश के सभी युवा, समाज में व्याप्त इन बुराइयों का स्वयं विरोध करें तथा इन्हें रोकने का हर संभव प्रयास करें। यदि यह प्रयास पूरे मन से होगा तो इन सामाजिक बुराइयों को अवश्य ही जड़ से उखाड़ फेंका जा सकता है।

4.3.1 आतंकवाद, भ्रष्टाचार एवं निरक्षरताः कारण और निवारण

आतंकवाद एक ऐसा शब्द है जिसे सुनकर दहशत हो जाती है कि किस का घर उजड़ने वाला है। आतंकवाद के कारण भारत देश ही नहीं वरन समूचा विश्व परेशान है। कुछ ऐसे सिरफिरे लोग जोकि विक्षिप्त मानसिकता के होते हैं उनके द्वारा यह कृत किया जाता है। कट्टरपंथ और आतंकवाद पूरे विश्व की ज्वलंत समस्या हैं, शायद ही कोई देश इस अभिशाप से अछूता रहा है। सेना समर्थित कमजोर सरकारों की शह मिलने से आतंकवाद को फलने–फूलने का भरपूर मौका मिला है। अकूत तेल भंडारों से लबरेज देशों की बेहिसाबी धन–संपत्ति और भटकी हुई युवा शक्ति ने उनके लिए खाद पानी का काम किया हैं। फिर भी राजनीतिज्ञ ऐसे भस्मासुरों को वरदान देने से बाज नहीं आ रहे हैं। सम्मेलनों में बार–बार कहा जाता है कि शांति और स्थायित्व कायम किया जाए सभी देशों में इस हेतु साझा कदम उठाए जाएं। हालांकि दृढ़ इच्छा शक्ति और अदम्य साहस के बलबूते अमरीका जैसे सर्वशक्तिमान राष्ट्र ने आंतकी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होने दी है।

आतंकवाद जिस प्रकार से एक अन्तरराष्ट्रीय घटना बनती जा रही है उससे यह बात निश्चित दिखाई देती है कि आतंकवाद के विविध रूप व विविध प्रयोजन हो सकते हैं। अतः इस बात को भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आतंकवाद को जन्म देने वाले कारक भी विविध हो सकते हैं।

आतंकवाद के कारण

आतंकवादी जिस प्रकार की रणनीति तैयार करते हैं उसको यदि बारीकी से देखा जाए तो वह उन कारणों या कारकों के विरुद्ध रणनीति होती है जिसने कि आतंकवाद को जन्म दिया है। आतंकवाद के मुख्य कारण हैं–

- अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना
- धार्मिक कट्टरतावाद
- मनोवैज्ञानिक कारण

अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना

समाज के अल्पसंख्यक वर्गों के प्रति सरकारी तन्त्र की भेदभावपूर्ण अथवा अनदेखी करने की नीति उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है। कई बार अल्पसंख्यक समुदाय के लोग यह महसूस करते हैं कि उनको जानबूझकर पिछड़ा अथवा सुविधाओं से वंचित रखा जा रहा है। सरकार की अल्पसंख्यकों के प्रति नीति के बहुत से धार्मिक,

सामाजिक व राजनीतिक कारण हो सकते हैं। परन्तु होता यह है कि यह असुरक्षा व भेदभाव की भावनाएं उनमें निराशा के भाव पैदा करती हैं।

टिप्पणी

भारत में हिन्दू वर्ग की अपेक्षा मुस्लिम वर्ग, श्रीलंका में ईसाइयों की (उप समूह वर्ग से, रोमन कैथोलिक्स सहित) अपेक्षा तमिल समूह व पाकिस्तान में बहुमत इस्लाम धर्म में ही शिया उप सम्प्रदाय या पख्तून बलूची, मुहाजिर समुदाय अधिक असंतुष्ट हैं। अतः धर्म व सम्प्रदाय के नाम पर आतंकवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है। दूसरी प्रवृत्ति यह भी देखी जाती है कि असंतुष्ट वर्ग किन्हीं कारणों से असन्तुष्ट हो ऐसा सदैव नहीं होता, कभी–कभी अपेक्षाकृत लाभान्वित समुदाय भी अपने को पीड़ित या उपेक्षित मान लेते हैं और उग्रवादी या हिंसात्मक तरीकों से अपने हिस्से की मांग करते हैं जैसे केन्द्र राज्य में आर्थिक सम्बन्धों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हरित क्रांति योजनाओं में सर्वाधिक लाभान्वित राज्य पंजाब में ही 1980 के दशक में आतंकवाद पनपा। यह कहना असंगत नहीं होगा कि आतंकवाद की जड़ें शोषण व अन्याय की प्रवृत्ति में निहित होती हैं। आतंकवाद कालान्तर में चाहे कोई रूप ले परन्तु अधिकतर मामलों में मूलतः वह शोषण व अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रिया है।

भारत में पूर्वोत्तर क्षेत्र में आतंकवाद के पीछे आर्थिक शोषण की शिकायतें हैं। परन्तु इसके साथ–साथ वहां एक अन्य कारण केन्द्रीय शासन द्वारा नागा उग्रवादी तत्वों के प्रति सहानुभूति व किसी रूप में उदार सहायता का निष्क्रिय पड़ोसी समुदायों (जैसे खासी, बोड़ो, मिजो आदि) पर भी प्रभाव पड़ा व उन्होंने भी नागाओं के उदाहरण को अपनाते हुए राज्य से अधिक आर्थिक मदद स्वायत्तता हेतु आन्दोलन चलाए।

विशिष्ट ऐतिहासिक घटनाचक्र के दबाव में एक समुदाय या राजनीतिक सत्ता दूसरे गुटों के दमन के लिए यातना आदि हिंसक कदम उठाती है। ऐसे कार्यों के विरुद्ध पीड़ित समूह भी गुप्त रूप से संगठित हो आत्मरक्षा में प्रतिहिंसा का आश्रय लेते हैं। पश्चिमी एशिया में पहले इस्लामी शक्तियों द्वारा यहूदियों के प्रबल उत्पीड़न और बाद में अमेरिका–ब्रिटेन के समर्थन से सत्ता में आने पर यहूदियों द्वारा फिलिस्तीनी मुसलमानों का उत्पीड़न व उत्पन्न प्रतिहिंसा ऐसा ही एक उदाहरण है। वस्तुतः रूस और अरब के मुसलमानों के विरुद्ध इजरायल की शत्रुता प्रारम्भ में हिटलर, स्टालिन और मध्यकालीन मुसलमान शासकों के ऐतिहासिक दबाव और अपमान के विरुद्ध प्रदर्शन और प्रतिक्रिया थी।

सभ्यताओं के मध्य टकराव– 20वीं सदी के अन्तिम दशक के दौरान सैमुअल हटिंगटन ने 'सभ्यताओं के टकराव' का सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसका अमेरिकी विदेश नीति पर गहन प्रभाव पड़ा और बाद में इसे इस्लाम और ईसाई सभ्यता के टकराव के रूप में माना।

हंटिंगटन के अनुसार दुनिया में सभ्यताओं के मध्य विभाजन रेखा खिंच चुकी है और वही भविष्य की भू–राजनैतिक स्थितियों को निर्धारित करेगी। इस विभाजन का सार है– कन्फ्यूशियस (चीन) को छोड़कर इस्लाम का सभी तरफ सभी से टकराव है चाहे वह यहूदीवाद हो ईसाईवाद हो, हिन्दुवाद हो सब इस्लाम के शत्रु हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सभ्यताओं का यह टकराव उभर कर सामने आ रहा है जिसने आतंकवाद को बढ़ावा दिया।

टिप्पणी

धार्मिक कट्टरतावाद

राजनीति में धर्म की भूमिका का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है कट्टरपंथी गुटों का राजनीतिक प्रभाव। इन कट्टरपंथी तत्वों ने धर्म की असुरक्षा, हनन व अपने धर्म के प्रति भेदभाव के नाम पर या जेहाद के नाम पर विभिन्न धर्मावलम्बियों को आपस में लड़ाने का काम किया। इनके द्वारा फैलाए धार्मिक उन्माद ने आतंकवाद को बढ़ावा दिया है। दक्षिण एशिया में पाकिस्तान व बांग्लादेश धार्मिक कट्टरवाद से सबसे अधिक ग्रसित देश हैं। कट्टरपंथियों की पाकिस्तान की राजनीति में भूमिका तथा उनके प्रभाव को सभी जानते हैं। वस्तुतः पाकिस्तान का कोई भी शासक चाहे वह लोकतान्त्रिक रूप से चुना हो या सैनिक तानाशाह हो, कट्टरपंथियों के वर्चस्व को अनदेखा नहीं कर सकता। यह कहना असंगत नहीं होगा कि कट्टरपंथियों के प्रभाव के कारण ही पाकिस्तान इस्लामिक आतंकवाद का गढ़ बन गया है।

आतंकवाद के मनोवैज्ञानिक कारण

आतंकवाद को एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा के रूप में भी देखा जा सकता है। आतंकवाद हिंसा या बदला लेने की प्रवृत्ति एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह व्यक्ति के अन्दर स्वतः उपजती है और ज्यों–ज्यों कोई घटना घटित होती है तो यह भावना और प्रस्फुटित हो जाती है। इसके मूल में व्यक्ति का स्वाभिमान होता है जिसकी रक्षा अथवा जिसके प्रतिकार के बदले के रूप में व्यक्ति आतंकवादी प्रवृत्ति अपनाने लगता है। यदि विविध आतंकवादी प्रवृत्ति, घटनाओं एवं आतंकवादियों के चरित्रों का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि आतंकवादी मूल रूप से अन्याय का प्रतिकार करना चाहता है। किंतु यह अन्याय काल्पनिक भी हो सकता है।

हिंसा के माध्यम से आतंकवादी इस मनोदशा की तुष्टि करना चाहता है। इस्लामिक आतंकवादियों ने आतंकवाद को जेहाद का नाम दिया है। बहुत से आतंकवादी संगठन यह घोषणा करते हैं कि यदि वे आतंकवाद का रास्ता अपनाएंगे तो वे अल्लाह की सेवा करेंगे और उनके मरने के बाद उनको अल्लाह की सेवा में जीने का मौका मिलेगा। इसलिए इस धार्मिक उन्माद में डूबकर आतंकवादी हिंसक प्रवृत्ति में लिप्त होता चला जाता है। यह वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि आतंकवाद किसी एक कारण से जन्म जरूर ले सकता है, किन्तु समस्या तब खड़ी होती है जब प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कई छोटे–बड़े कारण जुड़ जाते हैं। अगर एक स्थापित व्यवस्था में मनुष्य को मनुष्य की तरह रहने का अधिकार मिले, उसे अपने जीवन–यापन के लिए मूलभूत सुविधाएं प्राप्त हों और सबको सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक तौर पर बराबर का दर्जा प्राप्त हो तो आतंकवाद का जड़ जमाना मुश्किल हो जाएगा। इसके साथ यह भी जरूरी है कि राजनैतिक जीवन में मंगलकारी आदर्श, पवित्रता, अनुशासन एवं कर्त्तव्यपरायणता मौजूद हो और पृथकतावाद, व्यक्तिवाद, जातिवाद और अंधी साम्प्रदायिकता का कोई स्थान न हो, तभी हमारा समाज आतंकवाद से असरदार तरीके से लड़ सकता है और इसके बढ़ते आकार को सीमित कर खत्म कर सकता है।

आतंकवाद निवारण के उपाय

- परिवार द्वारा बालक/ बालिकाओं का उचित लालन-पालन करना, उनको उपयुद्र वातावरण देना उन्हें प्यार देना, पढ़ाई, लिखाई आदि पर पर्याप्त ध्यान देना आदि।

- पारिवारिक सामंजस्य, पति-पत्नी के बीच उचित तालमेल न होना, तलाक हो जाना, या परिवार द्वारा गलत कार्य करना इन घटनाओं से भी बच्चे गलत हाथों में जाकर गलत मार्ग पर चले जाते हैं। अतः मां-बाप, परिवार का विशेष कर्तव्य है कि वे पारिवारिक वातावरण में आपसी सामंजस्य अच्छा बनाकर रखें।
- सामाजिक परिवेश- बच्चों को भेदभाव की शिक्षा न देकर सर्वधर्म एवं सभी लोग एक समान हैं ऐसी शिक्षा और ऐसा परिवेश प्रदान किया जाना चाहिए जिससे उनकी कोमल मानसिकता पर गलत प्रभाव न पड़े। मीडिया एवं देश की भी जिम्मेदारी हैं कि उन्हें उचित शिक्षा दी जाए।
- पुलिस द्वारा नाबालिग बच्चों को पुलिस थाने की जगह बालसुधार गृह में रखा जाए।
- सबसे महत्त्वपूर्ण हैं संस्कार, यदि इनका रोपण सही हैं तो पौधा भी धूप छांव आदि से बचकर भली प्रकार फलीभूत होगा।
- सभी सरकारें यह प्रयत्न करें कि बेरोजगारी और गरीबी को खत्म किया जाए। यह दोनों चीजें व्यक्ति से कुछ भी करवा सकती हैं।

उपर्युक्त प्रयासों से अवश्य ही आतंकवाद का निवारण संभव हो पाएगा।

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार अर्थात भ्रष्ट + आचार। भ्रष्ट यानी बुरा या बिगड़ा हुआ तथा आचार का मतलब है आचरण। अर्थात भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है वह आचरण जो किसी भी प्रकार से अनैतिक और अनुचित हो।

आम तौर पर सरकारी सत्ता और संसाधनों के निजी फायदे के लिए किए जाने वाले गलत उपयोग को भ्रष्टाचार की संज्ञा दी जाती है। एक दूसरी तथा अधिक व्यापक परिभाषा यह है कि निजी या सार्वजनिक जीवन के किसी भी स्थापित और स्वीकार्य मानक का चोरी–छिपे उल्लंघन भ्रष्टाचार है। देशकाल के अनुसार विभिन्न मानकों में परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे कि, भारत में रक्षा सौदों में कमीशन लेना अवैध है इसलिए इसे भ्रष्टाचार और राष्ट्र– विरोधी कृत्य मान कर घोटाले की संज्ञा दी जाती है। लेकिन दुनिया के कई विकसित देशों में यह एक स्वीकृत व्यापारिक प्रक्रिया का हिस्सा है। संस्कृतियों के बीच अंतर ने भी भ्रष्टाचार के प्रश्न को दुरूह बनाया है। उन्नीसवीं सदी के दौरान भारत पर औपनिवेशिक शासन थोपने वाले अंग्रेज अपनी विक्टोरियाई नैतिकता के दर्पण में भारतीय यौन–व्यवहार को दुराचरण के रूप में देखते थे। जबकि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध का भारत किसी भी यूरोपवासी की नजरों में यौनिक–शुद्धतावाद का शिकार माना जा सकता है।

भ्रष्टाचार का विषय एक ऐसा राजनीतिक प्रश्न है जिसके कारण कई बार न केवल सरकारें बदल जाती हैं बल्कि यह बहुत बड़े–बड़े ऐतिहासिक परिवर्तनों का वाहक भी रहा है। रोमन कैथलिक चर्च द्वारा अनुग्रह के बदले शुल्क लेने की प्रथा को मार्टिन लूथर द्वारा भ्रष्टाचार की संज्ञा दी गई थी। इसके खिलाफ किए गए धार्मिक संघर्ष से ईसाई धर्म–सुधार निकले। परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेंट मत का जन्म हुआ। इस ऐतिहासिक परिवर्तन से सेकुलरवाद के सूत्रीकरण का आधार तैयार हुआ।

टिप्पणी

समाज–वैज्ञानिक विमर्श में भ्रष्टाचार से संबंधित समझ के बारे में कोई एकता नहीं है।

पूंजीवाद विरोधी दृष्टिकोण रखने वाले विद्वानों की मान्यता है कि बाजार आधारित व्यवस्थाएं 'ग्रीड इज गुड' के सिद्धांत पर चलती हैं, इसलिए उनके अंतर्गत भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी होना अवश्यम्भावी है। दूसरी तरफ खुले समाज की वकालत करने वाले और मार्क्सवाद विरोधी बुद्धिजीवी सर्वहारा की तानाशाही वाली व्यवस्थाओं में कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकारियों द्वारा बड़े पैमाने पर राज्य के संसाधनों के दुरुपयोग और आम जनता के साधारण जीवन की कीमत पर स्वयं के लिए आरामदायक जिंदगी की गारंटी करने की तरफ इशारा करते हैं।

भ्रष्टाचार की दूसरी समझ राज्य की संस्था द्वारा लोगों की आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप की मात्रा और दायरे पर निर्भर करती है। बहुत अधिक टैक्स वसूलने वाली सरकार के अंतर्गत कर–चोरी को सामाजिक जीवन की एक मजबूरी की तरह लिया जाता है। इससे एक सिद्धांत यह निकलता है कि जितने कम कानून और नियंत्रण होंगे, भ्रष्टाचार की जरूरत उतनी ही कम होगी। इस दृष्टिकोण के पक्ष में पूर्व सोवियत संघ और चीन समेत समाजवादी देशों का उदाहरण दिया जाता है जहां राज्य की संस्था के सर्वव्यापी होने के बावजूद बहुत बड़ी मात्रा में भ्रष्टाचार की मौजूदगी रहती है। 'ज्यादा नियंत्रण– ज्यादा भ्रष्टाचार' के समीकरण को सही ठहराने के लिए तीस के दशक के अमेरिका में की गई शराब–बंदी का उदाहरण भी दिया जाता है जिसके कारण संगठित और आर्थिक भ्रष्टाचार में अभूतपूर्व उछाल आ गया था।

साठ और सत्तर के दशक में कुछ विद्वानों ने अविकिसित देशों के आर्थिक विकास के लिए एक सीमा तक भ्रष्टाचार और काले धन की मौजूदगी को उचित करार दिया था। अर्नोल्ड जे. हीदनहाइमर जैसे सिद्धांतकारों का कहना था कि परम्पराबद्ध और सामाजिक रूप से स्थिर समाजों को भ्रष्टाचार की समस्या का कम ही सामना करना पड़ता है। लेकिन तेज गति से होने वाले औद्योगीकरण और आबादी के आवागमन के कारण समाज स्थापित मानकों और मूल्यों को छोड़ते चले जाते हैं। परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार की परिघटना पैदा होती है। सत्तर के दशक में हीदनहाइमर का यह सिद्धांत बहुत प्रचलित था। भ्रष्टाचार विरोधी नीतियों और कार्यक्रमों की वकालत करने के बजाय हीदनहाइमर ने निष्कर्ष निकाला था कि जैसे–जैसे समाज में समृद्धि बढ़ती जाएगी, मध्यवर्ग की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी और शहरी सभ्यता व जीवन–शैली का विकास होगा और इस समस्या पर अपने आप नियंत्रण होता चला जाएगा। लेकिन सत्तर के दशक में ही यूरोप और अमेरिका में बड़े–बड़े राजनीतिक और आर्थिक घोटालों का पर्दाफाश हुआ। इनमें अमेरिका का वाटरगेट स्केंडल और ब्रिटेन का पौलसन एफेयर प्रमुख था। इन घोटालों ने मध्यवर्गीय नागरिक गुणों के विकास में आस्था रखने वाले हीदनहाइमर के इस सिद्धांत के अति आशावाद की हवा निकाल दी।

साठ के दशक के दौरान ही कुछ अन्य विद्वानों ने भी हीदनहाइमर की तर्ज पर तर्क दिया था कि भ्रष्टाचार की समस्या की नैतिक व्याख्याएं करने से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। इनमें सेमुअल हंटिंगटन प्रमुख थे। इन समाज–वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि भ्रष्टाचार हर परिस्थिति में नुकसानदेह नहीं होता। विकासशील देशों में वह

टिप्पणी

मशीन में तेल की भूमिका निभाता है और लोगों के हाथ में ख़र्च करने लायक पैसा आने से उपभोक्ता क्रांति को गति मिलती है। लेकिन अफ्रीका में भ्रष्टाचार पर विश्व बैंक द्वारा 1969 में जारी रपट ने इस धारणा को धक्का पहुंचाया। इस रपट के बाद भ्रष्टाचार को एक अनिवार्य बुराई और आर्थिक विकास में बाधक के तौर पर देखा जाने लगा। विश्व बैंक भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम चलाने में जुट गया। इस विमर्श का एक परिणाम यह भी निकला कि समाज–वैज्ञानिक अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में भ्रष्टाचार की समस्या के प्रति ज्यादा दिलचस्पी दिखाने लगे। विकसित देशों में भ्रष्टाचार की समस्या काफी–कुछ नजरअंदाज की जाने लगी।

यह दृष्टिकोण भूमण्डलीकरण के दौर में और प्रबल हुआ। उधार देने वाली अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, उन पर हावी विकसित देशों और बड़े–बड़े कॉरपोरेशनों ने यह गारंटी करने की कोशिश की कि उनके द्वारा दी जाने वाली मदद का सही–सही इस्तेमाल हो। इसका परिणाम 1993 में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की स्थापना में निकला जिसमें विश्व बैंक के कई पूर्व अधिकारी सक्रिय थे। इसके बाद सर्वेक्षण और आंकड़ों के जरिये भ्रष्टाचार का तुलनात्मक अध्ययन शुरू हो गया। लेकिन इन प्रयासों के परिणाम किसी भी तरह से संतोषजनक नहीं माने जा सकते। 2007 में डेनियल ट्रीजमैन ने 'व्हाट हैव वी लर्न्ड अबाउट द काजिज ऑफ करप्शन फ्रॉम टेन इयर्स ऑफ क्रॉस नेशनल इम्पिरिकल रिसर्च?' लिख कर नतीजा निकाला है कि परिपक्व उदारतावादी लोकतंत्र और बाजारोन्मुख समाज अपेक्षाकृत कम भ्रष्ट हैं। उनके उलट तेल निर्यात करने वाले देश, अधिक नियंत्रणकारी कानून बनाने वाले और मुद्रास्फीति को काबू में न करने वाले देश कहीं अधिक भ्रष्ट हैं।

जाहिर है कि ये निष्कर्ष किसी भी कोण से नये नहीं हैं। हाल ही में जिन देशों में आर्थिक घोटालों का पर्दाफाश हुआ है उनमें छोटे–बड़े और विकसित–अविकसित यानी हर तरह के देश (चीन, जापान, स्पेन, मैक्सिको, भारत, ब्रिटेन, ब्राजील, सूरीनाम, दक्षिण कोरिया, वेनेजुएला, पाकिस्तान, एंटीगा, बरमूडा, क्रोएशिया, इक्वेडोर, चेक गणराज्य, वगैरह) हैं। भ्रष्टाचार को सुविधाजनक और हानिकारक मानने के इन परस्पर विरोधी नजरियों से परे हटकर अगर देखा जाए तो अभी तक आर्थिक वृद्धि के साथ उसके किसी सीधे संबंध का सूत्रीकरण नहीं हो पाया है। उदाहरणार्थ, एशिया के दो देशों, दक्षिण कोरिया और फिलीपींस, में भ्रष्टाचार के सूचकांक बहुत ऊंचे हैं। लेकिन, कोरिया में आर्थिक वृद्धि की दर बहुत ऊंची है, जबकि फिलीपींस में नीची।

भ्रष्टाचार और भारत

भारत में भ्रष्टाचार चर्चा और आन्दोलनों का एक प्रमुख विषय रहा है। आजादी के एक दशक बाद से ही भारत भ्रष्टाचार के दलदल में धंसा नजर आने लगा था और उस समय संसद में इस बात पर बहस भी होती थी। 21 दिसम्बर, 1963 को भारत में भ्रष्टाचार के खात्मे पर संसद में हुई बहस में डॉ राममनोहर लोहिया ने जो भाषण दिया था वह आज भी प्रासंगिक है। उस वक्त डॉ लोहिया ने कहा था सिंहासन और व्यापार के बीच संबंध भारत में जितना दूषित, भ्रष्ट और बेईमान हो गया है उतना दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं हुआ है।

भ्रष्टाचार से देश की अर्थव्यवस्था और प्रत्येक व्यक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भारत में राजनीतिक एवं नौकरशाही का भ्रष्टाचार बहुत ही व्यापक है। इसके अलावा न्यायपालिका, मीडिया, सेना, पुलिस आदि में भी भ्रष्टाचार व्याप्त है।

टिप्पणी

2005 में भारत में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल नामक एक संस्था द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि 62 प्रतिशत से अधिक भारतवासियों को सरकारी कार्यालयों में अपना काम करवाने के लिए रिश्वत या ऊंचे दर्जे के प्रभाव का प्रयोग करना पड़ा। वर्ष 2008 में प्रस्तुत की गई इसी संस्था की रिपोर्ट ने बताया है कि भारत में लगभग 20 करोड़ की रिश्वत अलग–अलग लोकसेवकों को (जिसमें न्यायिक सेवा के लोग भी शामिल हैं) दी जाती है। उन्हीं का यह निष्कर्ष है कि भारत में पुलिस एवं कर (जं) एकत्र करने वाले विभागों में सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार है। आज यह कटु सत्य है कि किसी भी शहर के नगर निगम में रिश्वत दिये बगैर कोई मकान बनाने की अनुमति नहीं मिलती। इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति भी यह मानकर चलता है कि किसी भी सरकारी महकमे में पैसा दिये बगैर गाड़ी नहीं चलती।

किसी को निर्णय लेने का अधिकार मिलता है तो वह एक या दूसरे पक्ष में निर्णय ले सकता है। यह उसका विवेकाधिकार है और एक सफल लोकतन्त्र का लक्षण भी है। परन्तु जब यह विवेकाधिकार वस्तुपरक न होकर दूसरे कारणों के आधार पर इस्तेमाल किया जाता है तब यह भ्रष्टाचार की श्रेणी में आ जाता है अथवा इसे करने वाला व्यक्ति भ्रष्ट कहलाता है। किसी निर्णय को जब कोई शासकीय अधिकारी धन अथवा अन्य किसी लालच के कारण करता है तो वह भ्रष्टाचार कहलाता है।

भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में हाल ही के वर्षों में जागरुकता बहुत बढ़ी है। जिसके कारण भ्रष्टाचार विरोधी अधिनियम –1988, सिटीजन चार्टर, सूचना का अधिकार अधिनियम – 2005, कमीशन ऑफ इन्क्वायरी एक्ट आदि बनाने के लिए भारत सरकार बाध्य हुई है।

भ्रष्टाचार विरोधी नियम और जागरूक जनता के प्रयासों से भ्रष्टाचार रूपी राक्षस का वध हो पाएगा या नहीं यह तो भविष्य के गर्भ में छिपा है। तब तक इंतजार करते हैं।

निरक्षरता

श्रीभर्तृहरि के अनुसार, "साहित्य संगीत कला विहीनः। साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानः, तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।" अर्थात् जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कला से हीन है, वह तुच्छ तथा सींग रहित पशु के सदृश है। बुद्धिमान वही है, जो साहित्य, संगीत और कला का व्यसनी हो अन्यथा वह इस धरती पर भार के समान है।

महान दार्शनिक अरस्तू ने भी शिक्षा के संबंध में कहा है– "निरक्षर होने से पैदा न होना अच्छा है।" इस कथन से शिक्षा का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। शिक्षा मानव को सुसंस्कृत बनाती है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य अपने असाध्य जीवन को साध्य बना सकता है। महात्मा गांधी ने कहा है, "शिक्षा से अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में निहित सर्वोत्तम शक्तियों के सर्वांगीण प्रगटीकरण से है।" साहित्यकारों ने विद्याहीन निरक्षर मनुष्य को पशु के समान बताया है।

आज भारत में करोड़ों लोग निरक्षर हैं। अधिकांश निरक्षर लोग गांवों में हैं। हालांकि गांवों में शिक्षा का प्रसार हो रहा है, परंतु फिर भी निरक्षरों की संख्या गांवों में सर्वाधिक है। हालांकि सरकार का उद्देश्य इन लोगों को साक्षर बनाने के साथ–साथ कृषि विकास संबंधी जानकारी, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी तथा औद्योगिक शिक्षा प्रदान करना भी है।

भारत की अधिकांश जनता अशिक्षित है। किसी भी देश की उन्नति के लिए उस देश के नागरिकों का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है। जिससे वे व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत रहें। पंचवर्षीय योजनाओं में साक्षरता को स्थान दिया गया है जिससे कि निरक्षर स्त्री–पुरुष साक्षर होकर अपने दायित्वों को समझें और अपने जीवन का विकास करें।

निरक्षर मानव जीवन में साक्षरता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग की जटिलताओं को देखते हुए निरक्षरों को शिक्षित करना अनिवार्य है। हमारी सामाजिक समस्याओं– जाति प्रथा, दहेज प्रथा, जनसंख्या नियंत्रण आदि का निवारण भी तभी संभव है जब हर व्यक्ति साक्षर हो। शिक्षा के माध्यम से ही निरक्षर स्त्री–पुरुषों का जीवन स्तर ऊंचा उठाया जा सकता है। साक्षरता का उद्देश्य मात्र अक्षर ज्ञान देना नहीं है, अपितु मनुष्य के संपूर्ण जीवन को उन्नत बनाना है।

आज देश भर में साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। इस अभियान में कई एन.जी.ओ. (गैर–सरकारी संगठन) सक्रिय हैं। परंतु हमारे देश से निरक्षरता पूर्णतः तभी मिटेगी, जब हर व्यक्ति प्रयास करेगा। हालांकि देश की सरकार के साथ–साथ विश्व बैंक भी हमारी मदद कर रहा है ताकि देश में कोई भी निरक्षर न रहे। इसके साथ ही हमें भी पूरी ईमानदारी से प्रयास करने होंगे तभी प्रत्येक भारतीय साक्षर होगा।

जीवन के लिए जिस प्रकार रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता होती है ठीक वैसे ही शिक्षा की भी आवश्यकता होती है। मनुष्य अपनी सामाजिक–परिस्थितियों के कारण यदि शिक्षा लेने में असमर्थ हो जाता है, तब उसे दोषी नहीं कहा जा सकता। लेकिन जिस व्यक्ति की सामाजिक–आर्थिक स्थिति उसे शिक्षा प्रदान करने का अवसर प्रदान करती है, उस अवस्था में भी यदि वह शिक्षा नहीं लेता, तब निस्संदेह उसकी गिनती पशुओं में की जानी चाहिए।

विचारणीय प्रश्न है कि मनुष्य और पशु के बीच कौन–से ऐसे तत्व हैं, जो उसे पशु से अलग करते हैं? क्योंकि वे सभी गुण जो पशु में पाए जाते हैं, वे मनुष्य में भी पाए जाते हैं। विचार करने पर पता चलता है कि जिस प्रकार मनुष्य स्वार्थ–सेवा में लगा रहता, ठीक उसी प्रकार से पशु–पक्षी भी अपनी स्वार्थ–सेवा में लगे रहते हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपनी संतान से प्रेम करता है, ठीक उसी प्रकार से पशु–पक्षी भी अपनी संतान से प्रेम करते हैं। डंडे की मार से आप भी डरते हैं और पशु भी। इस संदर्भ में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि समानधर्मी प्राणियों में किसी प्रकार का अंतर है, तो वह केवल शिक्षा का है या फिर शिक्षा पर आधारित ज्ञान का है। जिसके अभाव में मनुष्य पशुवत जीवन व्यतीत करता है।

हमारा समाज निरंतर प्रगति तो करता रहा, किंतु प्रगति के मापदंड शिक्षा के गलियारे से होकर नहीं जाते थे। हालांकि विद्वानों, शास्त्रों और गुरुओं की यहां कभी कमी नहीं हुई, किंतु शिक्षा बहुसंख्यक सामान्यजन की कभी न हो सकी। इसका प्रमुख कारण था प्रशासनिक कार्यपद्धति का ठीक ढंग से कार्य न करना। देश की अधिकांश आबादी गरीबी रेखा से हमेशा ही नीचे रहती आई है।

अपनी न्यूनतम जरूरतों को पूरा करने के लिए जनता को दिनभर कठोर परिश्रम करना पड़ता था, जिस कारण से वे शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दे सकते थे। इन सब बातों के अतिरिक्त अनेक आक्रमणकारी समय–समय पर भारतवर्ष पर आक्रमण करते

टिप्पणी

आए हैं, जिस कारण से यहां के लोग अपने जीवन की सुरक्षा को प्राथमिकता देकर शिक्षा को गौण समझते रहे।

इसे जनता की शिक्षा के प्रति निष्क्रियता नहीं कहा जा सकता, किंतु विभिन्न शासकों ने ऐसे नियम–कानूनों की संरचना की जो लोगों को हर प्रकार के ज्ञान से अनभिज्ञ रखें, क्योंकि अज्ञानता, अशिक्षा और अनभिज्ञता गुलामी को स्थायित्व प्रदान करती है।

शिक्षा के अभाव में मनुष्य के भीतर किसी प्रकार की जागृति नहीं रहती। इसके अभाव में मनुष्य रचनात्मक कार्यों में भाग नहीं ले पाता और देश एवं राष्ट्र के कल्याण के विषय में सोचने की शक्ति का विकास करने में असमर्थ हो जाता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अपने प्राचीन साहित्य को पढ़कर ज्ञानार्जन करने में असमर्थ हो जाता है, जिससे उसे अपने गौरवशाली अतीत का बोध नहीं होता। अशिक्षित व्यक्ति न तो अपने जीवन के सही अर्थ तलाश पाता है और न ही अपने बच्चों के भविष्य को सुरक्षा प्रदान कर सकता है। शिक्षा का अभाव आत्म–कल्याण एवं राष्ट्र–कल्याण की भावना को भी समाप्त कर देता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए चलाए जा रहे अभियानों के चलते, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रति जागृति की भावना फैलने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ–साथ जनता ने शिक्षा के महत्त्व को भी समझा। लोगों के दिमाग में यह बात घर कर गई कि अशिक्षा ही उनकी समस्त कठिनाइयों और दुखों का कारण है। क्योंकि उनकी अशिक्षा का लाभ सेठ, साहूकार, वकील, पुलिस, जमींदार, व्यापारी केवल इसलिए उठा पाते हैं, क्योंकि उनके कार्यों की जटिलताओं से ये लोग अनभिज्ञ हैं। देश में शिक्षा का स्तर बढ़ाने के लिए 1937 ई. में राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत की गई, ताकि जनता के बीच शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार किया जा सके।

इस आंदोलन के अंतर्गत प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों और रात्रि पाठशालाओं की स्थापना की गई। हालांकि अपने आरंभिक दौर में इस आंदोलन को बड़े जोश के साथ शुरू किया गया था, किंतु धीरे–धीरे यह आंदोलन 1947 तक आते–आते एकदम खोखला हो गया, किंतु 1947 के बाद इस दिशा में उचित कदम उठाए गए और शिक्षा–प्रसार एक अहम प्राथमिक लक्ष्य बन गया। लेकिन इतनी पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभी भी निरक्षर है।

इतनी बड़ी जनसंख्या का आजादी के 50–55 वर्षों तक निरक्षर बने रहना वास्तव में बेहद दुखदायी है। इसके दो महत्त्वपूर्ण कारण हैं, पहला, शिक्षा के व्यवसायीकरण ने उसे इतना अधिक महंगा बना दिया है कि उसका खर्च आम जनता के लिए वहन करना कठिन है। दूसरा, शिक्षा का सरकारी स्तर इतना अधिक गिर गया है कि आम लोगों का उससे मोहभंग हो गया है। इन सभी चीजों को ध्यान में रखकर हमें शिक्षा के नए मानदंड तय करने होंगे।

सरकार के साथ–साथ आम जनता को भी इस भागीरथ प्रयास में मदद करनी चाहिए, तभी हमारा देश शिक्षित और खुशहाल बन सकेगा।

4.3.2 समाज की प्रमुख समस्याएं : बेरोजगारी, महिलाएं एवं बाल शोषण, छेड़छाड़ और उत्पीड़न, लैंगिक असमानता, दहेज, आक्रामक गतिविधियों के विरुद्ध संवैधानिक संरक्षण

टिप्पणी

यह ठीक है कि वर्तमान शिक्षा ने महिला सशक्तीकरण के नए द्वार खोले हैं, परंतु फिर भी जब महिला–उत्पीड़न संबंधी आंकड़ों पर नजर जाती है तो लगता है कि यह शिक्षा महिलाओं को अभी भी व्यावहारिक रूप से ज्यादा समर्थ नहीं बना पाई है। अभी भी वे न तो अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह से सजग हैं और न ही अपने उत्पीड़न के विरुद्ध कड़ा विरोध जाहिर कर पाती हैं। इसके पीछे कई कारण हैं, परंतु सच यही है कि महिलाओं का एक बड़ा वर्ग शारीरिक शोषण व मानसिक प्रताड़ना झेलने को मजबूर है। ऐसा उनके साथ न केवल कार्यस्थल या घर के बाहर होता है, बल्कि घर के सुरक्षात्मक कवच के भीतर भी वे सुरक्षित नहीं हैं। समाज की प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं–

बेरोजगारी

विकासशील देशों में जनसंख्या की अधिकता के कारण विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी जैसे–खुली बेरोजगारी, अर्द्ध–बेरोजगारी, छिपी हुई बेरोजगारी व्यापक रूप से विद्यमान रहती है। इन देशों में यद्यपि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है किन्तु इसके साथ ही साथ बेरोजगारी में भी वृद्धि होती है। विकासशील देशों की बेरोजगारी का स्वरूप विकसित देशों की बेरोजगारी के स्वरूप से भिन्न होता है। विकसित देशों की बेरोजगारी का प्रमुख कारण प्रभावपूर्ण मांग की कमी होती है, इसके विपरीत, विकासशील देशों की बेरोजगारी का कारण साधनों की कमी होता है। उत्पादन के अन्य साधनों की कमी के कारण अतिरिक्त श्रम को रोजगार प्रदान कर सकना संभव नहीं होता है। इस प्रकार इन देशों में बेरोजगारी का प्रमुख कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है।

किसी भी देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाए रखने के लिए पूंजीगत भंडार में वृद्धि होना आवश्यक है। इन देशों में यह तब संभव है, जबकि प्रति व्यक्ति आय तो अधिक हो किन्तु उपभोग की प्रवृत्ति कम हो किन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या का इस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रो. नर्क्स के मतानुसार, इन देशों में लगभग 25% जनसंख्या छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या से प्रभावित है।

महिलाएं एवं बाल शोषण

महिलाओं और बच्चों की तस्करी मानव अधिकारों का सबसे घृणित उल्लंघन है। यह उनकी गरिमा और जीवन के अधिकार सहित स्वतंत्रता के अधिकारों के लिए एक अश्लील अपमान है। शिक्षा और उचित रोजगार स्वास्थ्य के लिए सही है और सभी को इसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। व्यापक अर्थों में तस्करी, वेश्यावृत्ति, बेगार सेवाओं, गुलामी और मानव अंगों का व्यापार करने और लड़कियों का शोषण करने के लिए उनकी तस्करी करने को शामिल करता है।

टिप्पणी

भारत में वर्तमान सामाजिक परिवेश का कमजोर होना असमान रूप से विवाह करने का ही परिणाम है। पितृसत्तात्मक प्राधिकरण बच्चों पर आमतौर पर बालिकाओं पर जुल्म करता है। समाज में एक धारणा है कि महिलाओं को चयन करने की स्वतंत्रता नहीं है और एक सम्मानजनक जीवन जीने का कोई विकल्प नहीं है। तस्करी, महिलाओं और बच्चों के शोषण, उनके अपमान, सामाजिक कलंक, ऋण बंधन का एक जीवन है। इसके साथ ही यह एचआइवी/एड्स जैसी स्वास्थ्य समस्याओं को संयुक्त रूप से जन्म देता है।

हाल ही के एक सर्वेक्षण के अनुसार, महिलाएं भारी संख्या में खरीदी और बेची जाती हैं और भारत के विभिन्न भागों से अन्य देशों के लिए तस्करी की जाती हैं। वे गंभीर शोषण और दुर्व्यवहार के साथ सेक्सवर्कर के रूप में काम करती हैं। इन महिलाओं को एचआईवी और अन्य यौन संचारित रोगों के संपर्क में आने का खतरा रहता है।

संकट में, गरीब परिवार अक्सर अपनी लड़कियों को घरेलू कामगारों के रूप में काम पर भेज देते हैं और इन्हें महाजनों को बंधुआ श्रम में बेच देते हैं एवं लड़कियां वहां मानव तस्करी के दुरुपयोग से पीड़ित की जाती हैं।

गरीबी और रोजगार के अवसरों की कमी महिलाओं में यौन–क्रियाओं की स्वैच्छिक प्रविष्टि को उकसा रही हैं। तस्करी एक जटिल चुनौती के रूप में संगठित आपराधिक गतिविधि है।

महिलाओं का शोषण

जी.बी.वी के स्वास्थ्य परिणाम अल्पकालिक स्वास्थ्य प्रभाव जैसे– दर्द, सिर दर्द, चोट के निशान के रूप में शामिल हैं। अधिक लंबी अवधि के स्वास्थ्य के परिणामों में अंगक्षति, पुरानी विकलांगता, मानसिक विकार, अवसाद और प्रतिकूल गर्भावस्था के परिणाम शामिल हैं। ऐसे में आत्महत्या और हत्या के घातक रूप भी इन परिणामों में शामिल हैं। महिलाओं को लगातार अपमान, गाली, प्रसूति, उत्पीड़न, वित्तीय और भौतिक संसाधनों के अभाव कभी–कभी शारीरिक हमलों से भी ज्यादा हानिकारक साबित होते हैं।

पति दुर्व्यवहार पति और पत्नी के बीच शारीरिक और मानसिक शोषण के आदान–प्रदान को शामिल करता है। महिलाओं को आमतौर पर हिंसा के शिकार के नजरिए से देखा जाता है। एक पितृसत्तात्मक समाज में पारंपरिक रूप से पुरुष महिलाओं को अपनी संपत्ति के रूप में समझते हैं। अपनी पत्नियों को पीटने के पतियों के अधिकार का प्राचीन समय में समर्थन किया गया था और कभी इसके लिए सजा नहीं दी गई। पश्चिमी देशों की विभिन्न अदालती मामलों ने इस मामले की पुष्टि की है कि पुरुष लंबे समय तक अपनी पत्नियों पर बल प्रयोग कर सकते हैं। इसके अलावा यह कानून भी पहले से निहित है कि पति जब भी चाहे वह अपनी पत्नी के यौन–उपभोग के अधिकार का उपयोग कर सकता है। उन्नीसवीं सदी में, विवाहित महिलाओं का कोई कानूनी अस्तित्व नहीं था। पति अपनी पत्नी की संपूर्ण संपत्ति को नियंत्रित करता था और अपनी पत्नी के लिए पूर्णरूप से जिम्मेदार होता

था। वर्ष 2005–06 के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ.एच.एस– तृतीय) ने बताया कि 15 और 49 वर्ष की आयु के बीच हर तीन महिलाओं में से एक शारीरिक हिंसा और दस में से एक यौन–हिंसा से पीड़ित थी। सर्वेक्षण में यह भी पता चला है कि केवल चार में से एक महिला ने उसके साथ होने वाले दुर्व्यवहार के विरुद्ध मदद मांगी थी। 54 फीसदी महिलाओं में यह वैध धारणा है कि एक पति अपनी पत्नी को पीट सकता है।

टिप्पणी

जहां तक इन देशों में न्याय प्रणाली का संबंध था, एक आदमी पर अपनी पत्नी के साथ बलात्कार करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता था। 1980–1990 के दशक में कई पश्चिमी देशों ने शादी के भीतर बलात्कार के खिलाफ कानून की स्थापना की।

इस प्रकार, महिलाएं पारंपरिक रूप से शादी के भीतर एक कमजोर स्थिति में थीं। हालांकि, कई लोगों के लिए यह समझना मुश्किल है कि क्यों महिलाएं अपने हिंसक पतियों को छोड़ नहीं पाती हैं।

दोबाश ने अपने शोध कार्य में यह स्पष्टीकरण किया है, क्यों महिलाएं अपने हिंसक पति की साथ रहती हैं। पहली बात यह है कि कुछ महिलाएं हिंसक साथियों को छोड़ चुकी हैं और कुछ वापस आ गई हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि हम उन्हें याद करें, जो महिलाएं वापस आयीं और अपने पूर्व पतियों–साथियों द्वारा उनकी हत्या कर दी गई। हिंसक पुरुष साथी का एक खतरा यह भी है कि यदि वे उन्हें छोड़ कर जाती हैं, तो वे उन्हें अत्यधिक नुकसान पहुंचाते हैं या मार देते हैं। अक्सर महिलाओं को विश्वास होता है कि चीजें बदल जाएंगी। यह रिश्ता चलाना उनकी जिम्मेदारी है, इसलिए वे ऐसा करती हैं। उनके साथी अक्सर हिंसक घटनाओं के बाद बहुत क्षमाप्रार्थी होते हैं और बदलने का वादा करते हैं।

भारत में घरेलू हिंसा सभी संस्कृतियों, धर्मों, वर्गों और जातियों में व्यापक रूप से प्रसारित है। दुर्व्यवहार सामाजिक रिवाजों द्वारा समर्थित है और वैवाहिक जीवन की दिनचर्या में इसे एक भाग के रूप में माना जाता है। आकड़े भारत में घरेलू हिंसा की एक भयावह तस्वीर प्रकट करते हैं। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो और गृह मंत्रालय की एक रिपोर्ट के दौरान यातना के उदाहरण और दहेज हत्या में 1991–1995 71.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो ने उद्धृत किया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी के तहत 2012 में 8,233 और 2013 में 8,083 दहेज हत्या सूचित की गई हैं। महिलाओं के खिलाफ अत्याचार के मामलों को उजागर किया जाये, तो राष्ट्रीय महिला आयोग (एनसीडब्ल्यू) ने 2012–13, 2013–14 और 2014–15 में क्रमशः महिलाओं के अधिकारों के उल्लंघन के 16,584, 22,422 और 32,118 के मामले दर्ज किए हैं।

यह सवाल उठता है कि क्या कारण है कि महिलाएं घर में घरेलू हिंसा को बर्दाश्त करती रहती हैं। इसका जवाब समाज में उनकी स्थिति में निहित है। वे आम तौर पर आर्थिक निर्भरता की शिकार हैं। अपने बच्चों के जीवन के बारे में असुरक्षा, उनके कानूनी अधिकारों के बारे में जागरूकता की कमी इसके मुख्य कारण हैं। आत्मविश्वास के

टिप्पणी

अभाव और अत्यधिक सामाजिक दबाव के कारण वे बोल नहीं पाती हैं। इन कारकों का प्रभावी ढंग से कोई विकल्प नहीं है। महिलाओं के पास इस दुराचार के जीवन को व्यतीत करने से बचने का कोई साधन नहीं है। परिवार के भीतर गोपनीय की पवित्रता भी अधिकारियों के हस्तक्षेप को कठिन बना देती है। परिणामस्वरूप महिलाएं स्वीकार नहीं करती हैं कि उनके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। यह बात समाज के उच्च और निम्न दोनों वर्गों में आम है। एक महिला जो दुर्व्यवहार के विरुद्ध शिकायत दर्ज करती है, उसे परिवार, समाज और यहां तक कि अधिकारियों द्वारा शिकायत वापस लेने या मामले को दबाने के लिए मजबूर किया जाता है। सामाजिक पूर्वाग्रह महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा को और प्रोत्साहित करते हैं। जीवनसाथी महिलाओं को अपने सामान के रूप में मानते हैं। वे मानते हैं कि उनकी पूरक भूमिका उनकी पत्नियों को आंदोलन और गतिविधियों से रोकने के लिए उनके साथ दुर्व्यवहार करने की अनुमति देता है।

बहुत से अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो पुरुष महिलाओं के व्यवहार में अधिक परंपरागत थे, वे अपनी पत्नियों के प्रति अधिक हिंसक हो रहे थे। यह भी तर्क दिया है कि शराब और नशीली दवाओं का दुरुपयोग कर वे पत्नी की पिटाई करते हैं। मादक द्रव्यों के सेवन और पारिवारिक हिंसा के बीच एक रिश्ता है। महिलाओं पर यौन व शारीरिक हिंसा के विभिन्न रूपों के कच्चे आंकड़ों से पता चलता है कि बिहार 54 प्रतिशत के साथ सबसे ऊपर और गुजरात 25 प्रतिशत पर है। एक राष्ट्रीय स्तर पर, 48 प्रतिशत महिलाएं हिंसा का शिकार तब होती हैं, जब उनके साथी शराब का सेवन करते हैं।

निर्भरता को वैवाहिक रिश्ते में शारीरिक हिंसा के एक कारण के रूप में प्रयोग किया जाता है। शोधकर्ताओं ने दो तरीकों से इसका स्पष्टीकरण किया है। जब एक पत्नी शारीरिक और सामाजिक दोनों तरह से अपने पति पर पूर्णतया निर्भर होती है, तब एक पति अपने वैवाहिक रिश्ते में उसकी निर्भरता का उपयोग करता है और हिंसा करता है। कुछ विद्वानों की राय है, जब एक पति अपनी पत्नी पर निर्भर है, तो वह अपनी पत्नी को अंतिम सहारा मानता है और उसे स्थायी बनाए रखने के लिए शारीरिक हिंसा का सहारा लेता है। इस प्रकार एक पति की अपनी पत्नी पर निर्भरता भी पत्नी के साथ होने वाले दुर्व्यवहार का कारण बनती है।

पत्नी निर्भरता और उसके दुर्व्यवहार के बीच सम्बन्ध का पता लगाने के लिए निर्भरता को वस्तुपरक और व्यक्तिपरक में विभाजित किया गया है। एक पत्नी आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होने पर अपने पति पर निर्भर रहती है, क्योंकि उसके नाम पर कोई संपत्ति नहीं होती है। उसके परिवार की ओर से भी कोई वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं होती है। अभिविन्यास, अक्षमता और असमर्थता के साथ वह अकेले खरीददारी नहीं कर पाती है और अकेले शहर से बाहर नहीं जा सकती। जो पत्नी अपने पति पर वस्तुपरक निर्भर रहती हैं उनके साथ दुर्व्यवहार होने का खतरा अधिक होता है, क्योंकि यह महिलाओं के लिए कठिन होता है कि वे अपमानजनक स्थिति से बाहर आकर अकेले जीवन व्यतीत करे जबकि उनके पास कोई संसाधन भी नहीं होते हैं।

टिप्पणी

एक पत्नी अपने पति पर वस्तुपरक निर्भर रहे या नहीं, वह उस पर व्यक्तिपरक निर्भर अवश्य होती है। यह इसलिए है, क्योंकि उसकी सामाजिक वास्तविकता उसके वैवाहिक रिश्ते से बाहर नहीं बनाई जा सकती है। भारतीय समाज में शादी हर महिला के लिए बहुत जरूरी है। अविवाहित या एक तलाकशुदा जीवन नीच माना जाता है। बहरहाल, पुरुषों के साथ ऐसा नहीं है। तलाक या अलगाव के बाद पुनर्विवाह एक आदमी के लिए औरत की तुलना में अधिक आसानी से उपलब्ध है। इस तरह की एक भेदभावपूर्ण प्रथा पत्नियों में व्यक्तिपरक निर्भरता अवतरित करती है। इसी तरह पति बलपूर्वक तरीकों का उपयोग करके अपने रिश्ते में अपना प्रभाव बनाए रखता है, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि उसके हिंसक व्यवहार के लिए उसे चुनौती नहीं दी जाएगी और वह अपनी पत्नी को जीतने के वंचित लक्ष्य को पर्याप्त कर लेगा। शारीरिक हिंसा का सबसे अधिक प्रतिशत उन परिवारों में पाया जाता है, जहां कोई बच्चा नहीं होता है। पत्नियों को छोटी उम्र में ही बच्चा पैदा करने की अक्षमता के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है, क्योंकि भारतीय समाज में बच्चे का अत्यधिक महत्त्व है, इसलिए जो महिलाएं बच्चे पैदा नहीं कर पाती हैं, उनका उपहास किया जाता है।

बाल यौन शोषण

ऐतिहासिक काल से, बच्चों को उनके माता–पिता की जिम्मेदारी के रूप में माना गया है। अधिकांश अध्ययनों से पता चलता है कि लड़कों की तुलना में लड़कियों से काफी अधिक यौन दुर्व्यवहार किया जाता है। स्कूल की 350 लड़कियों में से–

- 63 फीसदी, परिवार के सदस्यों द्वारा यौन शोषण की अनुभवी थीं।
- 25 फीसदी के साथ बलात्कार किया गया था। अपराधी हस्तमैथुन और मौखिक सेक्स प्रदर्शन करने के लिए मजबूर करते थे।
- लगभग 33 प्रतिशत ने कहा कि अपराधी एक पिता, दादा और परिवार के दोस्त थे।

स्रोत : यह 1997–1998 में एक गैर–सरकारी संगठन "साक्षी" द्वारा किए गए शोध से लिया गया है।

एक बच्चा जिस व्यक्ति पर विश्वास करता है, क्या वह व्यक्ति बच्चे को प्रताड़ित करने वाले अपराधी के रूप में बदल सकता है। उदाहरण के लिए, आमिर खान के टीवी शो सत्यमेव जयते का एक एपिसोड मर्मभेदी था। बड़े दुःख के साथ इस बात को समाज में प्रसारित करना होगा कि बच्चे जिनपर सबसे अधिक विश्वास करते हैं, आमतौर पर उन्हीं के हाथों उनका शोषण किया जाता है।

आमिर खान ने इस तरह के बहुत से पीड़ितों, उनके परिवारों, विशेषज्ञों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ विचार–विमर्श किया और वे लोग अपनी भयानक घटनाओं का वर्णन करने के लिए उपस्थित थे। उन्होंने बताया कि कैसे उन्हें शारीरिक क्षति की धमकी दी गई और उन घटनाओं के बारे में चुप रहने के लिए उन्हें मजबूर किया गया।

टिप्पणी

आमिर ने महिला एवं बाल विकास मंत्रालय और गैर–सरकारी संगठन "प्रयास" की सहायता से 2007 में किए गए एक सर्वेक्षण से तेरह राज्यों में 12,447 नमूने पेश किए, इस प्रकार ये चौंकाने वाले आंकड़े पूरे देश को पता चले थे।

सर्वेक्षण के दौरान 53.22 प्रतिशत बच्चों के यौन शोषण के एक और एक से अधिक रूपों की सामना करने की सूचना है। आंध्रप्रदेश, बिहार, असम और दिल्ली में उस समय इस तरह की घटनाओं के सर्वोच्च प्रतिशत की सूचना थी। आधे से अधिक मामलों में, अपराधी उस बच्चे के परिचित थे, या उनके द्वारा भरोसेमंद थे। ऐसी बहुत सी घटनाएं दुर्भाग्यपूर्ण बच्चों द्वारा कभी सामने ही नहीं आ पाईं।

बाल दुर्व्यवहार पर राष्ट्रीय अध्ययन दुनिया में देशों द्वारा किए गए सबसे बड़े अनुभवजन्य अध्ययनों में से एक हैं। 2006 में बच्चों के खिलाफ हिंसा पर संयुक्त राष्ट्र महासचिव द्वारा किए गए अध्ययन अपने आप में पूरक हैं।

मार्च 2012 में, राजधानी दिल्ली के एक अस्पताल में गंभीर रूप से पीड़ित बच्ची, बेबी फलक का निधन हो गया। वह जनवरी में गंभीर चोटों के साथ लाई गई थी। वह गंभीर सिर की चोटों से पीड़ित थी और कोमा की हालत में अस्पताल में लाई गई थी। उसके सारे शरीर पर काटने के निशान थे और उसके गाल एक गर्म लोहे की छड़ से दागे गए थे।

ऐसा ही एक मामला अप्रैल 2012 में बंगलौर के दक्षिणी शहर में सामने आया था, जहां तीन महीने की उम्र में बच्ची आफरीन उसके पिता द्वारा घायल कर दी गई थी, जो कथित तौर पर एक बेटा चाहते थे। बाद में डॉक्टर उसे पुनर्जीवित करने के प्रयास में विफल रहे और इसी के चलते उसकी मृत्यु हो गई।

महिला छेड़छाड़ एवं उत्पीड़न

संयुक्त राष्ट्र (यूएन) ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा को परिभाषित किया है। किसी रूप में लिंग आधारित हिंसा का कोई कृत्य, शारीरिक, यौन या मानसिक नुकसान, मनमाना व्यवहार और बलात्कार आदि घटनाएं महिलाओं के खिलाफ हिंसा को दर्शाती हैं। ये घटनाएं सार्वजनिक या निजी जीवन दोनों में हो सकती हैं। इसमें पत्नी को पीटने, एसिड फेंकने, परिवार के सदस्यों द्वारा बलात्कार और व्यभिचार, जननांग विकृति, कन्या भ्रूण हत्या और कन्या शिशु हत्या सहित यौन शोषण, बलात्कार और इस तरह की और अपमानजनक घटनाएं भी शामिल हैं। भाषा के रूप में भावनात्मक दुरुपयोग, शारीरिक, यौन और मनोवैज्ञानिक हिंसा भी इसमें शामिल है। महिलाओं और लड़कियों का अपहरण कर उन्हें वेश्यावृत्ति और अवांछित विवाह करने के लिए मजबूर करना भी लिंग आधारित हिंसा (जी.बी.वी.) के उदाहरण हैं। जी.बी.वी. आमतौर पर नीतियों और कार्यों की एक संख्या के माध्यम से सरकार द्वारा समर्थित और संरक्षित है।

महिलाओं के खिलाफ हिंसक अपराध (बलात्कार, यौन उत्पीड़न) और घरेलू हिंसा (जीवनसाथी द्वारा शारीरिक–मानसिक प्रताड़ना अथवा शोषण और दहेज हत्या), महिलाओं के स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, आर्थिक उत्पादकता, आत्मसम्मान, कल्याण और उनके बच्चों के पोषण को प्रभावित कर रहे हैं। उनको अक्सर कम करके आंका गया है, या नजरअंदाज कर दिया गया है। यह उनके आत्मविश्वास को ध्वस्त करता है और अक्सर अधीनता और असशक्तीकरण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप

में प्रयोग किया जाता है। वर्ष 2005–06 के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (प्रथम–तृतीय) की रिपोर्ट है कि महिलाओं में से एक–तिहाई के 15 से 49 आयु वर्ग को शारीरिक हिंसा का अनुभव था और लगभग 10 प्रतिशत लगभग यौन हिंसा का शिकार हो गई थी। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया की केवल चार महिलाओं ने दुर्व्यवहार के बाद मदद मांगी थी और 54 फीसदी महिलाओं का मानना था कि यह उचित था कि एक पति अपनी पत्नी को दबाकर रखे। डब्ल्यूएचओ की एक रिपोर्ट स्पष्ट करती है कि 15–44 वर्ष की आयु वर्ग के बीच महिलाओं में लिंग आधारित हिंसा से होने वाली मृत्यु और अपंगता–कैंसर, मलेरिया, यातायात दुर्घटनाओं और युद्ध से होने वाली मृत्यु से अधिक हैं। भारत, बांग्लादेश, फिजी, अमरीका, पापुआ न्यू गिनी और पेरू में किए गए शोध घरेलू हिंसा और आत्महत्याओं की संख्या के बीच एक मजबूत संबंध को दर्शाता है। जिन महिलाओं को घरेलू हिंसा की शिकार बनाया गया है, वे बारह गुना अधिक आत्महत्या का प्रयास करती हैं और वे भी जिन्हें ऐसी हिंसा का अनुभव नहीं है।

टिप्पणी

यौन उत्पीड़न और इसके विभिन्न प्रकार

यौन उत्पीड़न और उनके विभिन्न रूपों को पारम्परिक रूप से दो भागों में विभाजित किया है–

- बदले की भावना से
- शत्रुतापूर्ण काम के माहौल में

(i) बदले का शाब्दिक अर्थ है कि "उसके लिए यह" की भावना है। जब यह यौन उत्पीड़न पर लागू होता है, तो आगे बढ़ने, उच्च वेतन प्रलोभन, शैक्षिक प्रगति और लाभ के रूप में काम करने के वादे किए जाते हैं। इस प्रकार के यौन उत्पीड़न से महिलाएं इंकार नहीं कर पाती हैं, क्योंकि उनके इंकार का अनुरोध या जवाबी कार्यवाही उनके काम की स्थिति में पदावनति, बर्खास्तगी और कलंक का कारण बन सकती है।

(ii) शत्रुतापूर्ण माहौल में यौन उत्पीड़न अभी तक स्पष्ट रूप से व्यापक नहीं है। यह आमतौर पर एक महिला कार्यकर्ता के प्रति वह काम करने की दिशा में व्यवहार की शर्तों को शामिल करता है, जबकि महिला कार्यकर्ता कभी भी इस सन्दर्भ में वादा या इंकार नहीं करती है, फिर भी उनपर यौन उत्पीड़न के लिए दबाव डाला जाता है, क्योंकि वह एक महिला है।

नए दिशा–निर्देशों के माध्यम से यौन उत्पीड़न के दोनों रूपों को पहचाना जाता है। जोकि निम्नलिखित हैं–

अरुचिकर

- अग्रिम शारीरिक संपर्क
- यौन उपकार की मांग और अनुरोध
- यौन टिप्पणियां
- पोर्नोग्राफी प्रदर्शन

- यौन प्रकृति की किसी भी अप्रिय शारीरिक, मौखिक और गैर–मौखिक आचरण की कार्यवाही

इसी प्रकार किसी के शब्द या गतिविधि

- आप के लिए अरुचिकर या आक्रामक हैं
- धमकी आपको असहज महसूस करा देती है
- यह शायद यौन उत्पीड़न है, जोकि आपके काम को प्रभावित करता है

टिप्पणी

यौन उत्पीड़न के प्रभाव और परिणाम

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न पूरे संगठन को समान रूप से प्रभावित करता है। यह किसी महिला पर अलग–अलग रूप से प्रभाव डालता हैं किन्तु इसका नुकसान पूरे संगठन को होता है। एक श्रमिक रोजगार की तलाश में यौन उत्पीड़न के जीवन को अपना लेता है, जहां पर यह श्रमिक के जीवन को दयनीय बना देता है। आमतौर यह नियोक्ता की जिम्मेदारी है कि वह काम के सुरक्षित माहौल को सुनिश्चित करे और श्रमिकों के साथ गरिमापूर्ण व्यवहार करे। यौन उत्पीड़न समाज के लिए समानता की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करता है। यौन हिंसा बहुत सारे कारणों के साथ मिल कर उत्पादकता और विकास में रुकावट डालती है।

लैंगिक असमानता

महिलाओं के खिलाफ होने वाली लैंगिक असमानता या हिंसा को मोटेतौर पर दो श्रेणियों में बांटा गया है। ये हैंः

- घरेलू या पारिवारिक हिंसा
- हिंसक अपराध

1. घरेलू या पारिवारिक हिंसा

घरेलू हिंसा भारतीय समाज के लिए एक गंभीर समस्या है। घरेलू हिंसा विशेष रूप से शादी के बाद महिलाओं के खिलाफ हिंसा को संदर्भित करती है, इसलिए यह महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्त्वपूर्ण बाधाओं के रूप में मान्यता प्राप्त है। घरेलू हिंसा के कई प्रकार हैं। इनमें शारीरिक अत्याचार, यौन उत्पीड़न, भावनात्मक दुरुपयोग, धमकी, आर्थिक कठिनाइयां और हिंसा की धमकियां शामिल हैं।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा अधिकांशतः घर के भीतर होती हैं। इस विषय में कई शोध किए गए हैं। उदाहरण के लिए, रसेल पी. दोबाश अपराध विज्ञान और रेबेका एमर्सन दोबाश मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में सोशल रिसर्च के प्रोफेसर हैं। इन दो प्रोफेसरों ने 1979 में महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर एक समाजशास्त्रीय अध्ययन का आयोजन किया था जिसने घरेलू हिंसा पर दृष्टि डाली थी। घरेलू हिंसा आमतौर पर पारिवारिक हिंसा के रूप में जानी जाती है। इसमें हिंसा के बहुत से प्रकार शामिल हैं, लेकिन प्रत्येक में महिलाओं को बहुत अधिक नुक्सान पहुंचाया जाता है। हाल ही के सर्वेक्षण में पाया गया है कि घरेलू हिंसा की व्यापकता (एक अंतरंग पुरुष साथी द्वारा शारीरिक हिंसा के रूप में परिभाषित)

विकासशील देशों में 60 प्रतिशत होने की संभावना है। मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक दुरुपयोग की व्यापकता भी उच्च मानी जा रही है। जनसांख्यिकीय और स्वास्थ्य सर्वेक्षण (डीएचएस) के कई देशों के आकड़ों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि महिलाओं और लड़कियों में हिंसा के अनुभवों की सम्भावना तब बढ़ जाती है, जब वे किशोरावस्था या कम उम्र में विवाहित कर दी जाती हैं। घरेलू हिंसा की शुरुआत वैवाहिक झगड़ों, घर पर पुरुष सत्ता, संपत्ति, निर्णय लेने के अधिकार, गरीबी और बेरोजगारी से होती है। भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा के आंकड़े बढ़ रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, 8 प्रतिशत विवाहित महिलाएं यौन हिंसा और बलपूर्वक यौन के लिए मजबूर की जाती हैं। 31 प्रतिशत विवाहित महिलाएं शारीरिक रूप से दुर्व्यवहार, जैसे शारीरिक हिंसा अथवा शोषण की शिकार होती हैं, जबकि 10 प्रतिशत विवाहित महिलाएं गंभीर घरेलू हिंसा जैसे दहेज हत्या या किसी हथियार से हमले का शिकार हो जाती हैं।

टिप्पणी

(एनएफएचएस) राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण तृतीय– (जिसमें 2005–06 में अट्ठाइस राज्यों में 1.25 लाख महिलाओं का साक्षात्कार किया) के अनुसार दिए गए आंकड़े इस प्रकार हैं–

घरेलू हिंसा

- पति द्वारा थप्पड़ शारीरिक हिंसा का सबसे सामान्य रूप है। 34 प्रतिशत से अधिक महिलाओं ने कहा कि उनके पति ने उन्हें थप्पड़ मारा, जबकि 15 प्रतिशत ने कहा कि उनके पति ने उनके बाल खींचे और उनके हाथ मरोड़ दिए। लगभग 14 प्रतिशत महिलाओं ने उन पर चीजें फेंकने की बात की।
- आंकड़ों के अनुसार, 62 प्रतिशत शारीरिक या यौन हिंसा शादी के पहले दो वर्षों के भीतर अनुभव की गई हैं, जबकि 32 प्रतिशत पहले पांच साल में हिंसा का शिकार हुई हैं।
- भारत के नवीनतम और सबसे व्यापक सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि छह में से एक पत्नी के साथ भावनात्मक रूप से अपने पति द्वारा दुर्व्यवहार किया गया था, जबकि 10 में से एक या 10 प्रतिशत वैवाहिक बलात्कार जैसी यौन हिंसा का शिकार हुई हैं।
- एनएफएचएस आंकड़ों के अनुसार, घरेलू हिंसा बिहार में सबसे आम है। यहां महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार का प्रतिशत 59 प्रतिशत है। बिहार के बाद राजस्थान (46.3 फीसदी), मध्यप्रदेश (45.8 प्रतिशत), मणिपुर (43.9 फीसदी), उत्तरप्रदेश (42.4 प्रतिशत), तमिलनाडु (41.9 फीसदी) और पश्चिम बंगाल (40.3 फीसदी) है।
- अनुसूचित जाति और जनजाति समुदायों की महिलाओं के कथित तौर पर तीन में से एक अपने पति द्वारा पीटी जाती हैं और जीवनसाथी द्वारा दुरुपयोग की जाती हैं।
- विशेषज्ञों का कहना है कि जिस तरह से महिलाओं की हिंसा के मामले सामने आते हैं, उनमें चार में एक महिला अपने पति द्वारा दुर्व्यवहार और हिंसा की

कोशिश किए जाने को लेकर सहायता चाहती है। उदाहरण के लिए केवल 23 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू हिंसा का सामना करने के दौरान पुलिस के हस्तक्षेप की मांग की है।

भ्रूण हत्या एवं शिशु हत्या

टिप्पणी

लड़की जन्म से पहले ही समाज में उपेक्षित मानी जाती रही है। इसलिए उल्लेखन और लैंगिक भेदभाव परीक्षण के रूप में आधुनिक तकनीकों का विकास किया गया है। ये तकनीक भ्रूण हत्या के लिए जिम्मेदार हैं। एक अध्ययन के अनुसार, यह परिलक्षित किया गया है कि 1000 भ्रूण हत्या के बीच 995 महिला भ्रूण हत्या हैं। समृद्ध शहरों में, यौन भेदभाव परीक्षण के प्रावधानों द्वारा उच्च और मध्यम वर्ग के लोग इन परीक्षणों का अभ्यास कर रहे हैं। इस कारण से महिला भ्रूण हत्या की संख्या बढ़ गई है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के अनुसार भारत में 1999–2000 में, कन्या भ्रूण हत्या के अपराध में 49.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

भारत में 2011 की जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है कि 0–6 आयु वर्ग के लिंग अनुपात में 1000 लड़कों के लिए 914 लड़कियां है। यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक 1000 लड़कों के लिए, लगभग 60–70 लड़कियों की जन्म के छह वर्ष के अंदर या उससे पहले ही मृत्यु हो गई। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से यह सबसे कम लिंग अनुपात दर्ज किया गया हैं। ऐतिहासिक काल से बच्चे उनके माता–पिता की जिम्मेदारी के रूप में माने जाते हैं, इसलिए लड़की को बाल–विवाह के बाद उसके पति के घर जाना होता था, क्योंकि लड़की के माता–पिता उसकी परवरिश में अपने संसाधनों को खर्च नहीं करना चाहते थे। लड़की के लिए दहेज मांग और विशाल शादी के खर्च के कारण माता–पिता को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, इसलिए परिवार में बेटा अधिक पसंद किया जाता था, क्योंकि बड़े होकर बड़ा दहेज लाने में सक्षम हो जाएगा। इन्हीं सब कारणों से बालिका की हत्या उसके पैदा होने पर कर दी जाती थी। कन्या भ्रूण हत्या अभी भी आमतौर पर भारी रूप में प्रचलित हो रही हैं। आंकड़े बताते हैं कि अभी भी उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पंजाब आदि राज्यों में एक पुत्र को अधिक वरीयता दी जाती हैं। इन राज्यों में पुरुष–स्त्री अनुपात बहुत अधिक हैं।

भारत में कन्या भ्रूण हत्या की प्रथा कुछ जातियों और जनजातियों के बीच आम थी। यह विशेष रूप से उत्तर और उत्तर–पश्चिमी राज्यों में बहुत अधिक है। भ्रूण हत्या का रिवाज कुछ समुदायों में इसलिए है, क्योंकि अपनी अपनी बेटियों के लिए उपयुक्त पति ढूंढ़ पाना मुश्किल होता है और अविवाहित बेटी परिवार के लिए एक अपमान मानी जाती थी। बेटी की शादी के अवसर पर असाधारण दहेज की मांग के द्वारा भी कन्या पक्ष को परेशान किया जाता था।

कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए जल्द से जल्द कोशिशें की गई थीं। 1795 में, भ्रूण हत्या को बंगाल रेगुलेशन XXI द्वारा हत्या घोषित किया गया था। कन्या भ्रूण हत्या का निंदा प्रचार और ब्रिटिश सरकार की ओर से सशक्त कार्यवाही द्वारा समाप्त हो गई थी। केशवचन्द्र सेन के प्रयासों के माध्यम से, 1872 में मूल निवासी विवाह अधिनियम पारित

किया गया था, जिसमें बाल–विवाह को समाप्त कर दिया गया, बहुविवाह को एक अपराध माना गया और विधवा पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह को मंजूरी दे दी गई। 1901 में बड़ौदा की सरकार ने शिशु विवाह निरोधक अधिनियम पारित कर दिया। इस अधिनियम में लड़कियों के लिए शादी की न्यूनतम आयु बारह वर्ष और लड़कों के लिए सोलह वर्ष तय की गई। 1930 में, अठारह वर्ष से कम आयु के लड़के और चौदह वर्ष से कम आयु की लड़की के विवाह को रोकने के लिए शारदा एक्ट पारित किया गया था। हालांकि, आज भी यह अधिनियम कुछ कारणों से केवल कागज पर ही बना हुआ हैं।

2. हिंसात्मक अपराध

बहुत प्रकार से लड़कियों को मारा जा रहा है, जो इस प्रकार है–

उपेक्षित मानव हत्या

हम सभी जानते हैं कि भारत में छोटी लड़कियां अक्सर उपेक्षित की जाती हैं और मारने के उद्देश्य से भूखी रखी जाती हैं। यह यातना का एक बर्बर तरीका है। यह एक परिवार में तब होता है, जब परिजन अपनी बेटी पर उसके लड़की के रूप में जन्म लेने से क्रोधित होते हैं। लड़कियों की एक बड़ी संख्या गरीबी, कुपोषण और भूख से मर जाती हैं। भारत में संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय बाल शिक्षा कोष (यूनिसेफ) की 2007 की रिपोर्ट के अनुसार, लड़कियों को पांच वर्ष की आयु से कम लड़कियों की मृत्युदर समान वर्ष के लड़को से 40 फीसदी ज्यादा थी। उपेक्षा के कारण यह स्पष्ट रूप से एक मानव हत्या है।

नरसंहारक हिंसा

2011 में हार्वर्ड स्कूल के साथ भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा किए गए सार्वजनिक स्वास्थ्य के एक अध्ययन की रिपोर्ट में घर पर परिवार द्वारा क्रूर शारीरिक यातनाओं के कारण भारत में पांच वर्ष से कम आयु की लड़कियों की असामान्य रूप से उच्च मृत्युदर स्थापित है और उनके परिवारों के अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि हिंसा के कारण लड़कों की तुलना में 21 फीसदी लड़कियां अपने पांचवें जन्मदिन से पहले ही मर जाती हैं। छोटी लड़कियां जो एक साल या उससे भी कम आयु की हैं, समान आयु के लड़कों की तुलना में घरेलू हिंसा के कारण उनके मरने की सम्भावना 50 प्रतिशत अधिक है।

पूर्व नियोजित हत्या

भारत में कन्या भ्रूण हत्या का इतिहास बहुत लंबा है। छोटी लड़कियों की मारने की हर क्षेत्र की अपनी भयावह प्रथाएं थीं। इनमें लड़कियों को दूध की बाल्टी में डुबोकर मारना, उन्हें नमक खिलाकर मारना और मिट्टी के बर्तन में जिन्दा दफना कर मार देना आदि शामिल थे। भारत के महापंजीयक द्वारा 2010 में प्रकाशित मेडिकल जर्नल "द लैंसेट" में एक असामान्य कारक उभरा है। भारत में एक महीने से पांच वर्ष की आयु तक की लड़कियों के निमोनिया और डायरिया से मरने की मृत्यु दर समान वर्ष के लड़कों की तुलना में 4–5 गुना ज्यादा है। इस अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण अवलोकन सामने आता है कि लड़कियों के जीवित रहने की विषम दर उनके खिलाफ सामाजिक

टिप्पणी

कट्टरता का प्रतिबिंब है। हालांकि, वास्तविक प्रश्न यह है कि इस विशिष्ट असमानता के कारण क्या हैं और क्यों चिकित्सा बीमारियों की दो अलग–अलग दरें हैं।

पत्रकार गीता अरवामुदान की पुस्तक "डिस्अप्पेअरिंग डॉटर्सः द ट्रेजेडी ऑफ फीमेल फोटीसाइड" में उन्होंने कन्या भ्रूण हत्या और भारत में भ्रूण हत्या के क्षेत्र में बीस से अधिक वर्षों तक अपने शोध के आधार पर इन घटनाओं को बताया हैं। उनके अवलोकन के अनुसार लड़कियों को समाप्त करने के प्राचीन और प्रथागत तरीके कन्या भ्रूण हत्या के लिए बहुत आसान थे।

बलात्कार– बलात्कार शर्मनाक और मानव विवेक व नैतिकता के खिलाफ सबसे अधिक चौंकाने वाला अपराध है। इस अपराध को हर समाज में महत्त्वपूर्ण दंड कानूनों के साथ पेश किया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 375–376 बलात्कार के मुद्दों का नियंत्रण करती है। धारा 375 बलात्कार के वैधानिक अपराध को परिभाषित करती है। यह एक औरत के साथ बलात्कार को निम्नलिखित रुप से दर्शाता है–

- उसकी इच्छा के विरुद्ध
- उसकी सहमति के बिना
- हत्या अथवा भय के द्वारा प्राप्त की गई सहमति के साथ
- जब आदमी जानता है कि वह उसका पति नहीं है तब उसके द्वारा पति की पहचान की गलत धारणा के साथ दी गई सहमति
- कुछ मादक पदार्थों के प्रभाव से अचेत करके
- सोलह वर्ष से कम आयु में उसकी सहमति अथवा असहमति के साथ।

वर्तमान कानूनी प्रणाली के तहत बलात्कार के मुद्दों से कड़ाई से पेश आया जा रहा है किन्तु फिर भी बलात्कार की संख्या तेजी से बढ़ रही है।

अश्लीलता

आम धारणा के विपरीत, बलात्कार को यौन संतुष्टि के लिए कभी बढ़ावा नहीं दिया गया है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में महिलाओं के अपमानजनक चित्रण बड़े पैमाने पर है। अश्लीलता उन्नीसवीं सदी की धारणा है, जो गंदे और अश्लील रूप में सेक्स पर आधारित थी। मौजूदा स्थिति में भारतीय दंड संहिता की धारा 292, 293, 294 अश्लीलता के मामलों को नियंत्रित करती है। इन धाराओं के तहत, अश्लीलता की परिभाषा अस्पष्ट थी और इसकी व्याख्या न्यायाधीशों पर निर्भर करती थी।

अब अश्लीलता की अवधारणा को यौन–चित्रण से परिवर्तित करके हिंसा, अपराध और अपमानजनक स्थिति में यौन–क्रियाओं पर ला दिया गया है। इस प्रकार के अभद्र प्रतिनिधित्व जो विज्ञापनों, प्रकाशन, लेखन, पेंटिंग और अन्य तरीकों के माध्यम से प्रतिनिधित्व किए जाते हैं, उनके विरुद्ध विशेष अधिनियम पारित किए जाने चाहिए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 509 भी इसी मुद्दे से संबंधित है और इसके द्वारा किसी भी महिला के शरीर को अपमानित करने के लिए सजा निर्धारित की गई है। यदि कोई व्यक्ति आक्रोश में आकर किसी महिला के शरीर को उजागर करके उसका

अपमान करता है, या अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करता है, तो उसका यह कृत्य एक अपराध है।

टिप्पणी

दहेज

दहेज, महिलाओं के खिलाफ हिंसा के रूप में एक दक्षिण एशियाई समाज में महिलाओं की असमान स्थिति के एक विस्तृत नजरिए से देखा जा रहा है। दहेज आमतौर पर वह है, जो महिला अपने साथ सामान विवाह के बाद नए घर में लाती है। ये दहेज उसके माता–पिता उसे सम्पति के रूप में देते हैं, या वह महिला स्वयं इसे अर्जित करती है। दहेज की व्यापक परिभाषा महिला के परिवार द्वारा खर्च किए गए धन, जेवरात और उपहारों से जुड़ी हुई है। दहेज प्रथा का असली अभिशाप भारतीय समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास द्वारा प्रकट किया गया है। उनके द्वारा दहेज प्रथा की नई परिभाषा यह है, "जिसमें दूल्हे के परिवार के द्वारा नगद और सम्पत्ति की मांग विभिन्न रूपों में की जाती है।"

यह तर्क दिया जा सकता है कि दहेज दक्षिण एशियाई समाज का एक प्राचीन रोग तत्व है। दहेज हिंसा की समस्या को आधुनिक घटनाओं द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। हिन्दू शास्त्रों को फिर से लिखने के बाद भी अतीत को पूर्ववत नहीं किया जा सकता है। सामग्री और संपत्ति की खातिर पृथ्वी पर महिलाओं के प्रति क्रूरता के विरुद्ध कोई भी लेख हिन्दू ग्रंथों में नहीं लिखा गया है। अधिकांश लेखन ने कम–से–कम तीन मायनों में दहेज का उपयोग बताया गया है। पहले में आभूषण, घरेलू सामान और अन्य सम्पत्ति आती है, जो विवाह अनुष्ठान में दुल्हन द्वारा अपने नए घर ले जायी जाती है। ये नए घरेलू सामान नए जीवन की नींव के रूप में दंपति द्वारा इस्तेमाल किए जाते हैं।

दहेज का दूसरा रूप वह है, जो दुल्हन के परिवार द्वारा विवाह उत्सव में खर्च किया जाता है। इस सम्बन्ध में श्रीनिवास कहते हैं कि भारतीय विवाह विशाल और विशिष्ट खर्च के लिए जाने जाते हैं और यह माना जाता है कि यह परिवार की रखरखाव से सम्बंधित है। ऐसे वैवाहिक खर्च दम्पति को केवल परोक्ष रूप से लाभ देने की बजाय प्रत्यक्ष रूप से परिवार की वित्तीय स्थिति को दर्शाने के लिए किए जाते हैं।

दहेज का तीसरा रूप अधिकतर पति या उसके परिवार द्वारा शादी या शादी के बाद के चरण में मांगा जाता है। दहेज के यह तीनों रूप एक शर्त द्वारा लेखकों और सामाजिक वास्तविकता में मिश्रित हो गए हैं।

एनसीआरबी के अनुसार "भारत में अपराध 2014"

- 8,455 महिलाओं को दहेज के कारण हत्या कर दी गई
- 22 महिलाओं को हरदिन हत्या कर दी गई
- 1 महिला की हर 66 घंटे पर दहेज लेकर हत्या कर दी गई

दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 के तहत, दहेज मांग एक अपराध है। भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 498 विशेष रूप से उस स्थिति के लिए बनायी गई है, जब

पति जानबूझकर शारीरिक हिंसा करे या महिला को ससुराल की प्रकृति के कारण आत्महत्या करनी पड़े, उसे शारीरिक चोट या प्रताड़ना दी जाये, उसके पति द्वारा शोषण किया जाये या कोई रिश्तेदार गैर–कानूनी संपत्ति की मांग करे।

आक्रामक गतिविधियों के विरुद्ध संवैधानिक संरक्षण

टिप्पणी

हमारे सामाजिक संदर्भ और स्थिति में बहुत से पुरुषों और महिलाओं को देखकर यह नहीं पहचाना जा सकता है कि उन्हें दुर्व्यवहार परेशान कर रहा है। महिलाएं परेशान करने वालों के बारे में सूचित करने में असमर्थ हैं। इसे ध्यान में रखते हुए यह आश्चर्य की बात है कि कैसे प्रभावी तरह के एक बयान को उत्पीड़न को समाप्त करने से पहले ही बदल दिया जाता है। इससे प्रभावित महिलाओं को आक्रामक व्यवहार द्वारा इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार की मानसिक प्रताड़ना या यौन शोषण की आशंका अथवा घटना पर बिल्कुल चुप नहीं रहना चाहिए। पीड़ित व्यक्ति को किसी से बात करनी चाहिए या किसी को सूचित करना चाहिए, यहां तक कि अगर आप फिर भी कुछ कहने में असमर्थ हैं, तो कार्टून, पेंटिंग, लेखन या इन सबके बारे में उचित टिप्पणी को डायरी में लिखकर समझाने का प्रयास करे। यदि आप कुछ लिखकर संग्रह करने की स्थिति में नहीं हैं और आप एक अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते हैं, तो संघ के किसी भरोसेमंद व्यक्ति से बात करनी चाहिए। अगर परेशान करने वाला उच्च पदस्थ है, तो बेहतर या एक भरोसेमंद सहकर्मी से बात करने की कोशिश करनी चाहिए। एनजीओ समूह यौन उत्पीड़न के बारे में परामर्श देने में सक्षम होते हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी उत्पीड़न की सही जांच द्वारा संभावित प्रकृति स्पष्ट हो।

अपना मूल्यांकन करना चाहिए। समय–समय पर अपने काम का प्रतिरूप बना के रख लेना चाहिए। यदि उत्पीड़न से पूर्व आपका काम अच्छा होगा तो आप दस्तावेज के सहारे अपने संघ से मदद ले सकते हैं।

यदि आप के साथ बलात्कार किया गया है या शारीरिक रूप से उत्पीड़न किया गया है, तो आप अपने दोस्त के साथ जाकर चिकित्सा जांच कराएं और एक मेडिकल रिपोर्ट प्राप्त करें। आपको इसे कानूनी कार्यवाही के लिए आगे बढ़ाना चाहिए, यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सुप्रीम कोर्ट के दिशा–निर्देशों के अनुसार यह एक नीति है, नियोक्ता अपने संगठन में प्रावधान की व्यवस्था की जिम्मेदारी ले।

अनौपचारिक रूप से कार्यस्थल पर इस मुद्दे को उठाना चाहिए। कार्यालय में अन्य महिलाओं से बात करनी चाहिए और पता लगाना चाहिए कि उनमें से भी किसी ने कार्यस्थल पर समान व्यवहार का अनुभव किया है। ऐसे व्यक्ति को खोज पाना असामान्य नहीं हैं, जिसने इसी प्रकार का अनुभव किया हो, लेकिन सामाजिक और आर्थिक नतीजों के डर से वे चुप रहते हैं। इन मुद्दों पर लोगों से बात करनी चाहिए और समर्थन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

यदि वहां शिकायत तंत्र है, तो प्रक्रिया का पालन करते हुए शिकायत दर्ज करे। यदि वह मौजूद नहीं हैं, तो कार्यस्थल पर अपने सहयोगियों के साथ विस्तार में इस पर बात करे।

याद रखें, दिशा–निर्देशों को गोपनीयता की आवश्यकता है। यौन आक्रामक व्यवहार के मुद्दों को उठाने और शिकायत करने से आप काफी हद तक सुरक्षित कार्य–वातावरण बनाने की दिशा में एक कदम उठाते हैं।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एक लिंग भेदभाव का मुद्दा है। इसमें एक व्यक्ति को अपने लिंग की वजह से उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। यह एक कार्यस्थल में अवांछित यौन आचरण है, जिसके कई विभिन्न रूप हैं। यह महिलाओं के खिलाफ भेदभाव है।

आर्थिक कारण, रोजगार के अवसर व पदोन्नति अथवा एक व्यक्ति को यौन संबंधों के आदान–प्रदान के लिए मजबूर करते हैं। यौन उत्पीड़न, उत्पीड़ित की कार्य भूमिका पर प्रभाव डालता है और पीड़ितों को कम अनुकूल परिस्थितियों में भी काम करना होता है।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने 13 अगस्त, 1997 में दिशानिर्देश जारी किए, जो लंबे समय से विद्यमान हैं। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की समस्या वास्तविक और व्यापक है। यौन अश्लील व्यवहार के साथ मजाक व प्रत्यक्ष रूप से सभी कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के माहौल में महिलाओं के लिए भेदभावपूर्ण बनाने के लिए गठबंधन पर दिशानिर्देश जारी किए गए।

यौन उत्पीड़न गंभीरता से महिलाओं के मानसिक और शारीरिक क्रिया को प्रभावित कर रहा है। यौन उत्पीड़न एक व्यक्तिगत समस्या नहीं है, लेकिन यह लिंग विशेष हिंसा का एक रूप है, जोकि इस आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव करता है। यह मानव अधिकार के लिए उनकी स्वतंत्रता और व्यक्तिगत गरिमा का उल्लंघन किया जाता है।

यौन उत्पीड़न अत्यंत व्यापक है। यह 40–60 प्रतिशत के जीवन को छूता है। कामकाजी महिलाओं का कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में छात्रों के एक समान अनुपात नहीं हैं, लेकिन फिर भी यौन उत्पीड़न एक छुपा हुआ, निर्विवाद और चुनौती बना हुआ है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की सूचना में कहा गया है कि 2014 में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के 526 मामलें सामने आए हैं।

एनसीआरबी के मुताबिक "भारत में अपराध, 2002"

- 44,098 यौन उत्पीड़न की घटनाएं दर्ज की गईं।
- हर रोज 121 महिलाएं यौन उत्पीड़न से परेशान थीं।
- हर 12 मिनट में एक महिला को यौन उत्पीड़न से परेशान किया गया था।
- 1997–2002 में 20.6 फीसदी की वृद्धि के साथ यौन उत्पीड़न की घटनाएं पाई गईं।

टिप्पणी

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए दिशा–निर्देश

दिशा–निर्देश विशेष रूप से कार्यस्थल पर दृश्यता प्राप्त करने के लिए शुरू किए गए हैं। भारत के उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के बाद जो यौन उत्पीड़न की पुष्टि करता है, वह मानव अधिकारों के उल्लंघन के सन्दर्भ में अलग–अलग रणनीतियों के रूप में शुरू हो गया है, लेकिन अभी तक पर्याप्त रूप से व्यावहारिक स्वरूप नहीं ले पाया है। सामाजिक संदेश यह है कि आज के माहौल की जांच करते रहना चाहिए। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि संगठन और नियोक्ता निम्नलिखित कदमों का अनुसरण करें:

- एक प्रभावी नीति बनानी चाहिए, जो कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के अर्थ को उदाहरण सहित स्पष्ट करती हो
- प्रभावी और रचनात्मक निवारक तंत्र का निर्माण
- संगठन के सभी स्तरों और सदस्यों के लिए शिक्षा/प्रशिक्षण कार्यक्रम
- यौन उत्पीड़न की शिकायतों के लिए समिति की स्थापना

लिंग आधारित हिंसा के सम्बोधन में विश्व की पहल

हाल ही में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और अभियानों द्वारा एक बड़ी हद तक जागरूकता बढ़ी है और लिंग आधारित हिंसा (जी.बी.वी.) पर चुप्पी को तोडा गया हैं। महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के उन्मूलन आयोग (महिला कन्वेंशन) में कई प्रावधान हैं, जो (जी. बी.वी.) पर लागू हैं। हालांकि, आजतक तीस देशों ने समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। एक–तिहाई देशों ने आरक्षण के साथ हस्ताक्षर किए हैं, जबकि चौबीस दूसरे देशों ने अनुच्छेद 16 का विरोध किया है, जोकि एक प्रमुख प्रावधान है, जिसमें वैवाहिक और पारिवारिक जीवन में पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता का प्रस्ताव रखा गया है।

इसके बावजूद भी, दुनिया भर में महिलाओं के समूहों ने नारीवादी आंदोलनों से गुहार लगाई है और सरकारों पर दबाव डाल कर कानून और नीतियों में बदलाव किया है। सजा रोकने के लिए या जी.बी.वी. के खिलाफ महिलाओं की रक्षा को अधिनियमित करने के लिए गैर–सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) भी चिंतित रहते हैं और इसीलिए वे समय–समय पर बहुत प्रकार के कार्यक्रम और सेवाओं को चलाते हैं। महिलाओं से यदि दुर्व्यवहार किया जाता है, तो आज के समय में उनको सूचित किया जाता है। जी.बी.वी. कार्यक्रम ने समुदाय के बदलते नजरिए के प्रति अपने लक्ष्य को सबसे अधिक लाभकारी साबित कर दिया है।

आश्रित–आवास, विशेष अदालतें, महिला पुलिस थाने और स्थानीय पुलिस थानों में विशेष डेस्क महिलाओं को अपने साथियों के दुरुपयोग से बचाते हैं। प्रताड़ित महिलाओं के लिए विशेष आश्रय–स्थल निम्नलिखित देशों में बनाए गए हैं–

- अर्जेंटीना, फ्रांस, नीदरलैंड, थाईलैंड

- ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, न्यूजीलैंड, त्रिनिदाद और टोबैगो
- ऑस्ट्रिया, होंडुरास, पाकिस्तान, तुर्की
- बांग्लादेश, आयरलैंड, पेरू, यूनाइटेड किंगडम
- बोलीविया, इसराइल, फिलीपींस, यूनाइटेड स्टेट्स
- कनाडा, इटली, दक्षिण कोरिया
- कोस्टारिका, जापान, श्रीलंका
- इक्वाडोर, मलेशिया, स्वीडन

टिप्पणी

स्रोत : 1997 में नेफ्ट और लेविन, व्हेयर विमेन स्टैंडः एन इंटरनेशनल रिपोर्ट ऑन द स्टेटस ऑफ विमेन इन 140 कंट्रीस।

विविध महिला-उत्पीड़न संबंधी प्रतिक्रियाएं

भारत में घरेलू हिंसा के पीछे लिंग पूर्वाग्रह और असमानता की धारणाएं जैसे कारण होते हैं। कुल मिलाकर महिलाओं को कमजोर वर्ग माना जाता है। विभिन्न सामाजिक और धार्मिक कुप्रथाओं ने इसे बढ़ावा देकर, महिलाओं के लिए असमान स्थिति को और भी जटिल कर दिया गया है। इन असमानताओं के कारण महिलाओं की आजादी में कटौती हुई है और उनके समक्ष कठिन परिस्थितियां भी आई हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा हाल ही का चिंता का विषय नहीं है, बल्कि यह बहुत पहले से चला आ रहा है। हमारी संस्कृति में यह एक गहरी समस्या बन गई है। कई शोधकर्ताओं ने हिंसा की समस्या का मुकाबला करने में जागरूकता के महत्त्व पर बल दिया है।

महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनों में हाल के दिनों में बहुत बदलाव आए हैं। महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा और उनके सम्मान के हितों की रक्षा करने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। महिलाओं की अधीनता के खिलाफ और उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कई आचार—संहिता को कड़ाई से लागू किया गया है।

समाज और साथ ही घर में दमन के रूप में, सीमित काम करने के अवसर, सम्मान हत्याओं, उपचार जैसे कारकों ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा कानून के कार्यान्वयन के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

ये सभी घातक प्रथाएं आज बड़ी संख्या में शहरों के साथ ही गांवों में भी मौजूद हैं। घर के भीतर महिलाओं के खिलाफ हिंसा को 1983 की धारा 498ए में एक आपराधिक कृत्य मानकर आपराधिक कानून के द्वितीय संशोधन के रूप में भारतीय दंड संहिता 1860 में जोड़ा गया है। विभिन्न महिला समूहों और विभिन्न वकीलों द्वारा यह एक केंद्रित प्रयास के परिणाम के रूप में आया था। महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा सबसे आम है और इस समस्या का निवारण कठिन है। कानून को अधिक प्रभावी बनाने के लिए, 'घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम' 2005 में निर्मित किया गया था। हालांकि, वर्तमान परिदृश्य इन कानूनों को अपर्याप्त बना रहा है और इन्हें ज्यादा नहीं बदला गया है,

जागरूकता से ही हिंसा के खिलाफ लड़ाई में बल मिला है। अधिक से अधिक महिलाएं शिक्षित हो रही हैं और हिंसा की धारणा को विभिन्न संवेदनात्मक तरीकों से यहां प्रकट किया गया है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में महिलाओं के लिए चल रहे वाद–विवादों ने इनके मुद्दों और चिंताओं के भाव को स्पष्ट करने में मदद की है।

टिप्पणी

मुख्य रूप से निम्नलिखित को महिलाओं के खिलाफ हिंसा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है–

- कोई भी कार्य जो (शारीरिक या मानसिक रूप से) महिलाओं को खतरे में डालता है इस तरह, मौखिक, शारीरिक, भावनात्मक, वित्तीय आदि दुरुपयोग के विभिन्न रूप घरेलू हिंसा श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।
- बलात्कार या महिला की इच्छा के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए उन पर कई रूप से दबाव डाला जाता है।
- हिंसक कार्रवाई।
- महिला या उसके रिश्तेदारों के लिए खतरे को दोहराया जाना।
- कुछ वित्तीय और आर्थिक विशेषाधिकारों से महिलाओं के लिए रुकावटें पैदा करना।
- चल और अचल संपत्ति का सही उपयोग करने से महिलाओं का वंचित रहना।

हर नागरिक से यह उम्मीद की जाती है कि वह घरेलू हिंसक घटनाओं की सूचना तुरंत 'संरक्षण अधिकारी' को दे। जो व्यक्ति संरक्षण अधिकारी को सूचित करेंगे वे किसी भी दायित्वों से मुक्त हैं। जानकारी मिलने पर संरक्षण अधिकारी या मजिस्ट्रेट या नियुक्त सेवा प्रदाता कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम (1987) के तहत पीड़ित महिला को उसके अधिकार एवं मुफ्त कानूनी सहायता देने का उत्तरदायित्व लेगा। इसके अतिरिक्त उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498ए के तहत एक शिकायत दर्ज करने के लिए उसके अधिकार के प्रति जागरूक करेगा।

पीड़ित महिला को स्वतंत्रता है कि वह अदालत के माध्यम से पीड़ित करने वाले के विरुद्ध दंड देने के आदेश को प्राप्त कर सके। पीड़ित महिला की कार्रवाई का एक और तरीका है, जिसमें वह आरोपी संबंधी या पति से सुरक्षा के रूप में एक राशि जमा करने के लिए कह सकती है। शिक्षा जागरूकता तथा जानकारी एक ऐसा उपाय है, जो संभावित हिंसा को रोकने के लिए है। अधिक से अधिक महिलाएं शिक्षित हो रही हैं और वे अपने रास्ते में हिंसा और आक्रामकता का विरोध कर सके, इसके लिए भी उन्हें सक्षम कराया जा रहा है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. आतंकवाद का प्रमुख कारण क्या है?
   (क) अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना
   (ख) धार्मिक कट्टरवाद
   (ग) मनोवैज्ञानिक कारण
   (घ) ये सभी
4. भ्रूण हत्या को बंगाल रेगुलेशन XXI द्वारा हत्या कब घोषित किया गया था?
   (क) 1795 (ख) 1872
   (ग) 1901 (घ) 1912

4.4 पर्यावरणीय मुद्दे

सभ्यता की शुरुआत के बाद से ही मनुष्य की पर्यावरण में रुचि रही है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में कई प्रथाएं पर्यावरण संरक्षण से संबंधित हैं। लेकिन आज हम दो परस्पर विरोधी विकल्पों के बीच फंसे हैं। एक ओर अधिशेष खाद्य उत्पादन, जेनेटिक इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष और सूचना प्रौद्योगिकी व उन्नत चिकित्सा पद्धतियों के साथ एक समृद्ध और सुनहरे भविष्य की संभावना है तो दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या के गंभीर परिदृश्य, आवास के लिए स्थान की कमी, पानी की कमी और जैव विविधता के नुकसान हैं। सतत विकास, प्रबंध व पर्यावरण आपदाओं को रोकने के लिए ऐसे आसन्न खतरों के साथ हवा, पानी और खनिज संपदा सहित संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग की बढ़ती अनुभूति होनी चाहिए।

पर्यावरण को समझने और इसके संरक्षण से पहले हमें यह समझना होगा कि पर्यावरण क्या है। पर्यावरण शब्द फ्रेंच भाषा के शब्द 'एन्वारन' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'घिरे होना' या 'चारों तरफ'। वास्तव में वातावरण का मतलब एक जीव के जीवन की बाह्य परिस्थितियों से है। पौधों और जानवरों जैसे जीवों सहित मनुष्य भी पर्यावरण से पोषण पाते हैं और इसकी गोद में जीवित रहते हैं। पर्यावरण स्थिर नहीं है, बल्कि यह समय और स्थान के हिसाब से बदलता जाता है। इसमें रहने वाले जीवों को जिंदा रहने और विकास करने के लिए एक या इससे अधिक पर्यावरणीय कारकों जैसे तापमान, आर्द्रता में परिवर्तन के अनुकूल खुद को ढालना पड़ता है। जो प्रजातियां पर्यावरण परिवर्तन के साथ सामंजस्य बनाने में असमर्थ रहती हैं उनके डायनासोर और कवकवे की तरह मरने या विलुप्त होने की संभावना रहती है।

पर्यावरण अध्ययन मानव और पर्यावरण के बीच अंत:क्रिया के अध्ययन को दर्शाता है। व्यापक अर्थ में यह पृथ्वी स्थलीय, वायुमंडलीय और मानवशास्त्रीय वातावरण के बीच जटिल संबंधों का अध्ययन है। दूसरे शब्दों में यह पृथ्वी, हवा, पानी और रहने योग्य वातावरण तथा इन पर प्रौद्योगिकी के प्रभाव की समझ है। प्रकृति का हिस्सा होने के कारण मनुष्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण से प्रभावित होता है। यही नहीं मनुष्य भी अपनी आवश्कताओं के अनुरूप पर्यावरण की प्रकृति को परिवर्तित या संशोधित करता

है। जनसंख्या में लगातार वृद्धि से पर्यावरण पर मानवीय गतिविधियों का प्रभाव बढ़ रहा है। यह प्रभाव हमेशा ही लाभप्रद नहीं होता। इसके वैश्विक जलवायु परिवर्तन, वायु और जल प्रदूषण व प्राकृतिक संसाधनों में कमी जैसे नकारात्मक प्रभाव भी पड़ रहे हैं। इन प्रभावों का मानव स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है।

पर्यावरण अध्ययन आज अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। इस अध्ययन के माध्यम से हम पर्यावरण प्रकृति और संसाधानों के साथ-साथ मानवीय गतिविधियों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में जानेंगे। वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा के मद्देनजर इसकी जानकारी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

4.4.1 पर्यावरण को प्रभावित करने वाली मानवीय गतिविधियों के निरीक्षण हेतु विवेचनात्मक क्षमता का विकास

पर्यावरण शब्द परि + आवरण से मिलकर बना है। परि का अर्थ है-'चारों ओर' तथा आवरण का अर्थ है-'घिरा हुआ'। अर्थात पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है-चारों ओर से घिरा हुआ। जैसे नदी, पहाड़, तालाब, मैदान, पेड़-पौधे, जीव-जंतु वायु वन मिट्‌टी आदि सभी हमारे पर्यावरण के घटक हैं। हम सभी इन घटकों का दैनिक जीवन में भरपूर उपयोग करते हैं अर्थात हम इन घटकों पर ही निर्भर हैं।

पर्यावरण की परिभाषा

- डगलस एवं हालैण्ड के अनुसार-"पर्यावरण वह शब्द है, जो समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों और परिथतियों का सामूहिक रूप से वर्णन करता है, जो जीवधारी के जीवन, स्वभाव, व्यवहार तथा अभिवृद्धि, विकास तथा प्रौढ़ता पर प्रभाव डालता है।"
- जे.एस. रॉस के अनुसार-"पर्यावरण या वातावरण वह बाह्य शक्ति है, जो हमें प्रभावित करती है।"
- डी. स्टेम्प के अनुसार-"पर्यावरण प्रभावों का ऐसा योग है, जो किसी जीव के विकास एवं प्रकृति को परिस्थितियों के सम्पूर्ण तथ्य आपसी सामंजस्य से वातावरण बनाते हैं।"
- हर्सकोविट्स के अनुसार-"पर्यावरण इन सभी बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है, तो प्राणी के जीवन तथा विकास पर प्रभाव डालता है।"
- टॉमसन के अनुसार-"पर्यावरण ही शिक्षक है, शिक्षा का काम छात्र को उसके अनुकूल बनाना है।"
- डॉ डेविस के अनुसार-" मनुष्य के सम्बन्ध में पर्यावरण से अभिप्राय भूतल पर मानव के चारों ओर फैले उन सभी भौतिक स्वरूपों से है, जिसके वह निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं।"
- निकोलस के अनुसार-"पर्यावरण उन समस्त बाहरी दशाओं तथा प्रभावों का योग है, जो प्रत्येक प्राणी के जीवन विकास पर प्रभाव डालते हैं।''
- विश्व शब्दकोश के अनुसार-"पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियों तथा प्रभावों का योग है, जो जीवों व उनकी प्रजातियों के विकास जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करता है।"

पर्यावरण के तत्व

पर्यावरण के तत्वों को दो समूहों में विभक्त किया जाता है-1. अजैव तत्व तथा 2. जैव तत्व। जैव तत्वों में पौधे और जीव-जन्तु प्रमुख है। अजैव तत्वों में जलवायु, स्थल, जल, मृदा, खनिज एवं चट्टान तथा भौगोलिक स्थिति प्रमुख हैं।

टिप्पणी

पर्यावरण के जैव एवं अजैव तत्व समूह अपनी विशेषता के अनुसार पर्यावरण का निर्माण करते हैं। चूंकि ये आपस में गुंथे हुए हैं, अतः इनमें होने वाले परिवर्तनों का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

1. जैव-तत्व समूह : इसमें वनस्पति, जीव-जन्तु, मानव एवं सूक्ष्म जीव आते हैं।

2. अजैव तत्व समूह : इसमें जलवायविक कारक (सूर्य, प्रकाश एवं ऊर्जा, तापमान, हवा, वर्षा, आर्द्रता, वायुमण्डलीय गैस आदि), स्थलजात कारक (उच्चावच, ढाल, पर्वत, दिषा आदि), जल स्रोत (सागर, झील, नदी, भूमिगत जल आदि), मृदा (मृदा रूप, मृदा-जल, मृदा-वायु आदि), खनिज एवं चट्टानें (धात्विक एवं अधात्विक खनिज, ऊर्जा खनिज एवं चट्टानें आदि तथा भौगोलिक स्थिति (तटीय, मध्यदेशीय, पर्वतीय आदि) आते हैं।

पर्यावरण के प्रकार

पर्यावरण के मुख्यतया तीन प्रकार होते हैं :

1. भौतिक पर्यावरण,
2. जैविक पर्यावरण, एवं
3. मनोसामाजिक पर्यावरण।

1. **भौतिक पर्यावरण (physical environment) :** पर्यावरण का प्रमुख भाग भौतिक पर्यावरण से मिलकर बनता है। इसके अंतर्गत वायु, जल, खाद्य, पदार्थ, भूमि, ध्वनि, ऊष्मा, प्रकाश, नदी, खनिज पदार्थ एवं अन्य पदार्थ सम्मिलित हैं, जिससे मनुष्य का निरंतर संपर्क रहता है। हमेशा इन घटकों से संपर्क रहने के कारण ये मानव स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव डालते हैं। सामान्य अवस्था की सामंजस्य टूटने से मनुष्य पर्यावरण के दुष्प्रभावों से प्रभावित हो जाता है।
2. **जैविक पर्यावरण (biological environment) :** वैसे जैविक पर्यावरण बहुत बड़ा अवयव है, जो कि मानवों के ईद-गिर्द रहता है। यहां तक कि एक मानव के लिए दूसरा मानव भी पर्यावरण का एक भाग है।
3. **मनोसामाजिक पर्यावरण (psychosocial environment) :** मनोसामाजिक पर्यावरण मानव के सामाजिक संबंधों से प्रकट होता है। इसके अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में मानव व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन किया जाता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में अन्य वर्ग, जाति, पास-पड़ोस, समुदाय, प्रदेश एवं राष्ट्र से भी संबंध बनाए रखना पड़ता है।

मानव गतिविधियों से प्रभावित पर्यावरण

मानव की विभिन्न गतिविधियों ने पर्यावरण को गहराई से प्रभावित किया है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपभोग और तीव्र दोहन हो रहा

टिप्पणी

है, जिसका परिणाम मृदा निम्नीकरण, जैव विविधता में कमी और वायु, जल स्रोतों के प्रदूषण के रूप में दिखाई पड़ रहा है। अत्यधिक दोहन के कारण पर्यावरण का क्षरण हो रहा है। तथा यह मानव जाति और उसकी उत्तरजीविता के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है। प्राकृतिक संसाधनों पर ग्रामीण निर्धनों व आदिवासियों की निर्भरता से भी पर्यावरण को नुकसान पहुंचा है। कुछ मानवीय क्रियाकलापों, जैसे-वनों की कटाई, अनवीकरणीय ऊर्जा के अत्यधिक प्रयोग ने पर्यावरण अवनयन की समस्या को बढ़ा दिया है क्योंकि वन पर्यावरण संतुलन के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। वनोन्मूलन के कारण मृदा अपरदन, भूस्खलन, गाद का जमाव, वन्य पर्यावरण में क्षति हो रही है, जिसके फलस्वरूप वन्य जीवों के संकटापन्न होने की स्थिति उत्पन्न हो रही है तथा कई वन्यजीव विलुप्त होने की कगार पर हैं। अनवीकरणीय ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। बढ़ती जनसंख्या के लिए स्थान, आश्रय और उपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता के कारण पर्यावरण पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है और इन सभी वस्तुओं को उपलब्ध कराने के लिए नाटकीय तरीके से भूमि का प्रयोग बदल रहा है।

इसके अलावा निम्न मानवीय गतिविधियों ने भी पर्यावरण को प्रमुख रूप से प्रभावित किया है : 1. खनन, 2. औद्योगीकरण, 3. आधुनिक कृषि, 4. शहरीकरण, 5 आधुनिक प्रौद्योगिकी।

1. **खनन :** पृथ्वी धातुओं और खनिज संसाधनों से परिपूर्ण है। संसाधनों का तीव्र गति से खनन किया जा रहा है। अब इन संसाधनों के समाप्त होने की आशंका वैज्ञानिकों व विश्लेषकों द्वारा व्यक्त की जा रही। है। पृथ्वी से खनिजों के निष्कर्षण के दौरान बड़ी मात्रा में कूड़े का ढेर उत्पन्न होता है। खनिज अपशिष्टों के ढेर से भूमि का एक बहुत बड़ा भाग घिर जाता है, जो कृषि कार्यों के लिए भी अयोग्य होता है। खनन क्षेत्र अधिकांशतः दुर्गम या वनीय क्षेत्रों में होते हैं, जिससे वनोन्मूलन की समस्या भी उत्पन्न होती है।
2. **औद्योगीकरण :** तीव्र गति से जनसंख्या की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया में कच्चे माल के रूप में उद्योग प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं, जिनके शीघ्र समाप्त हो जाने का खतरा है। उद्योगों से निकली विषैली गैसों द्वारा वायु प्रदूषण तथा निसृत अपशिष्ट द्वारा जल प्रदूषण के साथ मृदा प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है जो मानव तथा अन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
3. **आधुनिक कृषि :** जनसंख्या में तीव्र वृद्धि ने कृषि उत्पादों की मांग में वृद्धि की है। जिससे अधिक-से-अधिक फसलों को उगाने के लिए वनों को खेती के उपयुक्त भूमि में बदला जा रहा है। इससे अनेक पर्यावरणीय समस्याएं हो रही हैं। कृषि में कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग से भी पर्यावरण को नुकसान होता है।
4. **शहरीकरण :** बढ़ता शहरीकरण विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देता है। क्योंकि शहर अपनी मूलभूत सुविधाओं के कारण जनसंख्या के आकर्षण का केन्द्र होते हैं। शहरों में बढ़ती जनसंख्या के कारण स्थानीय संसाधन पर गहन दबाव पड़ता है जिससे नित नई समस्याओं का जन्म होता है। शहरों में लोगों के निवास, उद्योगों की स्थापना तथा सड़क व अन्य सुविधाओं हेतु उपजाऊ भूमि का ही

उपयोग हो रहा है। यह प्रवृत्ति निकट भविष्य में खाद्य संकट का कारण बन सकती है। शहरों की मौसमी जलवायवीय व पर्यावरणीय दशाओं को प्रभावित करती है।

5. **आधुनिक प्रौद्योगिकी :** मानव समाज के विकास में प्रौद्योगिकी की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। तीव्र गति से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के साथ मानव प्रजाति भौतिकवादी प्रवृत्ति, उच्च उत्पादन पर अधिक जोर दे रही है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जैसे निजी जीवन से लेकर कृषि, विज्ञान, परिवहन, उद्योग एवं अन्य क्षेत्रों में तकनीक का व्यापक उपयोग हो रहा है। निश्चित तौर पर तकनीक ने मानव जीवन को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है किन्तु यह भी सत्य है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी ने अधिकांश पर्यावरणीय समस्याओं को भी जन्म दिया है।

मनुष्य के लिए पर्यावरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उसके जीवन को प्रभावित करता है। अपने अस्तित्व के लिए मनुष्य पर्यावरण पर निर्भर करता है। मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति तथा निर्जीव वस्तुएं मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। पर्यावरण का अध्ययन और इसका संरक्षण कैसे किया जाए यह सीखना आवश्यक है और वर्तमान समय में तो यह और भी आवश्यक हो जाता है जब कि प्रौद्योगिकी ने प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थिकी तंत्र को नष्ट करना आरंभ कर दिया है।

अब अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से वैश्विक विषयों पर जागरूकता का प्रसार किया जा रहा है जिससे कि तुरंत उपाय लागू किए जा सकें। इन विषयों की श्रृंखला में डायनामाइट फिशिंग से लेकर ग्लोबल वार्मिंग, वन अनाच्छादन से लेकर खनन तक के मामले आते हैं। तीव्र शहरीकरण और प्रौद्योगिकीय उन्नति के साथ-साथ पर्यावरण सुधार के लिए आवश्यक उपायों को सीखने की भी आवश्यकता है जिससे कि प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा की जा सके या एक बेहतर पारिस्थितिकी तंत्र से उसे प्रतिस्थापित किया जा सके।

पर्यावरण अध्ययन की बहु-विषयक पद्धति

आज दुनिया को पर्यावरण संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जो व्यवहार (प्रकृति) में बहु-विषयक हैं। इनमें भौतिक और रासायनिक विज्ञान, जैविक और पृथ्वी विज्ञान, भूगोल, जनसांख्यिकी, अर्थशास्त्र के साथ-साथ राजनीति और कानून भी शामिल हैं। इसलिए पर्यावरण संबंधी अध्ययन का क्षेत्र व्यवहार में बहु-विषयक है। यही कारण है कि एक पर्यावरणविद् को पर्यावरण संबंधी प्रत्येक चुनौती को समझने और इसका अच्छी तरह से पर्याप्त व्यवहारिक समाधान विकसित करने के लिए कई विषयों की समझ होनी चाहिए।

पर्यावरण संबंधी अध्ययन एक व्यापक बहु-विषयक क्षेत्र है, जिसमें प्राकृतिक और मानव निर्मित पर्यावरण व इन दोनों के बीच संबंध शामिल है।

हालांकि यह पारिस्थितिकी और पर्यावरण विज्ञान से अलग है, लेकिन इसमें दोनों क्षेत्रों के बुनियादी सिद्धांत का अध्ययन शामिल है। इसके साथ-साथ इसमें नीति, राजनीति, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक पहलुओं, नियोजन, प्रदूषण नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधान व मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंध जैसे विषय भी शामिल हैं।

पर्यावरण संबंधी अध्ययन एक व्यवहारिक विज्ञान है, क्योंकि यह सीमित संसाधनों के बीच मानव सभ्यता को स्थायी बनाने के लिए व्यवहारिक जवाब चाहता है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि इसके घटकों में जीव विज्ञान, भूविज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, समाजशास्त्र, स्वास्थ्य, अर्थशास्त्र और सांख्यिकी शामिल है।

टिप्पणी

पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र

पर्यावरण संबंधी अध्ययन एक बढ़ता हुआ क्षेत्र है, क्योंकि इसका संबंध उन मुद्दों से है, जो मानव सहित विभिन्न जीवों को प्रभावित करते हैं। मानव जनसंख्या के लगातार बढ़ने के साथ ही मनुष्य की पानी, स्थान और प्राकृतिक संसाधन संबंधी आवश्कताएं भी बढ़ रही हैं। इसके साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तेजी से हो रही प्रगति भी पर्यावरण पर पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक और गंभीर मानवीय प्रभाव डाल रही है। इन प्रभावों से उत्पन्न हुई चुनौतियां केवल प्रदूषण नियंत्रण और वन की सुरक्षा तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि यह प्रकृति और जीवन को बनाए रखने के बारे में भी हैं।

आज दुनिया जिन चुनौतियों का सामना कर रही है, वे निम्नलिखित हैं:

- वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों का स्तर बढ़ने का मुख्य कारण जीवाश्म ईंधन (कोयला, तेल और गैस) का जलना है, जो ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण है।
- ग्लोबल वार्मिंग: अगर कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि इसी तरह जारी रही तो इस सदी के अंत तक औसत वैश्विक तापमान 12 डिग्री फारनहाइट तक बढ़ सकता है। जिससे यह गृह मानव व अन्य जीवों के लिए काफी गर्म हो सकता है।
- वैश्विक जलवायु परिवर्तन और विषम मौसम के परिणामस्वरूप खाने की वस्तुओं और पानी में कमी आ सकती है, ग्लेशियर पिघल सकते हैं और समुद्र का स्तर बढ़ सकता है, जिससे तटीय शहरों में बाढ़ के हालात पैदा हो सकते हैं।
- ग्लोबल वार्मिंग और वन कटाव के कारण वन क्षेत्र कम हो रहा है।
- वनों की कटाई से स्थानीय और वैश्विक जलवायु में परिवर्तन को गति मिल सकती है।
- ग्लोबल वार्मिंग के कारण जैव विविधता को भी नुकसान हो रहा है। पौधों और पशुओं की प्रजातियां लुप्त हो रही हैं।
- बढ़ती आबादी के लिए वैश्विक जल संसाधन प्रबंधन ताजे पानी की सीमित आपूर्ति पर निर्भर हैं। (विश्व बैंक के अनुसार दो अरब लोगों के पास जल जनित रोगों से रक्षा के लिए पर्याप्त सफाई सुविधाओं की कमी है, जबकि एक अरब लोगों के पास उपयोग के लिए साफ पानी की कमी है।)
- ऊर्जा और खनिज संसाधनों में कमी। ऊर्जा संसाधन जैसे कि तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस तकनीकी और आर्थिक विकास की रीढ़ हैं।
- ऊर्जा और खनिज संसाधनों में कमी।
- इसके अलावा अन्य मुद्दे जैसे हवा और पानी में खतरनाक रसायनों की उपस्थिति, जिससे दुनिया में मछलियों की कमी हो रही है, मूंगा की चट्टानें लुप्त हो रही हैं और दुनियाभर में संक्रामक रोग फैल रहे हैं।

इन सभी विभिन्न समस्याओं का समाधान सतत विकास, स्वच्छ व नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग और प्राकृतिक संसाधानों के संरक्षण व विवेकपूर्ण उपयोग में निहित है।

पर्यावरण अध्ययन का महत्त्व

आदिमानव शिकार और भोजन पाने के लिए शारीरिक शक्ति का इस्तेमाल करते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया मनुष्य ने पालतू पशुओं को पहचानना शुरू कर दिया और फसलें उगाने लगा। वह उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों, जैसे आग और हवा का इस्तेमाल करने लगा। फिर धीरे-धीरे उपकरण बनाए, पहले पत्थरों से और बाद में लोहे जैसी धातुओं से। इस प्रकार मनुष्य ने प्रकृति के संसाधनों का इस्तेमाल करना सीखा, जिससे उसकी जीवन की गुणवत्ता में काफी सुधार आया। लेकिन इसके साथ ही मनुष्य का प्रकृति के साथ भी हस्तक्षेप बढ़ गया।

जैसे-जैसे जनसंख्या में बढ़ोतरी होती गई, कपड़ों और घरेलू सामग्री की आवश्यकताएं भी बढ़ती गईं। मनुष्य की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए उद्योग लगने शुरू हो गए। शहरीकरण का विस्तार होने लगा और वनों की कटाई शुरू हो गई। आज उद्योग अपने अपशिष्ट और उत्सर्जन के माधयम से हवा, पानी और मिट्टी में विषाक्त और अन्य रासायनिक पदार्थ छोड़ रहे हैं। ये रासायनिक पदार्थ खाद्य पदार्थों में मिल जाते हैं और मानव शरीर में जाकर जैवरासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। गैर-विषैले रासायनिक पदार्थ भी दूसरी तरह से नुकसान पहुंचा सकते हैं। वे ओजोन परत पर प्रभाव डाल सकते हैं, अम्ल वर्षा, कोहरा तथा अन्य कई प्रकार से हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

अगर हम अपने ग्रह पृथ्वी को बचाना चाहते हैं तो हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक पुरुष और महिला को बुनियादी पर्यावरण सिद्धांतों के बारे में जानकारी हो। जिससे वे आने वाली पीढ़ी के लिए पृथ्वी के पर्यावरण (पारिस्थितिकी) की सुरक्षा कर सकें और इसे बनाए रखने में अपना योगदान दे सकें। हमारे पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए, हमें जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, भूगोल, संसाधन प्रबंधन, अर्थशास्त्र और आबादी के मुद्दों को समझने की जरूरत है।

पर्यावरण संबंधी अध्ययन अपने बहु-विषयक दृष्टिकोण के साथ, पर्यावरण प्रणालियों और प्रक्रियाओं के बारे में एक बुनियादी जानकारी प्रदान करता है। यह उन परिवर्तनों के बारे में भी बताता है जो मानवीय कारकों की वजह से हो रहे हैं। यह विभिन्न पर्यावरण प्रणालियों और उन पर मानवीय गतिविधियों के प्रभाव के विश्लेषण के लिए कौशल प्राप्त करने में हमारी मदद करता है। पर्यावरण अध्ययन में पर्यावरण प्रबंधन, पर्यावरण नीति विश्लेषण, संपत्ति के अधिकार, प्रदूषण नियंत्रण के आर्थिक यंत्र और पर्यावरण नीति जैसे विभिन्न क्षेत्र शामिल हैं। पर्यावरण अध्ययन की अवधारणाएं कृषि, उद्योग, निर्माण और शहरी नियोजन जैसे क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रही हैं।

जागरूकता की आवश्यकता

मनुष्य पर्यावरण का हिस्सा है। मानव सभ्यता ने पर्यावरणीय संसाधनों जैसे हवा, पानी और भूमि के माध्यम से प्रगति की है और समृद्धि पाई है। हालांकि मनुष्य की तकनीकी और औद्योगिक उन्नति निस्संदेह सराहनीय है, लेकिन यह भी सच है कि यह उन्नति पर्यावरण की कीमत पर हुई है। मनुष्य की प्रगति पर्यावरण पर प्रभाव डाल रही है और अक्सर यह

प्रभाव नकारात्मक होता है। उदाहरण के लिए पानी की बढ़ती आवश्यकता (पेयजल, सिंचाई के लिए और पानी की अन्य जरूरतों) को पूरी करने के लिए भूमिगत जल का इसकी सीमाओं से परे अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है और इसके परिणामस्वरूप हमें इस संसाधन से हमेशा के लिए वंचित होना पड़ सकता है।

टिप्पणी

हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ रही है हम सभी और ज्यादा संसाधनों का इस्तेमाल कर रहे हैं। ऐसे में पृथ्वी का संसाधन आधार निस्संदेह रूप से सिकुड़ जाएगा। इस संबंध में वैज्ञानिक पहले ही चेतावनी दे चुके हैं। मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के बढ़ते दायरे के बीच पृथ्वी को बनाए रखने की उम्मीद नहीं की जा सकती। पर्यावरण क्षरण और जलवायु परिवर्तन के मनुष्य को भविष्य में गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। इसलिए आज जिन पर्यावरणीय समस्याओं का दुनिया को सामना करना पड़ रहा है उनके बारे में तत्काल जागरूकता लाने और इन्हें हल करने के तरीके ढूंढ़ने की आवश्यकता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास

1962 में पर्यावरणविद् राहेल कार्सन ने अपनी किताब 'साइलेंट स्प्रिंग' में अमेरिका में कीटनाशकों और हर्बिसाइड्स के खतरों का उल्लेख किया है। कार्सन ने अपने अनुसंधान के माध्यम से पानी में, धरती पर और यहां तक कि मां के दूध में भी लंबे समय से डीडीटी और जहरीले रासायनिकों की उपस्थिति दर्शाई थी। उनकी इस किताब से 20वीं सदी के अंतिम दौर में अमेरिका में पर्यावरण संबंधी आंदोलन शुरू हो गया था। 1970 में पर्यावरण संरक्षण एजेंसी (ईपीए) की स्थापना की गई और 1972 में डीडीटी के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

1960 के दशक से पहले पर्यावरण की अवधारणा किसी भी राष्ट्रीय सरकार के लिए कम चिंता का विषय थी और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में इसे अनसुना किया जाता था। लेकिन आज अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं में भी इसका वर्चस्व है। इस क्रांति का श्रेय संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित दर्जनों वैश्विक सम्मेलनों, विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी), जो 1972 में स्टॉकहोम में पहले सम्मेलन के बाद स्थापित किया गया था, को जाता है। यूएनईपी संयुक्त राष्ट्र प्रणाली में पर्यावरण की आवाज है। इसका उद्देश्य पर्यावरण की देखभाल में प्रेरणा, सूचना और राष्ट्रों व लोगों को भविष्य की पीढ़ियों के पर्यावरणीय हितों से समझौता किए बिना अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने की भागीदारी को प्रोत्साहन और नेतृत्व प्रदान करना है। पर्यावरण के प्रति जागरूकता में अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के मामले में विभिन्न संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन सबसे आगे रहे हैं। मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र का पहला सम्मेलन 1972 में 5-16 जून तक स्टॉकहोम में आयोजित किया गया था। तब से पर्यावरण के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देने और राजनीतिक ध्यान और सार्वजनिक कार्रवाई को प्रोत्साहित करने के लिए 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस (डब्ल्यूईडी) के रूप में मनाया जाता है।

पहला पर्यावरण दिवस 1973 में मनाया गया था। आज इसे विभिन्न शहरों में अलग-अलग विषयों के साथ आयोजित किया जाता है। इसके बाद कई संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन हुए। इनमें जून 1992 में रियो डी जेनेरियो में हुआ संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन (यूएनसीईडी), जिसे रियो अर्थ समिट के नाम से भी जाना जाता है और 2002 में सतत विकास पर दक्षिण अफ्रीका के जोहानसबर्ग में हुआ विश्व शिखर सम्मेलन

(डब्ल्यूएसएसडी) इसे पृथ्वी शिखर सम्मेलन भी कहा जाता है, शामिल है। इन सम्मेलनों ने पर्यावरण संरक्षण पर लोकप्रिय राय उत्पन्न की और विश्व समुदाय को इस मामले में एक मंच पर लेकर आए।

यूएनईपी के अनुसार निम्नलिखित तरीकों से पर्यावरण के प्रति लोगों में शिक्षा और जागरूकता को बढ़ाया जा सकता है:

टिप्पणी

- सार्वजनिक और प्रासंगिक कानूनों और नियमों के बारे में लोगों लोगों में जागरूकता उत्पन्न करके। इसके अलावा लोगों को उनके अधिकारों, हितों, कर्तव्य और जिम्मेदारियों के बारे में बताकर। इसके साथ-साथ उन्हें सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक नियमों की अवहेलना से होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में जानकारी देकर।
- प्रमुख सार्वजनिक खिलाड़ियों, निर्णय निर्माताओं को शामिल करके मीडिया के माध्यम से लोगों में जिम्मेदार कार्रवाई को प्रोत्साहन देकर। इसके साथ ही पर्यावरण जागरूकता के लिए अभियान चलाकर विभिन्न समुदायों, गैर सरकारी संगठनों, निजी क्षेत्रों और औद्योगिक व व्यापार संघों को जागरूक किया जा सकता है। इसके अलावा स्कूलों और अन्य शिक्षा संस्थानों में शैक्षिक कार्यक्रम में पर्यावरण जागरूकता संबंधी पाठ्यक्रम शामिल करके।
- पर्यावरण जागरूकता और पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देने को महिलाओं और युवाओं के लिए अभियान चलाना।

भारत में प्रयास

1970 के दशक में विशेषकर संयुक्त राष्ट्र स्टॉकहोम कान्फ्रेंस (1972) के बाद भारत में पर्यावरण जागरूकता एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। इस दौरान ही पर्यावरण और वन मंत्रालय का गठन किया गया और पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून बनाए गए।

निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय पर्यावरण नीति (एनईपी) का गठन किया गया।

- सुरक्षित, स्वस्थ, उत्पादक और संतोषजनक पर्यावरण विकसित और संरक्षित करने के लिए।
- जीवन की गुणवत्ता सुधारने के लिए ग्रामीण और शहरी बस्तियों को उन्नत, विकसित करना।
- पर्यावरणीय प्रभाव आकलन और उचित पर्यावरण रक्षा उपायों के साथ ठोस पारिस्थितिकी आधारित योजनाबद्ध विकास करना।
- पर्यावरण सुरक्षा प्रौद्योगिकियों, संसाधानों के पुनर्चक्रण और अपशिष्ट के उपयोग को बढ़ावा देना।
- पहाड़ों, वर्षा वनों, चारागाह, रेगिस्तान, झीलों, समुद्र तटों, वनस्पतियों और द्वीपों के रूप में विशिष्ट निवास के लिए प्राकृतिक भंडार (रिजर्व्ज) और अभयारण्य बनाकर देश में जैविक विविधता का संरक्षण करना।
- निगरानी, संग्रह और सूचना के प्रसार के लिए पर्यावरणीय मानदंडों को विकसित करना और प्रभावी तंत्र स्थापित करना।
- सभी स्तरों पर पर्यावरणीय शिक्षा को प्रोत्साहन देना और सार्वजनिक जागरूकता लाना।
- पर्यावरण विज्ञान और प्रौद्योगिकीय में अनुसंधान को प्रोत्साहित करना।

हालांकि हमारे पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन पर्यावरणीय संसाधनों को देखभाल के साथ इस्तेमाल करने और उन्हें अंधाधुंध दोहन से बचाने की हर नागरिक की जिम्मेदारी है। हम सभी निम्नलिखित तरीको से पर्यावरण की संरक्षा में अपना योगदान दे सकते हैं।

टिप्पणी

- तीन आर (R) रीड्यूस (कमी), रीयूज (पुनः उपयोग), रीसाइकल (पुनर्चक्रण) का इस्तेमाल करके।
- कागज और पानी की बचत को बढ़ावा देकर और प्लास्टिक के इस्तेमाल से परहेज करके।
- पेड़ों को बचाने के लिए चलाए जा रहे आंदोलनों का समर्थन करके।
- पर्यावरण अनुकूल उत्पाद खरीद कर।
- अच्छी आदतों से, जैसे रोड पर न थूकना, कचरा नहीं फेंकना और सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान नहीं करके।
- विश्व पर्यावरण दिवस और वन्यजीवन सप्ताह पर आयोजित कार्यक्रमों में हिस्सा लेकर।
- हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले और दूषित करने वाले संसाधनों की सूचना सरकार या गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) को देकर।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में आम आदमी की भूमिका

संसाधनों के ह्रास का मुख्य कारण मानव स्तर पर बरती जाने वाली लापरवाही और लालच है। इन संसाधनों के इस्तेमाल की दर कम करके हम प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर सकते हैं, ताकि ये आने वाली पीढ़ियों के लिए भी बचे रहें।

प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग और सतत विकास के लिए उनके सोचे-समझे इस्तेमाल के जरिये हम लोग पर्यावरण संरक्षण कर सकते हैं। शिक्षा लोगों को पर्यावरण और इससे जुड़ी समस्याओं के प्रति जागरूक कर सकती है। शिक्षकों और अभिभावकों को यह सुनिश्चित करना होगा कि आने वाली पीढ़ी में बचपन से ही सही मूल्य भरे जाएं।

कम उपयोग, पुनःप्रयोग, पुनःर्चक्रण

पृथ्वी और इसके संसाधनों को बचाने के सामूहिक प्रयासों में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्वय है कि वह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में अपना योगदान दे और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करे। कम प्रयोग, पुनःप्रयोग, पुनर्चक्रण के सिद्धांत को आज अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए लोगों को अपना रवैया बदलना होगा और प्रयोग करो और फेंको की विचारधारा की जगह पर्यावरण हितैषी जीवन पद्धति को अपनाना होगा। कुछ ऐसे कदम जो एक व्यक्ति उठा सकता है, वे निम्नलिखित हैं:

कम उपयोग

कम खरीददारी : कोई भी वस्तु खरीदने से से पहले गंभीरता से विचार करें। इस बात का पता लगाएं की क्या इस वस्तु को खरीदने की वास्तव में ही आवश्यकता है। ऐसा करना इसलिए जरूरी है क्योंकि किसी भी वस्तु के निर्माण में कोई न कोई संसाधन का प्रयोग होता है जिसका असर पर्यावरण पर पड़ता है। इसके अलावा जब हम उस वस्तु को

कुछ दिन बाद प्रयोग करना छोड़ देते हैं तो वह एक अपशिष्ट बन जाता है और उसका निस्तारण भी पर्यावरण पर प्रभाव डालता है। बहुत से उत्पाद जैसे इलेक्ट्रॉनिक्स और बैटरियों आदि में जहरीले रसायन होते हैं जो पर्यावरण और मानव जीवन के लिए घातक हैं।

टिप्पणी

त्याज्य (डिस्पोज़एबल) वस्तुओं को कहें न : स्टायरोफोम से बने कप-प्लेट जैसे उत्पादों, यूज्ड एंड थ्रो पेन व रेजर, कागज और नैपकिन आदि का प्रयोग न करें। इनकी बजाय पुन:प्रयोग आने वाले उत्पादों का उपयोग करें। ये न केवल पर्यावरण को कम प्रदूषित करते हैं बल्कि पैसा भी बचाते हैं।

पुराने उत्पाद खरीदें-बेचें: प्रयोग किए गए पुराने उत्पाद जैसे किताबें, फर्नीचर, बिजली का सामान आदि को बेचने और खरीदने से भी प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है और उपभोक्ता को आर्थिक बचत होती है।

कम से कम कूड़ा-करकट : ऐसा अत्यंत आवश्यक वस्तुओं की खरीददारी करके किया जा सकता है। इसके अलावा अगर हमें ऐसे उत्पादों की खरीदारी भी नहीं करनी चाहिए जिनकी पैकिंग बहुत भारी है या फिर जो केवल एक बार प्रयोग के लिए बने हैं। थोक में खरीददारी की प्रवृति को छोड़कर भी कूड़ा-करकट को घटाया जा सकता है।

प्लास्टिक की थैलियों का न करें प्रयोग : जब भी बाजार जाएं तो अपने साथ थैला जरूर ले जाएं। प्लास्टिक की थैलियां विश्व में कचरे का प्रमुख स्त्रोत हैं। प्रतिवर्ष संसार में 500 अरब प्लास्टिक थैलियों का प्रयोग होता है। इनमें से केवल एक फीसदी के करीब का ही पुनर्चक्रण हो पाता है। कचरे के रूप में ये थैलियां पानी के स्त्रोतों जैसे नदियों, नहरों और झीलों में चली जाती हैं। पशु इन्हें भोजन के भुलावे में खा लेते हैं जिससे उनकी मौत भी हो जाती है। प्लास्टिक की थैलियों के कारण ही बहुत से समुद्री जीव जैसे व्हेल, डॉल्फिन और कछुओं की मौत हर साल होती है।

घर-ऑफिस में ऊर्जा का कम से कम प्रयोग : जब प्रयोग में न हो तो बिजली के उपकरणों को बंद कर दें। सीएफएल बल्बों का प्रयोग करें जो ऊर्जा बचाते हैं। जब भी कोई विद्युत उपकरण खरीदें तो उस पर एनर्जी स्टार रेटिंग जरूर देखें। दिन में बल्ब की जगह प्राकृतिक प्रकाश का प्रयोग करें। सर्दियों में विद्युत यंत्र से गर्मी उत्पन्न करने की बजाय गर्म कपड़े पहनें। गर्मियों में भी एयर कंडीशनर चलाने की बजाय खिड़कियां और दरवाजे खोलकर ठंडी हवा का आनंद लें। सोलर कुकरों का प्रयोग करें।

तेल बचाएं : थोड़ी दूर जाने के लिए कार आदि का प्रयोग न करें। जितना संभव हो उतना ज्यादा सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करें। कार्यालय, स्कूल या कॉलेज जाने के लिए मिलकर कार आदि का प्रबंध करें। साइकिल की सवारी भी तेल बचाने में सहायक है।

पानी के प्रयोग और बर्बादी में कमी लाएं : फव्वारे के नीचे नहाने की बजाय बाल्टी में पानी डालकर नहाएं। जब भी नहाएं, धोएं, दांत साफ करें या कोई अन्य ऐसा ही कार्य करें तो नल को खुला न छोड़ें। धीमे फ्लश वाले शौचालयों का प्रयोग करें। पानी की पाइपों को रिसने न दें।

पुन:प्रयोग

बहुत से ऐसे उत्पाद होते हैं जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दोबारा प्रयोग किया जा सकता है परंतु हम उन्हें केवल एक बार प्रयोग करने के बाद ही फेंक देते हैं। उदाहरण के लिए हम प्लास्टिक के डिब्बों को फेंक देते हैं जबकि इनका प्रयोग वस्तुएं रखने के

लिए किया जा सकता है और प्लास्टिक की बोतल में पानी रखा जा सकता है। इसी तरह पुराने कपड़ों को दान में दिया जा सकता है या फिर इनसे थैले आदि बनाए जा सकते हैं। बिजली उपकरणों को भी कबाड़ में फेंकने की बजाय उनकी मरम्मत कर दोबारा प्रयोग करना बेहतर रहता है। इसके अलावा इन्हें किसी जरूरतमंद को दिया भी जा सकता है।

टिप्पणी

पुनः प्रयोग के कुछ तरीके निम्नलिखित हैं-

- प्रयोग किए गए कपड़ों, फर्नीचर, उपकरणों आदि को दान करें या खरीदें।
- पुरानी किताबों और पत्रिकाओं को किसी पुस्तकालय को दान कर दें या उन्हें किसी से पढ़ने के लिए खरीदें।
- कई गैर सरकारी संगठन विवाह व पार्टियों में बचे खाने को एकत्रित करते हैं। इन संगठनों को बचा खाना दें।
- स्थायी और टिकाऊ सामान ही खरीदें।
- जब जरूरी हो तभी कागज पर लिखें या मुद्रित करें। कागज के दोनों ओर लिखें। डायरी के साफ पन्नों को फाड़कर नई डायरी भी बनाई जा सकती है।

पुनर्चक्रण

- रसोई की सामग्री जैसे फल और सब्जियों के छिलके, बगीचे के पौधों के पत्तों आदि को गलाकर जैविक खाद बनाई जा सकती है।
- मोबाइल जैसे उपकरणों का पुनर्चक्रण करें। बहुत सी कंपनियां पुराने मोबाइल लेकर नए मोबाइल देने या फिर आपके घर से खराब मोबाइल ले जाने की सुविधाएं प्रदान करती हैं। इनका प्रयोग करें।

ये कुछ ऐसे उत्पाद हैं जिनका पुनर्चक्रण किया जा सकता है-

- कांच
- कागज के उत्पाद
- प्लास्टिक के डिब्बे
- एल्यूमिनियम और टीन के डिब्बे
- गत्ता
- स्क्रैप धातुएं
- स्याही के खाली डिब्बे
- घरेलू वस्तुएं जैसे फ्रिज, कंप्यूटर के उपकरण आदि
- टायर

निम्नलिखित खतरनाक उत्पादों का भी सावधानी से पुनर्चक्रण या निपटारा करना चाहिए:

- रंग, रोगन और थिनर।
- इंजन तेल, ब्रेक तेल, केरोसीन, तेल फिल्टर आदि।
- घरेलू उपयोग में आने वाले रासायनिक उत्पाद जैसे दाग हटाने और स्नानघर की सफाई में प्रयोग होने वाली वस्तुएं, मच्छर मार दवाइयां, कीटनाशक, बैटरियों और तेजाब।

- बगीचे में काम आने वाले कीटनाशक व रासायनिक खाद आदि।
- जल का पुन: प्रयोग : बारिश के पानी का भंडारण करके इसे पौधों की सिंचाई और कार आदि की सफाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसी तरह कपड़े धोने की मशीन से निकले पानी का प्रयोग फर्श और कार धोने के लिए हो सकता है।

सतत विकास के लिए संसाधनों का न्यायोचित उपयोग

टिप्पणी

सतत विकास से अभिप्राय वर्तमान की जरूरतों के लिए संसाधनों का उपयोग इस विधि से करने से है कि भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी पर्याप्त संसाधन बचे रहें। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान खपत स्तर ऐसा होना चाहिए कि इससे पृथ्वी की वहन क्षमता पर आंच न आए। यह मूल्यांकन करना कि किसी विशिष्ट वातावरण में अपने संसाधनों को नष्ट किए और अपने भविष्य के लिए खतरा उत्पन्न किए बिना कितने जीव सतत जीवन जी सकते हैं, वहन क्षमता कहलाता है।

तेजी से बढ़ती जनसंख्या और सीमित संसाधनों के कारण आज विश्व की जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी दूभर हो गया है। इसलिए आज धरती की मानव वहन क्षमता एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। हमारा ग्रह और भी बहुत से लोगों का भार उठा सकता था अगर विश्वभर की जीवन पद्धति अमेरिका के किसी शहर की बजाय अफ्रीका के किसी गांव जैसी होती।

खपत के सतत या टिकाऊ स्तर को मापने की एक अन्य पद्धति मानव पारिस्थितिकी पदचिन्ह या फुटप्रिंट हैं। इन्हें पर्यावरण पदचिन्ह भी कहते हैं। इसे किसी विशेष जनसंख्या द्वारा प्रकृति पर डाले गए दबाव के मूल्यांकन के रूप में परिभाषित किया जाता है। धरती की सतह के उस क्षेत्र का प्रतीक होता जो संसाधनों की खपत के सतत स्तर और जनसंख्या द्वारा निस्तारित अपशिष्ट पदार्थों के लिए आवश्यक होता है। नीचे दी गई तालिका में कुछ देशों की पारिस्थितिकी पदचिन्ह (फुटप्रिंट) और प्रतिव्यक्ति पारिस्थितिकी उत्पाद स्थानों को दर्शाया गया है। नीचे दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि प्रतिव्यक्ति पारिस्थितिकी फुटप्रिंट उपलब्धता से 35 प्रतिशत ज्यादा है। इसका अर्थ है कि वर्तमान में मानव न केवल अपने हिस्से के संसाधनों का प्रयोग कर रहा है बल्कि वह आने वाली पीढ़ी के हिस्से का भी उपयोग कर रहा है।

Country	**Footprint in hectares**
USA	10.3 ha
Sweden	5.9 ha
South Africa	3.2 ha
China	1.2 ha
India	0.8 ha
Bangladesh	0.5 ha
World availability	1.7 ha
World average footprint	2.85 ha

Source: *World Resources Institute*

टिप्पणी

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि विकसित और अल्प विकसित देशों में भारी अंतर है। विकसित देशों में संसार की केवल 22 प्रतिशत आबादी ही रहती है। ये देश 88 प्रतिशत प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हैं। वे कुल उपलब्ध ऊर्जा में से 73 प्रतिशत का उपयोग करते हैं। ये देश भारी मात्रा में कार्बन और प्रदूषकों का उत्सर्जन करते हैं। वहीं दूसरी ओर, अल्प विकसित देशों में संसार की 78 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है और ये देश कुल उपलब्ध संसाधनों में से केवल 12 प्रतिशत का ही प्रयोग करते हैं। ये केवल 27 प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए स्वीडन की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय उतनी है जितनी कि अफ्रीका के 23 गरीब देशों की कुल मिलाकर है। इसी तरह अगर अफ्रीका के 35 गरीब देशों की वार्षिक प्रति व्यक्ति आय को मिलाया जाए तो वे अमेरिका के बराबर होती है। इस असमानता के दो कारण हैं:

1. गरीब देशों में ज्यादा जनसंख्या
2. विकसित देशों द्वारा संसाधनों का अत्यधिक उपभोग

सीमित मात्रा में ही लोग अत्यधिक धन और विलासिता का आनंद उठा रहे हैं जबकि करीब 2.8 अरब लोग घोर गरीबी में जीवन-यापन कर रहे हैं। ये लोग एक दिन में केवल दो अमेरिकी डालर ही बड़ी मुश्किल से कमा पाते हैं। कई लोग चिरकालिक भुखमरी का शिकार हैं और भूख से 45 हजार लोगों की मौत हर दिन होती है। ये असमानता विकसित और विकासशील देशों और राष्ट्रों के बीच विद्यमान है। विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है और साथ ही अल्प विकसित देशों में विकास और शहरीकरण को भी बढ़ावा मिल रहा है। इन देशों में बढ़ती जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा विकसित देशों की जीवन पद्धति अपना रहा है। पारिस्थितिकी रूप से यह न तो टिकाऊ है और न ही सही। इस बात के संकेत मिलने शुरू हो गए हैं कि मानव धरती की वहन क्षमता को पार कर चुका है।

यह घोर निर्धनता, आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों के अभाव और विशेष रूप से प्रतिव्यक्ति खाद्य उत्पादन में हो रही कमी के रूप में प्रतिबिंबित हो रहा है। इन सब के परिणामस्वरूप ही एशिया और अफ्रीका के कई अल्प विकसित देशों में सशस्त्र भी हो चुके हैं और हो रहे हैं। इनमें से ज्यादातर संघर्ष प्राकृतिक संसाधनों जैसे खेती योग्य भूमि, खनिजों, जीवाश्म ईंधन और पानी पर नियंत्रण को लेकर हुए हैं।

धनी देशों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने खपत स्तर को कम करें और अल्पविकसित देशों के गरीब लोगों की सहायता उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में करें। धनी और गरीब देशों में संसाधनों का निष्पक्ष बंटवारा समय की मांग है ताकि सतत विकास की धारणा को अमलीजामा पहनाया जा सके।

जैव विविधता का संरक्षण

प्राकृतिक जीवन व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उच्च कोटि का जीवन जीना आवश्यक है, एक ऐसा पारितंत्र, जो भोजन, दवाएं तथा दूसरी जरूरी आवश्यकताएं पूरी कर सकें। हमें इनका संरक्षण करना होगा, ताकि आने वाली पीढ़ियां इन सुविधाओं का लाभ प्राप्त कर सकें। जैव विविधता संरक्षण के दो दृष्टिकोण माने गए हैं- स्वस्थानिक एवं बाह्य स्वस्थानिक (इन सीटू एंड एक्स सीटू)।

स्वस्थानिक संरक्षण, प्रजातियों का उनके प्राकृतिक स्थानों पर ही संरक्षण करना है। यह सर्वोत्तम उपाय माना जाता है। वनों के कुछ क्षेत्रों का विशेष संरक्षण करके यह किया जा सकता है। इसमें राष्ट्रीय उद्यानों, अभ्यारण्यों तथा उनके अपने विशिष्ट पारिस्थितिकी तंत्रों का संरक्षण शामिल है।

भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 4.2 प्रतिशत स्वस्थानिक संरक्षण के लिए पृथक कर दिया गया है। कुल 85 प्रतिशत राष्ट्रीय उद्यान और 448 अभ्यारण्य वन्यजीवों चीते, शेर, गैंडे, मगरमच्छ और हाथियों की संख्या को बचाने के लिए बनाए गए हैं। बीते कुछ वर्षों में जैव विविधता के स्वस्थानिक संरक्षण के लिए बहुत सारे कार्यक्रम शुरू किए गए हैं- 'प्रोजेक्ट टाइगर' इसका एक उदाहरण है।

बाह्य स्वस्थानिक संरक्षण

इस प्रकार का संरक्षण प्रजातियों को उनके निवास के बाहर सुरक्षा प्रदान करता है। इसमें आनुवंशिक संसाधनों, जंगल तथा उपजाई गई प्रजातियों का संरक्षण विभिन्न तरीकों का उपयोग करके किया जाता है, जैसे-

- जीन बैंक, बीज बैंक, शुक्राणु बैंक और अण्डाणु बैंक आदि
- विटरो प्लांट, टीशु और माइक्रोबायल कल्चर एकत्रित करके
- कृत्रिम रूप से पौधों और पशुओं का प्रजनन, उनका वन्य जीवन में सम्मिश्रण तथा
- अनुसंधान व जनता की जागरुकता के लिए चिड़ियाघरों व जैव उद्यानों आदि में जीवों का संग्रह।

बाह्य स्वस्थानिक संरक्षण सामान्य रूप से स्वस्थानिक संरक्षण के पूरक के रूप में प्रजातियों के असितत्व को सुनिश्चित करते हैं। ये तरीके नए प्रजनन व संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चिड़ियाघरों में विलुप्तप्राय प्रजातियों का कैप्टिव प्रजनन इनका उदाहरण है।

बच्चों को पर्यावरण शिक्षा देने में विद्यालय की भूमिका

प्रकृति सुंदर है और इसे संरक्षित करने की जरूरत है। जब प्रकृति की देखभाल की जाती है, तो वह हमें वह सब कुछ प्रदान करती है, जिसकी हमें आवश्यकता होती है, लेकिन अगर इसका दुरुपयोग किया जाए तो यह अपना रोष भी व्यक्त कर सकती है। हाल ही में हम जंगल की आग, सूखा, अत्यधिक वर्षा और उससे जुड़ी समस्याओं के साथ रोष के साक्षी रहे हैं। अत्यधिक प्रदूषण और संसाधनों का दोहन भी पर्यावरण को भारी नुकसान पहुंचा रहा है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हालांकि हम अपने कार्यों के प्रभाव को अब वापस नहीं ला सकते हैं, लेकिन हम उसमें सुधार की दिशा में अवश्य कार्य कर सकते हैं। इस प्रयास में हमें उस युवा पीढ़ी को भी शामिल करना होगा, जो ग्रह को विरासत में देगी।

'पर्यावरण संरक्षण' को पूर्वस्कूली शिक्षा से ही मुख्य विषयों के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। जब हम कम उम्र से ही बच्चों में पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व को सुदृढ़ करते हैं तो वे अपने द्वारा लिए गए निर्णयों के प्रति सचेत होंगे। वे अपने बड़ों को भी सुधारेंगे, जब वे उन्हें ऐसे काम करते देखेंगे, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं। हमें

इस मंत्र को संभालने और इसे आगे बढ़ाने के लिए युवाओं के एक जागरूक समूह की आवश्यकता है।

स्कूल इसे कैसे कर सकते हैं? कुछ पूर्वस्कूली बच्चों को प्रकृति के करीब रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है: एक पौधे की पत्तियों का पता लगाएं, उनके आकार और रंगों (हरे रंग की छाया) का निरीक्षण करें और उनके भागों का अध्ययन करें। वे देखते हैं कि कैसे प्रत्येक पौधा दूसरे से विशिष्ट रूप से भिन्न होता है। 'पुनर्चक्रण' की अवधारणा को बच्चों द्वारा कम करने, पुनः उपयोग करने और पुनर्चक्रण के महत्त्व के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए पोस्टर बनाने के साथ भी प्रबलित किया गया है। बच्चों में पर्यावरण संरक्षण जागरूकता उत्पन्न करने के आठ तरीके यहां दिए गए हैं–

1. **पर्यावरण क्लब :** आपका स्कूल एक पर्यावरण क्लब बना सकता है या आसपास के मौजूदा क्लब का हिस्सा बन सकता है और पर्यावरण संरक्षण के आसपास गतिविधियों का संचालन कर सकता है। इनमें स्कूल कैफेटेरिया में एक रीसाइक्लिंग सिस्टम स्थापित करना, एक छोटा जैविक उद्यान लगाना शामिल हो सकता है कैफेटेरिया के लिए ताजी सब्जियां उपलब्ध कराएं। बच्चे स्कूल के खेल के मैदान में पेड़, झाड़ियां और फूल लगाकर स्थानीय वन्यजीवों का समर्थन कर सकते हैं और वातावरण में CO_2 को कम कर सकते हैं।
2. **स्वच्छता अभियान :** स्कूल परिसर में स्वच्छता अभियान चला सकते हैं, जहां बच्चे यह सुनिश्चित करते हैं कि सब कुछ साफ और कूड़े से मुक्त हो। कक्षाओं से लेकर स्कूल के खेल के मैदानों तक उन्हें सभी क्षेत्रों को बेदाग साफ रखने के लिए जिम्मेदार महसूस कराया जाना चाहिए। उन्हें अपने समुदायों में स्वच्छता अभियान में भाग लेने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
3. **पाठ्यक्रम में पर्यावरण संरक्षण को शामिल करना :** स्कूल यह भी सुनिश्चित कर सकते हैं कि बच्चे कम उम्र से ही पर्यावरण संरक्षण के बारे में सीखना शुरू कर दें। यदि बच्चों को ईवीएस (पर्यावरण अध्ययन) विषय के रूप में पानी के बारे में पढ़ाया जा रहा है तो शिक्षक झीलों और नदियों जैसे स्थानीय जल निकायों को कवर कर सकते हैं। वे बच्चों को पानी की कमी के बारे में बता सकते हैं और उन्हें जल संचयन द्वारा पानी के संरक्षण के तरीकों के बारे में रचनात्मक रूप से सोचने के लिए कह सकते हैं, जल निकायों को साफ रखने के लिए नए तरीके अपना सकते हैं आदि।
4. **पर्यावरण के अनुकूल नीतियां :** स्कूलों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनकी पर्यावरण नीतियां हैं जिनका वे स्कूल में पालन करते हैं और छात्रों को उसी पर शिक्षित किया जाना चाहिए। वे सौर पैनल स्थापित कर सकते हैं ताकि बच्चे वास्तव में पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं को दैनिक रूप से देख और अनुभव कर सकें।
5. **डिजिटल रूप से बनाए गए पर्यावरण संरक्षण पोस्टर :** स्कूलों में पर्याप्त जगह होती है जहां डिजिटल पोस्टर, आर्टवर्क इत्यादि चलाने के लिए डिस्प्ले स्क्रीन लगाई जा सकती हैं ताकि इसे उनके अवचेतन सीखने का हिस्सा बनाया जा सके। एक कोने को पर्यावरण संरक्षण के लिए समर्पित किया जा सकता है जहां छात्र,

शिक्षक और अभिभावक डिजिटल पोस्टर, चित्र, कविता, नवीनतम लेख आदि के साथ योगदान कर सकते हैं।

6. **एक पौधा कार्यक्रम अपनाएं :** स्कूलों में एक पौधे को स्कूल में और एक को घर पर अपनाने का कार्यक्रम हो सकता है और माली या माता-पिता और अन्य की मदद से इसकी पूरी देखभाल करने का संकल्प लें।
7. **बच्चों को जीवित प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखना सिखाएं :** सहानुभूति एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है जिसे स्कूलों को बच्चों में विकसित करने की आवश्यकता है। उन्हें यह समझने की जरूरत है कि सभी जीवित प्राणियों की देखभाल की जानी चाहिए। यह कहानियों और रोल प्ले के माध्यम से दिया जा सकता है जहां बच्चे जानवर, पौधे या कीड़े बन जाते हैं। उनसे पूछें कि अगर उनके घरों और आवासों को नष्ट कर दिया जाए तो उन्हें कैसा लगेगा।
8. **पर्यावरण के लिए विशेष दिन समर्पित करें :** विद्यालय प्रबंधन को चाहिए कि वे माह का एक दिन कम से कम पर्यावरण सरंक्षण के लिए रखें। इसके लिए वे बच्चों के साथ उनके माता-पिता को भी इसका हिस्सा बना सकते हैं।

4.4.2 पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना

बच्चों को पर्यावरण की शिक्षा दिया जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा करने से ही उनमें पर्यावरण के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति का विकास हो सकता है।

पर्यावरण प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पर्यावरण शिक्षा है अर्थात् पर्यावरण के विविध पक्षों, इसके घटकों, मानव के साथ अंतर्सबंधों पारिस्थितिक-तंत्र, प्रदूषण विकास, नगरीकरण, जनसंख्या आदि का पर्यावरण पर प्रभाव आदि की समुचित जानकारी देना।

यह शिक्षा मात्र विद्यालयों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। इसके लिए प्रयास होना चाहिए कि बच्चा इसे प्राप्त करके अपने जीवन में उतारे तथा बड़ा होकर परिवार एवं समाज के अन्य लोगों को भी पर्यावरण के संरक्षण के लिए जागरूक करे। जब तक देश का बालक पर्यावरण एवं जीवन में उसके महत्त्व को नहीं समझेगा, उस समय तक वह अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझ सकेगा, जो उसे पर्यावरण के प्रति निभाना है। बच्चों के मन में पर्यावरण के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति का विकास करके ही हम देश के पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं।

पर्यावरण शिक्षा एक पुनीत कार्य है, जिसे करके एवं उसके मार्ग पर चलकर वर्तमान के साथ भविष्य को सुंदर बना सकते हैं, मानव की अनेक त्रासदियों से रक्षा कर सकते हैं, प्राकृतिक आपदाओं को कम कर सकते हैं, विलुप्त होते जीव-जंतुओं व पादपों की प्रजातियों की रक्षा कर सकते हैं और जल, वायु एवं भूमि को प्रदूषित होने से बचा सकते हैं। पर्यावरण शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा पर्यावरण तथा जीवन की गुणवत्ता की रक्षा की जा सकती है।

पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता

एक ज्वलंत प्रश्न है कि पर्यावरण की शिक्षा क्यों? क्या पूववर्ती शिक्षा में पर्यावरण सम्मिलित नहीं था या उसकी आवश्यकता नहीं थी? वास्तव में पृथक से पर्यावरण शिक्षा

टिप्पणी

का दौर विगत 25 वर्षों में ही प्रारंभ हुआ है और विगत दशक में यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।

पर्यावरण शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव-पर्यावरण के अंतर्संबंधों की व्याख्या करना तथा उन संपूर्ण घटकों का विवेचन करना है, जो पृथ्वी पर जीवन को परिचालित करते हैं। इसमें मात्र मानव जीवन ही नहीं अपितु जीव-जंतु एवं वनस्पतियां भी सम्मिलित हैं।

मानव, तकनीकी विकास एवं पर्यावरण के अंतर्संबंधों से जो पारिस्थितिकी चक्र बनता है और वह संपूर्ण क्रिया-कलापों और विकास को नियंत्रित करता है। यदि इनमें संतुलन रहता है तो सब कुछ सामान्य गति से चलता रहता है, किंतु किसी कारण से यदि इनमें व्यतिक्रम आता है तो पर्यावरण का स्वरूप विकृत होने लगता है और उसका हानिकारक प्रभाव न केवल जीव जगत् अपितु पर्यावरण के घटकों पर भी होता है।

औद्योगिक तकनीकी, वैज्ञानिक, परिवहन विकास की होड़ में हम यह भूल गए थे कि ये साधन पर्यावरण को प्रदूषित कर मानव जाति एवं अन्य जीवों के लिए संकट का कारण बन जाएंगे। कुछ समय विचार करने में बीतता गया, तर्क-वितर्क चलता रहा तथा पर्यावरण की लगातार हानि होती रही।

वास्तविक चेतना का उदय तब हुआ जब विकसित देशों में यह संकट अधिक हो गया और उन्होंने इस दिशा में अपने प्रयासों को तेज कर दिया, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मैचों पर पर्यावरण चेतना एवं इसके खतरों की आवाज उठने लगी। इसी के साथ 'पर्यावरण शिक्षा' का विचार भी बल पकड़ने लगा, क्योंकि इससे पूर्व पर्यावरण का विभिन्न विषयों में भिन्न-भिन्न परिवेशों में अध्ययन किया जाता था। अब यह सभी स्वीकार करते हैं कि पर्यावरण को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए जिससे छात्रों में प्रारंभिक काल से ही पर्यावरण चेतना जागत की जा सके।

बच्चों में पर्यावरण के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण का विकास निम्न कारणों से आवश्यक है–

- पर्यावरण के विभिन्न घटकों से परिचय कराना;
- पर्यावरण के विभिन्न घटकों का मानव के क्रिया-कलापों पर प्रभाव का ज्ञान प्रदान करना;
- पर्यावरण के घटक किस प्रकार एक-दूसरे से क्रियात्मक संबंध रखते हैं इसकी समुचित जानकारी देना;
- पर्यावरण प्रदूषण के निवारण में व्यक्ति एवं समाज की भूमिका को उजागर करना;
- पर्यावरण प्रदूषण के स्वरूप, कारण एवं प्रभावों का ज्ञान देना;
- पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन हेतु साहित्य का सृजन करना;
- पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के संबंध को स्पष्ट करना;
- विभिन्न विषयों में पर्यावरण शोध की व्यवस्था करना;
- क्षेत्रीय पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन एवं उनके निराकरण के उपाय प्रस्तुत करना; तथा

- पर्यावरण चेतना जगाना तथा पर्यावरण के प्रति अवबोध विकसित करना; आदि।

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा वह साधन है जिससे बाल्यकाल से ही पर्यावरण का सही ज्ञान दिया जा सकता है अर्थात् पर्यावरण के प्रति चेतना जगाई जा सकती है। इसके पश्चात् पर्यावरण की समस्याओं का ज्ञान एवं उनके निराकरण का ज्ञान दिया जाना आवश्यक है और इसके साथ ही शोध कार्य द्वारा इस दिशा में नवीन तकनीक का विकास किया जाना चाहिए। ये सभी कार्य पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से संपन्न किए जा सकते हैं। इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता है कि स्कूल के स्तर से ही बच्चों को पर्यावरण की शिक्षा दी जाये तथा उनमें पर्यावरण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास किया जाये।

टिप्पणी

बच्चों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति से होने वाले लाभ

पर्यावरणीय शिक्षा का मूल उद्देश्य है, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को रोकना और प्रकृति प्रदूषित होने से बचाना। बच्चों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने से निम्न लाभ होंगे :

1. बच्चे प्राकृतिक संसाधनों और प्राकृतिक पर्यावरण से परिचित हो सकेंगे।
2. उन्हें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषित होने के दुष्परिणामों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकेगी।
3. उन्हें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषित होने के कारणों का ज्ञान हो सकेगा।
4. उन्हें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषित होने से बचाने के उपायों का ज्ञान हो सकेगा और उनके अनुपालन की ओर प्रवृत्त करने में सहायता मिलेगी।
5. उनमें प्राकृतिक असन्तुलन और प्रदूषण की रोकथाम के प्रति अभिवृत्ति का विकास हो सकेगा।
6. उनमें सफाई के प्रति अभिवृत्ति का विकास हो सकेगा।
7. उनमें जनहित की अभिवृत्ति का विकास हो सकेगा।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि बच्चों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए एक ओर तो उन्हें पर्यावरण की शिक्षा दिया जाना आवश्यक है तो दूसरी ओर उन्हें अन्य तरीकों से भी पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाया जाना अनिवार्य है।

4.4.3 अपशिष्ट सामग्री का प्रबंधन

मनुष्यों की गतिविधियों की वजह से पैदा हुए पदार्थ (गैर द्रव अथवा गैसीय) जो कि प्रयोगहीन अथवा अवांछित हैं, उन्हें ठोस कचरा कहा जाता है। जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के चलते ठोस कचरा इतनी ज्यादा मात्रा में पैदा होने लगा है कि इसका निपटान बहुत बड़ी समस्या बन गया है।

टिप्पणी

ठोस कचरों का वर्गीकरण

स्रोत, स्थान और गतिविधियों के आधार पर ठोस कचरे के घटक व्यापक तौर पर परिवर्तित होते रहते हैं। नगरपालिका ठोस कचरा (एमएसडब्ल्यू) गैर–हानिकारक ठोस कचरा होता है जिसे संग्रहित करके निपटान अथवा रिसाइकिलिंग के लिए भेजा जाता है। इसमें औद्योगिक प्रक्रियाओं, मल, खनन, कृषि और निर्माण कार्यों इत्यादि की वजह से निकला कचरा शामिल नहीं होता है। इसमें विध्वंस के बाद बचे अवशेष भी शामिल नहीं किए जाते हैं।

उत्पादन के स्रोत के आधार पर एमएसडब्ल्यू को वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) **घरेलू कचरा** : यह कचरा घरों से निकलता है। इसके आम घटक पुराने कागज, प्लास्टिक, कपड़ा, बोतल, सब्जियों के अपशिष्ट इत्यादि होते हैं। पुरानी बैटरी, जूतों की पॉलिश, दवाई, खराब हो चुके सीएफएल बल्ब और पेंट के डिब्बों जैसे सामान अत्यधिक हानिकारक साबित हो सकते हैं और इनका समुचित निपटान करना जरूरी होता है।

(ख) **वाणिज्यिक कचरा** : यह कचरा दुकानों, होटलों और गोदामों जैसे वाणिज्यिक स्थलों से पैदा होता है। इसके आम घटकों में खराब सामान, कागज, पैकिंग का सामान, कांच, धातु, प्लास्टिक, सब्जी और मछलियों के अपशिष्ट शामिल होते हैं।

(ग) **संस्थागत कचरा** : विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शोध एवं विकास संगठन, धार्मिक स्थल, सामुदायिक केंद्र इत्यादि से कागज, पॉलीथीन बैग, स्टेशनरी इत्यादि का कचरा निकलता है।

अशोषित ठोस कचरे के प्रभाव

ठोस कचरे के संपर्क में आने से त्वचा, रक्त और आंत संबंधी बीमारियां हो सकती हैं। इसी तरह संक्रमित धूल से नेत्र और श्वसन संक्रमण हो सकते हैं। इसके अलावा विषैले कचरे से विषाक्तता और रासायनिक जलन हो जाती है।

ठोस कचरा प्रबंधन को बढ़ावा देना

इसके लिए हमें चार तत्वों को ग्रहण करना होगा। ये हैं मना करना, पुनः प्रयोग, पुनर्चक्रण और घटाव।

(क) **मना करना** : जब तक पहले से मौजूद उत्पादों का पूरा प्रयोग न कर लें, नई वस्तु को स्वीकार न करें।

(ख) **पुनः प्रयोग** : पुरानी चीजों का दुबारा (पुनः) प्रयोग करें।

(ग) **पुनर्चक्रण** : अवकारीय कचरे का पुनर्चक्रण करें। जैविक कचरे से खाद बनाने के लिए उसे एक गड्ढ़े में दबा दें।

(घ) **घटाव** : अनावश्यक कचरा फैलने से रोकें। जैसे शॉपिंग करते वक्त प्लास्टिक की थैलियों की जगह कपड़े या जूट के थैलों का प्रयोग करें।

प्रदूषण रोकने में आम आदमी की भूमिका

बात जब प्रदूषण से लड़ने की हो तो कोई भी प्रयास छोटा नहीं होता और न ही कोई व्यक्ति प्रदूषण कम करने के उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकता है। अगर हम नियंत्रण

उपायों को अपनाएं तो अपने कार्बन फुटप्रिंट को कम कर सकते हैं और प्रदूषण के घातक प्रभावों को भी घटना सकते हैं–

टिप्पणी

- पर्यावरण अनुकूल उत्पादों का प्रयोग।
- जीवाश्म ईंधनों का कम से कम प्रयोग करें। हो सके तो ऐसे साधन खरीदें जो स्वच्छ ईंधन से चलते हों।
- ऊर्जा के नवीकरणीय संसाधनों जैसे सौर ऊर्जा का प्रयोग करें।
- जहां तक संभव हो सके वस्तुओं का पुनःप्रयोग और पुनर्चक्रण करें।
- ऊर्जा संरक्षण को बढ़ावा दें और कम से कम कचरा फैलाएं।
- ईंधन खपत कम करने को सार्वजनिक परिवहन, साइकिल का प्रयोग करें और हो सके तो मिलकर कार आदि का प्रयोग करें।
- रंगों, विलायकों, वर्निश और पुरानी बैटरियों और सीएफएल बल्ब को सावधानी से नष्ट करें ताकि ये जल और भूमि में न घुलें।
- प्लास्टिक से बने उत्पादों का प्रयोग न करें।

4.4.4 जलवायु परिवर्तन

आज जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, अम्लीय वर्षा और ओजोन परत में छेद वे समस्याएं हैं जिन्होंने धरती पर मानव जीवन पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया है। औद्योगिक देशों द्वारा पिछली सदी में अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूती देने के लिए पर्यावरण को पहुंचाए गए नुकसान के कारण ही ये विपत्तिपूर्ण पर्यावरणीय समस्याएं आज खड़ी हो गई हैं। इन विषयों पर आज वैश्विक बहस की शुरुआत हो चुकी है और इनसे निपटने और इनके पैदा करने वालों की जिम्मेदारियां निर्धारित करने पर भी बहस चल रही है।

लंबे समय से किसी क्षेत्र विशेष में मौसम के औसत सांचे (पैटर्न) को जलवायु कहते हैं। जलवायु परिवर्तन का अर्थ जलवायु के मूल रूप या इसकी परिवर्तनशीलता में लंबे समय तक विभिन्नता आने से है।

पिछले 150-200 सालों में जलवायु में परिवर्तन तेज गति से हुए हैं। इसलिए कुछ पौधे और जीवों की प्रजातियां इन परिवर्तनों को ग्रहण नहीं कर सकीं। भूतकाल में जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक कारणों से हुआ था परंतु वर्तमान में जिस तेजी से जलवायु परिवर्तन हो रहा है उसका जिम्मेदार मानवीय क्रियाकलापों को माना जाता है। इन क्रियाकलापों में जीवाश्म ईंधनों को जलाना, औद्योगिकरण, उपभोक्तावाद, निर्वनीकरण और कृषि जैसे कार्य शामिल हैं जिनकी वजह से कार्बन डाईऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन हो रहा है। ये गैसें सौर विकिरणों को सौख रही हैं जिससे वातावरण गर्म हो रहा है।

औद्योगीकरण के आरंभ में वैश्विक तापमान में 0.8 डिग्री की गति से बढ़ोतरी हो रही थी। अगर कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन पिछले सालों की तरह ही जारी रहा तो सन् 2100 में तापमान कई डिग्री और बढ़ सकता है। इसके कई दुष्परिणाम पर्यावरण और मानव पर पड़ेंगे। तापमान में वृद्धि के कई प्रभाव होते हैं, जैसे बर्फ का तेजी से पिघलना, हाइड्रोलॉजिकल चक्र में परिवर्तन, बारिश के पैटर्न में बदलाव, अत्यंत भयानक मौसम जैसे लू, हिंसक मौसम जैसे अंधड़, तेज तूफान आना आदि।

टिप्पणी

ऐसी संभावनाएं जताई जा रही हैं कि वैश्विक समुद्री स्तर में 2100 तक 9 से 88 सेंटीमीटर तक की बढ़ोतरी होगी। इसके गंभीर परिणाम होगी क्योंकि विश्व की लगभग आधी आबादी समुद्र से 60 किलोमीटर के दायरे में रहती है। समुद्र के पानी के स्तर में बढोतरी से इस जनसंख्या को भारी नुकसान होगा।

उष्णकटिबंधीय और उप उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वैश्विक तापमान में बढ़ोतरी खाद्य उत्पादन को प्रत्यक्ष नुकसान पहुचाएगी और कीड़े और बीमारियां पैदा होंगे। खाद्य उत्पादन में कमी भूखमरी और कुपोषण को जन्म देगी और हो सकता है कि इससे सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष भी शुरू हो जाएं।

बारिश और तापमान में बदलाव से जल जनित बीमारियां, जैसे मलेरिया और हाथीपांव जैसी बीमारियां, और ज्यादा इलाकों में फैलेंगी। इससे श्वसन और त्वचा रोगों को भी बढ़ावा मिलेगा।

हमारे वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों को नियंत्रित करने के लिए हमारी ऊर्जा प्रणाली में बदलाव की जरूरत है। जलवायु परिवर्तन को रोकने का सबसे प्रभावी तरीका यह है कि हम ऐसे तंत्र की खोज करें जिसमें कार्बन उत्सर्जन कम होता हो। आज स्वच्छ तकनीकों, ऊर्जा के न्यायोचित प्रयोग और ईंधन क्षमता के बेहतर उपभोग के तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। जीवन शैली और व्यवहार में परिवर्तन करके भी हम जलवायु परिवर्तन के न्यूनीकरण में योगदान दे सकते हैं।

ग्लोबल वार्मिंग

प्राय: ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन पदों का एक ही अर्थ ले लिया जाता है जो कि उचित नहीं हैं। 'जलवायु परिवर्तन' पर संयुक्त राष्ट्र संरचना सम्मेलन (यूएनएफसीसीसी) के अनुसार 'जलवायु परिवर्तन' अवधारणा अर्थ मानव के क्रियाकलापों के कारण वातावरण की संरचना में होने वाले परिवर्तनों और पृथ्वी की जलवायु प्रणाली के बदलावों से है। इसी तरह यूएनएफसीसीसी 'जलवायु परिवर्तनशीलता' का प्रयोग पृथ्वी की जलवायु में प्राकृतिक बदलावों के लिए करता है।

ग्लोबल वार्मिंग पद (जिसे तकनीकी या वैज्ञानिक पद नहीं माना जाता) का प्रयोग धरती की सतह के औसत तापमान में हो रही वृद्धि या वातावरण के निचले स्तर के तापमान में हो रही बढोतरी के लिए किया जाता है। ग्लोबल वार्मिंग और कूलिंग धरती के इतिहास में प्राकृतिक जलवायु परिवर्तनशीलता के कारण होती रही हैं। भूतकाल में ऐसे परिवर्तन बहुत धीमे थे। परंतु पिछले कुछ दशकों में इन परिवर्तनों की गति बहुत तेज हो गई है।

जो गर्मी हम आज महसूस कर रहे हैं वह मानवीय क्रियाकलापों की देन है जिनसे वातावरण की संरचना में बदलाव हो रहे हैं। क्षोभमंडल में मौजूद गर्मी पकड़ने वाली ग्रीनहाउस गैसों के कारण ही यह सब हो रहा है जिससे ग्रीनहाउस प्रभाव

पैदा हो रहे हैं। अगर वैश्विक तापमान में बढोतरी यूं ही जारी रही तो यह वृद्धि कई पर्यावरणीय, आर्थिक और शहरी संरचनाओं को नष्ट कर सकती है जिन पर मानव आश्रित हैं।

अम्लीय वर्षा

अम्लीय वर्षा की अवधारणा का प्रतिपादन 1872 में रॉबर्ट एंग्युस स्मिथ ने किया। वस्तुतः इसका अर्थ बारिश के पानी में अम्ल की अत्यधिक मात्रा से है। अम्लीय वर्षा में मुख्यतः गंधक अम्ल, शोरे का अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक एसिड और थोड़ी मात्रा कार्बोनिक एसिड की होती है। सल्फर, नाइट्रोजन और कार्बन ऑक्साइड वातावरण के अन्य घटकों के साथ क्रिया करके अम्ल का निर्माण कर देते हैं। बारिश का पानी थोड़ा अम्लीय होता है। इसमें इतना अम्ल नहीं होता की किसी को नुकसान हो परंतु यह खनिजों को मिट्टी की पपड़ी में मिलाने के लिए पर्याप्त होता है जिससे की यह अम्ल पौधों को मिल जाए। वाहनों, उद्योगों और कोयला चालित बिजली संयंत्रों में जीवाश्म ईधनों के जलने से उत्सर्जित होने वाले धुएं के कारण अम्लीय संतुलन बिगड़ जाता है और यह प्राकृतिक हल्की अम्लीय वर्षा को भारी अम्लीय वर्षा में परिवर्तित कर देता है जिससे पर्यावरण को भारी नुकसान होता है।

टिप्पणी

अम्लीय वर्षा के प्रभाव

- अम्लीय वर्षा धरती के पोषक तत्वों को बहा देती है। ये तत्व पौधों के विकास के लिए जरूरी होते हैं। ज्यादा अम्लीय वर्षा प्राकृतिक रूप से पैदा हुए विषाक्त पदार्थों जैसे एल्युमिनियम और मर्करी को पिघला देती है जिससे पौधे नष्ट हो जाते हैं और इससे पानी के स्रोत प्रदूषित हो सकते हैं।
- अम्लीय वर्षा पत्तों को भूरा कर सकती है और पौधों में क्लोराफिल की मात्रा को घटा सकती है जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया मंद पड़ जाती है। ऐसे पेड़ों को कीट, बाढ या सूखा आसानी से नष्ट कर सकता है।
- अम्लीय वर्षा भूमिगत जल, नदियों, झीलों और पानी के अन्य साधनों को अम्लीय बना देती है जिससे जलीय जीवों का जीवन मुश्किल में पड़ जाता है और पारिस्थितिकी तंत्र भी प्रभावित होता है।
- अम्लीय वर्षा इमारतों को नुकसान पहुंचाती है व धातुओं को बहा ले जाती है।
- अम्ल और अन्य रसायन मिलकर शहरी धुंध का निर्माण करते हैं।

4.4.5 आपदा प्रबंधन विषयक जागरूकता का विकास

भारतीय उपमहाद्वीप प्राकृतिक आपदाओं के लिए सबसे अधिक संभावित क्षेत्र है। बाढ़, सूखा, चक्रवात और भूकम्प भारत में बार–बार और जल्दी–जल्दी आते ही रहते हैं। प्राकृतिक आपदा मानवनिर्मित आपदाओं जैसे आग आदि की पुनरावृति से मिल कर और बढ़ जाते हैं। पर्यावरण के अवक्रमण से स्थलाकृति (टोपो = भूमि) परिवर्तित हो जाती है। इसके साथ ही प्राकृतिक आपदाओं से असुरक्षा भी बढ़ जाती है। 1988 में कुल भूमि का 11.2 प्रतिशत क्षेत्र ही बाढ़ संभावित था परन्तु 1998 तक यह भू–भाग बढ़ कर 37 प्रतिशत हो गया। अभी हाल ही में जिन चार सबसे बड़ी आपदाओं का सामना भारत को करना पड़ा है वह हैं– महाराष्ट्र के लातूर जिले में 1993 में आने वाला भूकम्प, 1999 में उड़ीसा का बड़ा चक्रवात, 2001 में गुजरात का भूकम्प और दिसम्बर 2004 में आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में आयी सुनामी।

टिप्पणी

बार–बार आने वाली इन आपदाओं में जान और माल की बहुत हानि होती है। भौतिक सुरक्षा, विशेष कर जहां असुरक्षा अधिक है, इन बाधाओं के कारण खतरे में पड़ गई है। प्राकृतिक आपदाओं को रोका तो नहीं जा सकता परन्तु उनसे होने वाले दुष्परिणामों और क्षति को कुछ सावधानियां अपना कर रोका जरूर जा सकता है जैसे अधिक कुशल भविष्यवाणी और प्रभावशाली बचाव साधनों के लिए अच्छी तैयारी होना। ऊपर बतायी गई चारों प्राकृतिक आपदाओं से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि हमें बहुबाधा से होने वाली जान माल की हानि को कम करने और पुनः सुचारु करने के लिए उचित योजनाओं और तैयारियों की आवश्यकता है। आपदाओं के खतरे का प्रबन्धन वास्तव में विकास की समस्या है। पर्यावरण की जिस स्थिति को देश आज झेल रहा है, उसे ध्यान में रखते हुए आपदा प्रबन्धन की तैयारी और योजना तैयार करनी होगी।

आपदाएं दो प्रकार की होती हैं– प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदा। उदाहरण के लिए– आग, दुर्घटनाएं (सड़क, रेल या वायु) औद्योगिक दुर्घटनाएं या महामारी मानव निर्मित आपदाओं के कुछ उदाहरण हैं। प्राकृतिक और मानवनिर्मित दोनों ही आपदाएं भयानक विनाश करती हैं। मानव जीवन की क्षति, जीविका उपार्जन के साधनों, सम्पत्ति और पर्यावरण का अवक्रमण इन आपदाओं का परिणाम होता है। आपदाओं से समाज के सामान्य क्रियाकलापों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और इसका दुष्प्रभाव दीर्घकालीन होता है। भूकम्प, चक्रवात, बाढ़ और भू–स्खलन प्राकृतिक आपदाओं के उदाहरण हैं।

आपदाएं और उनका प्रबंधन

आपदा प्रबंधन के दो विभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण पहलू हैं– आपदा पूर्व व आपदा पश्चात का प्रबंधन। आपदा पूर्व प्रबन्धन को जोखिम प्रबन्धन के नाम से भी जाना जाता है। आपदा के जोखिम भयंकरता व संवेदनशीलता के संगम से पैदा होते हैं, जो मौसमी विविधता व समय के साथ बदलते रहते हैं। जोखिम प्रबन्धन के तीन अंग हैं– जोखिम की पहचान, जोखिम में कमी व जोखिम का स्थानान्तरण। किसी भी आपदा के जोखिम को प्रबन्धित करने के लिए एक प्रभावकारी रणनीति की शुरुआत जोखिम की पहचान से ही होती है। इसमें प्रकृति, ज्ञान और बहुत सीमा तक उसमें जोखिम के बारे में सूचना शामिल होती है। इसमें विशेष स्थान के प्राकृतिक वातावरण के बारे में जानकारी के अलावा वहां आ सकने का पूर्व निर्धारण शामिल है। इस प्रकार एक उचित निर्णय लिया जा सकता है कि कहां व कितना निवेश करना है। इससे एक ऐसी परियोजना को डिजाइन करने में मदद मिल सकती है, जो आपदाओं के गम्भीर प्रभाव के सामने स्थिर रह सकें। अतः जोखिम प्रबन्धन व इससे जुड़े पेशेवरों का कार्य जोखिम क्षेत्रों का पूर्वानुमान लगाना, उसके खतरे के निर्धारण का प्रयास करना, उसके अनुसार सावधानी बरतना और मानव संसाधन एवं वित्त जुटाना आदि आपदा प्रबन्धन की इस उपशाखा के ही अंग हैं।

आपदाओं का प्रबन्धन कई स्तरों पर होता है–

केन्द्रीय स्तर पर आपदा प्रबन्धन– उच्च अधिकार प्राप्त समिति (एच.पी.सी.) का कहना है कि राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक एवं प्रभावी आपदा प्रबन्धन व्यवस्था बनाए रखने के लिए आपदा प्रबन्धन मन्त्रालय को सुचारू किया जाए जो कि बाढ़ में एन.सी.सी.एम. जैसे केन्द्रों और प्राधिकरणों सहित उचित सहायक निकायों का गठन कर सकता है

अथवा सहायता के लिए वर्तमान केन्द्रों का उपयोग हो सकता है। आपदा प्रबन्धन हेतु केन्द्र सरकार द्वारा जो सर्वदलीय समिति का गठन किया गया है उसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। इस योजना के संचालन हेतु एवं वैज्ञानिक एवं तकनीकी सलाहकार समिति भी उसकी सहायता करेगी।

राज्य स्तर पर आपदा प्रबन्धन– हमारे देश में राष्ट्रीय आपदाओं से निपटने की जिम्मेदारी अनिवार्य रूप से राज्यों की है। केन्द्र सरकार की भूमिका भौतिक एवं वित्तीय संसाधनों की सहायता देने की है। अधिकतर राज्यों में राहत आयुक्त हैं, जो अपने राज्यों में प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में राहत एवं पुनर्वास कार्यों के प्रभारी हैं। पूर्ण प्रभारी मुख्य सचिव होता है तथा राहत आयुक्त उसके निर्देश एवं नियंत्रण में कार्य करते हैं। आपदा के समय प्रभावित लोगों तक पहुंचने के प्रयासों में सम्मिलित करने के लिए राज्य सरकार गैर सरकारी संगठनों तथा अन्य राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय संगठनों को आमन्त्रित करती है।

जिला–स्तर पर आपदा प्रबन्धन– आपदा प्रबन्धन हेतु सभी सरकारी योजनाओं और गतिविधियों के क्रियान्वयन के लिए जिला प्रशासन केन्द्र बिन्दु है। कम से कम समय में राहत कार्य चलाने के लिए जिला अधिकारी को पर्याप्त अधिकार दिये गए हैं। प्रत्येक जिले में आने वाली आपदाओं से निपटने के लिए अग्रिम आपात योजना बनाना जरूरी है तथा निगरानी का अधिकार जिला मजिस्ट्रेट को है।

आपदा प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण क्षेत्र

1. **संचार**– संचार आपदा प्रबन्धन में अत्यधिक उपयोगी हो सकता है। संचार साधनों के माध्यम से जागरुकता, प्रचार–प्रसार तथा आपदा प्रतिक्रिया के समय आवास सूचना व्यवस्था के माध्यम से काफी सहायक हो सकता है।
2. **अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी**– अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी आपदा के प्रभाव को कारगर ढंग से करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसका उपयोग– 1. शीघ्र चेतावनी रणनीति को विकसित करने में, 2. विकास योजनाएं बनाने एवं लागू करने में, 3. संचार और सुदूर चिकित्सा सेवाओं सहित संसाधन जुटाने में और 4. पुनर्वास एवं आपदा पश्चात् पुनर्निर्माण में सहायता हेतु किया जा सकता है।
3. **भौगोलिक सूचना प्रणाली**– भौगोलिक सूचना प्रणाली सॉफ्टवेयर भूगोल और कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए मानचित्रों का उपयोग स्थान आधारित सूचना के भण्डार के समन्वय एवं आकलन के लिए करती है। भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग वैज्ञानिक जांच, संसाधन प्रबन्धन तथा आपदा एवं विकास योजना में किया जा सकता है।

सामुदायिक स्तर पर आपदा प्रबन्धन

जब कभी कोई आपदा आती है, तब अनेक सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाएं और समाज (समुदाय) आपदा प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनकी तैयारी, प्रतिक्रिया, पुनःप्राप्ति और बचाव का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :

आपदा प्रबन्धन के चार मुख्य घटक होते हैं :

टिप्पणी

तैयारी : इसका अभिप्राय है कि समाज और संस्थाएं आपदा के दुष्प्रभावों का सामना करने के लिए तैयार हैं या नहीं। इससे जुड़ी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

- सामुदायिक जागरूकता और शिक्षा।
- आपदा प्रबन्धन योजना की तैयारी समुदाय, स्कूल और व्यक्तिगत स्तर पर।
- नकली (मॉकड्रिल) अभ्यास और प्रशिक्षण।
- सामग्री और मानव कुशलता दोनों की उपलब्धता की सूची तैयार होना।
- उचित चेतावनी व्यवस्था।
- पारस्परिक सहायता व्यवस्था।
- संवेदनशील समूह की पहचान।

प्रतिक्रिया : पूर्वानुमान से, आपदा के समय और आपदा के तुरन्त बाद आपदा के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए किए गए उपाय/कार्यवाही। इसके लिए मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

- आपातकालीन ऑपरेशन केन्द्र को क्रियान्वित करना (कंट्रोल रूम)।
- खोजी और सुरक्षा टीमों का विस्तार।
- अद्यतन (अपडेट) चेतावनी का प्रसारण।
- सामुदायिक रसोईघरों की स्थापना, जिसमें स्थानीय लोगों को लें।
- अस्थायी निवास और शौचालयों की व्यवस्था।
- मेडिकल कैम्प की व्यवस्था।
- संसाधनों का संग्रह करना।

पुनःप्राप्ति या पुनर्स्थापन : इसमें भौतिक ढांचे के पुनः निर्माण के साथ आर्थिक और भावात्मक पुनरुद्धार भी किया जाता है। इसके मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

- स्वास्थ्य और सुरक्षा उपायों के लिए सामुदायिक जागरूकता।
- जिन्होंने अपने सगे सम्बन्धियों को खोया है, उनके लिए सांत्वना और परामर्श केन्द्र।
- यातायात, संचार और बिजली जैसी व्यवस्थाओं का पुनर्प्रबन्धन/पुर्नव्यवस्था।
- शरणस्थल की उपलब्धता।
- मलबे से निर्माण संबंधी उपयोगी पदार्थों को एकत्र करना।
- आर्थिक सहायता प्रदान करना।
- रोजगार के अवसर तलाशना।
- नयी इमारतों का निर्माण करना।

रोकथाम/बचाव : आपदा की भीषणता को रोकने या कम करने के उपाय करने चाहिए।

- भूमि के उपयोग की योजना।
- खतरे वाले स्थान में बसने पर रोक।
- आपदा–प्रतिरोधक बिल्डिंग/इमारतें।

– आपदा के आने से पूर्व ही खतरे को कम करने के तरीके ढूंढ़ना।

– सामुदायिक जागरूकता और शिक्षा।

आपदा से पहले और बाद के कुछ घंटे जीवन बचाने और क्षति को कम करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। अकसर आपदा स्थल पर बाहरी सहायता को पहुंचने में वक्त लग जाता है। किसी भी आपदा के समय सर्वप्रथम पड़ोस से ही सहायता पहुंचती है। आपदा की स्थिति में सर्वप्रथम सहायता पहुंचाने वाले लोग प्रायः मेडिकल और अन्य घटनाओं को समझ पाने और संभालने के उचित ढंग से अनभिज्ञ होते हैं। उन्हें स्थिति का सामना करने का प्रशिक्षण और कौशल नहीं होता। अतः सामुदायिक स्तर पर प्रबन्धन का उद्देश्य स्थानीय लोगों को आपातकालीन स्थिति का प्रभावपूर्ण ढंग से सामना करने का प्रशिक्षण देना होना चाहिए। प्रशिक्षित समुदाय के सदस्य इस प्रकार की परिस्थितियों के समय में जीवनरक्षक सिद्ध होते हैं। अतः इस प्रकार प्रशिक्षित करने से समुदाय प्रबन्धन लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करता है।

टिप्पणी

आपदा प्रबन्धन में सरकारी पहल

भारत सरकार ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में आपदा प्रबन्धन के लिए राष्ट्रीय कमेटी (National committee on Disaster Management- NCDM) की स्थापना की है। इस राष्ट्रीय कमेटी के प्रस्ताव राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन कार्यक्रम का आधार होंगे और प्राकृतिक आपदा प्रबन्धन और प्रतिक्रिया तंत्र को इससे बल मिलेगा। यूनाइटेड नेशंस डेवेलपमेंट प्रोग्राम (यूएनडीपी) भी सरकार की आपदा प्रबन्धन की क्षमता को मजबूत करने में सहायक होती है।

कार्यक्रम में निम्नलिखित घटक सम्मिलित होंगे–

– प्रान्त और जिले के आपदा प्रबन्धन योजना का विकास।

– आपदा खतरा प्रबन्धन और प्रतिक्रिया योजना का विकास गांव/वार्ड, ग्राम पंचायत, ब्लॉक/शहरी स्थानीय स्तर पर।

– सभी स्तरों पर आपदा प्रबन्धन टीम बनायी जाये और इनमें सभी कमेटी और टीमों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व भी उचित अनुपात में होना आवश्यक है (गांव/वार्ड, ग्राम पंचायत, ब्लॉक/शहरी स्थानीय ढांचा, जिला और राज्य)।

– सभी स्तरों पर आपदा प्रबन्धन टीम की क्षमता बढ़ायी जाय। प्राथमिक उपचार, शरणस्थलों का प्रबन्धन, पानी और सफाई, बचाव और निकास/रिक्तीकरण में महिलाओं को विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

– आपदा प्रवृत स्थानों में इमारतों में चक्रवात और भूकम्प प्रतिरोधक क्षमता वाले फीचर लगाने चाहिए। पुनर्स्थापन के प्रशिक्षण और निर्माण की ट्रेनिंग के लिए प्रदर्शन टीम हों।

– आपदा प्रबन्धन योजना और स्थानीय स्वयं सरकारी विकास योजनाओं का परस्पर तालमेल होना चाहिए।

बाढ़, भूकम्प, चक्रवात तथा भू–स्खलन आदि आपदाएं और उनका प्रबंधन

यहां हम बाढ़, भूकम्प चक्रवात और भूस्खलन जैसी कुछ बड़ी प्राकृतिक आपरदाओं एवं उनके प्रबंधन के बारे में चर्चा करेंगे।

- **बाढ़**

किसी बड़े भू–भाग का जलमग्न होना, जिसमें अपार जनधन की हानि होती है, बाढ़ कहलाता है। इसके उत्तरदायी कारकों में अतिवृष्टि, पर्यावरण विनाष, भूस्खलन, बांध, तटबंध तथा बैराज का टूटना, सड़क तथा अन्य निर्माण कार्य, नदियों में गाद बढ़ना, नदियों में निर्मित बांधों में तलछट भरना आदि हैं। केन्द्रीय बाढ़ आयोग की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1953 से 1990 के मध्य औसत रूप से प्रतिवर्ष 7944 मि.हे. क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित होता रहता है। बाढ़ द्वारा सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र वर्ष 1978 में 17500 मि.हे. क्षेत्र भी रहा है। 1953 से 1990 के मध्य की अवधि में औसत रूप से प्रतिवर्ष 12,18,690 भवन तथा 1532 व्यक्ति बाढ़ आपदा के शिकार हुए हैं। जबकि इसी अवधि में सर्वाधिक 35,07,542 भवन वर्ष 1978 में तथा सर्वाधिक 11,316 व्यक्ति वर्ष 1977 में बाढ़ के शिकार हुए हैं। हमारे देश में न केवल बाढ़ प्रभावित भूभाग बढ़ता जा रहा है, बल्कि बाढ़ प्रभावित जनसंख्या भी बढ़ती जा रही है। खाद्य एवं कृषि संगठन के एक ताजा अनुमान के अनुसार देश की लगभग 25 करोड़ आबादी उन क्षेत्रों में निवास कर रही है, जहां बाढ़ के प्रकोप की आशंका है।

टिप्पणी

सुनामी आपदा– सुनामी दो शब्दों से मिल कर बना है– TSU का अर्थ है बन्दरगाह और NAMI का अर्थ है लहरें। इसे ज्वारीय या भूकम्पीय लहरें भी कहते हैं। समुद्र की सतह हिलने के कारण तली के ऊपर भरा पानी ऊपर नीचे उठता गिरता है, जिससे सुनामी लहरें पैदा होती हैं। भारत में सुनामी का मुख्य केन्द्र उत्तरी भाग एक ही संवेदनशील भूकम्पीय पट्टी से जुड़ा है। यह पट्टी गुजरात के भुज क्षेत्र से हिमालय की तलहटी और म्यांमार होती हुई सुमात्रा द्वीप तक फैली है।

बादल फटना– इनमें हवाएं तेजी से उठती हैं। बिजली की चमक एवं बादलों की गरज के साथ तीव्र वर्षा होती है। ओलापात भी हो सकता है। मूसलाधार वृष्टि के कारण गांव के गांव बह जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक मानव जनित आपदाएं होती हैं। इनका निराकरण हमारी सूझबूझ, सावधानी, विवेक व परस्पर सहयोग से संभव है। देश में लगभग हर समय किसी न किसी प्रकार की प्राकृतिक, मानव–जनित या अन्य प्रकार की आपदाएं आती रहती हैं। इनका प्रबन्धन करने की आवश्यकता होती है।

बाढ़ के प्रभाव

हताहत (घायल)– डूबने, गम्भीर चोट, या महामारियों जैसे डायरिया, हैजा, पीलिया या वाइरल संक्रमण के कारण मनुष्य और पशुओं की मृत्यु बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की सामान्य समस्या है। बाढ़ के समय कुएं तथा पेयजल के अन्य स्रोत भी जलमग्न हो जाते हैं, जिसके कारण शुद्ध पेयजल की बहुत कमी हो जाती है। कभी–कभी लोगों को मजबूरी में बाढ़ का संक्रमित जल ही पीना पड़ता है जिससे गम्भीर रोग पैदा हो जाते हैं।

इमारतों की क्षति (संरचनात्मक क्षति)– बाढ़ के दौरान मिट्टी के घर और कमजोर नींव पर खड़े भवन ढह जाते हैं और जान माल के लिए खतरा और क्षति पैदा हो जाती है। सड़कों, रेल पटरियों, बांधों, स्मारकों, फसलों और पशुओं की भी भारी हानि होती है। बाढ़ों के कारण बड़े–बड़े पेड़ भी उखड़ जाते हैं जिसके कारण भूस्खलन और मृदा–अपरदन हो सकता है।

माल, सामान, सामग्री की क्षति– घरेलू सामान के साथ खाद्य पदार्थ, बिजली के उपकरण, फर्नीचर, कपड़े सब बाढ़ के पानी में डूब जाते हैं। भूमि पर भंडारित सामान जैसे अनाज, मशीनी उपकरण, गाड़ियां, पशुधन, साल्ट पैन और मछली के शिकार की नौकाएं पानी में डूब कर बेकार हो जाती हैं।

उपयोगी वस्तुओं की क्षति– उपयोगी वस्तुएं अर्थात जल–आपूर्ति, वाहितमल व्यवस्था (Sewerage), संचार–व्यवस्था, बिजली व्यवस्था और परिवहन व्यवस्था, रेलमार्ग सभी बाढ़ के कारण खतरे में पड़ जाते हैं।

टिप्पणी

फसलों की क्षति– मानव और पशुधन की क्षति के साथ बाढ़ के कारण खेतों में खड़ी लहलहाती तैयार फसल की भी भारी हानि होती है। बाढ़ का पानी भंडारित अनाज के साथ काट कर रखी फसल को भी नष्ट कर देता है। बाढ़ के पानी से मिट्टी की गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ता है। खेत के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी पानी के साथ बह जाने से खेत बंजर हो जाते हैं। समुद्री तटों पर स्थित खेतों में समुद्र का खारा पानी भर जाने से वे कृषि के लिए अनुपयोगी हो जाते हैं।

बाढ़ों का नियंत्रण एवं प्रबंधन

बाढ़ों को कई प्रकार से नियंत्रित किया जा सकता है। वृक्षारोपण करके (वृक्ष लगा कर) बह कर आने वाले जल की मात्रा कम करने से बाढ़ के पानी का स्तर भी घट जाएगा। जंगल बारिश के पानी को भूमि के अंदर जाने का रास्ता देते हैं। इससे भूमिगत जल स्तर पुनः स्थापित होता है और पानी का व्यर्थ बहना कम हो जाता है। बांधों के निर्माण से पानी का भंडारण होता है और बाढ़ के जल में कमी आती है। बांध पानी को एकत्रित कर सकते हैं, इस कारण पानी नीचे नदियों तक नहीं पहुंच पाता। यदि बांध में एकत्रित पानी सीधा नदियों तक पहुंचे तो बाढ़ की स्थिति पैदा हो सकती है। बांधों से पानी को नियंत्रित रूप में छोड़ा जाता है। नदी/नहर/नालों से गाद निकालकर उन्हें गहरा करने से और तटों को चौड़ा करने से उनमें अधिक पानी भरने की धारण क्षमता बढ़ जाती है। यदि बाढ़ नियंत्रण की उचित योजना और उचित प्रबन्धन तरीकों का नियोजित ढंग से पालन करें, तो बाढ़ से होने वाली क्षति और जान–माल की हानि को काफी हद तक रोका जा सकता है और कम किया जा सकता है।

बाढ़ प्रवृत क्षेत्रों की पहचान– बाढ़ों के उचित प्रबन्धन के लिए सुचारु और युक्तिसंगत योजना बनाने के लिए बाढ़–प्रवृत क्षेत्रों को पहचान कर उन्हें चिन्हित करना आवश्यक है। इन क्षेत्रों में बाढ़ का बार–बार आना और आकार को जानना भी जरूरी है।

बाढ़ का पूर्वानुमान– प्रायः लोगों को काफी पहले खतरे की सूचना देकर सुरक्षित स्थानों पर भेज दिया जाता है। जलग्रहण क्षेत्र में वर्षा की तीव्रता का माप जल वैज्ञानिकों को इतना अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त होता है कि नदी में पानी बढ़ने से कितना क्षेत्र जलमग्न हो जाएगा। जल वैज्ञानिक बाढ़ आने से पहले ही उसका अनुमान लगा लेते हैं। उसी सम्भावना से प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को सामान और पशुधन के साथ सुरक्षित स्थलों पर चले जाने के लिए चेतावनी दी जाती है। भारत में वर्षा मापक स्टेशनों का जाल (नेटवर्क) काफी बड़ा है, बाढ़ की चेतावनी केन्द्रीय जल कमीशन (Central Water Commission- CWC), सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण डिवीजन (Irrigation and Flood Control Division) और जल संसाधन विभाग (Water Resource Department) द्वारा जारी की जाती है।

भूमि उपयोग की योजना– विकास की सभी गतिविधियों के लिए भूमि उपयोग की योजना का बहुत महत्त्व है। बाढ़ संभावित क्षेत्रों में विकास के किसी मुख्य कार्य की अनुमति नहीं देनी चाहिए। यदि निर्माण कार्य बिल्कुल ही अनिवार्य हो तो ऐसा होना चाहिए कि बाढ़ की शक्ति वह इमारत झेल सके। इमारतों को किसी ऊंचे स्थान पर ही बनाना चाहिए।

वृक्षारोपण– वृक्षारोपण को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। जलग्रहण वाले स्थानों पर वृक्षोन्मूलन एकदम नहीं होना चाहिए। पेड़ कटने से पानी बहुत अधिक तीव्रता से बहता है और पानी के साथ मिट्टी बहने से मृदा–अपरदन बहुत होता है। मृदा–अपरदन नदियों में गाद जमने का मुख्य कारण है और नदियों में गाद जमने से बाढ़ों की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। ऐसे निर्माण कार्य की, जिसके कारण जल निकास बाधित हो, कभी अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। अचानक आए पानी के निकास की नालियों के ऊपर अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। इन सबसे बाढ़ का खतरा घट जाता है।

कुछ पूर्वोपाय (सावधानियां), जिनसे बाढ़ का खतरा कम होता है, इस प्रकार हैं–

- घरों को बाढ़ संभावित क्षेत्र से दूर बनाएं।
- मौसम की सूचना, बाढ़ आने के पूर्वानुमान की सूचनाओं के प्रति जागरूक और सचेत रहिए।
- स्थान खाली करने के निर्देश और चेतावनी के बाद तुरन्त ही उपलब्ध शरणस्थलों में चले जाएं।
- जब आप शरणस्थल में जा रहे हों तो अपने कीमती सामान को किसी ऊंचे स्थान पर रख दें जिससे वह बहे या डूबे नहीं।
- आपातकाल के लिए कुछ अतिरिक्त भोजन जैसे दाल, चावल, शक्कर आदि घर में रखिये।
- किसी खुले या ढीले बिजली के तार को न छुएं।
- अफवाह फैलाने और उनको सुनने से बचें।
- वृद्ध और बच्चों का विशेष ध्यान रखें और उनके खाने का प्रबन्ध रखें।
- बाढ़ के समाप्त होने के बाद स्वयं की और परिवार की चिकित्सकीय जांच अवश्य करायें, चोट और किसी भी प्रकार की बीमारी में डॉक्टरी सलाह लें।
- घर और आस–पास जमा हुए बाढ़ के कचरे के ढेरों को साफ करें।
- किसी भी नुकसान या क्षति की सूचना राजस्व विभाग को अवश्य दें।

• भूकम्प

भूकम्प प्राकृतिक आपदा के सर्वाधिक विनाशकारी रूपों में से एक है, जिसके कारण व्यापक तबाही हो सकती है। भूकम्प का साधारण अर्थ है 'भूमि का कम्पन' अर्थात भूमि का हिलना। भूकम्प पृथ्वी की आंतरिक क्रियाओं के परिणाम स्वरूप आते हैं। पृथ्वी के आंतरिक भाग में होने वाली क्रियाओं का प्रभाव पर्पटी पर भी पड़ता है और उसमें अनेक क्रियाएं होने लगती हैं। जब पर्पटी की हलचल इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि वह चट्टानों को तोड़ देती है और उन्हें किसी भ्रंश के साथ गति करने के लिए मजबूर कर देती है, तब धरती के सतह पर कम्पन या झटके, उत्पन्न हो जाते हैं। कम्पन ही भूकम्प

होते हैं, भूकम्प का पृथ्वी पर विनाशकारी प्रभाव भूस्खलन धरातल का धसाव मानव निर्मित पुलों, भवनों जैसी संरचनाओं की क्षति या नष्ट होने के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वैसे तो भूकम्प पृथ्वी पर कहीं भी व कभी भी आ सकते हैं, लेकिन इनकी उत्पत्ति के लिए कुछ क्षेत्र, बहुत ही संवेदनशील होते हैं। संवेदनशील क्षेत्र से तात्पर्य पृथ्वी के उन दुर्बल भागों से है, जहां बलन और भ्रंश की घटनाएं अधिक होती हैं। इसके साथ ही महाद्वीप और महासागरीय सम्मिलन के क्षेत्र ज्वालामुखी भी भूकम्प उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्थान हैं। भूकम्प वर्ष में किसी भी समय बिना किसी चेतावनी के अचानक आ सकते हैं और इसके कारण जान और माल की भारी क्षति होती है। 1993 में लातूर में और 2002 में भुज में आए भूकम्पों की त्रासदी को हम अच्छी तरह जानते हैं।

टिप्पणी

भूकम्प की तीव्रता का अनुमान उसमें से मुक्त हुई ऊर्जा की मात्रा से सम्बन्धित है। जब धरती के भीतर छिपी ताकत चट्टानों के बीच से बाहर निकलती है, इसको एक यंत्र के द्वारा नापा जाता है, जिसे 'भूकम्पलेखी' (Seismograph) कहा जाता है। भूकम्प की तीव्रता रिक्टर स्केल (आविष्कारक सी.एफ. रिक्टर के नाम पर) पर मापी जाती है।

भूकम्प के प्रभाव

संरचनात्मक क्षति (इमारती क्षति)– भूकम्प द्वारा भवनों, सड़कों, बांधों और स्मारकों की बहुत क्षति होती है। ऊंची–ऊंची इमारतें या ऐसी इमारतें जो कमजोर नींव पर खड़ी हैं, विशेष रूप से भूकम्प से क्षतिग्रस्त होती हैं। घरेलू उपकरण विशेषरूप से बिजली के उपकरण और फर्नीचर की भी क्षति होती है। मानव और पशुधन जीवन की हानि होती है या इमारतों के गिरने से गम्भीर चोट लगती है। इसके बाद जैसे हैजा, डायरिया, और संक्रमण से फैलने वाली महामारियां मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। जल आपूर्ति, वाहित मल, संचार लाइनें, पावर लाइनें, परिवहन नेटवर्क और रेलमार्ग आदि आवश्यक सुविधाएं अस्त–व्यस्त हो जाती हैं।

भूकम्प का प्रबन्धन

भूकम्प के दुष्परिणामों से बचने के लिए निम्न तरीके अपनाने से इसके प्रभावों को कुछ कम किया जा सकता है :

भवनों की डिजाइन (रूप–आकार)– इमारतें इस प्रकार की डिजाइन करनी चाहिए, कि वे भूकम्प के झटकों को झेल सकें, खास तौर से भूकम्प–संभावित क्षेत्रों में तो विशेष ध्यान रखना चाहिए। मिट्टी की भौतिक विशेषताओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए, विश्लेषण करते समय भूकम्प को सहने की उसकी शक्ति का परीक्षण आवश्यक है। ब्यूरो ऑफ इन्डियन स्टैन्डर्ड (Bureau of Indian Standard) ने भवन निर्माण के लिए कुछ रूप–रेखा और निर्देश तैयार किए हैं, जो भूकम्प को सहने के लिए अपनाने अत्यंत आवश्यक हैं। प्रायः सम्बन्धित नगर निगम अधिकारी भवनों या इमारतों की डिजाइन को नियमों और सुरक्षा नियमों को पूरा करने पर ही स्वीकृति देते हैं। बिल्डर्स, आर्किटैक्ट, ठेकेदार, डिजाइनर, घर के मालिक और सरकारी अफसरों को इस सम्बन्ध में प्रशिक्षित करना आवश्यक है।

भूकम्प के घटित होने पर बरती जाने लायक कुछ सावधानियां निम्नलिखित हैं–

– खुले स्थान में निकल जाएं।

टिप्पणी

- शान्ति बना कर रखें, घबरा कर इधर–उधर न भागें, लिफ्ट का प्रयोग कभी भी न करें, खिड़कियों से दूर रहें, फर्नीचर और शीशों से भी दूर रहें।
- मजबूत बीम (Beam) के नीचे खड़े रहें, क्योंकि वह गिरेगी नहीं या खाने की मेज या पलंग के नीचे घुस जायें।
- यदि आप किसी इमारत के नीचे खड़े हैं या अपने स्थान से हट नहीं सकते, तो अपने सिर और शरीर को अपने हाथों से, तकियों या कम्बल से ढक लें, जिससे गिरने वाली किसी वस्तु से चोट न लग जाये।
- यदि बहुमंजिला इमारत में हैं, तो उसी मंजिल पर रहिए, लिफ्ट या सीढ़ियों की ओर न दौड़ें न लिफ्ट से नीचे उतरें।
- यदि रास्ते में हैं और यात्रा कर रहे हों, तो अपनी गाड़ी को इमारतों, दीवारों, पुल, पेड़, बिजली के खम्बों और तारों से दूर ही खड़ी करें।
- जो कुछ क्षति हुई हो, उसको देखें और बाधा को साफ करें।
- चोट आदि को देखें, प्राथमिक उपचार दें और लें, दूसरों की मदद करें।
- यदि आपका घर भूकम्प के कारण बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया है, तो तुरन्त घर से बाहर आ जायें। साथ में आपातकालीन आवश्यक चीजें जैसे खाना, पीना, प्राथमिक उपचार का बॉक्स, दवाइयां, फ्लैश लाइट या टॉर्च, मोमबत्ती, माचिस, कपड़े आदि यदि सम्भव हो तो साथ ले लें।
- इमारतों विशेष कर पुरानी और ऊंची इमारतों, बिजली के खम्भों, तारों और दीवारों से दूर ही रहें।

- **चक्रवात**

चक्रवात एक प्रकार से हिंसक तूफान होते हैं। ये एक प्रकार की तेज और बहुत उच्च वेग वाली हवाएं हैं, जो निम्न वायुमंडलीय दबाव के शान्त केन्द्र के चारों ओर तीव्रता से घूमती हैं। यह शान्त केन्द्र प्रायः आगे की ओर बढ़ता है। कभी–कभी इनका वेग 50 कि.मी./घंटा होता है। चक्रवात अचानक ही घटित होते हैं, जबकि इनको बनने में लम्बा समय लग जाता है। चक्रवात के बाद प्रायः तेज वर्षा होती है, जिसके कारण बाढ़ भी आ जाती है। उपग्रहों के द्वारा इनके द्वारा प्रभावित होने वाले संभावित क्षेत्रों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, और वहां के निवासियों को चेतावनी दी जा सकती है। चेतावनी और स्थान परिवर्तन प्रस्तावित मार्ग के अनुसार ही होना चाहिए।

हम जानते हैं कि चक्रवात में वायु बाहर की ओर से केन्द्र की ओर घूमती हुई ऊपर उठती है। इसके केन्द्र में न्यून वायुदाब तथा चारों ओर उच्च वायुदाब रहता है। वायु की क्षैतिज एवं लम्बवत दोनों ही गति तेज रहती है, जिसमें आंधी, तूफान के साथ–साथ ओलावृष्टि तथा भारी वर्षा होती है। थोड़ी ही देर में मौसम परिवर्तित हो जाता है। इस सन्दर्भ में उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों हरिकेन तथा टाईफून का उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है। चीन में इन्हें टाईफून तथा दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका एवं मैक्सिको में इन्हें हरिकेन कहा जाता है। इसकी गति 90–125 कि.मी. प्रति घंटा तक देखी गई है। वायु की तीव्र गति के कारण समुद्री जल के खम्भे बन कर तटवर्ती क्षेत्रों में घुस कर विनाश का भयावह ताण्डव करते हैं।

टिप्पणी

चक्रवात के प्रभाव

हल्के भार वाले मिट्टी, लकड़ी के निर्माण, पुरानी इमारतें जिनका ढांचा और दीवारें कमजोर हो चुकी हैं, और जिनकी नींव की मजबूत पकड़ नहीं है, चक्रवात के समय भारी खतरे में पड़ जाती हैं। समुद्री तट (mudslide) पर बसे निचले क्षेत्र इनसे सीधे ही खतरे में पड़ जाते हैं। समीपवर्ती बसे क्षेत्र बाढ़, मडस्लाइड या भूस्खलन आदि होने से जल्दी प्रभावित होते हैं। टेलीफोन और बिजली के तार और खम्भे, दीवारें, पेड़, मछली पकड़ने की नावें, साइनबोर्ड आदि के लिए चक्रवात आने से खतरा बढ़ जाता है। हल्का इमारती ढांचा जैसे फूस की झोपड़ी, टिन की छत वाले घर चक्रवात की क्षति को बहुत अधिक झेलते हैं। भारी वर्षा के कारण लोग और उनकी सम्पत्ति बाढ़ के पानी में बह सकती है या चक्रवात की तूफानी हवा में उड़ सकती है। तटीय क्षेत्र में आए चक्रवात के कारण समुद्र की लहरें भूमि पर पहुंच जाती हैं और बाढ़ आ जाती है। इससे प्रभावित क्षेत्रों में मिट्टी और पानी में खारापन आ जाता है। इसके कारण पानी की आपूर्ति और कृषि फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

चक्रवात का प्रबन्धन

चक्रवात–संभावित क्षेत्र को पहचानना बहुत आवश्यक है। चक्रवात संभावित क्षेत्र में किसी प्रकार के विकास कार्य की अनुमति नहीं देनी चाहिए। ऐसी इमारतें बनानी चाहिए जो हवा और बाढ़ों की तीव्रता को झेल सकें। किसी ढांचे की पकड़ रखने वाले तत्व मजबूती से जमीन में गड़े होने चाहिए, जिससे वे अपने ऊपर टिके ढांचे को मजबूती से सम्भाल सकें। तट के किनारे लगे वन चक्रवात के प्रभाव को काफी हद तक कम करने में समर्थ होते हैं। अतः आवश्यक है कि समुद्री तट के किनारे–किनारे ग्रीन बैल्ट (तटों के साथ–साथ पेड़ उगाना) को विकसित किया जाय।

- **सुनामी**

सुनामी को प्रायः सैस्मिक (भूकम्पीय) समुद्री लहरें या ज्वार भाटा (Tidal) लहरें या आकस्मिक समुद्री लहरें आदि नामों से भी जाना जाता है। ये प्रायः अन्तःसमुद्री भूकम्प के कारण आती है, जो समुद्र सतह के नीचे 50 कि.मी. (30 मील) से कम दूरी पर उठता है, जिसकी तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 6.5 से अधिक होती है। पानी के नीचे या तट पर भूस्खलन या ज्वालामुखी फटने से भी सुनामी आ सकती है। ऐसी लहरों के लिए प्रायः ज्वार–भाटा (टाइडल) लहरें शब्दों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह भ्रामक और अनुचित है, क्योंकि इन सुनामी लहरों का ज्वार–भाटे (टाइड) से कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुनामी की लहरें सीधी, क्रमिक, अनिश्चित रूप से घटती–बढ़ती लहरें समुद्र की सतह पर बहुत दूरी पर पैदा होती हैं, और ये चौड़े होते हुए (फैलते हुए) घेरे के रूप में होती हैं। कुछ ऐसे ही जैसे किसी उथले तालाब में कंकड़ फेंकने से पैदा होती है। इसमें सावधानीपूर्वक किया गया निरीक्षण बहुत व्यावहारिक महत्त्व रखता है। भूकम्प वैज्ञानिक संभावित खतरे की चेतावनी तटीय क्षेत्रों को तुरन्त ही दे सकते हैं। जैसे ही कोई भूकम्प आता है, तभी चेतावनी देने से सुनामी आने के कई घंटों पहले लोग सतर्क हो जाते हैं।

लहरें जैसे–जैसे महाद्वीपीय तटों की ओर बढ़ती हैं, उनका तल उथला होता जाता है, जिस पर लहरों के घर्षण से लहरों की तीव्रता और वेग कम होता जाता है। वेग

कम होने के कारण लहरों की ऊंचाई 50 मीटर या उससे भी अधिक हो जाती है। तीन से पांच मुख्य अनिश्चित दोलन लहरों के कारण सबसे अधिक नुकसान होता है। फिर भी सुनामी का प्रभाव अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग प्रकार का ही होता है।

सुनामी के प्रभाव और उसका प्रबंधन

टिप्पणी

सुनामी के दुष्प्रभाव भी चक्रवात या बाढ़ों की भांति ही हैं। समुद्री पानी की बड़ी लहरें तीव्र वेग के साथ अंदर घुस आती हैं और आस–पास का भूक्षेत्र जलमग्न होने से बस्तियां, फसलें और दूसरी अन्य सम्पत्ति बुरी तरह से नष्ट हो जाती हैं। दिसम्बर 2004 में आई सुनामी ने अनेक देशों में, विशेष कर इंडोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका, भारत में भीषण विनाश और तांडव मचाया था। आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु के तटीय जिलों का बहुत बड़ा क्षेत्र इसकी चपेट में आ गया था। 8 एशियाई देशों में, भारत सहित, दो लाख से अधिक लोगों की जानें चली गई थीं।

सुनामी के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए चक्रवात या बाढ़ के लिए बरती जाने वाली सावधानियां ही अपनानी चाहिए।

- **भूस्खलन**

भूस्खलन भी एक प्राकृतिक घटना है। भूस्खलन भूमि उपयोग को सीधा प्रभावित करता है। ये प्रायः पर्वतीय भागों जैसे भारत के हिमालय पर्वत के ढालू भागों में आते हैं। चट्टानों का नीचे खिसकना भूस्खलन कहलाता है। यह क्रिया प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से हो सकती है। इसमें सड़क अवरुद्ध हो जाती है, बांध टूट जाते हैं तथा गांव और शहर नष्ट हो जाते हैं। भूस्खलन के लिए प्राकृतिक कारणों में भूकम्प सबसे प्रभावशाली कारक है। इसके साथ ही वनों के ह्रास, जल के रिसाव, अपक्षय, भू–क्षरण तथा अधिक वर्षा के साथ ही मानवीय क्रियाओं जैसे– सड़क निर्माण, उत्खनन, सुरंग, बांध, जलाशय आदि से भूस्खलन को बढ़ावा मिलता है। सिक्किम, भूटान तथा नेपाल जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन के कारण प्रायः मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

भूस्खलन का प्रबन्धन

भूस्खलन के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए भूकम्प, चक्रवात या बाढ़ के लिए बरती जाने वाली सावधानियां ही अपनानी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. "पर्यावरण वह बाह्य शक्ति है, जो हमें प्रभावित करती है।" यह किसका कथन है?

   (क) डी. स्टेम्प (ख) जे.एस. रॉस

   (ग) टॉमसन (घ) डॉ. डेविस

6. पहला पर्यावरण दिवस कब मनाया गया था?

   (क) 1952 (ख) 1962

   (ग) 1973 (घ) 1985

7. आपदाओं का प्रबंधन किस स्तर पर होता है?
   (क) केंद्रीय स्तर (ख) राज्य स्तर
   (ग) जिला स्तर (घ) ये सभी
8. मनुष्यों की गतिविधियों की वजह से पैदा हुए पदार्थों जो कि प्रयोगहीन हैं, उन्हें क्या कहा जाता है?
   (क) ठोस कचरा (ख) घरेलू कचरा
   (ग) संस्थागत कचरा (घ) वाणिज्यिक कचरा

टिप्पणी

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)
7. (घ)
8. (क)

4.6 सारांश

सामान्य रूप से, मूल्य को नैतिक विचारों, सामान्य अवधारणाओं या विश्व के प्रति झुकाव या कभी-कभी मात्र रुचियों, दृष्टिकोणों, वरीयताओं, आवश्यकताओं, भावनाओं और स्वभावों के रूप में माना गया है। लेकिन समाजशास्त्री इस शब्द का अधिक सटीक अर्थ में उपयोग करते हैं। उनके अनुसार, 'सामान्यीकृत अंत, जिसमें सटीकता, अच्छाई या अंतर्निहित वांछनीयता का समावेश होता है, उसे मूल्य के रूप में जाना जाता है।'

मूल्य शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है, जिसमें मूल्यों पर बल दिया जाता है और इसके अन्तर्गत ऐसी प्रणाली का संगठन किया जाता है जो शिक्षा के सभी अंग जैसे- पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां,उद्देश्य एवं शिक्षक आदि सभी मूल्यों का संवर्द्धन करने में तत्पर हो।आज जो सर्वत्र मूल्यों का प्रश्न दिखाई दे रहा है, उसे दूर करने के लिए शिक्षा ही एक उपयुक्त माध्यम हो सकती है। इसलिए शिक्षाशास्त्रियों ने इस विषय पर चिन्तन करके मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए भरपूर प्रयास किए और "मूल्य शिक्षा" की ओर उन्मुख हुए हैं और आज भी प्रयासरत हैं।

आतंकवाद एक ऐसा शब्द है जिसे सुनकर दहशत हो जाती है कि किस का घर उजड़ने वाला है। आतंकवाद के कारण भारत देश ही नहीं वरन समूचा विश्व परेशान है। कुछ ऐसे सिरफिरे लोग जोकि विक्षिप्त मानसिकता के होते हैं उनके द्वारा यह कृत किया जाता है। कट्टरपंथ और आतंकवाद पूरे विश्व की ज्वलंत समस्या हैं, शायद ही कोई देश इस अभिशाप से अछूता रहा है। सेना समर्थित कमजोर सरकारों की शह

टिप्पणी

मिलने से आतंकवाद को फलने–फूलने का भरपूर मौका मिला है। अकूत तेल भंडारों से लबरेज देशों की बेहिसाबी धन–संपत्ति और भटकी हुई युवा शक्ति ने उनके लिए खाद पानी का काम किया हैं। फिर भी राजनीतिज्ञ ऐसे भस्मासुरों को वरदान देने से बाज नहीं आ रहे हैं। सम्मेलनों में बार–बार कहा जाता है कि शांति और स्थायित्व कायम किया जाए सभी देशों में इस हेतु साझा कदम उठाए जाएं। हालांकि दृढ़ इच्छा शक्ति और अदम्य साहस के बलबूते अमरीका जैसे सर्वशक्तिमान राष्ट्र ने आंतकी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होने दी है।

भ्रष्टाचार का विषय एक ऐसा राजनीतिक प्रश्न है जिसके कारण कई बार न केवल सरकारें बदल जाती हैं बल्कि यह बहुत बड़े–बड़े ऐतिहासिक परिवर्तनों का वाहक भी रहा है। रोमन कैथलिक चर्च द्वारा अनुग्रह के बदले शुल्क लेने की प्रथा को मार्टिन लूथर द्वारा भ्रष्टाचार की संज्ञा दी गई थी। इसके ख़िलाफ किये गये धार्मिक संघर्ष से ईसाई धर्म–सुधार निकले। परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेंट मत का जन्म हुआ। इस ऐतिहासिक परिवर्तन से सेकुलरवाद के सूत्रीकरण का आधार तैयार हुआ।

निरक्षर मानव जीवन में साक्षरता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग की जटिलताओं को देखते हुए निरक्षरों को शिक्षित करना अनिवार्य है। हमारी सामाजिक समस्याओं– जाति प्रथा, दहेज प्रथा, जनसंख्या नियंत्रण आदि का निवारण भी तभी संभव है जब हर व्यक्ति साक्षर हो। शिक्षा के माध्यम से ही निरक्षर स्त्री–पुरुषों का जीवन स्तर ऊंचा उठाया जा सकता है। साक्षरता का उद्देश्य मात्र अक्षर ज्ञान देना नहीं है, अपितु मनुष्य के संपूर्ण जीवन को उन्नत बनाना है।

भारत में वर्तमान सामाजिक परिवेश का कमजोर होना असमान रूप से विवाह करने का ही परिणाम है। पितृसत्तात्मक प्राधिकरण बच्चों पर आमतौर पर बालिकाओं पर जुल्म करता है। समाज में एक धारणा है कि महिलाओं को चयन करने की स्वतंत्रता नहीं है और एक सम्मानजनक जीवन जीने का कोई विकल्प नहीं है। तस्करी, महिलाओं और बच्चों के शोषण, उनके अपमान, सामाजिक कलंक, ऋण बंधन का एक जीवन है। इसके साथ ही यह एचआइवी/एड्स जैसी स्वास्थ्य समस्याओं को संयुक्त रूप से जन्म देता है।

लड़की जन्म से पहले ही समाज में उपेक्षित मानी जाती रही है। इसलिए उल्लेखन और लैंगिक भेदभाव परीक्षण के रूप में आधुनिक तकनीकों का विकास किया गया है। ये तकनीक भ्रूण हत्या के लिए जिम्मेदार हैं। एक अध्ययन के अनुसार, यह परिलक्षित किया गया है कि 1000 भ्रूण हत्या के बीच 995 महिला भ्रूण हत्या हैं। समृद्ध शहरों में, यौन भेदभाव परीक्षण के प्रावधानों द्वारा उच्च और मध्यम वर्ग के लोग इन परीक्षणों का अभ्यास कर रहे हैं। इस कारण से महिला भ्रूण हत्या की संख्या बढ़ गई है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के अनुसार भारत में 1999–2000 में, कन्या भ्रूण हत्या के अपराध में 49.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

दहेज, महिलाओं के खिलाफ हिंसा के रूप में एक दक्षिण एशियाई समाज में महिलाओं की असमान स्थिति के एक विस्तृत नजरिए से देखा जा रहा है। दहेज

आमतौर पर वह है, जो महिला अपने साथ सामान विवाह के बाद नए घर में लाती है। ये दहेज उसके माता–पिता उसे सम्पति के रूप में देते हैं, या वह महिला स्वयं इसे अर्जित करती है। दहेज की व्यापक परिभाषा महिला के परिवार द्वारा खर्च किए गए धन, जेवरात और उपहारों से जुड़ी हुई है। दहेज प्रथा का असली अभिशाप भारतीय समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास द्वारा प्रकट किया गया है। उनके द्वारा दहेज प्रथा की नई परिभाषा यह है, "जिसमें दूल्हे के परिवार के द्वारा नगद और सम्पत्ति की मांग विभिन्न रूपों में की जाती है।"

भारत में घरेलू हिंसा के पीछे लिंग पूर्वाग्रह और असमानता की धारणाएं जैसे कारण होते हैं। कुल मिलाकर महिलाओं को कमजोर वर्ग माना जाता है। विभिन्न सामाजिक और धार्मिक कुप्रथाओं ने इसे बढ़ावा देकर, महिलाओं के लिए असमान स्थिति को और भी जटिल कर दिया गया है। इन असमानताओं के कारण महिलाओं की आजादी में कटौती हुई है और उनके समक्ष कठिन परिस्थितियां भी आई हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा हाल ही का चिंता का विषय नहीं है, बल्कि यह बहुत पहले से चला आ रहा है। हमारी संस्कृति में यह एक गहरी समस्या बन गई है। कई शोधकर्ताओं ने हिंसा की समस्या का मुकाबला करने में जागरूकता के महत्त्व पर बल दिया है।

सभ्यता की शुरुआत के बाद से ही मनुष्य की पर्यावरण में रुचि रही है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में कई प्रथाएं पर्यावरण संरक्षण से संबंधित हैं। लेकिन आज हम दो परस्पर विरोधी विकल्पों के बीच फंसे हैं। एक ओर अधिशेष खाद्य उत्पादन, जेनेटिक इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष और सूचना प्रौद्योगिकी व उन्नत चिकित्सा पद्धतियों के साथ एक समृद्ध और सुनहरे भविष्य की संभावना है तो दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या के गंभीर परिदृश्य, आवास के लिए स्थान की कमी, पानी की कमी और जैव विविधता के नुकसान हैं। सतत विकास, प्रबंध व पर्यावरण आपदाओं को रोकने के लिए ऐसे आसन्न खतरों के साथ हवा, पानी और खनिज संपदा सहित संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग की बढ़ती अनुभूति होनी चाहिए।

पर्यावरण को समझने और इसके संरक्षण से पहले हमें यह समझना होगा कि पर्यावरण क्या है। पर्यावरण शब्द फ्रैंच भाषा के शब्द 'एन्वारन' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'घिरे होना' या 'चारों तरफ'। वास्तव में वातावरण का मतलब एक जीव के जीवन की बाह्य परिस्थितियों से है। पौधों और जानवरों जैसे जीवों सहित मनुष्य भी पर्यावरण से पोषण पाते हैं और इसकी गोद में जीवित रहते हैं। पर्यावरण स्थिर नहीं है, बल्कि यह समय और स्थान के हिसाब से बदलता जाता है। इसमें रहने वाले जीवों को जिंदा रहने और विकास करने के लिए एक या इससे अधिक पर्यावरणीय कारकों जैसे तापमान, आर्द्रता में परिवर्तन के अनुकूल खुद को ढालना पड़ता है। जो प्रजातियां पर्यावरण परिवर्तन के साथ सामंजस्य बनाने में असमर्थ रहती हैं उनके डायनासोर और कवकवे की तरह मरने या विलुप्त होने की संभावना रहती है।

टिप्पणी

पर्यावरण संबंधी अध्ययन अपने बहु-विषयक दृष्टिकोण के साथ, पर्यावरण प्रणालियों और प्रक्रियाओं के बारे में एक बुनियादी जानकारी प्रदान करता है। यह उन परिवर्तनों के बारे में भी बताता है जो मानवीय कारकों की वजह से हो रहे हैं। यह विभिन्न पर्यावरण प्रणालियों और उन पर मानवीय गतिविधियों के प्रभाव के विश्लेषण के लिए कौशल प्राप्त करने में हमारी मदद करता है। पर्यावरण अध्ययन में पर्यावरण प्रबंधन, पर्यावरण नीति विश्लेषण, संपत्ति के अधिकार, प्रदूषण नियंत्रण के आर्थिक यंत्र और पर्यावरण नीति जैसे विभिन्न क्षेत्र शामिल हैं। पर्यावरण अध्ययन की अवधारणाएं कृषि, उद्योग, निर्माण और शहरी नियोजन जैसे क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रही हैं।

मनुष्यों की गतिविधियों की वजह से पैदा हुए पदार्थ (गैर द्रव अथवा गैसीय) जो कि प्रयोगहीन अथवा अवांछित हैं, उन्हें ठोस कचरा कहा जाता है। जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के चलते ठोस कचरा इतनी ज्यादा मात्रा में पैदा होने लगा है कि इसका निपटान बहुत बड़ी समस्या बन गया है।

पिछले 150-200 सालों में जलवायु में परिवर्तन तेज गति से हुए हैं। इसलिए कुछ पौधे और जीवों की प्रजातियां इन परिवर्तनों को ग्रहण नहीं कर सकीं। भूतकाल में जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक कारणों से हुआ था परंतु वर्तमान में जिस तेजी से जलवायु परिवर्तन हो रहा है उसका जिम्मेदार मानवीय क्रियाकलापों को माना जाता है। इन क्रियाकलापों में जीवाश्म ईंधनों को जलाना, औद्योगिकरण, उपभोक्तावाद, निर्वनीकरण और कृषि जैसे कार्य शामिल हैं जिनकी वजह से कार्बन डाईऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन हो रहा है। ये गैसें सौर विकिरणों को सौख रही हैं जिससे वातावरण गर्म हो रहा है।

आपदा प्रबंधन के दो विभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण पहलू हैं– आपदा पूर्व व आपदा पश्चात का प्रबंधन। आपदा पूर्व प्रबन्धन को जोखिम प्रबन्धन के नाम से भी जाना जाता है। आपदा के जोखिम भयंकरता व संवेदनशीलता के संगम से पैदा होते हैं, जो मौसमी विविधता व समय के साथ बदलते रहते हैं। जोखिम प्रबन्धन के तीन अंग हैं– जोखिम की पहचान, जोखिम में कमी व जोखिम का स्थानान्तरण। किसी भी आपदा के जोखिम को प्रबन्धित करने के लिए एक प्रभावकारी रणनीति की शुरुआत जोखिम की पहचान से ही होती है। इसमें प्रकृति, ज्ञान और बहुत सीमा तक उसमें जोखिम के बारे में सूचना शामिल होती है। इसमें विशेष स्थान के प्राकृतिक वातावरण के बारे में जानकारी के अलावा वहां आ सकने का पूर्व निर्धारण शामिल है। इस प्रकार एक उचित निर्णय लिया जा सकता है कि कहां व कितना निवेश करना है। इससे एक ऐसी परियोजना को डिजाइन करने में मदद मिल सकती है, जो आपदाओं के गम्भीर प्रभाव के सामने स्थिर रह सकें। अतः जोखिम प्रबन्धन व इससे जुड़े पेशेवरों का कार्य जोखिम क्षेत्रों का पूर्वानुमान लगाना, उसके खतरे के निर्धारण का प्रयास करना, उसके अनुसार सावधानी बरतना और मानव संसाधन एवं वित्त जुटाना आदि आपदा प्रबन्धन की इस उपशाखा के ही अंग हैं।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **सामूहिक शब्दावली :** समुदाय की एकजुटता या समानता, न्याय तथा सामाजिकता के सामूहिक मानदंडों से जुड़े मूल्य।

- **मूल्य शिक्षा :** मूल्य शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है, जिसमें मूल्यों पर बल दिया जाता है। जिसमें शिक्षा के सभी अंगों जैसे पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, उद्देश्य आदि शामिल रहते हैं।
- **भ्रष्टाचार :** सरकारी सत्ता और संसाधनों के निजी फायदे के लिए किए जाने वाले गलत उपयोग को भ्रष्टाचार कहा जाता है।
- **दहेज :** दहेज आमतौर पर वह है जो महिला अपने साथ सामान विवाह के बाद नए घर में लाती है।
- **ठोस कचरा :** मनुष्य की गतिविधियों की वजह से पैदा हुए पदार्थ जो कि प्रयोगहीन या अवांछित हैं, उन्हें ठोस कचरा कहते हैं

4.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. मूल्यों का अर्थ बताते हुए परिभाषित कीजिए।
2. सामाजिक अध्ययन शिक्षण में सामाजिक मुद्दे कौन से हैं, उनके नाम लिखिए।
3. लैंगिक असमानता से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
4. अपशिष्ट सामग्री क्या है? उसके प्रबंधन के बारे में बताइए।
5. जलवायु परिवर्तन से क्या तात्पर्य? परिभाषित कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक अध्ययन के माध्यम से बच्चों में मूल्यों के समावेशन के कौन से तरीके हैं? उल्लेख कीजिए।
2. सामाजिक मुद्दों- आतंकवाद, भ्रष्टाचार व निरक्षरता के कारण और निवारण की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक अध्ययन शिक्षण में मूल्यों की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।
4. पर्यावरण को प्रभावित करने वाली मानवीय गतिविधियों की विवेचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. आपदा प्रबंधन एवं जलवायु परिवर्तन के बारे में विस्तार से समझाइए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Bhattachraya, S and Darji. 1996. *Teaching Social Studies Indian School*. Baroda: Acharya Book Depot.

Jarolimiek, John. 1977. *Social Studies in Elementary Education*. New York: Macmillan Publishing Co.

NCERT. 2005. *National Curriculum Framework*. New Delhi.

Sharma, R.A. 2001. *Social Science Teaching*. Meerut: Loyal Book Depot.

Wesley, E. B. 2004. *Teaching Social Studies in Elementary Schools*. Boston: D C Health and Company.

विनईंग एंड विनईंग, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज इन सेकंडरी स्कूल*, न्यूयॉर्क।

टिप्पणी

ब्लूम बी.एस., *टेक्सोनोमी ऑफ एजुकेशनल ऑब्जेक्टिव्स*, एम.सी.के. न्यूयॉर्क।

कोचर एस.के., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*, नेथून एंड कं. लिमिटेड, लंदन।

ऑल इण्डिया कॉउंसिल, *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*।

शर्मा आर.ए., *टीचिंग ऑफ सोशल स्टडीज*, सूर्या प्रकाशन, मेरठ।

टिप्पणी

टिप्पणी